संवर्ग–1 : लोक एवं लोक साहित्य

इकाई–1

लोक वार्ता और लोकमानस

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 लोक : पारिभाषिक वातायन
1.3 लोकवार्ता
1.4 फोकलोर पारिभाषिक विवेचन
1.5 फोकलोर का समानार्थक शब्द लोकवार्ता
1.6 लोकवार्ता का क्षेत्र
1.7 लोकवार्ता कार्य एवं प्रयोजन
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नावली

1.0 प्रस्तावना

आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के भौतिक चमत्कारपूर्ण तार्किक संस्कारों, जीवनपद्धति की जटिलताओं, बौद्धिक तनावों, मानसिक कुण्ठाओं, शास्त्रीय ज्ञानजन्य अहंकारों, अतिवादी पांडित्य की चेतनाओं तथा वर्गसंघर्ष की आशंकाओं से तपती, दहकती एवं सुलगती मरुभूमि से सर्वथा दूर–एक ऐसी भी सृष्टि विद्यमान रही है जो नित्य नूतन शस्य श्यामल, परम पवित्र, अकृत्रिम, सहज तथा परम्परानुमोदित संस्कारों की उर्वरता से सम्पन्न है। यह ऐसी स्वच्छंद सृष्टि है जिसकी सत्ता पोथियों के ज्ञान से निर्मित नहीं है। जहाँ व्याकरण के अनुशासन की श्रृंखला नहीं है तथा अहम् चैतन्य की व्यक्तिवादी बोधगत सत्ता का शासन भी नहीं है। इस लोक का प्राणी जीवन के विराट् और विशाल महासागर की लहरों पर सनातन काल से तैरती हुई अनुभवों की रत्नाभा से प्रेरणा ग्रहण करता रहा है। यहाँ का प्राणी गीतों की लय तथा ताल पर थिरकता है, कथाओं तथा गाथाओं की धारा में निर्बाध बहता हुआ लोकमंगल की कामना के किनारों को संस्पर्श करता है और प्रहेलिकाओं तथा लोकोक्तियों की टेढ़ी–मेढ़ी वक्रिल पगडंडियों पर संचरण करता हुआ लोक रंगमंच की अकृत्रिम अभिनय शैली की विविध नाट्य–मुद्राओं से अनुरंजित होता है। यह सृष्टिलोक देवी–देवताओं के चमत्कारपूर्ण जीवन–प्रसंगों से चमत्कृत होती है तथा अनुष्ठानों, टोने–टोटकों, शकुन–अपशकुनों, तीज–त्यौहारों के बीच अपनी जीवनयात्र को हंसते–रोते, हंसते–गाते, नाचते–झूमते, रीझते–खीझते, खिलते–मिलते पूरी करती है। जंगल में खिलने वाले फूलों की तरह यह "सृष्टि" भी सुन्दर, स्वाभाविक तथा सहज है। यह स्वतोद्गीर्ण उच्छ्वास है। इस 'सृष्टि' को लोक (FOLK) की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। यह लोक सच्चे अर्थों में जनमानस है और उसका मूल प्रतिबिम्ब भी है। लोक साहित्य की महत्ता को उद्घाटित करते हुए डॉ. संसारचन्द्र लिखते हैं–"भारतीय जीवन अनादि युग से काव्यमय रहा है जिसका संगीत अपनी तरल गति से सर्वप्रथम लोक साहित्य में ही तरंगित हुआ है। हमारे आचार–विचार, विधिनिषेध, प्रथा–परम्परा, मान्यता–विश्वास, धर्म अनुष्ठान लोक साहित्य में ही अपने सहज व निसर्ग रूप में उभरते हैं। लोक साहित्य की जनता जनार्दन के अकृत्रिम रूप का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। इसीलिए कालिदास जैसे महाकवि भी साहित्य और कला के क्षेत्र में आभिजात्य प्रवृत्ति से सर्वथा तटस्थ रहे। उन्होंने वन्य लताओं के समक्ष उद्यान लताओं को नतमस्तक करके लोक–सौन्दर्य का डिंडिम पाटा और कृत्रिमता के कवच को तोड़ कर लोक संस्कृति के उत्कर्ष की विजय वैजयन्ती फहराई।"[1] डॉ. शंकरलाल यादव लिखते हैं–"लोक साहित्य परम्परानिधि है जिसे लेखनी ने न कभी सँवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान–पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोक साहित्य का स्त्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप में प्रवहमान है।[2] भोजपुरी लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्यव्रत सिन्हा के शब्दों में–"लोक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है, जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है।"[3] डॉ. सत्या गुप्ता ने सत्य ही लिखा है कि–"लोक साहित्य में विशेष जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती है।"[4] तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य लोकाभिव्यक्ति का मनोहारी, सम्मोहक, अलंकृत, अनगढ़ किन्तु मधुमय तथा आनन्दमय मूर्त उद्‌गार है जो सभ्यता के उषाकाल से अद्यतन युग तक गुंजित है। लोक साहित्य लोकाभिव्यक्ति है और इसे लोकाभिव्यक्ति का मूल आधार "लोक" तथा "लोकमानस" है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत लोकवार्ता एवं लोकमानस की विस्तृत विवेचना की गई है।

1.2 लोक : पारिभाषिक वातायन

"सिद्धान्त कौमुदी" के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति 'लोक् दर्शने' धातु में धञ् प्रत्यय जोड़ने से हुई है। इस धातु से 'देखने' अथवा 'अवलोकन' करने के भाव का अर्थबोध होता है। "लोक" के इस व्युत्पत्यर्थ में देखने के कार्य को सम्पन्न करने वाला समस्त जन–समुदाय सन्निहित हो जाता है।[5] विभिन्न शब्दकोशों में 'लोक' – लोग, मानव, यश, कीर्ति, सृष्टि के विभाग आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[6] हलायुध कोश में 'लोक' को मनुष्य, प्रजा, जगत और भुवन के अर्थ में माना गया है।[7] श्री वी.एस. आप्टे ने 'लोक' को मानव जाति, प्रजा समूह, प्रान्त, कक्ष, सात और चौदह की संख्या, संसार आदि के अर्थ में प्रयुक्त किया है।[8]

पाश्चात्य शब्दकोश में 'लोक' का समानार्थक शब्द FOLK स्वीकार किया गया है। FOLK की व्याख्या करते हुए लिखा गया है –

1. ''People in general, or any part of then without distinction, formerly alike in both singular and plural, but now the plural folks is most used, as folks will talk, some folks say so.
2. The Members of one's family; one's relatives; a colloquial use in the plural in the United states; as the folks down home on the farm, his folks are Yankees.

कोशगत अर्थों को देखने से यह कहा जा सकता है कि 'लोक' शब्द विशाल, व्यापक, विस्तृत तथा समष्टि के साथ सम्पूर्ण मानव समाज के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। इसके साथ–साथ यह भी स्पष्ट है कि 'लोक' से एक यह भी अन्यार्थ ग्रहण किया गया है कि लोग शास्त्रीय विधान, संस्कारों की औपचारिकता तथा परिष्कृत अभिरुचि की कृत्रिम दुनिया से दूर रह कर नितान्त अनौपचारिक, व्यावहारिक तथा पुरातन संस्कारों को जीते हैं, उन्हें ही 'लोक' की संज्ञा से संबोधित किया गया है।

प्रयोग–परम्परा की दृष्टि से 'लोक' अत्यन्त ही समृद्ध है। ऋग्वेद के विख्यात पुरुष–सूक्त में स्थान और जीवन दोनों ही अर्थों में 'लोक' का प्रयोग हुआ है।

नाभ्या आसीदंतरिक्ष शीर्ष्णा द्यौ समवर्तन।
पद्भ्या भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्।[10]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर 'जन' के अर्थ में भी 'लोक' का प्रयोग हुआ है यथा –

"य इमें रोदसी उभे अहमिंद्रमतुष्टवं। विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं।"[11] यजुर्वेद में विराट समाज के रूप में 'लोक' की कल्पना की गई है। ऋषि कहता है –

"वह विराट पुरुष सहस्त्र मुख, नेत्र और पद से युक्त है –"

"सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्ष सहस्त्र पात्।" इसी प्रकार जैमिनीय उपनिषद में भी 'लोक' बहुविध व्याप्त है जिसे अनन्त प्रयत्न करने पर भी नहीं जाना जा सकता –

"बहु व्याहितो वा अहं बहुतो लोकः। क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्।"[12]

महर्षि वेदव्यास ने अपनी अद्‌भुत महत्कृति 'महाभारत' की विशिष्टताओं के सन्दर्भ में 'लोक' को जनसाधारण के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए अंधकार रूपी अज्ञान को नष्ट करने वाली ज्ञान की अंजन शलाका के रूप में व्याख्यायित किया है –

अज्ञानातिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ज्ञानांजन शलाकभिः नेत्रोन्मीलनकारकम्।[13]

इसी प्रकार महाभारत में वर्ण्य विषयों की यात्रा के सन्दर्भ में 'लोक' की चर्चा की गई है –

"पुराणानां चैव दिव्यानां, कल्पनां युद्धकौशलम्।
वाक्य जाति विशेषाश्चःलोकयात्रा कृपश्च यः।"14

व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' का उल्लेख करते हुए 'लोक' की पृथक् सत्ता स्वीकार की है। पाणिनि ने यह भी लिखा है कि वेद में अमुक शब्द अमुक प्रकार है, किन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न है। आचार्य वररुचि ने अपने वार्तिकों में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है। 'महाभाष्य' के रचनाकार पंतजलि ने लोक में प्रचलित 'गौ' शब्द के विभिन्न रूपों का विस्तार से उल्लेख किया है–[15]

"केषां शब्दनाम्? लौकिकानां च। एकैकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्ददस्य गाणी–गोणी–गोता–गोपो– तालिकेत्येव मादयोऽपभ्रंशाः।"

श्रीमद्भगवत्गीता में 'लोक' और 'लोकसंग्रह' इत्यादि शब्दों पर विशेष बल देते हुए कहा गया –

"कर्मणैवहिससिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवपि संपश्चनन्कर्तुमर्हसि।।"[16]

प्राकृत तथा अपभ्रंश में "लोकजत्ता, 'लोकअप्पवाय' आदि शब्द प्रयोग आभिजात्य आचारों से भिनन लौकिक नियमों के सन्दर्भ में प्राप्त होते हैं। सम्राट अशोक महान् ने अपने शिलालेखों में बौद्ध धर्म, प्रचार के लिए निर्मित सम्पूर्ण प्रजाजनों के अर्थ 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।

लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्येन्द्र 'लोक' की परिभाषा के सन्दर्भ में लिखते हैं – "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[17] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'लोक' की परिभाषा देते हुए लिखते है – "लोक शब्द का अर्थ जनपद या 'ग्राम्य' नही है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथयों नही है। ये लोग नगर में परिष्कृत जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।[18] डॉ. कुंजबिहारी दास के शब्दों में – "लोक जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रह कर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"
''...The people that live in more or less primitive conditions out side the sphere of sophisticated influences.[19]''

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की मान्यता है कि 'लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान–सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का स्वरूप है, – अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्य प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है।"[20] इसी सन्दर्भ डॉ. श्याम परमार लिखते हैं – लोक साधारण जन–समाज है, जिनमें भू–भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्गभेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।[21] डॉ. श्याम परमार 'लोक' दोनों संस्कृतियों स्पष्ट करते हुए यह भी लिखते हैं कि – आधुनिक साहित्य का नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन–समाज जिसमें पूर्व संचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।[22]

सुविख्यात चिन्तक और मूर्धन्य निबन्धकार श्री विद्यानिवास मिश्र जी लिखते हैं – "लोक देश का ही एक आनुभविक रूप है। ...इसके सजातीय शब्द हैं – आलोक, लोचन (आँख), आलोचना (अच्छी तरह देख कर विवेचन करना), रोचन (प्रकाशमान, सुंदर, शोभन, इसीलिए प्रीतिकर, प्रीतिकर संदेश, सन्तानोत्पत्ति का संदेश, इसी से संबंद्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फारसी का रोशन और रोशनी है), अवलोकन...। इस प्रकार लोक अपने में विशाल अर्थ समेटता है। ...श्री कृष्ण जैसे अलौकिक चरित्र में भी आग्रह है कि मुझे भी लोक यात्रा पूरी करनी है। यदि मैं न करूँ तो यह लोक नष्ट हो जाएँ।[23]

सारांश यह है कि 'लोक' विशद, व्यापक, विराट, विस्तृत, सर्वव्यापक, सार्वकालिक सार्वदेशिक तथा परम्परानुमोदित मानसिकता है जो किसी शास्त्रीय अथवा अभिजात्य संस्कारों तथा पांडित्य की लक्ष्मणरेखा से बद्ध नहीं हैं। गाँव की 'झोंपड़ी' से महानगरीय जीवन की आकाशचुम्बी अट्टालिका में रहने वाले "मानस" तक विद्यमान है। यह 'लोक' अतर्क्य, सहज श्रद्धालु, विश्वासी, आस्थाजीवी, वैदिक देवी–देवता और पौराणिक अवतारी देवता ही नहीं बल्कि लोक प्रेरक असाधारण स्त्री–पुरुषों के अलौकिक कर्मों में भी देवत्व का दर्शन करने वाला है। वह अनुष्ठानी है, 'मनौती' मानने वाला तथा शकुन–अपशकुनों में जीने वाला है। दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए पशु बलि से लेकर मानवबलि भी देने में यह 'लोक' संकोच नहीं करता। दैवी प्रकोप हो अथवा प्रेत बाधा अथवा नजर लगी हो, इन सबको हटाने के लिए वह 'टोटका' भी करता है। निश्चय ही यह 'लोक' अनलंकृत है, अकृत्रिम है इसीलिए पुरातन होते हुए भी चिर नवीन रहता है। स्वाभाविकता इसकी पहचान है, सहजोद्रेकता इसका धर्म है और सरलता इसका स्वभाव और 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' का संकल्प इसकी आत्मा है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब सुप्रसिद्ध विद्वान् एडबर्ड टाइलर ने नृतत्व (एंथ्रुपॉलॉजी) के विषय को गम्भीरता के साथ विवेचित किया जब इस शास्त्रीय चिन्तन की भूमि पर केवल सामान्य संस्कृति का ही विवेचन होता था, इसीलिए पाश्चात्य चिन्तन ने 'लोक' का अर्थ असंस्कृत तथा असभ्य मूढ़ समाज के लिए ही किया था। इस सन्दर्भ में डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय लिखते हैं – "विद्वानों ने 'लोक' शब्द से तात्पर्य उन लोगों से लिया जो विशिष्ट संस्कृति, शासक वर्ग की विचारधारा तथा लिखित प्रमाणवाली जातियों से अप्रभावित रहते हैं। ऐसे लोग किसी सभ्य राष्ट्र में मुख्यतः सामान्य कार्यकर्ता हुआ करते हैं।"[24] इस प्रकार की वैचारिकता की भूमि पर उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में नृतत्वशास्त्र का विस्तार होता है। जब सुप्रसिद्ध विद्वान् ए.सी. हेडेन ने मलेशिया में अनुसंधान यात्राएँ प्रारम्भ कीं तथा मिस्टर डब्ल्यू.आर. रिवर्स ने वहाँ के संस्कार, आचार–विचारों एवं रीति–रिवाजों का गहन अध्ययन किया, तब उनके अध्ययन का मूलाधार भी सुदूरवासी आदिम जातियाँ ही थीं। इस प्रकार नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि विकसित होने लगी। अब 'लोक' से तात्पर्य सभ्यता के प्रतिमानों से पिछड़ी आदिम जातियों या जनजातियों से जोड़ दिया गया है। रेडक्लिफ जैसे विद्वानों ने नृतत्व तथा जातिविज्ञान को अर्द्ध सभ्य जातियों से जोड़ा तो इवान प्रिचर्ड प्रभृति अध्येताओं ने सामाजिक नृतत्वशास्त्र को अध्ययन का विषय मान लिया। शनैःशनैःनृतत्वशास्त्र (एन्थ्रॉपॉलाजी) तथा जातिशास्त्र (एश्नालॉजी) भिन्न समझे जाने लगे और आदिम जातियों का अध्ययन नृतत्व तथा किसान समाजों का अध्ययन जातिशास्त्र ने करना प्रारम्भ किया। 'लोक' का सम्बन्ध फिर भी आदिम जातियों से बना रहा। टेलर तथा एण्ड्रलैंग जैसे विद्वानों ने भी इस लोक वार्ता क्षेत्र "अवशिष्ट का अध्ययन" (स्टडी ऑफ सरवाइवल्स) कहा है। प्रसिद्ध विद्वान फ्रैंक सिजविक, गुम्मरे, लुइसी पाडंड, राबर्ट ग्रीव्स आदि की यह मान्यता रही है कि "लोक वार्ता मनुष्य की आदिम अवस्था की अभिव्यक्ति है। वह असंस्कृत समाज का विषय है तथा इसकी विशेषताएँ अब विगत अवशेषों के रूप में ही दर्शनीय है।"[25] यही कारण है कि कालान्तर में नृतात्विक सन्दर्भ में भी 'लोक' का अर्थ ग्रहण किया जाने लगा। धीरे–धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि अब लोक समाज सम्बन्धी धारणायें बदली जानी चाहिए क्योंकि अब सार्वदेशिक परिवर्तन हो रहे हैं। नृतत्व वेत्ताओं ने यह भी अनुभव किया है कि जीवन–पद्धतियों में अब नगर और गॉव का अन्तर मिटता जा रहा है। रॉबर्ट रेडफीलड के अनुसार ग्राम और नगर के विभिन्न वर्गों के मध्य एक ही मिली–जुली संस्कृति के भले ही उच्च और निम्नस्तरीय धरातल रहे हों, परन्तु वे एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।[26] इस प्रकार नृतत्वशास्त्रियों ने ग्रामीण समुदाय को सभ्य समाज से अलग न मानकर एक ही विशाल मानव समाज का अंग मानकर ग्रहण किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'लोक' अपने व्यापक परिवेश में ग्रामीण जन समुदाय से जुड़ गया यद्यपि शिक्षा, जीवनस्तर और विविध् संस्कारों की दृष्टि से यह समुदाय नगरीय जीवन से तो दूर ही था। सन् 1953 ई. में प्रकाशित एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में 'लोक' (**FOLK**) लोक का अर्थ प्रधानतः ग्रामीण जन समुदाय से ही ग्रहण किया गया है। फिलिप्स बार्कर के मतानुसार किसी भी आदिम समाज के सभी सदस्य 'लोक' ही हैं। अमेरिका के लोकवार्ताविज्ञानी जार्ज हरजोग के मतानुसार 'लोक' वह जनसमुदाय है जिसमें नगरीय, सांस्कृतिक, आर्थिक व सांस्कारिक, एवम् शैक्षिक नीति कम होती है और जीवनगत मान्यताएँ, वार्ताएँ, गीत, नृत्यों आदि में समानता होती है। धीरे–धीरे विद्वानों ने इस धारणा को स्वीकार किया कि लोक मनोवृत्ति गाँवों की ही धरोहर नहीं है बल्कि नगरों और महानगरों तक इसकी सत्ता की अनुभूति की जा सकती है। प्रो. एलेन डंडेस की मान्यता है कि 'लोक' शब्द से तात्पर्य मनुष्यों के किसी भी ऐसे समूह या समाज से हो सकता है जिसमें समानता का कोई एक आधार हो और यह समानता किसी व्यवसाय, भाषा, अर्थ अथवा परम्परा की हो सकती है। वे लिखते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

"The term folk can refer to any group of people who share at least one common factor, it does not matter what the linking factor is-could be a comman occupation, languge, or religion but what is important is a group formed for whatever reason will have some traditions which it calls its own."[27]

सारांश यह है कि 'लोक' के अर्थ को विद्वानों द्वारा तीन स्तरों पर समझाने और व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम स्तर निरक्षर और असंस्कृत लोगों से जोड़ा गया जो इसका सामाजिक आधार था। तदुपरान्त आदिम समाज से 'लोक' को जोड़ा गया जो जातीय आधार था तथा कृषक अथवा ग्राम समाज से जोड़ने वाला चिन्तन का तीसरा आधार भौगोलिक हो गया। कालान्तर में सर्वव्याप्त लोक मनोवृत्ति की सत्ता के सन्दर्भ में यह अर्थ मनोविज्ञान की भूमि पर भी समझा जाने लगा। "सांस्कृतिक प्रवाह के आधार पर लोक शब्द यदि एक और विशिष्ट मानव समूह (ग्रामीण समाज) का द्योतक है तो दूसरी ओर वे विशिष्ट मानसिक स्तर (लोक मनोवृत्ति) का भी द्योतक है जो किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता चला आया है और उसकी प्रत्येक भावात्मक, कलात्मक तथा बौद्धिक उपलब्धि में अभिन्न योग देता है।"28 इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि "लोक" की अभिव्यक्ति अहम् चैतन्य, शास्त्रीय ज्ञान के अभिमान, पांडित्य बोध और वैयक्तिकता से सर्वथा भिन्न है। यह अभिव्यक्ति नितान्त अकृत्रिम, सहज, सरल व परम्परानुमोदित है। यह लिखित नहीं बल्कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परम्परा से प्राप्त है।

बोध प्रश्न

1. 'लोक' शब्द की व्युत्पतिपरक व्याख्या कीजिए।
2. 'लोक' की भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं की व्याख्या कीजिए।
3. पाश्चात्य दृष्टि से 'लोक' की परिभाषा दीजिए।
4. 'लोक' का अर्थ एवम् उसका स्वरूप समझाइए।

1.3 लोकवार्ता

विगत डेढ़ शताब्दी वर्ष से लोकवार्ता एक स्वतंत्र विषय के रूप में अध्ययन का आधार रहा है। अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप में जिन परिस्थितियों ने राजनैतिक क्षेत्र में लोकतांत्रिक चेतना तथा साहित्यिक जगत् में स्वछंदतावाद जैसे चिन्तन को जन्म दिया, उसी का एक परिणाम लोक जीवन के विराट फलक की ओर उनका बढ़ता आकर्षण रहा है। इस सन्दर्भ में डॉ. दिनेश्वर प्रसाद लिखते हैं कि – "वह परिवेश विकासोन्मुख पूंजीवाद था जिसने अभिजात मनुष्य के स्थान में सामान्य मनुष्य के महत्व की प्रस्तावना की ओर उसकी भावनाओं और कृतियों को आदर दिया। उसी समय सामान्य –गैर अभिजात– मनुष्यों की समष्टि के रूप में लोक की संकल्पना का विकास हुआ और वह –लोक– अकृत्रिमता और स्वाभाविकता का प्रतीक बन गया। इसी भूमिका में लोक वार्ता या लोक साहित्य के प्रति रोमांटिक कवियों और दार्शनिकों के बढ़ते हुए आकर्षण को समझा जा सकता है।"29 अब तक काव्यशास्त्र भी कविता के विषय में सौन्दर्य और श्रेष्ठता के रुढ़ प्रतिमानों को ही मान्यता देता रहा लेकिन इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप उसने यह स्वीकार किया कि कविता आत्मानुभूति की ऐसी अकृत्रिम अभिव्यक्ति है जो अपनी सहजता व स्वाभाविकता में प्रकृति का पर्याय बन जाती है। रोमेंटिक कवियों को यह उद्बोधन लोक–साहित्य से ही प्राप्त हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम सन् 1687 ई. में जॉन आब्रे ने "रिमेंस ऑफ जेंटिलिज्म एण्ड जुड़ाइज्म" नामक अपनी पुस्तक में यूरोप के साधारण जन समाज के रीति–रिवाज, रहन–सहन, विश्वास, प्रथा–परम्पराएँ तथा धर्म आदि विषयों का अध्ययन किया। हर्डर महोदय ने 1778 ई. में विभिन्न देशों और जातियों के लोकगीतों का संकलन प्रकाशित करते हुए यह कहा कि लोकगीत प्रकृति के समान सहज, अकृत्रिम स्वाभाविक हैं तथा वे मनुष्य की बौद्धिकता व तार्किकता को नहीं वरन् उनकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं। प्रसिद्ध रचनाकार गेटे के प्रारम्भिक गीतों में लोकगीतों की भावना और लयात्मकता स्पष्टतः परिलक्षित की जा सकती है। सामान्य मनुष्य की महत्ता के प्रतिपादन की धारणा पर आधारित लोकतंत्र के विकास में ही राष्ट्रवादी चेतना का विकास हुआ। यहां तक कि हीगेल तथा शेलिंग जैसे विद्वानों की प्रेरणा से ही 'जर्मन श्रेष्ठता' का प्रतिपादन होने लगा। सुप्रसिद्ध लोकवार्ताविद् ग्रिम बन्धुओं ने भी यह बार–बार कहा है कि उन्होंने जर्मन लोकवार्ताओं का संकलन और जर्मन भाषा का अध्ययन 'राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित' होकर ही किया तथा अपनी संस्कृति की समृद्धि और श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। यही चेतना विश्व के अन्याय देशों में भी व्याप्त हुई। आर.एम. डारसन ने लिखा – "समृद्धि के देश अमरीका के पास निश्चय ही अपनी लोकवार्ता की समृद्धि होनी चाहिए। अब विश्व भर में अपनी सर्वश्रेष्ठता के इस युग में अमरीकनों को गर्व के साथ अपने लोकवार्ता की विरासत की खोज करनी चाहिए। वस्तुतः संसार के इस सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्र को अपने बच्चों को अपनी लोकवार्ता के नायकों और पौराणिक कहानियों से परिचय कराना चाहिए।30 इस प्रकार यूरोप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

औद्योगिकरण के पश्चात् बिखरती हुई परम्परागत ग्रामीण संस्कृति को विघटित होने से बचाने के लिए ही इन लोकवार्ताओं के संरक्षण की आवश्यकता को अनुभव किया जाने लगा।

लोकवार्ताताओं के प्रथम अध्ययन का श्रेय तो ब्रिटेन को नहीं है किन्तु लोक परम्पराओं के समुच्चयबोधक शब्द 'फोकलोर' शब्द की रचना का श्रेय अवश्य उसे प्राप्त है। सन् 1846 ई. में मेरियालीच ने "डिक्शनरी ऑफ फोकलोर" में यह तथ्य उद्घाटित किया कि विलियम जोन थामस ने सर्वप्रथम 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग किया था। आज यह शब्द मूल अथवा अनुदित होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया है। 12 अगस्त 1846 ई. को 'ऐथेनियम' पत्रिका में एसब्रोस मर्टन के छद्म नाम से जिस पत्र में इस शब्द का प्रयोग हुआ है, उसमें यह कहा गया है कि – "मैं फोकलोर विशेषण के प्रवर्तन के श्रेय का दावा उसी प्रकार करता हूं जिस प्रकार पितृभूमि (फादर लैंड) का इस देश के साहित्य में समावेश करने का दावा डिजरैली का है।" यही 'फोकलोर' शब्द जर्मन में 'फोल्कलोरिशिटरा', 'फोल्कलोर', फ्रेंच में 'फोल्कलोर' इटालियन में 'फोल्कलोरे' स्पेनिश् में 'फोल्कलोरिका', 'फोल्कलोरे' तथा रूसी भाषा में 'फोल्कलोर' की संज्ञा से संबोधित हुआ। विलियम थॉमस (Willim Thoms) के द्वारा फोकलोर शब्द लोकप्रिय पुरातत्वसामग्री (Popular Atiquities) अथवा लोकप्रिय साहित्य (Popular Literature) शब्द का प्रयोग होता है। विलियम थॉमस ने 'एथीनियम' पत्रिका में लिखा था कि 'फोकलोर' – जो एक सुन्दर सेक्सन सामासिक शब्द है और जिसके अन्तर्गत विधिविधान, अंधविश्वास, प्रथाएं, रीति–रिवाज, लोकगाथा आदि की गणना करने पर बल दिया गया था। उसने इस बात पर भी बल दिया कि नष्ट तथा उपेक्षित होती हुई प्रथाओं तथा मुरझाती हुई लोककथाओं तथा बिखरी हुई लोकगाथाओं के संरक्षण की अत्यन्त ही आवश्यकता है। एलन डण्डों लिखते हैं –In 1848 Williams Thoms using the name Ambrose merten, wrote a letter to 'The Athenaum' in which he proposed that a 'good saxon compound folk lore' be employed in place of such lebels as 'Popular Antiquites' and Popular literature Note worthy is them's conception of folk Lore and his essentially enumerative definition: manners, customs, observances superstitions, ballads, proverbs and so forth... some recollectios of a new neglected custom, some fading legends, local tradition on fragmentary ballads. विलियम थॉमस ने इसे सर्वसाधारण जन का ज्ञान (The lore of Pople) कह कर सम्बोधित किया है।

1.4 फोकलोर (FOLK LORE) पारिभाषिक विवेचन

'फोकलोर' शब्द की सृष्टि 'फोक' तथा 'लोर' से संयुक्त होकर हुई है। 'फोक' शब्द ऐंग्लोसेक्सन शब्द 'फोल्क' (Folc) से व्युत्पन्न माना गया है। जर्मन भाषा में इसे 'वोल्क' (Volk) कहते हैं। सामान्य रूप से सभ्यता से सुदूर करने वाली किसी सम्पूर्ण जाति का बोध 'फोक' से होता है। अपने व्यापक धरातल पर यह किसी भी सुसंस्ककृत राष्ट्रजन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। दूसरा शब्द लोर है जो ऐंग्लोसेक्सन के शब्द 'लर' (Lar) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ ज्ञान अथवा विद्या से है। इस दृष्टि से 'फोकलोर' का अर्थ सामान्य जनता का ज्ञान अथवा विद्या हुआ। कहने का आशय यह है कि जनता–जनार्दन का यह ऐसा ज्ञान है, उनकी जो जानकारी है, वह सभी कुछ "फोकलोर" के अध्ययन का विषय है। इस प्रकार जनता के रीति–रिवाज, विधि–विधान, कियाकलाप, प्रथा, विश्वास, परम्परा और लोक साहित्य–गीत, कथा गाथा, नाट्य ये सभी "फोकलोर" में अन्तर्भुक्त होते हैं।[31] सुविख्यात लोकवार्ताविद् मेरियालीच ने 'डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड' में अनेक विद्वानों की फोकलोर संबंधी मान्यताओं का उद्घाटन किया है। विलियम बास्कॉम महोदय लिखते हैं – '... the term folkore has come to mean myths, legends, folktales, proverbs, riddles, verse and a variety of other forms of artistic expression folklorists are intested in customs, beliefs, arts and crafts, dress, house types and food recipes.' अर्थात् 'फोकलोर' का सम्बन्ध पुराण–गाथा, अवदान, लोककथा, प्रहेलिका इत्यादि से है जिसका माध्यम मौखिक शब्द है। मानव विज्ञानियों के अनुसार फोकलोर का अध्ययन क्षेत्र प्रथायें, अंधविश्वास, कला, शिल्प, वेशभूषा, गृह के प्रकार और व्यंजन की सामग्री आदि से है।[32] एरेलियो एम.एस्पिनोजा लिखते हैं –

'Specifically, folklore consists of the beliefs, customs, superstions, proverbs, riddles, songs, myths, legends, tales, ritualistic ceremonies, magic, witchcraft, and all other manifestation and practices of primitive and illiterate peoples and of the ''Common'' people of civilized Society. Folklore may be said to be true and expression of the mind of the 'primitive' man – folklore perpetuates the pattern of culture and through its study we can often explain the motifs and the meaning of culture. अथवा 'फोकलोर' की सामग्री का अधिकांश सामाजिक मानव विज्ञानशास्त्र (Social Anthropology) की सामग्री के समान माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत लोकविश्वास, प्रथायें, अंधविश्वास लोकोक्तियां, प्रहेलिका, गीत, पौराणिक कथायें, अवदान,

लोक कथाएं, धार्मिक संस्कार, जादू, डायन विद्या आदिवासियों के कियाकलापों की गणना होती है। 'फोकलोर' किसी भी संस्कृति पद्धति को स्थायित्व प्रदान करता है एवं इसके अध्ययन से हम किसी भी संस्कृति के अभिप्रायों (Motif) के वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं।33 इस विषय में जार्ज फास्टर लिखते हैं –

Folklore is most meaningful when applied to the unwritten literary manifestations of all peoples, Literate or otherwise. ``Stories, certainly, whether myths, legends, folktales or antecdotes are of primary importance – I would also add riddles, rimes, proverbs, folk songs as well as folk beliefs and superstitions of almost all kind. Beyond this point One finds materials which may be treated in folkloristic fashion-games, Caste, cradle, ceremonies, withchcraft to illustrate-but which inthemselves donot, as I see it, necessarily Constitute folklore.'' "तात्पर्य यह है कि 'फोकलोर' के अध्ययन क्षेत्र में पहेलियां, गीत, लोकोक्तियां, लोकविष्वास की गणना होती है। इसके अतिरिक्त इसके व्यापक, क्षेत्र में बच्चों की कीड़ाएं, पालने के गीत, संस्कारों के विधि–विधान, जादू तथा डायनतंत्र भी व्याप्त है।34 "फोकलोर" की विवेचना करते हुए लोकवार्ताविद्, आर.डी. जेमसन लिखते हैं–``Folklore is a branch of cultural ethnology. The data of folklore are the rituals, legends, traditions, narrations, narrations, superstitions, religions, rituals, customs, dances and explanation of nature and man.'' अर्थात् 'फोकलोर' सांस्कृतिक जाति विज्ञान का एक अनिवार्य अंग है। इसके अन्तर्गत पुराणकथा, अवदान, परम्परा, लोककथा, अन्धविश्वास, धार्मिक विधि–विधान, प्रथा, नृत्य, प्रकृति तथा मानव की गणना होती है। आज के वैज्ञानिक लोकवार्ताविद् उषा, तारा की कथा, टोटमवादी चिन्तन तथा विस्तारवाद के गहन अध्ययन में लगे हुए हैं।[35]

अमरीकन लोकवार्ताविद् मेकएडवर्ड लीच "फोकलोर" की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि– `Folklore is the generic term to designate the customs, beliefs, traditions, tales, magical practices, proverbs, songs etc., in Short the accumulated knowledge of a homogeneous, unsophisticated people.' इसका तात्पर्य यह है कि 'फोकलोर' प्रथाओं, विश्वासों, परम्पराओं, लोककथाओं, जादूगरी के व्यवहारों, लोकोक्तियों एवं लोकगीतों से समझना चाहिए। यह अशिक्षित तथा 'एक समान' जनता जो पर परम्परा सामान्य शारीरिक संबंधों से बंधे हुए हैं, की ज्ञान राशि है।[36] अमरीकन लोकवार्ता विद् आर्चरटेलर की मान्यता है कि लोकवार्ता के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की लोकगाथायें, लोकगीत, बालकों के गीत आदि आते हैं।[37] इसी प्रकार जान एल. मिश का 'फोकलोर' के सन्दर्भ में कथन है कि– `The entire body of ancient, popular beliefs, costoms and traditions, which have survived among the less educated elements of civilized societies until to day. It thus, includes fairy tales, myths, legends, superstitions, festivals, rites, traditional games, folksongs, popular sayings, arts, crafts, folk dances and the like. तात्पर्य यह है कि 'लोकवार्ता' के अन्तर्गत हमारे सम्पूर्ण पुरातन लोकप्रिय विश्वास, प्रथायें और परम्पराओं का समायोजन होता है जो अशिक्षित जनता के मध्य आज भी अवशेष रूप में सुरक्षित है। इनके विस्तृत क्षेत्र में परीकथायें, पुराण कथायें, अवदान, अंधविश्वास व्रत विधि–विधान, परम्परागत खेल, लोकगीत, लोकप्रिय सूक्तियां, कला–शिल्प, लोकपनृत्य इत्यादि परिगणित हैं।[38]

सी.एम. बर्न महोदय की मान्यतानुसार "लोकवार्ता वास्तविक में प्रारम्भिक मनुष्य के मनोविज्ञान की अभिव्यति है। यह अभियक्ति चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान अथवा चिकित्सा के क्षेत्र में हो, चाहे सामाजिक संगठन अथवा धर्मानुष्ठान के रूप में, चाहे इतिहास, कविता तथा साहित्य के उन्नत रूपों में हो।"[39] वर्ष 1930 ई. में अलेक्जेंडर क्रेप ने लोकवार्ता का क्षेत्र उद्घाटित करते हुए लोकवार्ता के उद्देश्य की भी व्याख्या की है। इस दृष्टि से वे लोकवार्ता का उद्देश्य मानव के आध्यात्मिक इतिहास का पुनर्निर्माण करना मानते हैं। इन्होंने इसके स्वरूप को एक 'ऐतिहासिक विज्ञान' (Historical Science) के रूप में माना है। यह इतिहास तो इसलिए है क्योंकि उसमें मानव के अतीतपूर्ण जीवन को बिना किसी बाहरी दबाव में आकर प्रकाशित किया जाता है तथा विज्ञान इसलिए है कि इसमें लक्ष्य की सिद्धि करने के लिए मात्र अनुमान न होकर निगमनात्मक पद्धति स्वीकार की जाती है। निर्विवाद रूप में समस्त वैज्ञानिक अनुसंधान का मूल आधार भी यही पद्धिति है।[40] आर्चर टेलर ने 1948 ई. में एक वक्तव्य में यह स्वीकार किया था कि "लोकवार्ता" की सामग्री मौखिक रूप से रीति–रिवाजों तथा व्यवहार से परम्परा द्वारा हस्तान्तरित होती है। यह सामग्री पारम्परिक औजारों, भौतिक वस्तुओं, अलंकरणों, प्रतीकों तथा विश्वासों के रूप में भी हो सकती है। जैसे बाड़ा घेरना, गॉठ लगाना, किसी के कंधे पर नमक छिड़कना, स्वस्तिकचिह्न बनाना आदि इसके विविध उदाहरण हैं। यह सभी लोकवार्ता है।[41] विख्यात नृतत्वशास्त्री विलियम बैस्कम ने "लोकवार्ता" की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए कहा था कि – "लोकवार्ता नृतत्वशास्त्री दृष्टि में संस्कृति का एक अंग है किन्तु संस्कृति का समग्र रूप नहीं। इसके

अन्तर्गत धर्मगाथाएँ, अवदान, कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, कथागीतों के पाठ, अन्यगीत तथा कुछ कम महत्वपूर्ण दूसरे रूप लोकोपचार (फोक मेडीसन), लौकिक आचार–विचार अथवा लोकविश्वास सम्मिलित नहीं है। ये सभी विषय संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं और ये किसी सम्पूर्ण जातिविज्ञान के भी अंग हो सकते हैं। ये सभी विषय निःसन्देह अध्ययन करने योग्य हैं, भले ही इनकी प्राप्ति शिक्षित समाजों में होती हो अथवा अशिक्षित समाजों में होती हों।"[42] इसी प्रकार अमरीकी विद्वान बेंजामिन बॉटकिन ने सन् 1954 ई. कहा था कि "सारा नगर ही जनता है और जहाँकहीं जनता है वहाँ लोकवार्ता भी मिलेगी अर्थात् परम्पराओं का समूह, प्रतीक और धर्मगाथाएँ लोकचलन (Folkways) लोककथन (Folk-Saying) जो किसी स्थान की जीवन–पद्धति में जड़ पकड़े हुए हों, वह सब लोकवार्ता है। जहाँ कहीं लोकवार्ता मिलेगी, वहाँ लोकसमूह भी मिलेंगे। लोकसमूह मनुष्यों का कोई भी ऐसा समूह हो सकता है जिसकी एक समान पृष्ठभूमि हो तथा जिसका अपना अनुभव व रुचियाँ हों।"[43] सन् 1961 ई. में अमेरिकन विद्वान फ्रांसिस उतली ने 'लोकवार्ता' को बिना किसी पारिभाषिक सूत्रों में उलझाये सीधे–सीधे शब्दों में यह प्रतिपादित किया कि लोक साहित्य मौखिक रूप से प्रेषित साहित्य है। वह चोह सुदूरवर्ती आदिम जातियों में, सीमावर्ती संस्कृतियों में, नागरिक अथवा ग्रामीण मानव समुदायों में कहीं भी पाया जाता है, वह मौखिक रूप से संचालित होता है। 'मौखिक रूप से प्रेषित होना इस विषय की मुख्य कसौटी है और शोध की प्रणाली में इसका बड़ा महत्व है। यदि हमें किसी सार्थक लोकरचना को परिभाषित करना होगा तो हमें मौखिक प्रकिया की कसौटी पर ही उसके प्रत्येक दस्तावेज की परीक्षा करनी होगी।"[44] 'लोकवार्ता' के अध्ययन की दिशा में सन् 1968 में प्रकाशित समाजशास्त्रीय विश्वकोष में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है – "लोकवार्ता का अर्थ है – लोक का ज्ञान। इसके अन्तर्गत वह सारा ज्ञान सम्मिलित है जो मौखिक रू्प से संचालित होता है तथा इनमें वे सभी हस्तकारियाँ एवं तकनीकी विधियाँ सम्मिलित हैं जो परस्पर अनुकरण द्वारा सीखी जाती हैं। अशिक्षित समाजों में लोकवार्ता वस्तुतः संस्कृति से अभिन्न अथवा एक रूप हुआ करती है।[45] इस विश्वकोष में परिगणित इन विषयों को लोकवार्ता के अन्तर्गत स्वीकार किया है – लोकसंगीत, लोककला, लोकोपचार, लोकनृत्य, लौकिक खेलकूद, लोकचेष्टायें, लोककला, लोकदस्तकारी व लोकवाणी आदि सभी अभिव्यक्तियाँ ली गई हैं। आर.आर. मेरेट ने "लोकवार्ता" को व्याख्यायित करते हुए लिखा है–``Folklore may be said to include all the culture of the people which has not been worked in to the official religion and history, but which is and has always been of self growth.''[46] फ्रेजर महोदय ने "लोकवार्ता" के क्षेत्र में आदिम मानस का दर्षन किया है। वे लिखते हैं –``Modern researches into the early history of man, conducted on different lines have converged with almost irresistible force of the conclusion, that all civilized races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely that state in which many backworked races have continued to the present time; and that long after the majority of man in a community have ceased to think and act like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and though survive in the habits and institation of the people. Such survivals are included under the head of folklore which, in the broadest sense of the work, may be said to embrace the whole body of the peoples traditionary beliefs and custome so far these appear to be due to the collective action of the multitude and can not be traced to the individuals of greatmen.''[47] लेविस स्पैंज ने ठीक ही लिखा है कि – Folklore means the study of survival of early custom, belief, narrative and art.''48

1.5 "फोकलोर (FOLKLORE) का समानार्थक शब्द "लोकवार्ता"

हिन्दी जगत के अनेक मूर्धन्य विद्वानों ने अंग्रेजी शब्द "फोकलोर" का हिन्दी में समानार्थक शब्द 'लोकवार्ता' को स्वीकार किया है। भारतीय लोकवार्ताविद् देवेन्द्र सत्यार्थी लिखते हैं – 'लोकवार्ता शब्द नया नहीं है परन्तु उसका प्रयोग अवश्य नया है। लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोकलोर से कहीं अधिक अर्थपूर्ण है। जनता जो कुछ युग–युग से कहती और सुनती आयी है, अर्थात् मौखिक परम्परा की समूची साम्रगी वह सब लोकवार्ता के अन्तर्गत आ जाती है।'[49] 'हिन्दी विश्वकोश' के अनुसार 'वार्ता' शब्द का अर्थ 'आध्यात्मिक संवाद' माना गया है जबकि लोकवार्ता का अर्थ जनरव या अफवाह है।[50] कहने का तात्पर्य यह है कि 'फोकलोर' के लिए हिन्दी में उपयुक्त शब्द का प्रयोग विद्वानों के गहन शास्त्रार्थ का विषय रहा है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं – लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है, उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाले जन–जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।[51] लोक साहित्य के विद्वान् डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – 'बर्बरावस्था से विकसित होकर मनुष्य ने आज की सभ्यता उपार्जित की है। जैसे विकसित होने पर भी मनुष्य आदिम मनुष्य का ही रूपान्तर है, उसी प्रकार मनुष्य की अभिव्यक्तियों में भी आदिम अभिव्यक्ति के अवशेष रह ही जाते हैं। वे अवशेष लोकवार्ता हैं और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लोकवार्ताशास्त्र के अध्ययन की वस्तु है। वस्तुतः लोकवार्ता के अवशेषों के अध्ययन का अर्थ है कि उस आदिम लोक–प्रवृत्ति को समझा जाय जिसके परिणामस्वरूप लोकवार्ता प्रस्तुत होती है – यह लोकप्रवृत्ति जब–जब जहाँ जिस मात्रा में विद्यमान मिलेगी, वहाँ तब उसी परिणाम में लोकवार्ता भी मिलेगी।'[52]

हिन्दी जगत् में 'फोकलोर' को समझने के लिए तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं – ग्राम, जन और लोक। रामनरेश त्रिपाठी ने 'फोक' के स्थान पर ग्राम शब्द के प्रयोग पर बल देते हुए, 'ग्रामगीत' शब्द का प्रयोग करने के लिए अत्यधिक आग्रह भी किया है।"[53] डॉ. कृष्णदेव लिखते हैं – "यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ग्राम शब्द लोक के भाव को अभिव्यक्ति करने में नितान्त असमर्थ है। ग्राम शब्द लोक की विशाल भावना को अत्यन्त संकुचित कर देता है। यदि गंभीर दृष्टि से विचार किया जाय तो लोक की सत्ता ग्राम तथा नगर दोनों में समान रूप से विद्यमान हैं।"[54] 'जन' शब्द में सभी प्राणियों का समावेश किया जा सकता है। वेदों में 'सामान्य जनता के लिए' इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इस जन शब्द से संबंधित जनपद, जनप्रवाद और जनचेतना आदि शब्द प्रचलित हैं परन्तु "लोक" शब्द की अपनी एक प्राचीन परम्परा है। – इन दोनों शब्दों जन और लोक – में लोक शब्द जन की अपेक्षा "फोक" के अधिक समीप है।[55] संभव है, हिन्दी में प्रयुक्त 'लोकवार्ता' शब्द का नामकरण वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' आदि में ही प्रयुक्त होता रहा है। संस्कृत शब्दकोशों में इसका अर्थ प्रवाद, अफवाह या किंवदन्ती लिखा हुआ है। संस्कृत के प्रसिद्ध कोशकार पं. वामन शिवराम आप्टे ने अपने शब्दकोश में लोकवार्ता का अर्थ लोकप्रिय सूचना (**Popular Report**) या सार्वजनिक अफवाह (**Pubic Rumour**) दिया है।[56] सर मोनियर विलियम्स ने भी 'फोकलोर' को इसी अर्थ में ग्रहण किया है।[57]

प्राचीनकाल में अर्थशास्त्रप्रणेता व कूटनीतिज्ञ कौटिल्य ने 'वार्ता' शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के लिए किया है। 'महाभारत' में यक्ष–युधिष्ठिर के प्रसिद्ध संवाद के दौरान भी 'वार्ता' शब्द का प्रयोग हुआ है। यक्ष प्रश्न करता है – 'का वार्ता, किमाश्चर्यः कः पन्थाकश्च मोदते।' यक्ष के इस प्रश्न में "वार्ता" शब्द ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त न होकर 'नूतन समाचार' के अर्थ में ही ग्रहण हुआ है।

डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने 'फोकलोर' के लिए 'लोकयान' शब्द का प्रयोग करने का सुझाव दिया है।[58] किन्तु इस 'लोकयान' शब्द प्रयोग में यह आशंका हो सकती है कि बौद्ध धर्म से जुड़े हीनयान महायान की ही भाँति सामान्य जन इसे भी बौद्ध धर्म की अगली कड़ी के रूप में ग्रहण कर सकता है। अतः जो 'लोकयान' शब्द निर्मित होगा, उससे सामान्य जनता में प्रचलित किसी धर्म का तो बोध हो सकता है परन्तु साधारण लोक के रहन–सहन, रीतिरिवाज, परम्परा तथा प्रथाओं का बोध कराने में यह शब्द असमर्थ सिद्ध होगा।"[59] इस दिशा में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोक संस्कृति' शब्द के प्रयोग का आग्रह किया है। उनकी मान्यता है कि 'लोकसंस्कृति' के अन्तर्गत जन जीवन से सम्बन्धित जितने भी आचार–विचार, रहन–सहन, विधि–निषेध, प्रथा–परम्परा, धर्मकर्म, पूजा–पाठ, खान–पान, वेश–भूषा और मूढ़ाग्रह–अनुष्ठान आदि हैं, वे सभी इसके अन्तर्गत आते हैं। लोकसंस्कृति शब्द फोकलोर के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'फोकलोर' के लिए 'लोकसंस्कृति' शब्द का को ही ग्रहण करते हुए लिखा है – 'जिन देशों में लोकसाहित्य की छानबीन बहुत सावधानी से की जा रही है वहाँ भी भिन्न–भिन्न विद्वानों में यह मतभेद की परम्परा से प्रचलित शिल्पों, कलाओं और उद्योगों को 'फोकलोर' माना जाता है जो लोक साहित्य शब्द से सूचित नहीं हो पाते। उनके लिए अपने देश के कई विद्वानों ने 'लोकसंस्कृति' जैसे शब्द का प्रयोग अधिक उचित समझा है। इस प्रकार इस देश में लोक साहित्य का प्रयोग तो साधारण जनता में प्रचलित आलोचित शब्दमय साहित्य को कहा जाने लगा है और 'लोकसंस्कृति' लोक जीवन के संबद्ध शिल्पकलाओं को।[60] डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य, डॉ. कुंजबिहारी दास, प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय, मधु भाई पटेल, पं. रामनाथ शास्त्री – इन सभी विद्वानों ने 'फोकलोर' के लिए 'लोकसंस्कृति' शब्द को ही उपयुक्त तथा समीचीन स्वीकार किया है।'[61]

श्री विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं – 'लोकवार्ता के अन्तर्गत लोक–प्रसूत सभी व्यवहार आते हैं। इनमें अनुष्ठान, अनुष्ठान के अंगभूत चित्रांकन या शिल्प, अनुष्ठान में गेय गीत या पाठ्यकथा, ऋतु पर्व के आयोजन ...निरर्थक ध्वनिमय गीत, विभिन्न अवसरों या अवस्थाओं के अनुरूप वेशभूषा और अलंकरण, सामुदायिक अस्मिता के स्थापक वीरगाथा गान, अनुभवसिद्ध नीति वचन, मुहावरे, प्रचलित लोक विश्वास और मान्यताएँ – ये सभी समाविष्ट हैं।[62]

सारांशतः यह कहना सार्थक प्रतीत होता है, इस "फोकलोर" के समानार्थ शब्द प्रयोग के लिए भारतीय विद्वानों ने "लोकसंस्कृति" शब्द को स्वीकार किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.6 'लोकवार्ता' का क्षेत्र

'लोकवार्ता' एक जीवित तथा गतिशील शास्त्र है। लोक का जीवन जितना विस्तृत है, उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाले प्रथम जन की भूमि, द्वितीय भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है। डॉ. गणेशदत्त सारस्वत लोकवार्ता के क्षेत्र–विस्तार की चर्चा करते हुए ठीक ही लिखते हैं – 'लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है, वह लोकवार्ता के अन्तर्गत है। विश्वास, आचरण तथा अभ्यास, रीति–रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें–सभी लोकवार्ता के विषय हैं। इसका अध्ययन केवल लोक साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वरन् नृशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, इतिहास तथा पुरातत्व आदि से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।'[63] लोकवार्ता के क्षेत्र की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने वाले रूसी विद्वान् वाई.एम. सोकोलोव ने लिखा है कि –

'लोकवार्ता अतीत की प्रतिध्वनि है, परन्तु साथ ही वह वर्तमान की शक्तिशाली आवाज भी है।' यही कारण है कि लोकवार्ता का अध्ययन उत्तरोत्तर शास्त्रीय गरिमा से मण्डित होता जा रहा है तथा उसकी स्वतंत्र सत्ता परिलक्षित होने लगी है। इस महत्ववृद्धि का एक सबसे बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि 'लोकवार्ता' ने आज समाजशास्त्र–यथा नृतत्वशास्त्र तथा इतिहास की अनेकानेक गुत्थियों को सुलझाने में सहायता दी है। सुप्रसिद्ध लोकवार्ताविद् सोफियाबर्न ने लोकवार्ता के क्षेत्र विस्तार की चर्चा करते हुए लिखा है कि – 'जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति–रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं – भूतप्रेतों की दुनियाँ, जादू टोना, सम्मोहन–वशीकरण ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं – विवाह उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति–रिवाज तथा अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजैण्ड), लोक कहानियाँ, साके (बैलेड) गीत, किवदन्तियाँ, प्रहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं।[65] डॉ. श्याम परमार ने लोकवार्ता के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न विषयों की गणना की है –

1. लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदि, 2. रीति–रिवाज, त्यौहार, पूजा–अनुष्ठान, व्रत आदि, 3. जादू–टोना, टोटके–भूत–प्रेत सम्बन्धी विश्वास आदि, 4. लोक नृत्य, लोक नाट्य तथा आंगिक अभिव्यक्ति तथा 5. बालक–बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल तथा गीत आदि।[66] लोकवार्ता के क्षेत्र के विषय में चिन्तन करते हुए नानूराम संस्कर्ता लिखते हैं – 'लोकवार्ता, लोकपरम्परा से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ सत्य है जो जीवन की सारी आवश्यक सामग्री से प्राप्त करते हुए अपने ही क्षेत्र में प्रवहमान होती हे। लोकवार्ता के शरीर के सर्वअंग, लोकपरम्परा–रूपी पदार्थ से पोषित एवं पुष्ट हैं। वह उसका मात्र सहायक तत्व ही नहीं, जीवनदाता एवं बुद्धिविधाता भी है। लोकवार्ता, लोकपरम्परा की सम्पत्ति, खेती तथा वाटिका है, जो सदैव मौखिक रूप से हरी भरी रहती है, पर प्रारम्भ में वह अवश्य मौखिक अथवा अलिखित ही रहती है। इसीलिए जो भी बातें परम्परा से पाई जाती हैं, वे ही लोक व लोकवार्ताएं हैं। – सर्वसाधारण के रीति–रिवाज श्रृंखला की कड़ी की भाँति जुड़ कर चलते हैं और लोकवार्ता को बनाते हैं। परम्परा के सांस्कृतिक टचों में यह अवयवी रूप से जुड़ी हुई है।[67] लोक वार्ता वह उर्वरा धरती है जो लोक साहित्य के लिए सदैव सिंचन की पुष्टि प्रदान करती है। – हम लोकवार्ता के केवल मौखिक पक्ष को प्रधानता देकर उसके क्षेत्र को हरगिज संकुचित नहीं बनाना चाहते। इसमें जादू–मंत्र, लोकविश्वास, रीति–रिवाज, मूढ़ाग्रह और लोकनृत्य, लोक चित्र व लोकमूर्तियों आदि भी आ जाते हैं जो अपने स्वरूप की प्रधानता रखते हैं।"[68] यह तो निर्विवाद सत्य है कि लोकवार्ता केवल पुरातन प्रथाओं एवं रूढ़ियों का अध्ययन करने वाला शास्त्र नहीं है वरन् गतिशील जीवित लोक आस्थाओं, भावों तथा तद्जनित लोकभिव्यक्तियों की समर्थ प्रभावी अभिव्यंजना है इसलिए इसका क्षेत्र भी अतिव्याप्त है। लोकवार्ता अक्षय है व इसकी अभिव्यक्त अक्षय है। इसके व्यापक क्षेत्र चिन्तन को अभिव्यक्ति का आयाम देते हुए डॉ. सोहनदान चारण लिखते हैं – "लोकवार्ता के क्षेत्र में इन सभी की धर्म–कथाएँ, अवदान लोक–कलाएँ, लोकगीत, लोकगाथा, लोक नाट्य, चुटकुले एवं हास्यास्पद मजाक, कहावतें, पहेलियाँ, व्यंग्य वाक्य, लोक नृत्य, लोक संगीत, अभिशाप, शपथ परस्पर नीचा दिखाने के लिए कहे गये कथन, मेल–मिलाप की बातें, समझौते, अनिच्छित कार्य को टालने के तरीके, लोक–रीति–रिवाज, लोक विश्वास, लोककलाएँ, लोक औषधियाँ एवं लोक उपचार, लोक वाद्ययन्त्र, लोक प्रचलित उपमायें, लोक खेल, लोक प्रतीक, लोक प्रार्थनाएँ, मन्त्र–तन्त्र, झाड़–फूँक, जादू–टोना, शब्द व्युत्पति में लोक–निमित्त विविध धारणाएँ, परम्पराएँ, घरेलू पशुओं को पुकारने के प्रकार, पशुओं को हाँकने एवं पक्षियों को उड़ाने में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियाँ, शकुन विचार, टोटके, उत्सव–विधान, अन्ध–विश्वास, अपने वर्ण को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए गठित कथाएँ एवं स्व–वर्णेतर वर्ण को ओछा सिद्ध करने वाली काल्पनिक कथाएँ आदि अनेकानेक बातों का समाहार हो जाता है।[69] इस सन्दर्भ में डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय लोकवार्ता के क्षेत्र को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं – अब हम लोकवार्ता की समग्र विषय का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. लोक साहित्य इसके अन्तर्गत ये विषय मुख्य रूप से समाविष्ट होंगे। 1. लोकगीत, 2. लोकगाथाएँ, 3. कथागीत, 4. धर्मगाथाएँ, 5. अवदान, 6. लोक कथाएँ, 7. लोकनाट्य आदि।

2. लोकाचार एवं रीति–रिवाज – इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से ये विषय आयेंगे – 1. संस्कार संबंधी रिवाज, 2. धार्मिक परम्पराएँ, लोकोत्सव, पूजा–व्रत–अनुष्ठान, पर्व, त्यौहार, जुलूस मेले, 3. आचार–विचार सम्बन्धी नियम, 4. सामाजिक प्रथाएँ आदि।

3. लोकविश्वास एवं मान्यताएँ – इसमें सम्मिलित विषय हैं – 1. शास्त्रोक्त विश्वास, मंत्र–तंत्र, जप–तप–स्तुति, 2. लौकिक विश्वास, जादू टोना–टोटका, झाड़–फूँक, शकुन अपशकुन सम्बन्धी धारणाएँ, अमूढ़ाग्रह अथवा अंधविश्वास जैसी मान्यताएँ आदि।

4. लोककलाएँ – इसके अन्तर्गत मुख्य विषय है – 1. लोकनृत्य, 2. लोकसंगीत, 3. लोकचित्र, 4. लोकशिल्प, 5. लोक व्यवसाय आदि।

5. लोकक्रीड़ाएँ एवं मनोरंजन – इसमें ये विषय सम्मिलित हैं – 1. बच्चों के खेल–कूद, 2. शिशुगीत, 3. कुश्ती–दंगल, रस्सा खींच, कठपुतली का नाच आदि।

6. लोकभाषा के प्रयोग – इसके प्रमुख विषय हैं – 1. लोक शब्दावली, 2. लोकोक्तियाँ और मुहावरें, 3. पहेलियाँ, 4. लोकजीवन की सूक्तियाँ, लोकव्युत्पत्ति आदि।

1. अन्य विषय

'प्रतीक' संकेत 3– लोक की विचारधारा आदि।[70] डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने लोक वार्ता के विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र का वर्गीकरण इस प्रकार चित्रांकित किया है –

लोकवार्ता का वर्गीकरण (क्षेत्र विस्तार)

लोक साहित्य– 1. लोकगीत 2. कथागीत 3. लोकगाथा 4. धर्मगाथा 5. अवदान 6. लोककथा 7. नाट्य आदि झूमर, चोंचरी सोहर, लोरिया, चनैनी, गोपीचन्द नौटंकी, रासलीला पशुकथा, पक्षी कथा।

लोकाचार एवं रीति–रिवाज – संस्कार संबंधी रिवाज, धार्मिक परम्पराएँ, लोकोत्सव, पूजा, व्रत, अनुष्ठान पर्व–त्यौहार जुलूस, मेले, आचार–विचार संबंधी नियम, सामाजिक प्रथाएँ आदि, आशीर्वाद देना, शाप, शपथ लेना, शुभकामना, अभिवादन, नमक फेंकना, दूध के दाँत सिराना।

लोक विश्वास एवं मान्यताएँ – शास्त्रोक्त विश्वास, तंत्र–मंत्र, जप–तप, स्तुति, वन्दना, लौकिक विश्वास, जादू–टोना, टोटका, झाड–फूँक, गंडा ताबीज, शकुन–अपशकुन संबंधी धारणाएँ, मूढ़ाग्रह, अन्धविश्वास आदि रोग सम्बन्धी, भविष्य सम्बन्धी बिल्ली का रास्ता काटना, छींकना।

लोककलाएँ – लोक नृत्य, लोक संगीत, लोकचित्र, लोकशिल्प, लोकव्यवसाय, लोक वेशभूषा, लोकवाहन, बेल बूटे काढ़ना, द्वारों पर चित्र बनाना, बाँस की टोकरी बनाना, मूर्तियाँ बनाना, काठ के बर्तन बनाना, तकली कातना, गुड़िया खिलौने बनाना, कठपुतली बनाना।

लोकमनोरंजन – बच्चों के खेलकूद, कुश्ती दंगल, रस्साखींच, बाजीगरी, नटों के खेल, कठपुतली का नाच, शिशुगीत, लोरियाँ आदि।

लोकभाषा प्रयोग – लोक शब्दावली, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ, लोक सुभाषित, लोक व्युत्पत्ति आदि। व्यंग्य, ताने, फब्तियाँ, गालियाँ, नामकरण, विशिष्ट ध्वनियाँ, स्थानीय नाम, टीका टिप्पणी।

गौण विषय – लोक प्रतीक, लोक संकेत, लोकज्ञान, लौकिक विचार धारा आदि। स्वास्तिक, सीटी बजाना, ठप्पे, लोकोपचार, मौसम का ज्ञान, पेड़–पौधों तथा औषधियें का ज्ञान।

1.7 लोकवार्ता कार्य एवं प्रयोजन

लोकवार्ता के कार्यों तथा उद्देश्यों पर डॉ. एलेन डण्डी ने विस्तार से प्रकाश डालते हुए लिखा है – There are many diverse function of folklore. Some of the most common ones include aiding in the education of the young, prmoting a group's feelings of solidarity, providing socially sanctioned ways for individuals to act superior to or to censure other individuals Serving as a Vehicle for Social Project, offering an

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

enjoyable form of reality and converting dull work into play.''[71] अर्थात् युवावर्ग को शिक्षित करना, किसी समुदाय की संगठनात्मक शक्ति की पुष्टि करना जिससे समाज में स्वीकृति प्राप्त पद्धतियों की स्थिरता बने। यह सामाजिक विरोध का माध्यम भी बन सकता है। वास्तविकता से पलायन तथा पुष्टकार्य को प्रसन्नता के रूप में विकसित करना – लोकवार्ता का मुख्य कार्य तथा उद्देश्य है। लोकवार्ता का मुख्य प्रयोजन सामाजिक सन्दर्भो में उसका संगुम्फन होना है। लोकवार्ता किसी भी राष्ट्र की सभ्यता का दर्पण है। सभ्यता के प्रतिमानों से ही लोकवार्ता का परिज्ञान हो सकता है। यह दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रखते हैं। एक के अभाव में दूसरे की जानकारी का कार्य असंभव है। 'The extent to which folklore is a mirror of culture has been mainly the concern of the anthropologists, but when stated conversely it beomes the concern of all folklorists. The folklore of a people can be fully understood only through knowledge of their culture.'[72]

लोक वार्ता का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य समाज में प्रचलित सभ्यता का पुष्टिकरण करते हुए अनेकानेक विधि–विधानों तथा संस्थानों को औचित्य प्रदान करना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज की बनी–बनायी व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के लिए वर्ण व्यवस्था, आश्रयपद्धति के अन्तर्गत विविध नियमों, विधानों का पालन करता है। "लोकवार्ता" इन संस्थानों को औचित्य प्रदान करना अपना कर्तव्य मानती है। मिथकों के द्वारा उस देश की सांस्कृतिक परम्परा को सम्बन्ध मिलता है। इसी प्रकार जादू, टोना, धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि के द्वारा सामाजिक संरचना के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन का कराया जाता है। डॉ. एलन डण्डी इस सन्दर्भ में लिखते हैं– ''A second function of folklore of folkore is that which plays in validating culture, in justifying its rituals and in stitutions to those who perform and observe them. Myth is not explanatory, but serves as warrant, a charter, and often a practical gide to magic, ceremony, ritual and social structure... The function of myth briefly is to strengthen tradition and endow it with a greater value and prestige.''[73]

लोकवार्ता जीवन में व्यावहारिक शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम है। देवी या आसुरी पात्रों की शक्तियों या नीतिप्रधान कथाओं के माध्यम से बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ में कभी वे प्रसन्न होते हैं तो कभी डर के मारे निद्रामग्न भी हो जाते हैं। इन शिक्षाप्रद प्रसंगों से समाज में चरित्र निर्माण होता है। इसके अलावा लोकवार्ता समाज में लोक आचार की स्वीकृत जीवन–शैली या पद्धति (Pattern) की एकरूपता को स्थिरता प्रदान करती है। लोकवार्ता को सामाजिक नियंत्रण (Social Control) तथा कभी सामाजिक दबाव (Social pressure) की भूमिका निर्वहन करना पड़ता है। लोक वार्ता उपदेश प्रधान नैतिक कहानी के द्वारा मनुष्य को कुपथगामी होने से रोक सकती है। अफ्रीका में आज भी अनेक जातियों के गुलाम अपने मालिकों की भाँति–भाँति की नैतिकता प्रधान कहानियाँ सुनाकर उनको सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा करते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लोकवार्ता के विराट स्वरूप की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि "उनको हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं –1. आध्यात्मिक तत्व 2. लौकिकतत्व। आध्यात्मिक तत्व के अन्तर्गत, 1. परलोक संबंधी धारणा, 2. मोक्ष तथा स्वर्ग संबंधी विचार, 3. पर्व और व्यवहार, 4. मनोरंजन के साधन, 5. रहन–सहन, 6. वेशभूषा, 7. अलंकरण तथा प्रसाधन, 8. भोजन तथा पेय पदार्थ, 9. सामाजिक रुढ़िया, 10. प्रथायें आदि की परिगणना की जाती है।"[74]

1.8 सारांश

सारांश यह है कि लोकवार्ता का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक और विस्तृत है। इसका मानव के प्रत्येक कियाकलाप के साथ प्रभावी संबंध है। हमारे जीवन का प्रत्येक कर्म लोकवार्ता की सीमाओं से ही गतिशील है।

1.9 प्रश्नावली

(1) लोकवार्ता किसे कहते हैं ?

(2) लोकवार्ता का क्षेत्र विस्तार समझाइए।

(3) लोकवार्ता एवं 'फोकलोर' में क्या समानता एवम् असमानता है ?

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

इकाई–1 अ
लोकवार्ता का मूल – 'लोकमानस'

संरचना

- **1अ.0 प्रस्तावना**
- **1अ.1 उद्देश्य**
- **1अ.2 लोकमानस : स्वरूपविवेचन**
- **1अ.3 लोकमानस के लक्षण**
- **1अ.4 लोक साहित्य विज्ञान**
- **1अ.5 सारांश**
- **1अ.6 अभ्यास प्रश्नावली**

1 अ.0 प्रस्तावना

लोकवार्ता उस समूची जनता की मौखिक अभिव्यक्ति की धरोहर है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार शास्त्र नहीं है। यह "जनता" नगरों अथवा महानगरों में रहने वाली तथा सुसंस्कृत परिष्कृत तथा बौद्धिक समझी जाने वाली जनता के अहम् चैतन्यबोध से सर्वथा दूर है और जो सनातन काल से चली आ रही परम्पराओं के प्रवाह में जीवित रहती है। "लोकवार्ता मूलतः किसी वर्ग या जाति की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। उसके निर्माण की स्थिति यह है कि व्यक्ति विशेष एवं सम्पूर्ण समाज के बीच छोटे–छोटे जन–समूहों व जातियों द्वारा उसकी रचना एवं समृद्धि होती है। ये छोटे–छोटे समूह विशाल सामाजिक संगठन की अपेक्षा बाहरी जटिलताओं से कुछ मुक्त होते हैं। उनकी एकता आन्तरिक संवेदनाओं पर आधारित होती है। अतः व्यक्ति तथा समाज के सीमान्तातों के बीच अवस्थित मानव समूह लोकवार्ता की सृष्टि करते हैं।"[75] यह स्थापित सत्य है कि किसी भी राष्ट्र के सामाजिक विकास का प्रभाव उसकी सांस्कृतिक आस्था पर भी पड़ता है। यह सांस्कृतिक आस्था किसी भी देश के इतिहास में दो रूपों में लक्षित की जा सकती है – प्रथम स्तर पर इसका उच्च स्तरीय स्वरूप होता है जो साहित्य की शास्त्रीय परम्परा में अभिव्यंजित होता है तथा द्वितीय स्तर पर लोकवार्ता और लोक साहित्य का अभिन्न अंग बनता है। "संस्कृति की उच्च स्तरीय धारा किसी समाज के इतिहास में उस विशिष्ट धरातल का निर्माण करती है जिसमें वास्तविक परिनिष्ठित साहित्य का उदय होता है। इस साहित्य के शास्त्रीय तत्वों की रूपरेखा इसी धरातल पर निश्चित होती है। संस्कृति की निम्न स्तरीय धारा उस लोक सामान्य धरातल का निर्माण करती है जिसमें उसके लोक सामान्य तत्वों की प्रतिष्ठा होती है अर्थात् जिसमें दैनन्दिन जीवन के क्रियाकलाप, विश्वास प्रथाएँ, रहन–सहन आदि की लोक लोक परम्पराएँ गतिशील होती रहती है। लोकवार्ता या लोक साहित्य का निर्माण इसी धरातल पर हुआ करता है।"[76] राबर्ट रेड फील्ड की मान्यता है कि – "महान् परम्पराओं का पोषण एवं संरक्षण एक ओर विद्यालयों, मठों अथवा मन्दिरों की छत्रछाया में होता है तो दूसरी ओर लघु परम्परा ग्रामीण समुदायों में अनपढ़ लोगों के मध्य स्वतः विकसित होती रहती है। एक में परिष्कार की सतर्कता होती है जबकि दूसरे में सुधार की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। यह दूसरी परम्परा ही लोकवार्ता की गंगोत्री है।"[77] आदिम मानस के अवशेष लोकवार्ता की गोद में ही संरक्षित रहे हैं। लोकवार्ता को समझने के पहले लोकतत्वों को समझना आवश्यक है और इसलिए लोकमानस की प्रवृत्तियों का चिन्तन करना आवश्यक है। लोक वार्ता को जन्म देने वाली प्रवृत्ति की नींव लोकमानस है। यह लोकमानस शिष्ट, सतर्क और प्रबुद्ध मानस से सर्वथा भिन्न व अद्भुत आस्था का है। इस दृष्टि से **समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागों में बाँट सकते हैं।** प्रथम लोकमानस, द्वितीय जनमानस, तृतीय मुनिमानस। **लोक–मानस** वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानस की परम्परा में है तथा उसी का अवशेष है। आज सभ्य समाज के मानसिक स्तूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। **मुनि मानस** वह मानसिक स्थिति है जो समाज ने सभ्यता के विकास के साथ–साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सबसे ऊंचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति **जन–मानस** की है। लोकमानस से लोकवार्ता का जन्म होता है तो मुनि–मानस से दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान और उच्च कलाओं का। जन–मानस साधारण व्यवसायपरक बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। यह केवल व्यवहार में ही परिणति पाता है, और व्यवहार में ही विलीन हो जाता है। उसमें कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति नहीं होती।[78] इन तीनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मानसिक स्तरों में 'लोकमानस' का विश्लेषण करना ही हमारा अभीष्ट विषय है। 'लोकमानस' को समझ लेने के पश्चात् लोकवार्ता की समग्र विशिष्टताये तथा प्रवृत्तियाँ स्वतः ही व्यक्त हो जती हैं।

1अ.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत लोकमानस एवं उसके स्वरूप का विवेचन हुआ है।

1अ.2 लोकमानस : स्वरूपविवेचन

लोकवार्ता एवं लोक साहित्य के निर्धारक तत्वो में सर्वाधिक विचारणीय तत्व 'लोक मानस' है। यही लोकवार्ता–साहित्य तथा लोक संस्कृति का मानक निर्धारक तत्व है। इसकी अवधारणा का इतिहास अत्यन्त रोचक ही नहीं, बल्कि विचारोत्तेजक भी है। विगत शताब्दी तक मनोविज्ञान के अध्येता केवल चेतन मानस की सत्ता को ही स्वीकारते थे। उनकी दृष्टि मनुष्य या तो चेतन होगा अथवा अचेतन, लेकिन सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक फ्रायड के अनुसंधान ने एक कान्तिकारी वैचारिकता को जन्म दिया। उन्होंने चेतन और अचेतन मानस के मध्य अत्यन्त ही विचारोत्तेजक 'अवचेतन मानस' की अनुसंधानमूलक खोज की। 'अवचेतन मानस' के सम्बोधन ने सम्पूर्ण साहित्य क्षेत्र में एक हलचल उत्पन्न कर दी है। यद्यपि फ्रायडियन विचारधारा में अनेक संशोधन प्रस्तुत हुए हैं लेकिन जहाँ तक उनकी अवचेतन मानस की कल्पना रही है, अभी तक उसके कोई भी प्रतिकूल नहीं रहा है। अवचेतन मानस की सत्ता को किसी ने भी चुनौती नहीं दी है। फ्रायड़ ने अवचेतन मनस के निर्माण के मूल में कुण्ठा का प्रधान कारण स्वीकार किया है। प्राणिशास्त्र के उत्तराधिकरण के नियमानुसार हमारे पूर्वजों का मानसिक संस्कार दाय के रूप में हमें प्राप्त हुआ है। हमारी अधिकांश चिन्तनमूलक प्रवृत्तियों की गतिशीलता के मूल में यही दाय रूप हमारे मानसिक धरातल को प्रभावित करता है। यह मानसिकता चेतना जगत की न होकर अवचेतन जगत की होती है जो परोक्ष रह कर भी हमारे समस्त व्यतिव को प्रेरित तथा निर्मित करती है। इसलिए यह अवचेतन मानस हमारे पुरुषार्थ का परिणाम नहीं है बल्कि पूर्वजों से प्राप्त सांस्कारिक दाय है। कालान्तर में अवचेतन मानस का विश्लेषण करते हुए उसके दो भेद स्वीकार किये गये – प्रथम सहज अवचेतन तथा दूसरा उपार्जित अवचेतन। इस सहज अवचेतन को ही 'लोकमानस' के रूप में मान्यता दी गई है। लोक मानस की सत्ता असंदिग्ध है। आज का शिक्षित, प्रबुद्ध और तार्किक वैज्ञानिक हो या साधारण जन–आदिम मानवीय बातों में ही उसकी रुचि होती है। घोर बुद्धिवादी भी अद्भुत अलौकिक तथा असंभव प्रतीत होने वाली मानवीय तथा मानवेतर कथाओं में आकर्षण अनुभव करता है। यह वैज्ञानिक व्याख्या से परे सिद्ध होने वाली घटनाओं अथवा विश्वासों पर भी यदा–कदा विश्वास करता है। यह स्थिति आज की उस सभ्यता में भली–भाँति लक्षित की जा सकती है जहाँ शताब्दियों–सह–स्त्राब्दियों पूर्व से विद्यमान मानव ने निस्संदेह 'लोकमानस' की सत्ता को निरन्तर अनुभव तो किया ही है। इसलिए यह तो स्पष्ट ही है कि लोक–मानस को आदिम मन की मनोवृत्ति का ही अवशेष कहा जा सकता है। हर्बर्डरीड ने लोकमानस की सत्ता का परोक्ष संकेत दिया है।

'Such lights come, of course, from the latest memory of verbal images in what freud calls the preconscious state of mind or from still obscurer state of mind or from still obscurer state of the unconscious in which are hidden not only the neutral traces of repressed sensitive but also those inherited patterns which dertermine our instinct.[79]

इस वक्तव्य में कहना नही होगा कि यह 'इन हैरिटेड पैटर्न' ही हमारा विवेच्य 'लोकमानस' है। इस 'लोकमानस' की सत्ता का उद्घाटन भी लोकवार्ताविदों ने ही किया है। मैरेट ने लिखा था कि जैसे भीड़ का एक मनोविज्ञान होता है, उसी प्रकार मानव–समूह का भी अपना–अलग मनोविज्ञान होता है। इसी मनोविज्ञान को जैम्स फ्रेजर ने 'मानवराशि (Multitude)* अथवा कम लोकप्रिय शब्दों में 'लोक' (फोक) कहा है। इस लोकमानस की स्थिति के विषय में मैरेट ने लिखा – "भीड़ तो मनुष्यों के अस्थायी और अनियमित संघ को कहते हैं। ऐसी दशा में यह कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यों और आवेशों को प्रदर्शित करती हैं। इनकी व्याख्या और विश्लेषण काफी सफलता से किया जा चुका है। अतः इसी प्रकार मनुष्यराशि तो मानों एक स्थायी भीड़ है जो अपनी सामुहिक प्रवृत्तियों को परम्परा के रूप में चिरगामी कर सकती है, और इस परम्परा में वह विशेष प्रकार के आचरण को प्रकट करती है जो निश्चय ही पृथक् रूप से अध्ययन करने योग्य है।"[80]

निर्विवाद रूप से लोकमानस की सत्ता का उद्घाटन वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र की अभूतपूर्व घटना कही जा सकती है। जेम्स ड्रेवर ने 'लोक मनोर्विज्ञान' की व्याख्या करते हुए उसकी उपयोगिता आदिम लोगों के विश्वासों, रीति–रिवाजों, रुढ़ियों आदि के अध्ययन में स्वयंसिद्ध प्रमाणित की है। इनके मतानुसार – Folk Psyschology of

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

peoples to the Psychological study of the belief, customs, invention etc, of people especially primitive inclusive of comparative study.[81]

मनोवैज्ञानिकों ने गहन शोध और अन्वेषण के पश्चात् यह तो स्वीकार किया ही है कि जाति ही मानसिक आचार तथा संस्कृति का स्वरूप निर्धारण करती है। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी माना है कि शरीर के विन्यास के अनुरूप ही मनुष्य की बौद्धिकता, भावुकता और संकल्पशक्ति को जाना जा सकता है। मनोवैज्ञानिक वुंट ने 'फोक–साइकालोजी' की विवेचना के अन्तर्गत यह माना है कि विश्व भर में मानव–मानस की मौलिक समानता सिद्ध है – चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या देश का क्यों न हो। इस सिद्धान्त से भी 'लोकमानस' की स्वीकृति का प्रमाण मिलता है। इस ऐतिहासिक दृष्टि–बिन्दु से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह 'लोक–मानस' की उद्‌भावना सामूहिक लोक मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक यथार्थवादी वैज्ञानिक और सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है जो ऐतिहासिक क्रम में आज उपलब्ध है।[82]

1अ.3 लोकमानस के लक्षण

सुविख्यात लोकवार्ताविद् फ्रेजर ने लोकमानस के दो प्रधान लक्षण निरूपित किए हैं–1. लोकमानस विवेकपूर्वी (Preogical) होता है। इसका अर्थ यह है कि वह मानस जो कार्य–कारण की श्रृंखला के विकसित होने के पूर्व अनेक धारणाओं की सृष्टि में विचरण करता है। इसका तात्पर्य यह भी नहीं समझना चाहिए कि लोकमानस नितान्त तर्कशून्य ही होता होगा बल्कि यह कि वे तर्क तो कर सकते हैं लेकिन उनका तर्क किसी प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं किया जा सकता। उनके तर्क का आधार केवल कर्मप्रवाह तक ही सीमित होता है। लोकमानस के कार्य–कारण की पृष्ठभूमि में आज के भौतिक व यथार्थ कारणत्व तथा कार्यत्व का महत्व नहीं होता। फ्रेजर के मतानुसार लोकमानस की कार्यगत व्याख्या में विरोधी तत्वों (Contradictions) का भी संयोग रहता है।

लोकमानस का दूसरा लक्षण 'मिस्टिक' (Mystic) अथवा रहस्यशील होना है। इसका कारण यह है कि लोकमानस अपने चतुर्दिक घटित होने वाली स्थितियों के मूल में परा‌प्राकृतिक शक्तियों के योग को मान्यता देता है। यदि गहराई से देखा जाय तो मूल सृष्टिकालीन मनुष्य के जन्मकाल की सहज प्रतिकिया व्यक्त करने वाला लोकमानस ही रहा होगा। वर्तमान मनोविज्ञान, फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार यह तो स्वीकार किया ही जा सकता है कि सद्यजात बालक के मन में भी आधारभूत दो भाव विद्यमान होते हैं। 1. रति तथा 2. भय। रति में विस्तार का भाव होता है। इस विस्तार के कारण बाहरी जगत् से आत्मन्वमूलक सम्पर्क होता है। इसी 'रति' भाव के कारण मनुष्य 'रिचुअल' अथवा आनुष्ठानिक बना। दूसरे मूल मनोभाव 'भय' ने 'टेबू' अर्थात् 'निषेध' और वर्जना का भाव विकसित किया। भय में आत्मरक्षा का भाव रहा है। इन दोनों भावों के कारण ही लोकमानस 'स्व' और 'पर' में भेद नहीं करता। उसके लिए सम्पूर्ण सृष्टि उसी के समान सत्ता रखती है। वह किसी व्यक्तिविशेष (Subjective) तथा वस्तुविशेष (Objective) में भेद नहीं करता। यही लोकमानस किसी भी दृष्ट वस्तु को उसी रूप में नहीं देखता, इसीलिए उसके चिन्तन में प्रकृति के सभी कियाकलापों का दर्शन होता है। लोकमानस सूर्योदय और सूर्यास्त को मात्र प्राकृतिक घटना ही नहीं मानता बल्कि वह यह सोचता है कि आम श्रमजीवी की तरह सूर्य भी घर से निकला है। उसका दिन भर आकाश में रहना ही उसकी मजदूरी और अन्ततोगत्वा सन्ध्या होने पर अस्त होना ही उसका घर लौटना है। ऊषा उसकी प्रेयसी है जो प्रातःकालीन सूर्य की शोभा निहार कर लज्जा से आरक्त होती जाती है। लोकमानस की यह तो विशेषता है कि जो भी किया–कलाप उसे प्रभावित करते हैं, उन्हें वह सत्य और यथार्थ ही मानता है चाहे वह स्वप्न की घटनायें ही क्यों न हो। सूर्यवंशी सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में ही महर्षि विश्वामित्र को राज्य सम्पदा का दान किया और जागृत होने पर केवल दक्षिणा चुकाने के लिए उसकी पत्नी और वे स्वयं ही बिक गये। आज भी बहुत बुद्धिजीवी स्वप्नों को अपने आगामी शुभाशुभ फलों की प्राप्ति का सूचक मानते हैं। लोकमानस भ्रम–दृश्य (Hallucination) को भी मिथ्या न मानकर सत्य ही मानते हैं। डॉ. सत्येन्द्र इस सन्दर्भ में लिखते हैं – "जमीरिया के सरकारी विवरणों में यह उल्लेख किया गया है कि उनकी सेना जब सिनाई रेगिस्तान में होकर जा रही थी और बहुत थकी–माँदी थी तो उन्हें दो सिरों वाले साँप दिखाई पड़े थे। तात्पर्य यह है कि भ्रम–दृश्य जैसी वस्तु भ्रम के रूप में उनके लिए अस्तित्व नहीं रखती थीं। जो उन्हें दिखायी पड़ा, भले ही वह भ्रम हो, पर जिसने उनके हृदय अथवा मस्तिष्क को प्रभावित किया। उसे वे अस्वीकार नहीं कर सकते थे उनकी सत्ता उन्हें यथार्थतः माननी पड़ती थी।"[83]

'लोकमानस' का तीसरा प्रमुख लक्षण यह है कि वह मृत और जीवितों में कोई भेद नहीं करता। मृतक भी उसे जीवितों की ही तरह चित्रों अथवा मूर्तियों में सत्तावान प्रतीत होते हैं। लोकमानस आज भी स्वप्नों में भी मृत प्राणियों को देखकर उन्हें जीवितों के तुल्य ही महत्व देता है। चौथा प्रमुख लक्षण यह है कि लोक मानस अंश और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समग्र में कोई भेद नहीं करता। इस अभेदवादी अवधारणा को पुष्ट करने वाली अनेक कहानियों में हमें ऐसे अभिप्राय मिल जायेंगे जब कि किसी व्यक्ति का पुतला बनाकर उसे काटना या उसमें सुई चुभोने – जैसे कार्यों के द्वारा यह समझना कि उस मूल व्यक्ति को भी वैसी ही पीड़ा हो रही होगी। लोकमानस तो व्यक्ति और उनके नाम में भी भेद नहीं करता। इसीलिए उत्तरप्रदेश के अनेक गाँवों में लोग अपने से बड़ों का नाम धरती पर नहीं लिखते। मिश्र के राजा तो प्यालों पर अपने शत्रुओं के नाम लिखवा कर उसे विशेष संस्कार के साथ जोड़ते थे। वर्तमान ब्रजक्षेत्र में महिलाएँ होली तथा दीवाली पर घर में अपने कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य का नाम लेकर अपने हाथ में बैरियरा रख कर उसे कूटती हैं। उनका विश्वास है कि इस प्रकार के कार्य से पृथ्वी पर उनके शत्रुओं का अन्त हो जायेगा।

लोकमानस की एक अन्य विशिष्टता यह है कि वह तुल्य और तुलनीय में कोई भेद नहीं करता। टोना–टोटका इसी भावना का परिणाम है। शत्रु का पुतला बनाकर उसे काट देने की भावना के मूल में यही लोकमानस है। लोकमानस के भाव (Concept) भी मूर्त स्वरूप के होते हैं। वे अमूर्त को भी मूर्त रूप ही मानते हैं। सावित्री अपने पति सत्यवान के 'प्राण' यमराज के हाथों से पुनः ले लेती है। यमराज सावित्री के दृढ़ संकल्प को देखकर उससे प्रभावित होते हो जाते हैं उसे और सत्यवान के 'प्राण' लौटा भी देते हैं, अर्थात् लोक मानस मृत्यु को भी मूर्त ही मानता है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि लोकमानस 'कार्य–करण' व्यापार पर भी विश्वास करता है। वह यह तो मानता ही है कि प्रत्येक कार्य की पृष्ठभूमि में कोई कारण तो अवश्य होता है, परन्तु उसकी चिन्ता का विषय 'कैसे' और 'क्यों' नहीं बल्कि 'कौन' की कल्पना है। वर्षा का होना, रात–दिन का होना – इनके पीछे कारण तो हैं ही, लेकिन इनके 'होने' में कारण रूप में वे किसी व्यक्तित्व को ही मानते हैं। इसीलिए लोकमानस के लिए पृथ्वी 'माता' है, सूर्य, अग्नि, पवन देवता है। इनकी इच्छा और संकल्पमात्र से ही सृष्टि का संचालन होता है। कार्य और कारण की कल्पना में वे किसी भी निकटस्थ तत्व को कारण स्वीकार कर लेंगे, भले ही वह वास्तविक न भी हो। मिश्र का लोकमानस यह मानता है कि पृथ्वी स्त्री है और आकाश पुरुष है जो उस पर लेटा हुआ है लेकिन वायु के देवता ने उनको पृथक् कर दिया जिससे आकाश ऊपर उठ गया। लोकमानस की इस अवधारणा के मूल में प्राकृतिक सत्य है क्योंकि उन्होंने धरती और आकाश के बीच वायु को ही संचरण करते देखा था। इसी भावना के कारण वह प्रकृति के विविध कार्य व्यापारों में भी संघर्ष की कल्पना करता है। इसी कल्पना के कारण सम्भवतः देवता बनाम राक्षसों के संघर्षों की कथाओं का जन्म हुआ होगा। डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति में निम्नलिखित तत्व होते हैं।

1. समस्त सृष्टि मनुष्य के ही तुल्य है। यदि इस सृष्टि में वह "स्वयं" मैं है तो सृष्टि का प्रत्येक अन्य अंग उसके लिए 'तुम' है।
2. प्रत्येक व्यापार गुण आदि उसके लिए मूर्त अथवा पदार्थवत् सत्ता है। मृत्यु, जीवन, प्राण आदि इसके लिए पदार्थ रूप ही हैं जिनका आदान–प्रदान हो सकता है।
3. तुल्य–तुलनीय, अंश अंशी, चिन्ह–प्रतीक और प्रदाता अथ्वा लक्ष्य में अभेद होता है।
4. देशकाल के भेद से होने वाली आवृत्ति में भी मूल लोकमानस विद्यमान रहता है।
5. प्रत्येक व्यापार अथवा तत्व 'इच्छा' से भी संयुक्त होता है।
6. व्यापारों में कार्य–कारण परम्परा होती है पर कोई भी कारण निकटता, संबद्धता, पूर्ण–कालिकता के तत्व से युक्त होने पर कारण हो सकता है।
7. वह विविध प्राकृतिक तत्वों में संघर्ष भी लक्षित करता है। सूर्य और रात्रि में संघर्ष होता है तथा सूर्य परास्त होता है।

इन तत्वों के साथ यह बात परिलक्षणीय है आदिम मानव, समस्त सृष्टि से अपने व्यतिव को तटस्थ नहीं रख सकता था। वह मनतः और कर्मतः और कर्मतः मानसतः और भावना–सृष्टि के समस्त व्यापारों का अंग होता है। अतः तुल्य–मूर्त विधान की मान्यता के साथ वह अपने लिए उपयोगी अनुपयोगी तत्वों को अपने द्वारा प्रस्तुत करता था। इस प्रस्तुत को अनुष्ठान अथवा 'रिचुअल' कहा जा सकता है। इसके द्वारा वह प्रकृति के विविध तत्वों के संघर्ष व्यापार में सहयोग देता था। प्रकृति से वह सहयोग भाव से चलता था। प्रत्यके के व्यापार में वह अपने लिए किसी प्रकार का अर्थ भी ग्रहण करता था। शकुनों की उद्‌भावना भी इसी स्थिति का परिणाम है।[34]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'लोकमानस' के तत्वों का उपर्युक्त विवेचन यह सिद्ध करता है कि चार श्रेणियों में 'लोकमानस' की सत्ता को स्थापित किया जा सकता है।

1. प्राकल्पना (Fantacy Thinking) 2- सर्वात्मभाव (Animistic Thinking)
3. टोना विचार (Magical Thinking) 3- आनुष्ठानिक विचार (Ritual Thinking)

अर्थात् लोकमानस द्वारा 1. यथार्थ तथा कल्पना में अभेद भाव का चिन्तन 2. समस्त प्राणी–अप्राणियों तथा जड़–चेतन के आत्मतत्व से युक्त जानना। 3. यह मानना कि तुल्य से तुल्य उत्पन्न होता है तथा 4. यह स्वीकार करना कि किसी विशिष्ट विधि से कोई इच्छा करने पर अभिलाषी अवश्य सिद्ध होती है।

उपर्युक्त चारों विचारणाओं की मानसिकता के निम्नलिखित परिणाम होते हैं –

1. लोकमानस सत्य और स्वप्न में अन्तर नहीं करता। उसके लिए स्वप्नलोक की सृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि जागृत लोक की रचना।
2. वह शरीर और छायाशरीर में कोई भेद नहीं करता। लोकमानस जब "रामचरित मानस" का अध्ययन करता है तब यह जानते हुए भी कि रावण द्वारा अपहृत सीता मूल नहीं है, केवल छाया शरीर की सीता है फिर भी वह रुदन व विलाप करता है और रावण की मृत्यु पर हर्षित होत है।
3. मृत प्राणी को निद्रामग्न मानना और यह सोचना कि "आत्मा" पुनः लौटकर "मृत" को जीवित बना देगा। मिश्री सभ्यता में शवों को रासायनिक लेप द्वारा सुरक्षित रखने के मूल में भी यही लोकमानसी कल्पना है।
4. भूत–प्रेतों में विश्वास करना तथा तत्संबंधी टोटकों का पालन करना।
5. जड़ और प्रकृति पदार्थों में भी आत्मतत्व के दर्शन करना। धर्मगाथाओं तथा लोक कथाओं में वृक्ष–पहाड़, नदी आदि सभी मानव की भाँति व्यवहार करते हैं। "रामचरित मानस" में हनुमान जी जब सीता की खोज में लंका की ओर प्रस्थान करते हैं तब बीच समुद्र में से मैनाक पर्वत ने उन्हें विश्राम करने के लिए कहा था। लोकमानस का इनसे भी सम्वाद होता रहता है।
6. संयोग से कार्य–कारण की कल्पना भी लोकमानस करता है। उदाहरण के लिए अतिवृष्टि को रोकने के लिए इक्कीस आँख वालों की गणना, चौक में उलटा तवा रखना और बरसते मेह में झाडू लगाना, इसी आस्था का परिणाम है।
7. कपड़े का पुतला बनाकर उसमें सुइयाँ चुभा कर यह मान लेना कि जिसका नाम लेकर पुतला बनाया गया है, अब उसकी भी उतनी ही पीड़ादायक मृत्यु होगी। तुल्य से तुल्य को प्रभावित करना लोकमानस का एक विशिष्ट लक्षण है।
8. किसी व्यक्ति के नाम, वस्त्र देह अथवा उसके अंश यथा केश, नाखून आदि पर टोना–टोटका करके उसे प्रभावित करने का भाव मान कर यह सिद्ध करना कि अंश से अंशी को प्रभावित किया जा सकता है।
9. किसी विशिष्ट विधि या अनुष्ठान अथवा उपासना तथा व्रतादि से अभीष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है।
10. लोकमानस सन्तान की उत्पत्ति के मूल में रति भाव की प्रधानता को प्रमुख न मान कर पीर, पैगम्बर, सन्तों, महापुरुषों की आशीर्वादभरी वाणी को प्रधान कारण मानता है। इसीलिए राजस्थान के अनेक गाँवों में सन्तान देने वाले देवता 'इलोजी' आज भी ग्रामीण महिलाओं द्वारा एक विशेष तिथि पर पूजनीय होता है।
11. लोकमानस 'व्यक्ति' में नहीं वरन् 'सामूहिकता' में विश्वास करता है। वह 'स्व' में नहीं, 'सर्वात्म' में आस्था रखता है। आज भी गाँवों में एक क्षेत्र में रहने वाला अपने क्षेत्र की समस्त कन्याओं को बहिन मानता है और किसी दूसरे गाँव में जाने पर उसे यह पता लग जाये कि यहाँ उसके क्षेत्र की कन्या ब्याही हुई है तो वह उस गाँव का पानी तक ग्रहण नहीं करता।

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रश्न स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि काल के अनवरत प्रवाह में भी लोकमानस के ये संस्कार अवशिष्ट कैसे रह जाते हैं।[85] इसका प्रत्युत्तर यह है कि ये इसीलिए शेष रह जाते हैं कि 'लोक' जीवन में इनकी निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी इनकी मानसी पुनरावृत्ति के कारण ही सुदीर्घकाल से समयचक्र के थपेड़ों को सहन करने के उपरान्त भी इनका अस्तित्व अपराजेय बना हुआ है। इससे स्पष्ट है कि लोकजीवन में जो परम्परागत अवशेष रहता है, उस अवशेष के साथ वह मानस भी अवशेष रहता है जिसका उस अवशेष के साथ सम्बन्ध है। वस्तुतः जब तक मानस में उस अवशेष के लिए आग्रह नहीं हो, तब तक कोई वस्तु अवशेष की भाँति परम्परा में जा नहीं सकती। मूलतः ये मानस की मूल प्रवत्तियाँ हैं जो मानव के आदिम से आदिम रूप को अपने अन्दर बचाये हुए हैं।[89] इस सम्पूर्ण विवेचना से अब यह तो स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि 'लोकमानस' की अवधारणा के मूल में चेतन तथा अवचेतन मानस है। इसी अवचेतना के दो वर्ग हैं। 1. उपार्जित अवचेतन जो हमारी दैनिक जीवन की अभुक्त प्रतिक्रियाजन्य कुंठा व दमित वासनाओं का केन्द्र है तथा 2. सहज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अवचेतन जो वंशानुगत उत्तराधिकारेय मानस है, वही 'लोकमानस' की संज्ञा प्राप्त करने का अधिकारी है। इसी 'लोकमानस' की निर्माणकारी पृष्ठभूमि मे दो तत्व प्रमुख रूप से सक्रिय रहते है – आदिम उत्तराधिकरण – जो मन की गतिशीलता का प्राकृतिक दाय है तथा 3. ऐतिहासिक उत्तराधिकरण जो सनातन काल से अद्यावधि तक उस विशिष्ट और व्यापक प्राकृतिक आदिम मानसिक संस्थान के सूत्रों से संलग्न होकर इतिहासक्रम में विविध संस्कारों तथा संस्कृतियों के विकास से प्राप्त मानसिक संस्कार आज भी हमारी अभिरुचि एवं प्रवृत्तियों के मूल में अदृश्यमान रूप में विद्यमान है। यही कारण है कि राष्ट्रीयता के रंग और स्वभाव में भिन्नता होते हुए भी चाहे यूरोपीय हो अथवा अफ्रीकन, एशियन हो या आस्ट्रेलियन, सभ्यातिसभ्य मनुष्य हो अथवा आदिम असभ्य व असंस्कृत, सभी 'मानव' ही तो कहे जाते हैं: इसका कारण यह है कि संसार के सभी देशों में रहने वाले मनुष्यों में कहीं–न–कहीं कोई–न–कोई साम्य अवश्य है। यह समान 'मानस' की सत्ता ऐतिहासिक कालक्रम से सभ्यता के ऊषाकाल से सम्प्रति अणु–सभ्यता तक अखण्ड रूप से विद्यमान है। यही विद्यमान सत्ता 'लोकमानस' कही जा सकती है। मेडीसन ग्रांट लिखते हैं – ``The Similarities of culture the world over... Justify this assumption of a fundamental sameness of the human mind regardless of race.'' अर्थात् विभिन्न आधारभूत जातीय भेदों के होने के उपरान्त भी मानव मात्र समान मानस धर्म रखता है।[87] इसीलिए लोकमानस विश्व का ही अभिन्न अंश है। इस अर्थ में यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'लोकमानस' की सत्ता वैयक्तिक नहीं बल्कि सार्वदेशिक, सार्वजनीन तथा सार्वलौकिक है। यह सर्वव्याप्त है। यह लोकमानस 'कल' भी था आज भी है और कल भी रहेगा। डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार हमम न में 'लोकमानस' की अवस्थिति को निम्नांकित चित्र से भली–भाँति समझ सकते हैं।

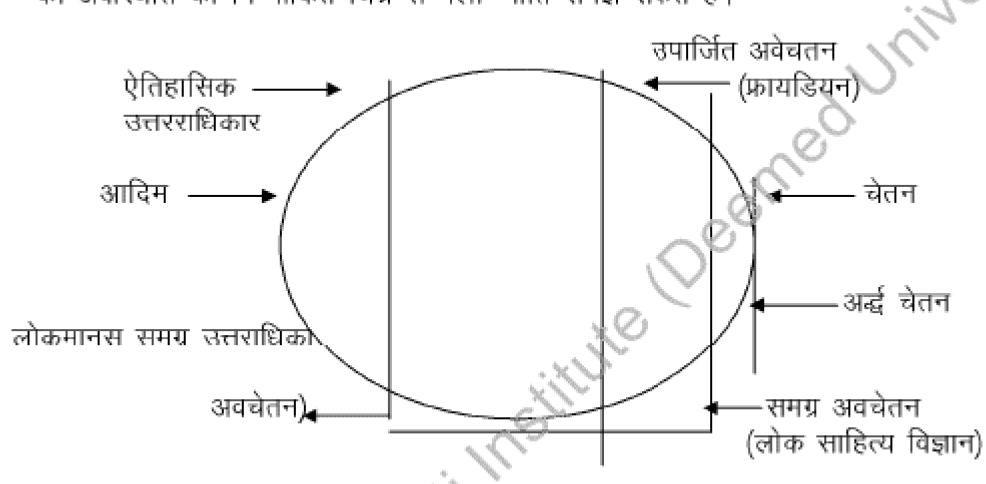

यहाँ एक बात विचारणीय है कि 'लोकमानस' और मानवप्रकृति अभिन्न नहीं हैं। मानव–प्रकृति तो मानसचिन्तन का गतिसूचक यन्त्र है। यह चिन्तन की दिशाओं का संकेत करता है। अत्यन्त आदिम युग से इतिहास और भूगोल की सीमाओं का अतिक्रमण करके कभी अपने मूल दृढ़ स्वरूप का निर्वाह करते हुए और कभी समयानुसार त्याग करते हुए जो निरन्तर अद्यावधि रही है, वह "आज" भी विद्यमान है। उसे ही हम 'लोकमानस' कहेंगे। यह न तो पूर्णतया 'प्रिमिटिव' है, न ही 'जनमानस' की तरह व्यवसायिक, बल्कि सहज और स्वाभाविक भी है। इसलिए इसकी सत्ता की अनुभूति सार्वकालिक अनुभव की जा सकती है। झुग्गी झोपड़पट्टी से लेकर आकाशस्पर्शी अट्टालिकाओं, गाँवों से महानगरों तथा निरक्षरों के समाज से बहुबौद्धिक संगठनों के मध्य में भी प्रत्येक श्वास और धडकन की तरह वह सर्वव्यापी है। यह जाति, भाषा, प्रदेश की सीमाओं का अतिकमण करता है और सुगंध की तरह अपनी सत्तानुभूति यथावसर करा देता है। इसीलिए विद्वानों ने यह मान लिया है कि जिस अभिव्यक्ति में जितना अधिक लोकमानस ध्वनित होगा, वह वाणी अथवा शाब्दिक अभिव्यक्ति 'लोकसाहित्य' के अन्तर्गत परिगणित की जा सकेगी। अब यह एक ऐतिहासिक तथा स्थापित सत्य की तरह स्वीकार कर लिया गया है कि वैज्ञानिक चिन्तन–प्रधान जीवन में भी 'लोक' विद्यमान है और 'लोकमानस' भी है। जहाँ तक साहित्य जगत में 'लोक' अनुभूति व अभिव्यक्ति का प्रश्न है, हमारा ध्यान डॉ. एस.के.डे. के इस कथन की ओर स्वतः ही केन्द्रित हो जाता है। अतः हमें यह मानना चाहिए कि इन रुमानी वैदिक संवादों (उर्वशी पुरुरवा तथा यम–यमी संवादों में उस साहित्य शैली का अवशेष हमें मिलता है जो अनिवार्यतः लोक कविता (Folk Poetry) के स्वभाव की थी, किन्तु और जो संहिताओं की कट्टर धर्मनिष्ठानिक कविता से भिन्न थी, किन्तु जो परवर्ती वैदिक युग में मर गयी थी।[88] इसी संदर्भ में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ठीक ही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लिखते हैं – "जायसी सच्चे पृथ्वीपुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने सन्निकट थे, इसकी ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षिति है, उसी सीमा के भीतर हर्षित स्वर से कवि ने अपने ज्ञान स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियाँ, भावनाएँ और मान्यताएँ मानों स्वयं छनद में बँधकर उनके काव्य में गुँथ गयी है।[89] सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी.जी. जुंग के मतानुसार आधुनिक मनोविज्ञान भी अवचेतन कल्पना की उद्भावनाओं को अचेतन में घटित होते रहने वाले कार्यव्यापारों को आत्मछवि के रूप में स्वीकार करता है। यह आत्मछवि भी दो प्रकार की ऊहाओं से प्रेरित होती है – प्रथम प्रकार की ऊहा, जिसमें स्वप्न भी सम्मिलित हैं – नितांत निजी अनुभवजन्य प्रतिक्रिया से सम्बद्ध होती है तथा दूसरे प्रकार की ऊहाएँ निर्वेयक्तिक प्रकृति की होती हैं इन्हें अर्जित नहीं किया जा सकता। इन्हीं ऊहाओं को धर्मगाथासम्मत मानक (**Type**) से सम्बद्ध किया जा सकता है। इसी को जुंग महोदय ने 'संग्रहीत मानस' कहा है जो हमारे 'लोकमानस' की विद्यमानता के विषय में प्रारम्भ में अनेक भ्रांन्तियाँ रही हैं लेकिन धीरे–धीरे जैसे–जैसे तत्संबंधी अनुसन्धान गहनतम होता गया है, वैसे–वैसे 'लोकतत्व' की विद्यमानता की सहमति भी बढ़ती जा रही है। इस विषय में निम्नलिखित चित्र की सहायता ली जा सकती है।

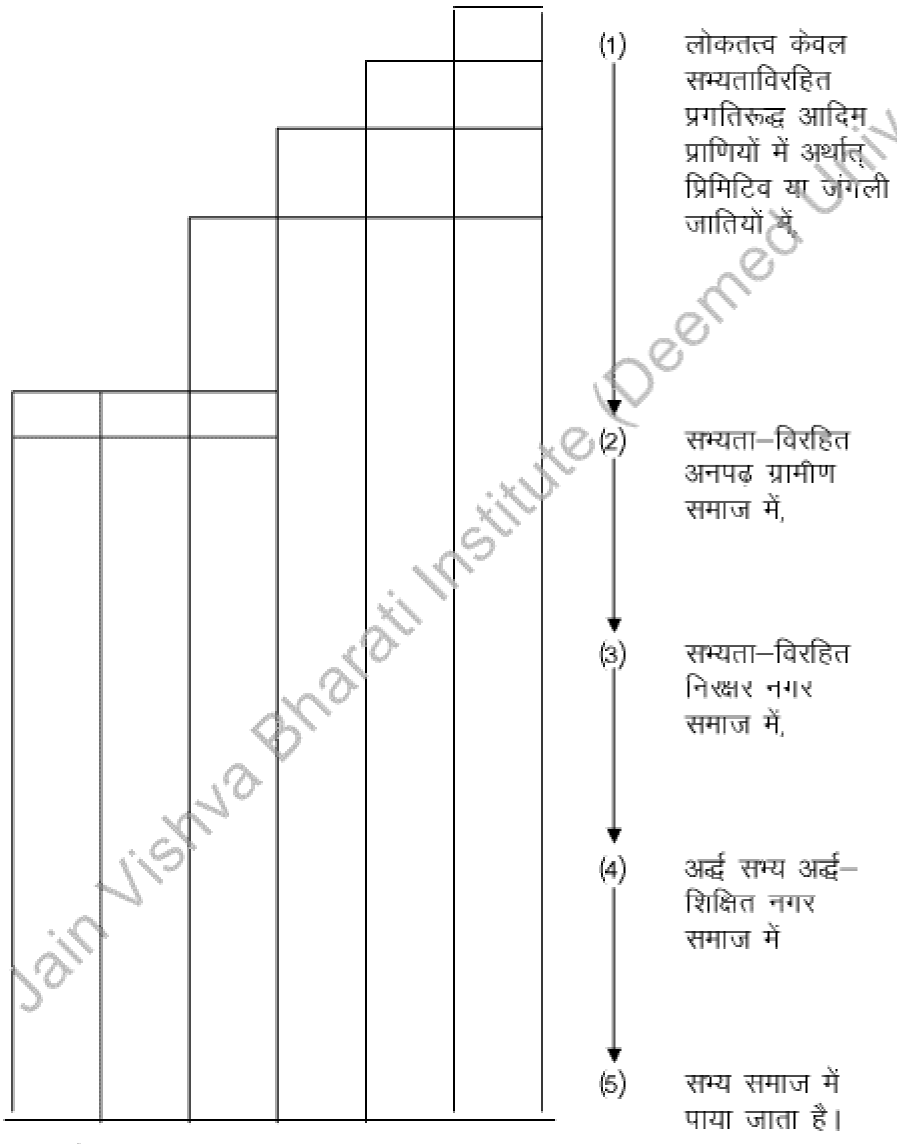

1अ.4 लोकसाहित्यविज्ञान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपर्युक्त चित्र की सहायता से लोकतत्व की व्यापकता और उसके प्रत्यक्षीकरण संबंधी अवधारणा के विस्तार का क्रमशः अनुमान किया जा सकता है। आज का वैज्ञानिक तथा प्रबुद्ध मानव समाज भी "लोक" तत्व की उपस्थिति से इन्कार नहीं कर सकता बल्कि अध्येताओं ने तो हमारे जीवन, समाज, साहित्य, संस्कृति और अभिव्यंजना के सभी माध्यमों में लोकतत्व की उपस्थिति तथा तद्विषयक अभिव्यक्ति के अनेक आयामों का भी अनुसंधान कर लिया है तथा तद्नुरूप वर्गीकरण भी कर लिया है।

13अ.5 सारांश

किसी भी साहित्यिक रचना में लोकप्रचलित लोकभाषा, लोकप्रचलित मुहावरे, जनपदीय शब्दावली, लोकोक्तियों तथा लोकभाषा में परिगणित विविध ज्ञान–विज्ञान की शब्दावली, शास्त्रों में उल्लिखित न होने वाले छंद, लोकमानस के रागात्मक उद्धार और उनकी लय, तुकों तथा टे, लोकगृहीत उपमान, रीतिरिवाज, लोकविश्वास, लोकानुष्ठान, धर्मगाथाएँ तथा लोकगाथाएँ तथा लोक कथाएँ, कथानक अभिप्राय प्रतिपादित दर्शन आदि के माध्यम से लोकतत्व की उपस्थिति का बोध हो जाता है।

13अ.6 अभ्यास प्रश्नावली

1. लोक मानस किसे कहते है?
2. लोक मानस के लक्षण एवम् उसकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए?
3. 'मानस' के तीन स्तरों की विवेचना कीजिए?
4. सिद्ध कीजिए कि लोक मानस लोकवार्ता की आधारभूमि है।
5. लोक साहित्य के अध्ययन में लोक मानस का महत्व उद्घाटित कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यूनिट – 2
लोक साहित्य : स्वरूप और महत्व

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 लोकसाहित्य की पहचान
2.3 लोकसाहित्य का क्षेत्र–विभाजन
2.4 लोकसाहित्य का वर्गीकरण
 2.4.1 लोक–साहित्य
2.5 लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य
2.6 सारांश
2.7 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना

लोकसाहित्य समग्र 'लोक' के राग–विराग, हर्ष–विषाद, सुख–दुःख की सहज अकृत्रिम, स्वाभाविक व सरस अभिव्यक्ति है; इसलिए यह कहना अतिरंजना नहीं होगी कि लोकसाहित्य सर्वव्याप्त है; लोक साहित्य का बहुतांश जितना प्रादेशिक है, उससे भी अधिक वह राष्ट्रव्यापी है और जितना राष्ट्रव्यापी है उससे भी अधिक वह अन्तर्राष्ट्रीय है। यह सम्पूर्ण मानव जाति की विरासत का सभ्य रूप है। राजनीति भले ही विश्व को अनेक देशों की भौगोलिक रेखा में विभाजित करती हो, लेकिन लोकसाहित्य, क्षुद्र राजनीति की इस प्रकार की स्थूल विभाजन रेखा को कभी स्वीकार नहीं करता। वह समस्त मानव जाति की समान विरासतों में भावगत एकता के रूप में विद्यमान है।

2.1 उद्देश्य

यहां लोक साहित्य के स्वरूप एवं महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है।

2.2 लोकसाहित्य की पहचान

लोक साहित्य सार्वभौम मानव प्रकृति और प्रवृत्ति की कालातीत अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है। वस्तुतः लोक साहित्य का केन्द्रीय लक्षण है– सामुदायिकता। इसकी अपेक्षा में ही इसके अन्य लक्षण एक संकुल की रचना करते हैं। "यह सामुदायिकता या लोकबद्धता केवल अनुष्ठान और क्रियामूलक गीतों, शिक्षापरक कहावतों और कथाओं या मनोरंजनात्मक पहेलियों, गाथाओं और कहानियों के रूप में ही नहीं दिखायी पड़ती, वरन इस बात में भी लोक रचनाएँ मौन पाठ की अपेक्षा लोक के सदस्यों द्वारा या उनके बीच मुखर पाठ और प्रदर्शन के विषय हैं। ...इस अर्थ में लोक साहित्य एक प्रकार का नाटक है जिसका वाचन या गायक सदैव अभिनेता की भूमिका में रहता है और अपने सामाजिक दबाव का हर समय अनुभव करता है। यह दबाव ही लोक साहित्य की निरन्तर परिवर्तनशीलता की व्याख्या करता है।"[1] इसी सामाजिक दबाव के कारण लोक साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी अन्ततः 'लोक कृति' बन जाती है और उसमें कृतिकार का वैयक्तिक वैशिष्ट्य विलुप्त हो जाता है। वह रचना लोक की सामाजि–सांस्कृतिक धरोहर बन जाती है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है।"[2] डॉ. नामवरसिंह जन साहित्य तथा लोकसाहित्य की विवेचना के सन्दर्भ में लिखते हैं–"जन साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। इसलिए जन साहित्य लोक साहित्य में इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक साहित्य जहाँ जनता के लिए जनता के ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।"[3]

डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार–"लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें (अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो। (इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक–मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यत्वि की कृति स्वीकार करे।"[4] डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज' ने 'लोक–साहित्य' की व्याख्या करते हुए लिखा है–"लोक साहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परम्परागत मौखिक क्रम से पाई गई वह वाणी है जिसमें लोकमानस संगृहीत रहता है। आदिम मानस के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य है।"[5] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'लोकसाहित्य' की अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में बड़ी सुन्दर व्याख्या करते हुए लिखा है– "एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार–विचार, रहन–सहन, सरल, सहज तथा स्वाभाविक था। वह आडम्बर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रिया–कलाप–उठना–बैठना, हँसना, बोलना–स्वाभाविकता में आगे रहते थे। चित्त के आह्लाद के लिए मन के अनुरंजन के लिए साहित्य ली रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है। परन्तु दोनों युगों के साहित्य में जमीन–आसमान का अन्तर है। परन्तु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं, उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था– स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह आकाश में विचरने वाली चिड़िया के समान उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा जल की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।[6] लोकसाहित्य के स्वरूप को उद्‌घाटित करते हुए डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी लिखते हैं–"लोकसाहित्य की गत्यात्मक जलधारा किसी भी क्षेत्र, किसी भी समाज, किसी भी कालखण्ड की समस्त सांस्कृतिक हलचलों की साक्षी है। इसके शुभ्र दर्पण में सांस्कृतिक गतिविधियों का सारा राग–विराग अनुभव और अभिव्यक्ति के सूत्रों में बँधा हुआ प्रतिबिम्बित होता है। किसी भी इलाके का लोक साहित्य अपने परिवेश की सघन, सरल, स्वाभाविक और विश्वसनीय छवियों का प्रस्तोता बनकर उपस्थित होता है।"[7]

लोकसाहित्य का मतलब जनता का साहित्य–ग्रामीण जनता का साहित्य है जो एक लम्बी यात्रा तय करने के बाद आज वह एक शास्त्र के रूप में एक ऐतिहासिक विज्ञान–विधि के रूप में प्रचलित हुआ है। उसमें झाँक कर देखना ही बाकी है कि वह पूरी मानव जाति का इतिहास प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस रूप में यह कहना ज्यादा उचित है कि लोक–साहित्य मानव जाति की सभ्यता–संस्कृति का अनश्वर शिलालेख है। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा लिखते हैं–"लोक साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो सर्वसधारण समाज की मौखिक भावमय अभिव्यक्ति करता है।"[8] डॉ. शंकरलाल यादव लिखते हैं–"लोकसाहित्य एक परम्परानिधि है जिसे लेखनी ने न कभी सँवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान–पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोकसाहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धरा प्रवहमान है।"[9] डॉ. तेजनारायणलाल ने ठीक ही लिखा हैं–"साधारण जनता जिन शब्दों में गाती हैं, हँसती हैं, रोती हैं, खेलती हैं–उन सबको लोकसाहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।"[10]

2.3 लोकसाहित्य का क्षेत्र–विभाजन

लोकसाहित्य, लोकसमूह द्वारा स्वीकृत अहम्चैतन्यरहित व्यक्ति की लोकसमर्पित परम्परागत मौखिक क्रम से प्राप्त वह अनगढ़ वाणी है जिसमें लोकमानस संगृहित रहता है। यह आदिम मानस के मनोमस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति है जो लोक साहित्य का अभिधान ग्रहण करती है।

वस्तुतः लोक साहित्य व्यक्तिचेतनाविरहित भावों की निर्लिप्त जनभाषा में रचित मौखिक अभिव्यक्ति है। स्थानीयता के रंगों की इन्द्रधनुषी छटा ही लोकसाहित्य का मौलिक सौन्दर्य है। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि–"लोकसाहित्य का जनत्व जनता की मनोदशा तथा उसकी आशा–निराशा की अभिव्यक्ति है, इसके साथ ही वह लोक–कृति के वस्तु विषय को प्रधान रूप से अपने में समाहित किए रहता है। कलात्मकता कृति के भाव और रूपाकार की एकता को निर्धारित करती है, सामूहिकता जन जीवन के बीच उसका स्थान घोषित और निर्धारित करती है और मौखिकता कृतियों के माध्यम और साधन की ओर संकेत करती है।"[11]

इसीलिए लोक साहित्य को हम "वाङ्मय साहित्य" की संज्ञा से अलकृत कर सकते हैं क्योंकि इसमें जनात्मकता, कलात्मक सामूहिकता तथा मौखिक अभिव्यंजना का वैशिष्ट्य विद्यमान रहता है। यदा–कदा लोक साहित्य को "ग्राम साहित्य" भी कह दिया जाता है जो उचित प्रतीत नहीं होता। 'ग्राम' शब्द का अर्थ संयोजन तो 'लोक' की विशालता में हो सकता है लेकिन "लोक" का विराटत्व "ग्राम" के अर्थ में नहीं हो सकता – यह एक स्थापित सत्य है। डॉ. शकुन्तला वर्मा के शब्दों में 'लोक' अपने में स्वतन्त्र सत्ता है। उसकी विशालता को आत्मसात्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करने की शक्ति 'ग्राम' शब्द में नहीं है। ग्राम सीमाओं से बद्ध है। फिर 'फोक' की स्थिति ग्राम के साथ ही साथ नगर में भी तो है। ग्रामगीत मात्र ग्राम की सम्पत्ति कही जाएगी, जबकि लोकगीत का सृजन ग्राम, नगर, जंगल कहीं भी हो सकता है और वह समूचे लोक की सम्पत्ति होगी। ग्रामगीत लोकगीत के अन्तर्गत समाविष्ट किए जा सकते हैं। एक ग्रामगीत लोकगीत हो सकता है किन्तु यह जरूरी नहीं कि लोकगीत अनिवार्यतः और मात्र ग्रामगीत ही हो।[12]

लोकसाहित्य का क्षेत्र बहुव्याप्त है। हमारे जीवन में रोना, हँसना, गाना, खेलना, कूदना, नाचना, हर्ष–विषाद, उल्लास–अवसाद, जय–पराजय, सुख–दुःख आदि शाश्वत स्वभाव तथा मनोभाव हैं। जन्म से मृत्युपर्यन्त मानव जीवन संस्कार जीवी बना हुआ है। इन संस्कारों की बहुभावी एवं बहुआयामी अभिव्यंजना लोकसाहित्य में प्राप्त होती है। आभिजात्य साहित्य तो लिपिबद्ध है। लोक साहित्य के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न अभिव्यक्तियों के संदर्भ में डॉ. वायुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं–"हमारे इतिहास में जो भी सुन्दर और तेजस्वी तत्त्व हैं, वे लोक में कहीं न कहीं सुरक्षित हैं। हमारी कृषि, अर्थशास्त्र ज्ञान, साहित्य, कला के नाना स्वरूप, भाषाओं और शब्दों के भण्डार, जीवन के आनन्दमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत कला, वार्ताएँ सभी कुछ भारतीय लोक में ओत–प्रोत हैं। लोक की गंगा युग–युग से बह रही है। लोकजीवन महासमुद्र हैं। उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहते हैं। लोक ही राष्ट्र का अमर स्परूप है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव – ये ही हमारे नवीन का अध्यात्मशास्त्र है।"[13] लोक साहित्य लोकव्यापक परिधि की विवेचना करते हुए डॉ. रवीन्द्र "भ्रमर" लिखते हैं – "लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल–मिल कर ही कहता है। संभवतः लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है।"[14] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकसाहित्य की व्यापक सीमाओं को इन शब्दों में व्यक्त किया है–"ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधी उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोकशिल्प, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं। लोकचित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परम्परा–प्रथित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और उन पर की गई टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है।"[15]

लोक साहित्य में 'लोक' की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति के तीन स्तर दिखलाई देते हैं– 1. शरीरतोषिणी 2. मनस्तोषिणी तथा 3. मनोमोदनी

शरीरतोषिणी अभिव्यक्ति में 'लोक' की व्यवसाय प्रधान भावना को देखा जा सकता है। यह जीवन को उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति यथा भोजन, वस्त्र, आवास, निद्रा आदि के लिए "मानस" को प्रेरित करती है। मनस्तोषिणी अभिव्यक्ति का प्रयोजन मन को परितोष प्रदान करना है। यह शाश्वत सत्य है कि मन के दो भाव मौलिक हैं। 1. भय तथा आश्चर्य तथा कुछ विद्वान् एक और भाव भी मानते हैं–रति। ये तीनों भाव सम्पर्कजन्य हैं। प्रकृति की गोद में पलने वाले इन भावों को ही प्रतिक्रिया स्वरूप शाश्वत मनोविकार उत्पन्न होते हैं। 'भय' का आधार है अज्ञान और भय के निवारणार्थ ही अनुष्ठानों की अवश्यकता उत्पन्न हुई। वर्तमान 'लोक' वाङ्मय में व्याप्त टोना–टोटका, झाड–फूंक, नजर उतारना इत्यादि क्रियाएँ इसी भाव की देन है। 'आश्चर्य' का भाव मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है। इस जिज्ञासा का शमन 'उत्साह' अथवा वीर भाव के माध्यम से किया गया है। तीसरी अभिव्यक्ति 'मनामोदिनी' है जो प्रधानतः मन को मुदित करती है। इसी भाव का परिणाम है–'रति'। यह मन का मोदन करती हे। इस प्रकार लोकमानस की अभिव्यक्ति में पोषण, तोषण और मोदन का भाव रहता है। इस संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं–"आज का मानव समाज केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही भूत से सम्बद्ध नहीं, उसका आज का विश्वरूप भी भूत को वर्तमान किये हुए हैं। मनुष्य का इतिहास उसके स्थापत्य तथा शिल्पतत्वों में ही निहित नहीं, जंगली मानवों से शिष्ट मानवों तक में विद्यमान मौखिक अभिव्यक्तियों की परम्पराओं में भी है। जहाँ इस परम्परा के प्रवाह को छोड़कर पूर्ण अहंचैतन्य से युक्त होकर कोई साहित्य निर्मित किया जाता है, वही लोकसाहित्य से भिन्न कोटि का होता है। इस प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत विशद् है। अत्यन्त आदिम जंगली अभिव्यक्तियों से लेकर शिष्ट साहित्य को सीमा तक पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोकसाहित्य के अन्तर्गत हैं।[15]

लोकसाहित्य में अहम् चैतन्य का भाव इतना स्थूल रूप से भले ही दृष्टिगत न होता हो फिर भी हम अध्ययन करने के पश्चात् इन निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह अहम् चैतन्य विशिष्ट मुनि मानस तथा बौद्धिकों में भली–भाँति विद्यमान है। फिर क्रमशः सामान्य शिष्ट नागरिक, तदुपरान्त ऐसा ग्रामीण मानस जो नगर की सीमा को स्पर्श करता हो, ऐसा ग्रामीण जो जंगल की सीमा को स्पर्श करने वाला है तथा पूर्ण अज्ञान व असभ्यता को जीने वाला जंगलवासी में क्रमशः यह अहम् बोध होते हुए लोक का भाव शून्यवत् हो जाता है। रचनाकार अथवा निर्माता से अहम्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चैतन्य का भावोदय आकस्मिक नहीं होता। इसके उदित होने का भी अपना एक सुनिश्चित क्रम होता है। सामान्यतः अहम् चैतन्य की तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं– 1. जंगली 2. ग्रामीण तथा 3. नागरिक अवस्थ। इन्हीं तीन अवस्थाओं में ही मानव सभ्यता के विकासक्रम को जाना जा सकता है क्योंकि मानव सर्वप्रथम आखेट अवस्था, पशुपालन तत्पश्चात् कृषि युग को पार करता हुआ मशीन तथा उद्योग और व्यावसायिक संस्कार युग में प्रवेश करता है। इस अहम् चैतन्य की स्थिति को सभ्यता के विभिन्न स्तरों के संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र ने इस प्रकार समझाया है। –

	विशिष्ट (आभिजात्य)– अहम् चैतन्य से पूर्ण (महानगरीय समाज)
शिष्ट	
	नागरिक सामान्य (नगर)
वह नागरिक जो ग्रामीण सीमा को स्पर्श करता है (कस्बा)	
	वह ग्रामीण जो नागरिक सीमा को स्पर्श करता है
	ग्रामीण
वह ग्रामीण जो जंगल की सीमा को स्पर्श करता है।	जंगली जो ग्रामीण सीमा को छूता है। जंगली–पूर्णतः अज्ञानी और असभ्य होता है।
	(अहम् चैतन्य शून्य)

मानव मन में अहम् चैतन्य की स्थिति से ही लोक साहित्य का कोटिक्रम निर्धारित किया जा सकता है। यह सत्य है कि अहम् चैतन्य का भी समाज में एक क्रम से अस्तित्व रहता है। इस अहम् चैतन्य की उपस्थिति का एक छोर यदि आदिम जंगली अवस्था है जिसमें उसका अस्तित्व नहीं के बराबर–सा ही होता है, वहीं दूसरी ओर नागरीय मनोदशा में इस अहम् चैतन्य को शत–प्रतिशत समझा जाता है। अहम् चैतन्य के स्तर भेद के ही अनुरूप अभिव्यक्तियों के विभिन्न रूप लक्षित होते हैं; इसी आधार पर लोक साहित्य का कोटिक्रम भी निर्धारित किया जा सकता है, जिसे डॉ. सत्येन्द्र ने निम्नांकित चित्र की सहायता से समझाया है –

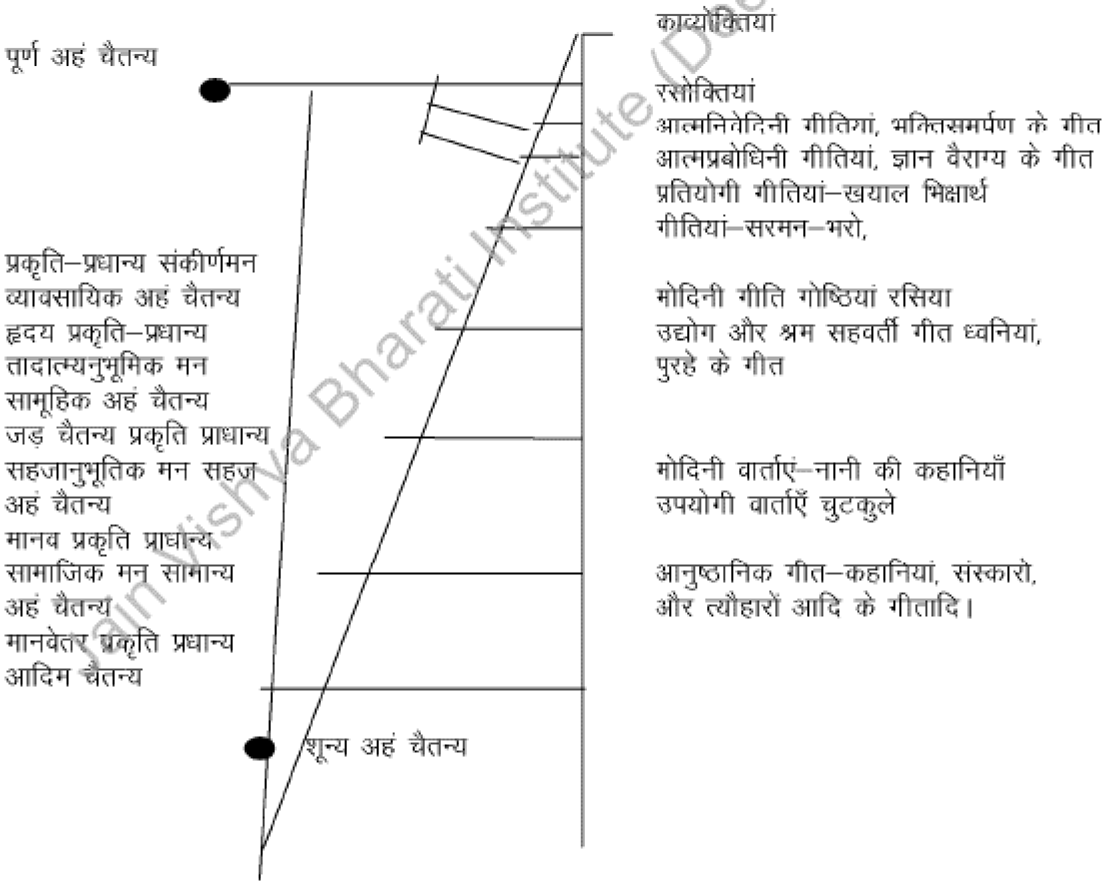

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.4 लोकसाहित्य का वर्गीकरण

लोक साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् डॉ. सत्येन्द्र ने लोकसाहित्य के दो प्रमुख वर्गीकरण किये हैं – 1. लोकवार्ता साहित्य तथा 2. वाणी विलास, इतर साहित्य। लोक वार्ता साहित्य वह साहित्य है, जिसमें किसी समुदाय की लोकवार्ता अभिव्यक्त हुई हो अथवा जो स्वयं लोकवार्ता का एक अनुष्ठानिक अंग हो। इस क्षेत्र से बाहर का समस्त इतर लोक साहित्य है।[17] डॉ. कुंदन लाल उप्रेती ने लोक साहितय को निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत किया है–[18]

2.4.1 लोक साहित्य

लोक गीत   लोक कथा   लोक कहानी   चुटकुले कहावतें   पहेलियां   मंत्र

बड़े गीत   स्वांग, भगत नौटंकी गीतअनुष्ठानिक गीत पूता, जागरण,व्रत त्यौहार संस्कार गीतादि।   अन्य

डॉ. उप्रेती ने वर्गीकरण का एक और आधार भी दिया है–[19]

(पौरूषेय वाड्.मय)   लोक साहित्य   (अपौरुषेय वाड्.मय)

पुरुषों का साहित्य
गीत साहित्य
कथाएं
गीत कथाएं
बुझौवल व ठकोसले
लोकोक्तियां
मुहावरे आदि

स्त्रियों का गीत
गीत सभी प्रकार के
व्रत उपवास की
पहेलियां कथाएं
गीत कथाएं

बालकों का साहित्य   बालिकाओं का साहित्य

गीत, क्रम संवर्द्ध कथाएं, वार्ताएं गीत, क्रम संवर्द्ध वार्ताए कथाएं

डॉ. भुवनेश्वर 'अनुज' ने नागपुरी लोक साहित्य के संदर्भ में निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है।[20]

नागपुरी लोक साहित्य

लोक गीत   लोक कथा   लोक गाथा   लोक कहानियां (व्रतकथा, अनुष्ठानिक कथा)   पहेलियां   मुहावरे   कहावतें   मन्त्र

सामान्य गीत   प्रकृति वर्णनगीत   अनुष्ठानिक गीत पूजा, व्रत त्यौहार संस्कार गीत आदि।   अन्य गीत

मूलतः लोक साहित्य में वह सभी लोकाभिव्यक्ति आ जाती है जिसमें लोकमानस अपने सभी नूतन तथा मौलिक उत्तराधिकरण की चेतना को अभिव्यक्त करता है। डॉ. सत्येन्द्र ने लोकाभिव्यक्ति के वृहद वाड्गमय को लोक वाणी की संज्ञा के अन्तर्गत प्रस्तुत करते हुए निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है।[21]

लोकवाणी विलास

धर्मगाथा   परीकथा   लोककहानी   अवदान   दन्तकथा   तंत्राख्यान   लोकगीत   लोकगाथा   लोकोक्ति मंत्र

लोकवाणी विलास के इन रूपों को हम पहले तीन प्रकार का मान सकते हैं।

वाणी

बात (सामान्य व्यवहार विषयक)   कथात्मक   गेय

सामान्य व्यावहारिक वार्तालाप की कला के आदिम विकास में विविध अन्य तत्वों के समावेश में वाणी विलास में कई विशिष्ट प्रकारों का जन्म हुआ ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बात

मंत्र | लोकोक्ति या कहावतें | प्रहेलिका | नाट्य कथोपकथन | चुटकले

कथात्क वाणी विलास का जन्म अलग–अलग प्रेरणाओं से पृथ्क पृथक् रूप में हुआ।

कथात्मक

धर्म गाथा	परी कथा	अवदान	लोक कहानी	तंत्राख्यान	लोकगाथा
(Myth)	(Fairy Table)	(Legends)	(Folk talk)	(Fable)	(Balled)

वार्तालाप तथा कथात्मक प्रकार सामाजिक–मूल से संबंधित है। 'गये' का संबंध द्विविध प्रवृत्ति से है। यह वैयक्तिक भी होती है और सामाजिक भी। इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अर्द्धगये अथवा 'पाठ्य' रूप का विलास भी होता है।

गेय रूप का हमें कई प्रकार से विभाजन करना होगा।

गेय

- आनुष्ठानिक
  - विविध संसकारगत
    - जन्ति
    - विवाह
    - आदि
  - व्रतादिगत बैरियरा आदि
- प्रकृति प्रेरित (मल्हार, रसिया, होली)
- आभिचारिक जाहरपीर, बिरहली आदि
- व्यवसायार्थ
  - भिक्षार्थ
    - सम्प्रदायगत भोपों के गीत
    - नैमित्तिक टेसू–झाँझी
  - उपार्जनार्थ टोला आदि
- सामान्य
  - मडलियों के ख्याल विक्रड़ी आदि ।
  - लोरियाँ
  - श्रमगीत
  - अन्य

आनुष्ठानिक गीत (रिचुअल) अनुष्ठानों से सम्बन्धित है। किसी विशेष अनुष्ठान पर इनका गाना अनिवार्य माना जाता है। प्रकृति प्रेरित गीतों का सम्बन्ध ऋतुओं और महीनों तथा विशेष उत्सव एवं त्यौहारों की उमंग और उल्लास के गीतों से होता है।

आभिचारिक गीतों का सम्बन्ध किसी बडे देवी–देवता या सर्प को झुलाने तथा खोरादि उतारने के उपक्रम से होता है। व्यवसायार्थ गीत पैसा कमाने के लिये गाये जाते हैं। शेष गीतों को सामान्य शीर्षक दे दिया गया है। इन गीतों में से कुछ केवल स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं, कुछ पुरुषों द्वारा तथा कुछ दोनों के द्वारा। कुछ गीत बालक–बालिकाओं के होते हैं, कुछ गीत एक व्यक्ति के द्वारा ही गाये जाते हैं, कुछ सामान्य समूह द्वारा, कुछ आयोजित मंडलियों द्वारा कुछ विशेष सम्प्रदाय के भिक्षार्थियों द्वारा, कुछ विशिष्ट वर्गों द्वारा या जातियों द्वारा। कुछ गीत टोने के अभिप्राय से युक्त रहते हैं, कुछ मन्0ों का भी काम करते हैं, कुछ गीत कथा–कहानी युक्त होते हैं तथा कुछ सामान्य विवरणात्मक गीत भी होते हैं।

पाठ्य – अर्द्धगेय या पाठ्य लोकसाहित्य का एक भेद और किया जा सकता है। इनका विभागजन इस प्रकार हो सकता है –?

पाठ्य

पद्यबद्ध लोकोक्तियाँ | बच्चों के छन्द गीत | मंत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सारांशतः यह कहा जाता सकता है कि लोकसाहित्य का वर्गीकरण अपनी सम्पूर्ण व्यापकता के साथ परिभाषित नहीं हो सकता। स्थूल रूप से लोकसाहित्य का वर्गीकरण उपर्युक्त विधि से किया जा सकताहै।

2.5 लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य

लोकव्याप्त पुरातत्व के अभिव्यक्त अवशेष के रूप में लोकवार्ता की चर्चा की जाती रही है। "लोकवार्ता" शब्दार्थ को अलेक्जंडर एच. क्रेच ने दो अर्थ में ग्रहण किया है। 1. लोक में व्याप्त अलिखित परम्पराओं की लोकव्याप्त असाहित्यिक सामग्री जो कथा, कहानी, रीति–रिवाज और विश्वास, जादू–टोना तथा अनुष्ठान में प्राप्त होती है तथा 2. इन सामग्रियों का अध्ययन करने वाला विज्ञान। क्रेप्प महोदय की विचारधारा के अनुसार लोकवार्ता का विज्ञान कोरी कल्पना का विषय न होकर ऐतिहासिक विज्ञान है। 'ऐतिहासिक' कहने का मूल प्रयोजन यह है कि लोकवार्ता अपना मूल उद्देश्य कोरे अनुमान अथवा आकाशी कल्पना अथवा स्वनिरूपित सिद्धान्त की पूर्वाग्रही दृष्टि से पूर्ण नहीं करना चाहता वरन् निगमन प्रणाली से उन्हें सिद्ध करके प्रत्येक तत्संबंधी वैज्ञानिक अनुसंधान में उपयोगी रूप में ग्रहण करने की चेतना का विलास करता है।[22] इससे स्पष्ट होता है कि लोकवार्ता (Foklore) का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। डॉ. श्याम परमार ने इस सन्दर्भ में लिखा है – "लोक जीवन की शिक्षा सदैव प्रवहमान रही है। परम्पराएँ धाराओं के वेग में नष्ट नहीं होती, बल्कि वे नये स्वरूपों और आवरणों में प्रकट होकर 'लोक' के मध्य गत्यात्मक बनी रहती है। युगों से सजग लोक के भीतर लोकवार्ता की गंगा बह रही है। किसी समय विशेष में लोकवार्ता का आकस्मिक जन्म नहीं हुआ है।" लोकवार्ता में लोक की परम्परागत भावनाएँ एवं चेतनागत सभी अभिव्यक्तियों का लोखा–जोखा निहित है। अतः लोकवार्ता केवल प्राचीन अवशेष मात्र रूढ़ियों का अध्ययन ही प्रस्तुत नहीं करता, वरन् जीवित लोक भावों, लोकाभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता हैं।"[23]

लोकवार्ता के सर्वकालीन, सार्वदेशिक तथा सर्वग्राह्य स्वरूप की अपरिमित शक्ति तथा 'लोक' की चैतन्य सत्ता के विस्तार की चर्चा करते हुए जी.एल. गोमे ने ठीक ही लिखा है – "लोकवार्ता लोक के बीच व्यक्तियों, व्यक्ति समूहों, स्थानों अथवा जिले के निवासियों के रीति–रिवाजों, अनुष्ठानों और विश्वासों पर आधारित है एवं उनके अतिरिक्त और प्रायः राज्य अथवा देश जिसके कि लोग अथवा लोक–समूह सहवासी होते हैं, के स्वीकृत रिवाजों, अनुष्ठानों और मान्यताओं के निश्चित विपक्ष से भी संबंधित है।"[24] 'लोकवार्ता' निश्चय ही एक विशेष तथा व्यापक अर्थ को घोषित करता है।

सुप्रसिद्ध लोकवार्ताविद् सोफिया बर्न ने 'लोकवार्ता' के विषयों की जो सूची बनाई है उसमें कहानियाँ, गीत और कहावतें तथा पहेलियों की गणना 'लोक साहित्य' के अन्तर्गत की गई है। इसमें प्रथम दृष्ट्या ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तगोत्वा 'लोक साहित्य' लोक वार्ता का ही एक अंग है। लोकवार्ता 'लोक' सृष्टि की अक्षर रहित मौखिक अभिव्यक्ति (Literary Expression Without Letters) है। इस मौखिक अभिव्यक्ति को जब लिपिबद्ध करने का निश्चय किया जाता है, वह उसी क्षण से लोक साहित्य की सीमा का संस्पर्श करने लगता है। इस दृष्टि से हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि लोकवार्ता की अनमोल सम्पदा को काल की अकरुण व क्रूर दृष्टि से बचाने वाली भावसृष्टि का दूसरा नाम 'लोक साहित्य' है। इसीलिए 'लोक साहित्य' को लोकवार्ताविद् स्वच्छ, निर्दोष, अकलुष तथा प्रकाशवान नक्षत्र पुंज मानता है। लोक साहित्य को मैं एक ऐसी कसौटी मानता हूँ जिस पर घिस कर ही लोकवार्ता अपनी साकार प्रतिमा को चिरंजीवी व सजीव बना सकता है। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा के मतानुसार 'लोक वार्ता स्वयं लोक साहित्य का अंग है।'[25] इस सन्दर्भ में डॉ. श्याम परमार भी लिखते हैं– "जहाँ तक लोकवार्ता और लोक साहित्य का सम्बन्ध है, लोक साहित्य का कुछ अंश ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर है। लोकवार्ता में केवल वही लोक साहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। अतः इस लोकवार्ता का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं, जितना कि इनमें सुरक्षित उन परम्पराओं का है, जो नृ–विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं।[26] लोक साहित्य के क्षेत्र को सीमित तथा लोकवार्ता को व्यापक मानने की अवधारणा का विरोध करते हुए बलराज ने लिखा है कि – 'यूरोप में फोक लिटरेचर को फोकलोर का एक अंग माना गया है। इस साम्य के अधार पर ही हिन्दी में लोक–साहित्य को लोकवार्ता का अंग कहने की प्रथा का सूत्रपात हुआ। लोकवार्ता के तत्वों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पर्याप्त मात्रा में अवगत हो जाता है कि लोक साहित्य से बहुत मात्रा में साम्य होने पर भी व्यापकता तथा उद्देश्य की भिन्नता की दृष्टियों से इनमें भेद न्यून नहीं हैं। अतएव लोक साहित्य को लोकवार्ता का अंग कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि लोक साहित्य का स्वतंत्र अस्तित्व है, अभिव्यक्ति के अध्ययन का लक्ष्य स्वतंत्र है और कसौटी भिन्न है। उनके पारस्परिक सम्बन्ध से प्रतीत हो जाता है कि एक दूसरे का अंग नहीं अन्यथा इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र आदि भी लोकवार्ता

के अंग माने जाने चाहिए।"[27] यह सत्य है कि लोक साहित्य में चित्त का आल्हाद, मन का अनुरंजन तथा आत्मानंद का अपूर्व प्रसाद होता है। वह रूढ़ियों तथा छनद की पिंगल–श्रृंखला में आबद्ध नहीं होता। वह शैलीशिल्प की दुरुहता व अलंकरण के भार से बोझिल न होकर अत्यन्त ही स्वाभाविक, स्वच्छन्द, सरल व सरस माधुर्य से अभिमण्डित होता है। उसका अनगढ़ लालित्य चिर स्थायित्व रखता है। वह किसी व्यक्ति विशेष का कृतित्व होते हुए भी 'लोक' महासागर में ऐसा निमज्जित हो जाता है कि महात्मा कबीर की यह उक्ति स्वतः ही चरितार्थ हो जाती है कि 'बूँद समाना समंद में, सो कत हेरी जाय।' मैं यह समझता हूँ कि लोकवार्ता का चिरस्थायी और कालजयी संरक्षण आलय लोक साहित्य ही है। लोक साहित्य का उपजीव्य लोकवार्ता का चिरस्थायी और कालजयी संरक्षण आलय लोक साहित्य ही है। लोक साहित्य का उपजीव्य लोकवार्ता ही है। लोकवार्ता अपनी मौखिक सृष्टि में व्यक्त होता है जबकि लोक साहित्य उसे अनौपचारिक अलंकृति प्रदान करता है। इसीलिये इसमें समस्त गीत, कथाएँ, गाथाएँ, उक्तियाँ, लोक विश्वास, मंचीय विधान से जुड़ी लोकाभिव्यक्ति इत्यादि सभी लोक साहित्य के अन्तर्गत आ जाती है। लोक वार्ता एक विशाल वट वृक्ष है तथा लोक साहित्य उसकी शाखा। लोकवार्ता, लोकमानस की आदिम मनोवृत्तियों का मौखिक कोश है तो लोक साहित्य उसका अलंकृत अनौपचारिक शास्त्र। लोकवार्ता के सभी विषय लोक साहित्य के अध्ययन का मूलाधार है। इसीलिए लोक साहित्य को लोकवार्ता का अंग माना जाता है।

2.6 सारांश

सारांशतः यह कहना उचित ही जान पड़ता है कि लोकवार्ता, लोक साहित्य की मौखिक अभिव्यक्ति है। मेरियालीच तथा जेरोम फायड द्वारा सम्पादित "दि स्टैण्डर्ड रिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथॉलोजी एण्ड लीजेण्ड" तथा अन्य विद्वानों की मान्यताओं का विश्लेषण करने के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि समस्त विद्वानों ने "लोकवार्ता" की सीमा में मौखिक, परम्परागत, संरचण, अवशेष, सामूहिकता परम्परा सामान्य अविशिष्ट प्रचलन, जातीय अवचेतन, आदिम संस्कृति, लोक विश्वास इत्यादि की गणना की है। इसीलिए बंगाल के श्री आर.पी. चंदा ने आज से करीब छः दशक वर्ष पूर्व 'लोकवार्ता' को 'लोकविद्या' कहने का आग्रह किया था जो प्रचलित नहीं हो सका। 'लोकवार्ता' से सम्बन्धित इतना चिन्तन होने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि स्थानीय लोक भाषा की अभिव्यक्ति व मौखिक वाग्धारा, जिसमें साधारण आदिम जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं को उद्घाटित करना प्रमुख उद्देश्य होता है, वही 'लोकवार्ता' का प्रधान लक्षण है। लोकवार्ता की सर्वव्याप्त सम्प्रेणीयता का आधार उसका परम्परागत होना ही है। लोकसाहित्य में लोकगीत, लोककथा, गाथा, नाट्य और सुभाषित की गणना की जा सकती है। यह शरीरतोषिणी, मनस्तोषिणी, मनोमोदिनी भावमण्डित है। यह लोकाभिव्यक्ति केवल लोक के लिए, लोक के द्वारा तथा लोक भाषा की ही कृति है। यह समर्पित भाव समर्पित व्यष्टि का ऐसा रचना संसार है जिसमें कृतिकार के मन में अपने कृतित्वकार होने का लेशमात्र भी लोभ नहीं है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. लोक साहित्य के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
2. लोक साहित्य के क्षेत्र विस्तार की विवेचना कीजिए।
3. लोक साहित्य का वर्गीकरण कीजिए।
4. लोक वार्ता एवम् लोक साहित्य के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3

लोकसाहित्य के अध्ययन विषयक सम्प्रदाय

संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 लोकसाहित्य के सम्प्रदाय

3.2.1 भारतीय सम्प्रदाय

3.2.1.1 धर्मगाथावादी सम्प्रदाय

3.2.1.2 प्रसारवादी तथा समानान्तरवादी सम्प्रदाय

3.2.2 पाश्चात्य सम्प्रदाय

3.2.2.1 ऐतिहासिक–भौगोलिक पद्धति (लोकसाहित्यवादी सम्प्रदाय)

3.2.2.2 रूपकतत्वीय सम्प्रदाय

3.2.2.3 एन्थ्रापोलोजिकल सम्प्रदाय

3.2.2.4 मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय

3.2.2.5 ऐतिहासिक सम्प्रदाय

3.2.3 अन्य सम्प्रदाय

3.3. सारांश

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

3.0 प्रस्तावना

विगत डेढ़ शताब्दी से सम्पूर्ण विश्व में लोकवार्ता, लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति के विविध पक्षों को केन्द्र में स्थित करके अध्ययन करने की प्रवृत्ति में विस्तार हुआ है। यह एक सुखद संयोग है कि आभिजात्य साहित्य के मर्मज्ञ आलोचकों का ध्यान लोक साहित्य के अध्ययन की ओर केन्द्रित हुआ है। यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक शिष्ट साहित्य की नींव में लोकचेतना ही कार्य करती है। लोक साहित्य के अध्ययन की उपादेयता को उद्घाटित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है – "भारतीय हृदय का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने अपरिचित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पण्डितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है।...जब पण्डितों की काव्य भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्यपरम्परा में नया जीवन डालता है।"[1] तात्पर्य यह है कि अभिजात्य साहित्य का मूल स्त्रोत लोक ही है। यह भी कुछ अंशों तक सत्य है कि लोकवार्ता तथा लोक साहित्य का सम्बन्ध सांस्कृतिक नृतत्वशास्त्र (कलचरल एंथ्रोपोलीजी) से है तथापि विद्वानों ने इसके स्वतंत्र अध्ययन की उपयोगिता को भी अस्वीकार नहीं किया है। मानव सभ्यता के ऊषाकाल से अद्यतन काल तक की विकासयात्रा में प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाले सम्पूर्ण परम्परानुमोदित विश्वास, आस्था, आचार–विचार पूर्ण कलात्मक अभिव्यक्तियों को समझने में लोकवार्ता तथा लोक साहित्य ही सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

3.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से लोक-साहित्य के विभिन्न सम्प्रदायों को समझा जा सकेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.2 लोकसाहित्य के सम्प्रदाय

लोक साहित्य के अध्ययन का इतिहास अनुमानतः दो ढाई सौ वर्षों से अधिक पुरातन नहीं है। यूरोप में लोक साहित्य के अध्ययन का इतिहास उत्तरमध्यकाल से प्रारम्भ होता है। अठाहरवीं सदी के प्रारम्भ में पुरातत्वविदों का ध्यान इतिहास की स्थूल घटनाओं से अलग हटकर जातीय और राष्ट्रीय स्तर पर उस जनसमुदाय की ओर आकर्षित हुआ जिसे अब तक असभ्य, अशिक्षित तथा असंस्कृत समझा जाता था। किसी ऐसे विराट् ज्ञान क्षेत्र को समझने की रूढ़िबद्ध अध्ययन दृष्टि अब बन्धनमुक्त होकर स्वच्छंद हो गई। इसी का परिणाम था कि लोक समाज (Folk Society) की ओर पुरात्वेत्ताओं का ध्यान आकर्षित होना। यूरोपीय समाज में राष्ट्रीय भावनाओं के उन्मेष होने के प्रतिफलन से ही लोकप्रिय पुरावशेषों के अध्ययन की ओर उनका ध्यान गया। इंग्लैंड के विशप टॉमस पर्सी ने 1765 में "रेलिक्स ऑफ एशियेंट पोयट्री" नामक रचना के माध्यम से एक ऐसे ज्ञान भण्डार को पुस्तकाकार प्रकाशित किया जिसमें तत्कालीन समाज में प्रचलित भूत–प्रेतों, परियों तथा जादूगरों की विचित्र व रोमांचक गीत–कथाएँ संग्रहीत थी। यूरोप का जन समाज इस पुस्तक को पढ़कर आकर्षित हुआ। इसके भी पूर्व 1688 ई. में जॉन आब्रे ने 'रिमेंस ऑफ जैंटिलिज्म एण्ड जुडाइज्म' नामक पुस्तक में भी इसी प्रकार के रोमांचक रीति–रिवाजों व यूरोपीय समाज में जुड़े–प्रवादों का उल्लेख किया था। इस प्रकाशन श्रृंखला में 1746 ई. में रेवरेंड हेनरीबोर्न कृत 'एंटवेस ऑफ द कॉमन पीपुल' का भी उल्लेख्य स्थान है। इस प्रकार के अध्ययन को वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित करके प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम श्रेय जर्मन विद्वानबन्धु जेकबग्रिम तथा विलहेल्म ग्रिम को है जिन्होंने अत्यन्त ही परिश्रमपूर्वक दीर्घाकार लोकगीत तथा लोककथाओं का संग्रह व सारगर्भित टिप्पणी देते हुए सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करवाया। ग्रिम बन्धुओं की सबसे बड़ी देन लोकवार्ता संबंधी स्थापनाएँ हैं। उनकी मान्यता थी कि समस्त यूरोपीय लोकवार्ताओं का उद्गम किसी एक मूल भारत–यूरोपीय स्त्रोत से हुआ है। विश्वव्यापी समानता लिए हुए इन लोककथाओं में एक समान सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं। यह समानता देश व जाति की सीमा का अतिक्रमण करके सर्वत्र लोककथाओं व लोकगीतों की भावधारा में देखी जा सकती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होते–होते ज्यों–ज्यों यूरोप का विश्व के अन्य देशों के साथ सम्पर्क बढ़ता गया, वैसे–वैसे यूरोपीय लोकवार्ताविदों का ध्यान प्राचीन एवं आदिम जातियों की मौखिक वार्ताओं तथा उनकी सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। 1891 ई. में लन्दन में लोकवार्ता विषयक एक अन्तर–राष्ट्रीय सम्मेलन भी आयोजित हुआ। अब तक विश्व के लोकवार्ता मर्मज्ञों ने तद्विषयक अध्ययन सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त स्थापित कर लिए थे, वे ही आगे चलकर प्रमुख सम्प्रदाय बन गये।

लोकसाहित्य के अध्ययन विषयक सम्प्रदायों के उद्गम के मूल में लोकवार्ताविदों की यह वैचारिक स्थापना थी कि सम्पूर्ण विश्व में लोकवार्ताओं की व्याप्ति में आश्चर्यजनक समानता है। विश्वव्यापी लोककथाएँ, धर्मगाथाएँ तथा लोकगीतों में उनमें गुम्फित विचारों तथा तद्जनित अभिव्यक्ति में प्रयुक्त प्रतीकात्मकता ने विभिन्न देशों की राजनैतिक सीमाओं की संकीर्णताओं को स्वीकार नहीं किया है। इसी विचारधारा के कारण लोक तथा लोकसाहित्य की समानान्तरता को स्वीकार किया गया है। इसीलिए विभिन्न वैचारिक दृष्टियों ने लोक साहित्य के विश्वजनीन स्वरूप को बनाया गया। विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि इनके अध्येताओं ने भारत को केन्द्रिभूमि माना है जहाँ से लोकागाथा और धर्मगाथाओं का प्रसार विश्व के अन्य देशों में हुआ है। इस विचारधारा का पोषण करने वाले सभी सम्प्रदायों को भारतीय सम्प्रदाय की संज्ञा दी जा सकती है तो दूसरी ओर उनका पोषकतत्व मनोविश्लेषण प्रधान पाश्चात्य चिन्तन भी रहा है। 'भारतीय सम्प्रदाय' के अन्तर्गत मोटे तौर पर यह स्वीकारा गया है कि समस्त लोकवार्ताओं के अन्तर्गत सभी धर्मगाथाओं का उद्गम स्त्रोत भारत है। लोक साहित्य के अध्ययन–क्षेत्र में भारतीय तथा पाश्चात्य सम्प्रदायों का चिन्तन महत्वपूर्ण रहा है।

3.2.1 भारतीय सम्प्रदाय

भारतीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत निम्नलिखित सम्प्रदायों की गणना की जा सकती है –

3.2.1.1 धर्मगाथावादी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक विद्वानों में मैक्समूलर अग्रगण्य है। उनकी यह स्थापना है कि समस्त भारत–यूरोपीय जातियों का मूल आर्यवर्ग है जो ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों से यत्र–तत्र फैलता रहा और बसता भी रहा। यही कारण है कि अत्यन्त पुरातन वैदिक देवी–देवताओं के नाम तथा उनसे जुड़े हुए घटनाप्रसंग मूल रूप से विस्मृत होते गये लेकिन उनका अर्थक्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता रहा। इस वैचारिक अवधारणा को जार्ज विलियम काक्स ने अपनी पुस्तक 'द माइथालाजी ऑफ आर्यन नेशंस', (1870 ई.) के द्वारा अग्रेषित किया। इस श्रृंखला में राबर्ट ब्राउन

(1898 ई.) ने यूनान की धर्मगाथाओं तथा डेनियल ब्रिटेन ने उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका में प्रचलित धर्मगाथाओं की भारतीय धर्मगाथाओ के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया। स्वयं मैक्समूलन ने 'सोलर सिद्धान्त' के संदर्भ मे विविध देवी–देवताओं का उद्‌भव सूर्य से ही माना। ऋग्वेद की ऋचाओं को रूपक की भूमि पर व्याख्यायित करते हुए मैक्समूलर ने यह माना था कि धर्मगाथाओं का उद्‌गम भाषाविकार से हुआ है। वह समस्त धर्मगाथाओं को मूल भारत तथा उनकी संसार व्याप्ति भी यहीं से मानता है। इन गाथाओं में विभिन्न देशों में किंचित नामान्तरण होने का मूल कारण 'भाषाविकार' है। यह कहा जा सकता है कि इसीलिए इस चिन्तन को उद्‌गम स्त्रोत धर्मगाथावादी सम्प्रदाय कहा गया है। सर जार्ज काक्स ने नार्वे, इटली, यूनान, भारत आदि देशों में प्रचलित लोककथाओं तथा धर्मगाथाओं को समझने तथा अध्ययन करने की एक सुव्यवस्थित विधि स्थापित करने पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक आर्य नस्ल के पास कथाओं का अनंत भण्डार है जो उनके इतिहास, पुराण, महाकाव्य तथा मौखिक रूप तथा लोकवार्ताओं के रूप में सुरक्षित है। इस अनंत भंडार को तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनाना चाहिए। केवल अनुमान पर कदम उठाना उचित नहीं है। हमें अपने परिणामों तक पहुँचने के लिए जातीय धारणाओं से ऊपर उठकर धर्मगाथाओं की सामग्री के भीतर उनकी खोज करनी चाहिए। इसके लिए हमें गाथाओं की घटनाओं को उनके साम्य–वैषम्य के आधार पर करनी होगी।[2] इटैलियन लोकवार्ताविद् एंजेलो ग्यूबर्ने ने अपनी रचना "जुलाजिकल माइथालोजी" (1872 ई.) के माध्यम से ऋग्वेद में वर्णित 'वृषभ ति गाय' संबंधी धर्मगाथाओं का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए निष्कर्ष रूप में यह स्वीकार किया कि वेदवर्णित समस्त कथाएँ और पात्र प्रतीक हैं। वृषभ और गाय, सूर्य, इन्द्र तथा मेघों की प्रतीकात्मक कथाओं के ही समानान्तर यूरोप की अनेक जातियों में इस प्रकार की मिलती–जुलती कथायें प्रचलित हैं। ग्यूबर्ने ने उषा और सूर्य से सम्बद्ध वैदिक आख्यान की व्याख्या करते हुए उषा को गाय, इस गाय के दो सींग सूर्य और चन्द्रमा माना। चन्द्रमा और उषा में गहन मैत्री है। इस प्रकार की कल्पना अमेरिका के विकासवादी इतिहासकार जॉन फिस्के ने 'मिथ्स एण्ड मिथ मेकर्स' के माध्यम से 1873 ई. में प्रस्तुत की।

धर्मगाथावादी सम्प्रदाय को 'भाषाविज्ञानवादी' सम्प्रदाय की संज्ञा भी दी गई है। इस प्रकार की चिन्तन यात्रा में विलहेल्म कार्ल ग्रिम तथा जेकब काल ग्रिम का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इन "ग्रिम बंधुओं" ने अनेक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने किंडर–एण्ड हाउस मशीन या हाउस टेनस का प्रथम खण्ड 1812 ई. तथा दूसरा खण्ड 1815 ई. में प्रकाशित करवाया। उनका सर्वप्रचलित ग्रंथ 'दि उत्श्चे माइथालोजी' वर्ष 1835 ई. में प्रकाशित हुआ। डॉ. सत्येन्द्र ने इन्हें 'लोकवार्ता विज्ञान का पिता या प्रवर्तक' कहा है।[3] ग्रिम बंधुओं की यह मान्यता थी कि समान प्रतीत होने वाली कहानियों का मूल यूरोपीय स्त्रोत है तथा धर्मगाथाओं का ही ध्वसावशेष लोक कथाएँ हैं जिन्हें गाथाओं में माध्यम से ही समझा जा सकता है। इस सम्प्रदाय की विचारधारा का समर्थन करने वाले अन्य विद्वानों में जर्मनी के अदालवर्त कुन्ह (1812–1881), स्कवार्ज (**Schwarz**) मनहॉर्डट (**Manhardt**). पिक्टेत (फ्रेंच) एफ.आई. बुस्लमेव, ए.एन. अफनास्पैव (रूस) तथा ओ.एफ. मिलर आदि अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन विद्वानों ने समान गाथाओं का उद्‌गम स्त्रोत एक स्थान माना। यही "एक स्थान" जहाँ कि विभिन्न जातियों का भी उद्‌भव स्थल है। वे सभी जातियाँ एक ही परिवार अर्थात् योरोपीय आर्य परिवार की मानी जाती है। 'भाषाविकार' के कारण गाथाओं की उत्पत्ति हुई। इस संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं 'मैक्समूलर ने गाथाओं के उद्‌भव की दृष्टि से मानवीय संस्कृति के विकास की चार सीढ़ियाँ या युग माने हैं – पहली थीमेटिक–शाब्दिकः धातुओं और व्याकरण के तत्वों का जन्म, दूसरी डायलेक्टिकः बोलियों के रूप ग्रहण की अथवा भाषिक विविध कुलों की भाषाओं के मूल स्वरूप का जन्म हुआ। तीसरी, माइथालॉजीकल गाथाएँ, इस युग में गाथाएँ बनीं और चौथी पोपुलरः इस युग में लौकिक राष्ट्र भाषाएँ खड़ी हुई।[4] इस सम्प्रदाय के पोषक विद्वानों ने गाथाओं, अभिप्रायों, नामों तथा शब्दों की तुलना में परम्परा का साम्य भाव देखा। यदि गहराई से देखा जाए तो यह 'धर्मगाथावादी' सम्प्रदाय धर्मगाथाओं की विश्वव्यापी सत्ता का तुलनात्मक अध्ययन करने में मिथक का अधिक सहारा लेता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 1. जिन कथाओं में प्रकृति के क्रिया व्यापारों का मानवीकरण किया जाता है, 2. जो प्राग् इतिहास युग से सम्बद्ध है, तथा 3. किसी एक समुदाय द्वारा सत्य मान ली जाती है तथा प्राकृतिक विचित्रताओं की व्याख्या की जाती है उसे "मिथक" कहते हैं जबकि लोककथा मनोरंजन की भूमि पर संचरण करती है। लोकआख्यानों का यथार्थ भौतिक होता है और कथा मनोरंजन की भूमि पर संचरण करती है। लोकआख्यानों का यथार्थ भौतिक होता है और मिथ का सत्य आधिभौतिक। मिथ में अतिप्राकृत पात्र, घटना, कथावस्तु, अलौकिक शक्तियों का साम्राज्य होता है और जो हमारे दैनिक अनुभवजन्य यथार्थ से मेल नहीं खाते हैं।

धर्मगाथावादी सम्प्रदाय में मिथक की भूमिका महत्वपूर्ण है। मिथक केवल आदिम जातियों में ही व्याप्त हो, ऐसा नहीं है। यह उससे भी आगे सुदूर तक व्याप्त है। मानवविज्ञानी ई.बी. टायलर ने उस सुदूर अतीतवादी युग को

'मिथसर्जन युग' (माइथेपोइक) अथवा 'मिथ मेकिंग' युग के नाम से सम्बोधित किया है। टॉयलर की इस वैचारिकता से प्रभावित होकर जैम्स फ्रेजर ने सम्पूर्ण मानव संस्कृति की समय विकासयात्रा को तीन चरणों में वर्गीकृत किया है। 1. जादू का युग, 2. धर्म का युग तथा 3. विज्ञान का युग। जादू युग का मानव प्राकृतिक सजीवता की विश्वव्यापी चेतना के प्रति अनुरागी था और उसके उन्हीं विश्वासों से मिथ का जन्म हुआ। वे लिखते हैं – दैनिक जीवन के अनुभवों में व्याप्त तथ्यों को मिथों में रूपान्तरित करने वाला प्रमुख कारण सम्पूर्ण प्रकृति की सजीवता है और इसी सजीवता का सर्वोच्च रूप है मानवीकरण।[5] ई.बी. टायलर तथा जेम्स फ्रेजर की ही तरह लेवीबूल तथा दुर्खी जैसे विद्वानों ने भी 'मिथसर्जन' युग की कल्पना की है। अपने अध्ययन क्रम में इन्हें यह अनुभव हुआ कि आधुनिक मानव के चिन्तन तथा आदिम मनुष्य की चिन्तन पद्धति में बहुत अन्तर है। इस अन्तर का कारण यह है कि आदिम जातियों में एक ऐसी रहस्यात्मक मनोवृत्ति होती है जो आधुनिक सभ्य तथा बौद्धिक मानव की तार्किक कार्य पद्धति से अलग धारणा रखती है। यह प्राक्–तार्किकता ही उन्हें यह मान लेने के लिए स्वतः प्रेरित करती है कि यह सम्पूर्ण जगत् किसी अदृश्य शक्ति से संचालित होता है। यहीं से मिथ सर्जना प्रारम्भ हो जाती है। जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुण्डट ने मानव जाति के सामाजिक विकास को क्रमशः टोटम, वीर तथा विज्ञान युग में विभाजित करते हुए गोत्र–प्रतीक युग 'टोटम' को मिथसर्जना का युग माना है।

भारतवर्ष में भी यास्क मुनि ने 7वीं ई. पूर्व शताब्दी में वैदिक आख्यानों की व्याख्या करने वाले निरुक्तों के माध्यम से और ऐतिहासिक सम्प्रदाय का सूत्रपात किया है। निरुक्तकार मुनि यास्क वैदिक कथाओं को प्राकृतिक घटनाओं तथा आध्यात्मिक अभिप्रायों का रूपक मानते थे। उनके मतानुसार देवराज इन्द्र विद्युत और वज्र मेघ के रूप हैं। इन्द्र तथा वृत्तासुर संग्राम बिजली और बादल का युद्ध–रूपक है। यास्क के ही समानान्तर 600 ई. पूर्व में एपी कारमस तथा पाँचवीं ई. पूर्व में थियोगेनस ने यह स्वीकार किया कि समस्त ग्रीक देवी–देवता प्राकृतिक घटनाओं के ही मानवीकृत रूप हैं। यह प्रकृतिवादी सम्प्रदाय है जो जर्मनी में विकसित हुआ था। प्राकृतिक व्यापारों की कथात्मक व्याख्या करने वाले इस प्रकृतिवादी सम्प्रदाय में आगे चलकर तीन भेद हो गये। 1. प्रथम स्थर पर एक वर्ग ने चन्द्रमा के सभी व्यापारों को मिथ का मूल माना। 2. दूसरे स्तर पर सूर्य तथा 3. तीसरे स्तर पर ऋतुचक्र को मिथ का मूल माना गया। इसमें सूर्यशाखा के सिद्धान्त प्रवर्तक मैक्समूलर अधिक लोकप्रिय हुए। सन् 1856 ई. में मैक्समूलर ने प्राचीन आर्य जाति के मिथ प्रकाश और अंधकार के संघर्ष में शब्दधातुओं की कल्पना का भी सहारा लिया था। उसकी यह भी मानयता थी कि सूर्य ही के कृत्यों को विभिन्न देवताओं की कथा के रूप में प्रतिपादित करने वाला यह युग भाषा मिथ की अभिव्यक्ति में अपूर्व विश्लेषण तथा अमूर्त कल्पनाविलास का पूर्ववर्ती युग था. इसीलिये अभिव्यंजित संकलपना के लिए भाषा में अनेकार्थता तथा समर्थता विकसित हुई। जैसी पहली अनेकार्थका स्थिति के अन्तर्गत एक धातु शब्द 'द्यु' गगन, सूर्य, पवन, प्रभात इत्यादि अनेकार्थ से मण्डित है, इसी प्रकार 'दिव' धातु से दिन, प्रकाश ज्योति, दिव्यादि अनेक अर्थ 'द्योतित हुए।' इस पद्धति के द्वारा मैक्समूलर ने यह प्रतिपादित किया है कि समस्त संसार के मिथकीय आख्यानों की इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है। मैक्समूलर के इस सूर्य सिद्धान्त से प्रेरित होकर ब्रील ने 'मिथक शास्त्र और भाषा विज्ञान का मिश्रण' (1877) तथा कोन्सतास ने 'ओडीपस का आख्यान' (1880) में ओडीपस की प्रसिद्ध कहानी की व्याख्या की। विलियम जार्ज काक्स (1870) ने मैक्समूलर के 'सूर्य सिद्धान्त' के संदर्भ में ही ओडीपस कहानी की विस्तृत व्याख्या की। जोकास्टा (आकाश) से ओडीपस (सूर्य) का जन्म होता है। कालानतर में स्फिंक्स (सूखे का बादल) से ओडीपस (सूर्य) का संघर्ष होता है जिसमें ओडीपस विजयी होता है। ओडीपस का अन्धा होना सूर्यास्त है। ए.टी. गोनी की मान्यता के अनुसार कल्पना वह प्रकाश है जो सूर्यास्त के समय लक्षित होता है।

कालान्तर में इस धर्मगाथावादी सम्प्रदाय के प्रवर्तक मैक्समूलर के सूर्य सिद्धान्तों की आलोचना हुई। ऋतुवादियों ने प्रकृति को ही समस्त मिथ का आधार माना है। आडालबेर्ट कून ने आँधी के बादलों तथा श्वाट्य तथा प्रेलर ने आकाश में परिवर्तित होते हुए रंगों को महत्वपूर्ण माना है। इसी प्रकार सांस्कृतिक विकासवादियों ने भी मैक्समूलर की विचारधारा की जमकर आलोचना की। उनके मतानुसार प्रत्येक मिथ की प्रकृतिपरक व्याख्या करना उचित नहीं है। इस सम्प्रदाय में मिथ की सत्ता को सर्वोपरि माना गया। मैलिनोवस्की ने मिथ को न तो अकर्मण्य भावोद्गार और न व्यर्थ की कल्पना माना बल्कि उसे एक ठोस महत्वपूर्ण सामाजिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया है। डॉ. दिनेश्वर प्रसाद इस संदर्भ में लिखते हैं – यह सही है कि प्रकृति के प्रति आदिम मनुष्य का दृष्टिकोण मुख्यतः व्यावहारिक है और मिथ की ठोस सामाजिक उपयोगिता है, लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि आदिम मनुष्य के विचारों और कथाओं में प्रतीकात्मकता का अवकाश बहुत कम है। आदिम मनुष्य वस्तु और व्यक्ति में भेद नहीं कर पाता तथा मानव और मानवेतर जगत के बीच पारस्परिक सहभाग की कल्पना करता है। प्रतीकीकरण आदिम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मनुष्य–वस्तुतः मनुष्य मात्र के मनोविज्ञान की एक व्यापक विशेषता है।[6] बाल मनोविज्ञानी प्रियजे ने बालक की मानसिकता के सन्दर्भ में अपनी मान्यता को स्थापित करते हुए स्वीकार किया है कि बालक स्वयं को शेष जगत से पृथक् करके नहीं देखता तथा वह विचार और वस्तु में अन्तर नहीं करता। वह जड़ वस्तु में चेतना सत्ता का आरोपण करके जड़ात्मवादी तथा वस्तु जगत के प्रति अपनी सृजन ाक्ति से सम्प्रृक्त होकर उसे स्वयं की मानसिक सृष्टि मानकर कृत्रिमतावादी भी बन कर प्रस्तुत होता है। इस कार्य व्यापार में मनुष्य के मनोविज्ञान में प्रकृति का प्रतीकीकरण या मानवीकरण की प्रमुख भूमिका रहती है। ऋग्वेद के अनेक स्थलों में प्राकृतिक क्रिया–व्यापारों का मानवीकरण इतना सजीव है कि उसकी महत्ता व उपादेयता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक उदाहरण दृष्टत्व है – उसने (इन्द्र ने) पर्वत पर लेटे हुए अहि (वृत्र) का वध किया। उसके लिए त्वष्टा ने चमकने वाली विद्युत रचना की, और रँभाती हुई गौओं की तरह अपनी तीव्रगामी धारा के साथ, नदियाँ समुद्र की ओर बह चली।"

(ऋग्वेद–1–32–2)

"हे इन्द्र! जब जल के लिए तुमने बादलों को फाड़ डाला, तुम्हारे सामने (गौओं का संदेश लेकर) सरमा प्रकट हुई।" जब अंगीरसों ने, उषा के आगमन के समय (खोजी हुई) गायों को देखा।7 अनेक देशों में पृथ्वी को माता एवं आकाश को पिता का प्रतीक माना गया है। माओरी सृष्टि–कथा में रांगा (स्वर्ग) तथा पापा (पृथ्वी) के संयोग से संसार के समस्त जीवों की उत्पत्ति की कथा कही गई है। वेदों में द्योस्पितर तथा पृथ्वी माता, ग्रीस में जेडस एवम् देमेत्तर के प्रसंग भी प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। भारत में ग्रहण राहु–केतु के कथा प्रसंग से जुड़ा है। दक्षिणी अमेरिका में एक ऐसी कथा प्रचलित है कि जब काले कुत्तों का दल अचानक चाँद को पकड़ कर उसे लहूलुहान करने लगता है तब आदिवासी इन कुत्तों को मारने के लिए तीर छोड़ते हैं। भारत में प्रचलित राहु–केतु यहाँ काले कुत्ते हैं। इस प्रकार इन मिथकों का साम्राज्य विश्व भर में व्याप्त है। एच.यू. बायर ने मिथकों में ही इतिहास का अनुसंधान करमे हुए यह सिद्ध किया कि यूरोपीय समाज पहले मातृसत्तात्मक था। मिथक, सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण और दृढ़ीकरण का सशक्त माध्यम है, हालांकि 'मिथ' इतिहास की तरह "ठोस" न होकर 'कोमल' और लचीले भी होते हैं। इस मिथकीय कोमलता से किसी भी जाति विशेष के सांस्कृतिक इतिहास का पुनः सृजन किया जा सकता है।

धर्मगाथावादी सम्प्रदाय के प्रमुख व्याख्याता मैक्समूलर की यह मान्यता रही है कि कि मिथ की उत्पत्ति भाषायी शब्द से होती है। इसीलिए विश्वव्यापी धर्मगाथाओं को उसने 'शब्दविकार' की संज्ञा दी थी। भाषा के निर्देश विचारों के स्तर को पूर्णतया प्राप्त नहीं कर पाते हैं। उसमें कहीं न कहीं तो अस्पष्टता रहती है। ग्रीक भाषा में प्रचलित "ड्यूकेलियन और पाइरहा" की कथा में कहा गया है कि प्रलय की विध्वंस लीला के उपरान्त उन्होंने पत्थर फेंके जिनसे मनु य जाति का जन्म हुआ। इस कथन का वैचित्र्य उस समय समाप्त हो जाता है जब हमें पता चलता है कि ग्रीक भाषा में पत्थर और मनुष्य श्रुतिसाम्य वाचक शब्द हैं। पुरातन काल में आदिम मानव ने विश्व की प्रत्येक वस्तु को सजीव माना है, इसीलिए उस काल की भाषा में प्रयुक्त होता था। इसीलिए 'सोता हुआ इण्डीमियन' सूर्यास्त का प्रतीक हैं। यहाँ सोने की कल्पना में व्यतिव का आरोपण भी स्पष्ट है। इसी प्रकार वैदिक आख्यानों में वर्णित सूर्य–उषा के परस्पर अनुराग का प्रसंग सूर्योदय और पूर्वी आकाशीय अरुणिमा का अर्थ संकेतित करता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत–यूरोपीय भाषा परिवार में एक ही वस्तु अनेकार्थों से मण्डित हो सकती थी। पृथ्वी 'उर्वी' (विस्तृत), मही (बड़ी) और धरा (धारण करने वाली) भी है। यही अर्थ धारणा नदी, वाणी तथा गौ के अर्थ में भी प्रयुक्त हो सकती है। इस कारण धात्वर्थ से विच्छिन्न शब्दों द्वारा अर्जित नूतन अर्थों की संगति की व्याख्या करना एक अनिवार्य स्थिति बन जाती है। धातुपरक अर्थ करने के ही कारण पुरुरवा बहुत (पुरू) रव करने वाला अर्थात् सूर्य हो जाता है। पुरुरवा स्वयं को वशिष्ठ की संज्ञा से सम्बोधित करता है और वशिष्ठ सूर्य सूर्य का ही नाम है। इसी प्रकार उर्वशी ही उषा देवी है। इस प्रकार यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि धर्मगाथावादी सम्प्रदाय में व्युत्पत्तिवाद का महत्व निर्विवाद रहा है। इसकी सहायता से धर्मगाथाओं को समझने में बहुत सहायता प्राप्त हुई हैं। इसके विपरीत सर जार्ज काक्स ने इसे 'फेल्योर ऑफ मेमोरी' अर्थात् स्मृतिभ्रंश या विस्मरण माना है। इसी कारण विश्व भर में अनेक नूतन महाकाव्यों के आख्यान सृजित हुए हैं। जैसे भारत में सप्त ऋषि के नाम से ज्ञात सात तारों को 'ऋक्ष' कहा जाता है। इस 'ऋक्ष' क धातुपरक अर्थ 'दीप्तिवान' रहा होगा। ग्रीक में यही भाव 'अफकतोस' और उर्सा है। इस धातु से भालू अर्थ भी ध्वनित होता है इसीलिए यूरोपीय परम्परा में उल्लखित ये 'सप्त भालू' (Seven bears) तथा भारतीय गाथाओं में सप्तर्षि हो गए।

सारांश रूप में यह कहना उचित जान पड़ता है कि विश्व लोकवार्ता और लोकसाहित्य के अध्ययन की दिशा में धर्मगाथावादी सम्प्रदाय की अपनी मौलिक व विचारोत्तेजक देन रही है। मिथक, शब्द धातु और शब्द विकार या

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्मृति विस्मरण की कल्पना ने इस धर्मगाथाओं के माध्यम से विश्वलोक मानस को समझने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी है।

3.2.1.2 प्रसारवादी तथा समानान्तरवादी सम्प्रदाय –

लोकसाहित्य के अध्ययन विषयक यह सम्प्रदाय भी महत्वपूर्ण तथा चर्चित रहा है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि विभिन्न देशों के लोकसाहित्य और लोककथाओं में कथा सामग्री और शिल्प के धरातल पर अद्‌भुत साम्य दिखलाई देता है। विशेष रूप से लोक कथाओं के क्षेत्र में यह साम्य अत्यधिक देखा जा सकता है। वस्तुतः यह साम्य सिद्ध करता है कि लोक चेतना सम्पूर्ण मानव जाति की समान रूप से समादृत सांस्कृतिक विरासत है जिसमें कथा तथा कथानक रुढ़ियों ने परस्पर राजनीतिक सीमाओं को पृथक् करने वाली प्रवृत्तियों को अस्वीकार कर दिया था। किसी कथा नायक द्वारा दुष्ट या शैतानी आत्मा को परास्त करने की साधना के मध्य किसी ऋषि, देवता या सती नारी का वरदान मिलना व सहायता का आश्वासन प्राप्त करते हुए जादुई अंगूठी, उड़न तश्तरी, गायब करने वाली गोली आदि सभी देशों की कथाओं में प्राप्त होती है। चूँकि इस प्रकार की कथाएँ एशिया से लेकर सम्पूर्ण यूरोप तथा ग्रीनलैण्ड से लेकर दक्षिण अमेरिका तक व्याप्त है। अतः इन लोककथाओं के प्रसार तथा उनमें परिव्याप्त विभिन्न रूपों की समानानतरता का अध्ययन करना ही इस सम्प्रदाय का मुख्य प्रयोजन है। डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है – "लोकवार्ता की लोक कहानी (फोकटेल Folk tail) विषयक अध्ययन की एक दृष्टि "प्रसार" की प्रकृति, रूप आदि को समझने से संबंधित है। विविध देशों में एक सी ही कहानियाँ या धर्मगाथाएँ मिलती हैं। इस समानता का एक कारण 'प्रसार' माना गया है।[8] इस प्रसार साम्य में पात्र, लिंग, जाति, संख्या अथवा व्यवधान में अन्तर हो सकता है लेकिन मूल कथानक तथा प्रयोजन में अन्तर नहीं होता। जैसे आपदग्रस्त हिंसक पशु और उसका उद्धारक पशु या मानव तथा सिंड्रेला, हंस व मत्स्य कन्याओं की कथा सम्पूर्ण एशिया, यूरोप, अलास्का, अमेरिका तथा चीन में भी प्रचलित हैं। आपदग्रस्त हिंसक पशु तथा उसके बुद्धिभाव उद्धारक के अनुमानत सौ रूपान्तरों का उल्लेख कार्ल कोन ने 1891 ई. में प्रकाशित अपने रचना में 'मैन एण्ड फाक्स' (मनुष्य तथा लोमडी) में किया है। यह कहानी भागवत पुराण में भी मिलती है। इसका एक निम्नलिखित रूपान्तर दृष्टव्य है जो टेम्पूल की 'वाइड्र अवेक' स्टोरीज में वर्णित है।

लोहे के पिजरें में फंसे एक बाघ की दशा पर द्रवित होकर जैसे ही एक निर्धन ब्राह्मण उसे मुक्त करता है वह तुरन्त ही खाने के लिए तैयार हो जाता है। इस संकट की घड़ी में ब्राह्मण पंच निर्णय की बात करता है लेकिन मानव–जाति के कार्यों से पीड़ित सारा जंगल बाघ का ही समर्थन करता है। तभी ब्राह्मण गीदड़ से भेंट करता है और वह अपनु बुद्धिमत्ता से ब्राह्मण को संकट से छुड़वा देता है। यह लोककथा भारत में संथाली क्षेत्र व राजस्थान में पायी जाती है। संथाल में प्रचलित कथा में बाघ चट्टान में फंसा और एक चरवाहा उसका उद्धार करता है तथा स्वयं संकट में पड़ जाता है। उस समय के तीन पंचों में से आम का पेड़ व तालाब तो बाघ का समर्थन करते हैं जबकि तीसरा पंच बन्दर अपनी बुद्धि–चतुराई से उसे बचा लेता है। यह मुण्डारी लोक कथा भी है जो "कला लोओ दपारोम" अर्थात् एक आदमी और बाघ के नाम से परिचित है। यहाँ बाघ गड़े में धंसा हुआ था जिसे किसान ने मुक्ति तो दिलायी किन्तु जब वह स्वयं संकटग्रस्त हो गया तब सियार के बौद्धिक चातुर्य से किसान के प्राण बचे।

यूरोप में इस प्रकार की कहानी का प्राचीनतम रूप बारहवीं शताब्दी में लिखित रूप पेत्रुस अलफोसी तथा तेरहवीं चौदहवीं के जेबुला एक्सत्रावा गान्तेस में भी प्राप्त होते हैं। मिश्र तथा वर्मा में प्रकारान्तर से यही लोककथा प्राप्त होती है। लोककथाओं में यह वस्तु सामम्य कथानक रूढ़ियों के प्रसंग में अधिक परिलक्षित होता है। कथासरित्सागर में वर्णित एक कथा में एक व्यक्ति किसी संन्यासी के पुत्र को रौंध देता है, उसी से पके चावलों के वह दो–दो दाने खाता है और जब वापिस थूकता है वह सोने का होता है। स्वीडन की एक लोककथा की नायिका के मुख से सोने की अंगूठी तो नावें की लोककथा नायिका के मुख से सोने के सिक्के निकलते हैं। सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी, मणिधारक नाग, शापग्रस्त मानव या पशु–पक्षी, जादू की टोपी या पोशाक, अदृश्य हो जाना आदि कथानक रूढ़ियाँ सर्वप्रचलित हैं।

इन सभी कथा–साम्यों की ओर सर्वप्रथम ध्यान सांस्कृतिक विकासवादी चिन्तक टायलर, तथा लैंग आदि के केन्द्रित हुए। यही उनका 'समानान्तरवाद' है। इस साम्य के मूल में यही कहा जाना चाहिए कि मानव की मूल प्रकृति सार्वभौम है। इसे देश और काल की स्थूल सीमा में बांधा नहीं जा सकता। समान सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में मनुष्य की प्रतिक्रिया भी समान होती है। उदाहरणार्थः जैसे दिन में सूर्योदय का होना, चन्द्रमा का घटना या बढ़ना, दिन में तारों का न दिखना आदि घटनाओं पर आधृत लोकवार्ता का होना इस तथ्य की पुष्टि करता है। इसी प्रकार प्राकृतिक पदार्थों का दैवीकरण, नरबलि, गोत्र प्रतीक आदि असंख्या धारणाएँ और प्रथाएँ उन जातियों में भी प्रचलित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हैं जो भौगोलिक दृष्टि से असम्बद्ध है, किन्तु जो समान रूप से सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों से गुजरी हैं या गुजर रही हैं।[9] लोक साहित्य के क्षेत्र में उपर्युक्त समानताओं की व्याख्या करने के लिए ही समानान्तरवाद की प्रतिष्ठा हुई परन्तु यह सम्प्रदाय अल्पकालजीवी ही रहा। इस सदर्भ में हार्ट लैण्ड ने लिखा – "जिन घटनाओं से (इन कहानियों की) रचना हुई है, वे उन धारणाओं पर आधारित हैं, जो किसी एक जाति की अपनी न होकर वन्य जातियों के बीच सर्वत्र सुपरिचित हैं। ये बर्बरता के द्वारा वन्यता के और आधुनिक सभ्यता तथा विश्व की भौतिक घटनावली की वैज्ञानिक जानकारी के द्वारा बर्बरता के स्थानान्तरण के साथ क्रमशः परिवर्तित और रूपान्तरित होती गयी है।"[10] ऐंण्ड्रय लैंग ने भी यह स्वीकार किया है ये कथायें सुकल्पित कहानियों के रूप में प्रसारित या प्रेषित होती हैं।

'प्रसारवाद' की मूल वैचारिक धारा में यह मान्यता रही है कि सांस्कृतिक समानताओं का मुख्य कारण किसी केन्द्र–विशेष से प्रथा या विश्वासों का प्रसार है, हालांकि यह सत्य है कि किसी जाति की परम्पराएँ और संस्थाएँ अपनी सांस्कृतिक सम्पन्नता के बल पर समीपवर्ती जातियों की समान विरासत बन जाती है। यह समानता गीतों, कथाओं, पात्रों, घटनाओं आदि अनेकानेक रूपों में प्राप्त होती है। इस समानता के साथ–साथ समस्याएँ भी समान रूप से प्राप्त होती हैं। लोक साहित्य के अध्ययन क्षेत्र में प्रसारवादी सिद्धान्त के सर्वप्रथम पोषक विद्वान थियोडोर बेन्फे हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'पंचतंत्र की भूमिका' (1859 ई.) में विस्तार से चर्चा करते हुए यह स्वीकार किया कि यूरोप–एशिया में प्रचलित 'समस्त' लोककथाएँ एक ही केन्द्र से अन्यत्र प्रसारित हुई हैं और वह केन्द्र भारत है। इस मान्यता का प्रचण्ड समर्थन भी हुआ और विरोध भी जिसके फलस्वरूप बेन्फे ने अपनी मान्यता में 'समस्त' के स्थान पर 'अधिकांश' शब्द का प्रयोग किया। कोस्के कृत 'एत्यूद फोकलोरिक' तथा 'लेकोंतेज ऐंडिये ए ल ऑक्सिदियें' का सार भी यही है कि भारत से ही यूरोप भर में लोक कथाओं का प्रसार हुआ है। 'इण्डियन फेयरी टेल्स' (1892 ई.) के रचनाकार, जैकब्स ने इन लोक कहानियों का प्रसारित प्रतिशत तीस या चालीस माना है। यूरोप में प्रचलित परी कथाओं को छोड़ देने पर शेष सभी पशुकथाएँ या अधिकांश क्रमसंवृद्ध कथाओं का स्त्रोत भारत से है। इसके विपरीत समानान्तरवादियों ने मूल प्रसार केन्द्र की कल्पना को व्यर्थ माना तथा ऐन्ड्रयू लैंग ने तो इस साभ्य को भी मात्र एक संयोग माना। उदाहरणार्थ साप्ताहिक दिवसों की मूल धारणा बेबीलोन की है। उन्होंने अपने सात देवताओं यथा नाबू, मदुई, इश्तर आदि के नाम पर सात दिनों का नामकरण किया। इसी प्रकार ग्रीक समाज ने हर्मिस, जोड्स, अफ्रोदीत आदि, रोमंस जाति ने मर्करी, जूपिटर, वीनस तथा भारत में रवि, सोम, मंगल आदि सात नामकरण किये गये हैं। इस संदर्भ में प्रचलित कथानक रूढ़ियों की सार्वदेशिक व्यापकता तो जगत प्रसिद्ध है।

सारांश यह है कि इस सम्प्रदाय ने जहां एक ओर लोक कथाओं की समानान्तरता को स्वीकार किया। वहीं दूसरी ओर यह भी स्वीकार किया कि लोक कथाओं की समान रूप से व्यापकता के मूल में प्रसारवादी सिद्धान्त की ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है; निश्चय ही लोककथाओं की रचना जब किसी व्यक्ति विशेष के हाथों से रचित होकर छूट जाती है और उसे यदि 'लोक' में प्रवेश मिल जाता है तब वह पुनर्रचना और नवीनीकरण की अन्तहीन प्रक्रिया का एक अंग बन कर गतिशील हो जाती है। इस सम्प्रदाय के मूल में थियोडोर बेन्फे का चिन्तन अत्यधिक मुखरित था। बेन्फे की मान्यता की गहराई को ध्यान से परखा जाय तो वह सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि भारत से लोककथाओं का यूरोप को निर्यात हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि यूरोपीय जनमानस लोककथाओं के सृजन के लिए अक्षम था बल्कि यह एक ऐतिहासिक यथार्थ है कि ईसा की नवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक मध्य एशिया के व्यापारियों तथा अन्यान्य यात्रियों के माध्यम से भारतीय कथाएँ यूरोप में प्रसारित होती रहीं। इसी काल में धर्म युद्ध (क्रुसेड्स), हज और यरुसलम की यात्राओं ने यूरोप तथा मुस्लिम देशों को परस्पर निकट बनाया। यही कारण है कि उस समय तक भारतीय कथाएँ अरबी और फारसी में अनूदित हो चुकी थी। बेन्फे तो इस आदान–प्रदान को सिकन्दर महान् के आक्रमणों से जोड़ देता है। बेन्फे ने पंचतंत्र की कहानियों के आधार पर वह रास्ता भी खोज लिया था जिससे होकर भातरीय कहानियों के यूरोप पहुँचने के दो मार्ग हो सकते हैं – पहला एशिया माइनर, तुर्कीस्तान और बाल्कन राज्य होते हुए यूरोप तथा दूसरा मिश्र, उत्तर अफ्रीका, सिसिली और स्पेन होकर यूरोप पहुँचा जा सकता है। यह दोनों मार्ग फारस–अरब क्षेत्र से ही शुरू होते हैं। एक अनुमान यह भी किया जाता है कि जिप्सी जाति जो दसवीं सदी या इससे कुछ पूर्व भारत में निष्क्रमण कर गई थी, उनके माध्यम से भी इन कथाओं का व्यापार यूरोप तक फैला हो।

प्रसादवादी सम्प्रदाय लोककथाओं के प्रसार में भारत की भूमिका को अत्यधिक महत्व तो देता है लेकिन इनका यह अर्थ नहीं है कि यह पूरा भारतवासी ही है। यद्यपि कुछ विद्वानों यथा स्वीडन के वानसिडो ने यूरोप में प्रचलित समस्त लोककथाओं को भारतीय मूल का मानने में असहमति प्रकट की है। ईसप की कहानियों का एक चौथाई भाग तो निस्सन्देह भारतीय स्त्रोत से ही गृहीत प्रतीत होता है। कुछ कहानियाँ जातकों में भी प्राप्त होती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैसे भेड़िया और मेमना, लोमड़ी और कौआ, सोने का अंडा देने वाली मुर्गी आदि इसी प्रकार पेट और इन्द्रियाँ, किसान और साँप आदि के विषय में शत–प्रतिशत भारतीय ही होने में विवाद हो सकता है। ई. पूर्व 1200–1166 ई. में रचित मिश्री सभ्यता में प्रयुक्त पेपीरस पर अंकित सिंह और चूहे की कहानी प्राप्त होती है। यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रसादवादी पर अंकित सिंह और चूहे की कहानी प्राप्त होती है। यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रसादवादी ने यह तो स्थापित किया है कि लोक साहित्य की कथावस्तु और उसके शिल्प ने विश्वव्यापी सम्प्रदाय होकर अपना प्रभाव स्थापित किया है। पंचतंत्र की कहानी कला के तंत्र ने अलिफलैला के रचना विधान को प्रभावित किया है। इसलिए इसे "उधारवादी सम्प्रदाय" भी कहा जाता है। इस विचारधारा का फ्रांसीसी विद्वान् गेस्टन पेरिस, ऐमेन्युअल कासक्विन तथा अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ क्लौस्टज तथा जर्मनी के लेनडड आदि ने समर्थन किया है।

3.2.2 पाश्चात्य समुदाय

3.2.2.1 ऐतिहासिक–भौगोलिक पद्धति (लोकसाहित्यवादी सम्प्रदाय) –

इस सम्प्रदाय ने लोकवार्ता साहित्य के विश्व प्रसार के मूल में ऐतिहासिक–भौगोलिक मार्ग या पद्धति पर विचार किया है जिसके अनुसार "प्रत्येक लोककथा या लोकगीत के सभी प्राप्य रूपान्तरों की तुलना द्वारा उसके मूल मिश्रण तत्वों के आधार पर उसके स्थान और काल का निर्णय करना है।"[11] इसे 'फिनीशियन स्कूल' भी कहा जाता है। यह शुद्ध लोकसाहित्यवादी सम्प्रदाय है तथा अमरीकी लोकवार्ता के अध्ययन क्षेत्र में इसे 'आर्ने–टामसन सम्प्रदाय' भी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय का चिन्तन न तो लोक साहित्य की धर्मपरक व्याख्या करता है और न ही मानव के आदिम मनोस्वभाव का विश्लेषण करना ही इसका अभीष्ट है बल्कि यह शुद्ध रूप में लोक साहित्य के स्वरूप, अभिप्राय तथा उसके पारस्परिक आदान–प्रदान का अध्ययन करता है। फिनलैंड के विद्वान् ऐंट्टी आर्ने (1867–1925) ने भौगोलिक–ऐतिहासिक लोकवार्तापरक अध्ययन का सूत्रपात किया था। इन्होंने सर्वप्रथम 'टाइप्स आफ फोकटेल्स इन वर्ल्ड लिटरेचर' नाम से कहानी विषयक जो अध्ययन एवं निष्कर्ष दिये, उसी का बाद में स्टिथ थामसन ने 'कथा मानक' रूपों का अध्ययन करके कोश बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। ऐंट्टी आर्ने के गुरु क्रोहन ने अपने इस शिष्य की देन पर विचार इन शब्दों में प्रस्तुत किये : "आर्ने ने जो अलग–अलग कहानियों का विस्तृत किया है, उनसे यह सिद्ध हो गया है कि किसी लोकथा के स्थायी अंशों को ही पृथक अभिप्राय (मोटिफ) मानना भूल है। इन अध्ययनों से आर्ने ने यह दिखा दिया है कि प्रत्येक पृथक् कथा का अपना निजी कथानक (प्लॉट) होता है और उसकी अपनी एकतानिष्ठ (यूनिफाइड) रचना होती है। जहाँ तक बहुत सी लोक कहानियों का सम्बन्ध है, यही पहला व्यक्ति है जो विस्तारपूर्वक यह सिद्ध करने में समर्थ हुआ है कि उनसे भारतीय मूल के सम्बन्ध में बेन्फे का जो सिद्धान्त था, किन्तु साथ ही उसने यह भी दिखाया है कि उसी सामान्य समूह की अन्य कहानियाँ भी हैं जिनका असंदिग्ध मूल पश्चिमी यूरोप और मध्ययुग है। उसने पूर्व से पश्चिम की ओर लोक कहानियाँ की यात्रा पर भी बहुत प्रकाश डाला है तथा साीनीय रूपों के विकास पर भी बहुत प्रकाश डाला है। उसने लोक कहानियों के रचनाकार को अनिश्चित अनन्त में से निकाल कर निश्चित ऐतिहासिक काल में पहुँचा दिया है।"[12] ऐंटी आर्ने के गुरु जुलियस क्रोहन (1835–1888 ई.) ने 'क्लेवल' (Kalevala) नामक लोकगीत के अध्ययन में ऐतिहासिक भौगोलिक प्रणाली की सहायता ली। जूलियस क्लोयस के पुत्र कार्ल कौन्ह ने अपने अथक प्रयत्नों तथा 'स्वीडिश साइडाक्स' के बारे में एक 'इंटरनेशनल फीडरेशन ऑफ फोकलोरिष्ट' की भी स्थापना की। इस संस्था का प्रमुख कार्य लोक प्रचलित कहानियों की कथावस्तु का अध्ययन करना, उनके मूल उद्‌गम स्थान का निर्णय तथा उसके विस्तार का भौगोलिक मार्ग का पता लगाना था। इस दिशा में प्रो. वी. एण्डरसन, प्रो. एल.वी. एण्ड्रयेव का विशेष योगदान रहा है। इसके अलावा के. क्रोहन ने लोकवार्ताविज्ञान की कार्यप्रणाली, अवदानों, खेलों, बूझौवलों, गाथा, गीतों के अलावा लोक कहानियों के लिए भी इसी ऐतिहासिक–भौगोलिक प्रणाली का उपयोग किया। अध्ययन की इस दिशा में लोककथाओं के अध्ययन के लिए विभिन्न रूपान्तरों का संग्रह करना तथा रूपान्तरणों के विश्लेषण करके उनके उद्‌भव के स्थान, काल, क्रम का पता लगाना था। लेकिन इस चिन्तन में शैलीगत अध्ययन सामाजिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तिगत रूपान्तर के साथ उसके सम्बन्धों पर विचार नहीं किया गया।

इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी लोक कहानी के अध्ययन के लिए यह अपेक्षित है कि अध्येता को सर्वप्रथम मौखिक रूपान्तरों को संग्रहीत करके उन्हें भौगोलिक क्रमानुसार उसकी उपलब्ध तिथि के अनुसार लगा देना चाहिए तथा उस कहानी के लिखित रूपों का संग्रह करके उनका भी ऐतिहासिक कालक्रम निर्धारित करना चाहिए। तदुपरान्त लिखित तथा मौखिक कथाओं का मंथन करके उनके तुलनात्मक समान तन्तुओं को छाँट देना चाहिए। कथातन्तु और विश्लेषण का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण योगदन यह है ि कवह विश्लेषणीय लोककथा का ऐतिहासिक उद्‌गम स्त्रोत तथा उसके भौगोलिक विस्तार का पता देता है। जिस प्रकार भारतीय मूल की लोककथा में सिंह की

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

जो भूमिका रहती है, वह अन्य देशों में बदल जाती है। ठीक वैसे ही जैसे भारत का कमल, फारस में गुलाब और यूरोप में लिली बन जाता है। प्रायः इस प्रकार के पात्रों की स्थिति में भी परिवर्तन आ जाता है। किसी कथा में आश्चर्यतत्व का होना, उसके भारत–ईरानी होने का प्रमाण है। यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है कि लोककथाओं की तुलना में लोकगीतों का भाव अपेक्षाकृत कम प्रसारित होता है। लोककथा में जो सुगम्यता होती है वह लोकगीतों में नहीं होती। इसीलिए जितना भाषिक प्रसार कथा का होता है, उतना गीतों का नहीं होता। तुलनात्मक अध्ययन में ठीक यही स्थिति सांस्कृतिक साम्य अथवा असाम्य पर लागू होगी।

3.2.2.2 रूपकतत्वीय सम्प्रदाय –

लोक कहानियों के उद्‌भव और उसक अस्तित्व के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हुए। उनमें रूपकतत्वीय सम्प्रदाय (Allegorical School) का विशेष महत्व रहा है। इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि धर्मगाथा तथा संस्कृतियों में प्रयुक्त होने वाले सभी देवता किसी प्राकृतिक शक्ति या दिव्य तत्व के रूपक हैं। इस सम्प्रदाय की मान्यता के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि पाश्चात्य धर्मगाथाओं में पेसिडिन जल, हेरा वायु, वलकन अग्नि का रूपक है। भारत में विष्णु या श्री राम सूर्य हैं, हनुमान वायु हैं। लोककथाओं में प्रकृति के समस्त क्रिया व्यापारों के भी अपने प्रतीकात्मक रूपक हैं जिनके माध्यम से धर्मगाथाओं तथा लोककथाओं को सहज ही समझा जा सकता है।

3.2.2.3 एन्थ्रापोलोजिकल सम्प्रदाय –

सुप्रसिद्ध लोकवार्ताविद् और एन्थ्रापॉलाजी के विद्वान् टैलर ने सर्वप्रथम नृतत्व शास्त्र की पीठिका पर इस चिन्तन का विस्तार किया। इन्होंने अपने ग्रंथ 'प्रिमिटिव कल्चर' (दो खण्ड) के माध्यम से 1871 ई. में तथ एंथ्रापॉलोजी (1881 ई.) के द्वारा यह सिद्ध किया कि समस्त जातियों में लोक जीवन प्रणाली, विश्वास, रीतिरिवाज और धार्मिक आस्थाओं में जो साम्य दिखलाई देता है, वैसा ही समानत काव्य रचना के शिल्प में भी दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण यह नहीं है कि इन समस्त जातियों अथवा वार्ताओं का मूल उद्‌गम स्त्रोत एक ही हो अथवा एक ही स्थान से इनका प्रसारण हुआ हो। प्रत्येक जाति या समाज ने अपने–अपने ढंग से अपने विश्वासों, आचार–विचारों, आस्थाओं का स्वतंत्र ढंग से विश्वास किया है। इन्हें कहीं से उधार नहीं लिया गया है। इस विचारधारा के कारण इस सिद्धान्त को 'स्वतः उद्‌भावन' का सिद्धान्त कहते हैं। वर्तमान प्रचलित संस्कृति का निर्माण आदिम मानव के द्वारा हुआ। आदिम मानव सर्वात्मवाद की वैचारिकता में विश्वास रखता था। इसी कारण पिछड़े वर्ग में आज भी पदार्थत्मवाद अथवा भूतात्मवाद का धर्म विद्यमान है। इस विचारधारा का पोषण करने वाले अन्य विद्वान् शिरोमणि ऐंड्रलैंग महोदय ने लोककथा अथवा धर्मगाथा के विकास की निम्न सारणी निर्धारित की है – **प्रथम** मूल कथा अनेक अभिप्रायों तथा कथा तन्तुओं (Motiff) से संचरित हुई तथा सर्वप्रथम हब्शियों (Savages) में अंकुरित हुई। **द्वितीय** – हब्शियों के आदिम समाज से निकल कर ये कथाएँकिसानों की लोक कहानियाँ बनी तत्पश्चात् **तीसरे** स्तर पर ये कहानियाँ अर्द्धवास्तविक वीरों की कहानियाँ बनती है अथवा **चतुर्थ** स्तर पर कोई साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेती है। इस सम्प्रदाय के विषय में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं कि इस सम्प्रदाय ने धर्मगाथावादी और उधारवादी सम्प्रदाय की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक ठोस धरातल स्वीकार किया और इस प्रकार लोकवार्ता तत्व के विषय में एक बहुत लम्बा डग आगे बढ़ाया। इस सम्प्रदाय ने मनुष्य और उसके स्वभाव को एक निरपेक्ष तत्व के रूप में स्वीकार कर उसकी सर्वत्र सम्भावना स्थापित की थी। यह संस्कृतियों के भेदों और उनके प्रभावों की उपेक्षा कर गया। यह उन तत्वों तक नहीं पहुँचा था जो मानव स्वभाव के निर्माता माने जा सकते हैं।[13]

3.2.2.4 मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय –

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् विलहेल्म बुण्ट ने अपनी पुस्तक "साइकालोजी ऑफ नेशंस" में यह प्रतिपादित किया कि "धर्म तथा काव्य के विविध विचार–बिन्दु विशेष परिस्थितियों में मनुष्य के मानस में स्वप्न अथवा भ्रम दृश्यों (Hallucimation) में उत्पन्न हुए हैं।"[14] सुविख्यात मनोविज्ञानवेता फ्रायड ने मनोविश्लेषण प्रणाली से यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की थी कि लोककथा के अभिप्रायों की संरचना दमित एवं अभुक्त काम भावना का ही उदात्त निर्माण है। लेकिन यह सम्प्रदाय अपनी सम्पूर्ण वैचारिकता के साथ ग्राह्य नहीं हो सका था।

3.2.2.5 ऐतिहासिक सम्प्रदाय –

मिस्टर बी.ए. मिलर (1848–1913) ने इस सम्प्रदाय की स्थापना रूसी लोकसाहित्य के अध्ययन की पृष्ठभूमि की। इन्होंने रूस के लोकसाहित्य को रूस के इतिहास के संदर्भ में अध्ययन का विषय बनाया। इतिहास और लोकसाहित्य के गहन संबंधों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि लोकवार्ता साहित्य

का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान से देखना चाहिए कि वह कहाँ, कब किन ऐतिहासिक तथ्यों तथा किस काव्यस्त्रोतों के सहयोग से संरचित हुआ है।

3.2.3 अन्य सम्प्रदाय

लोक साहित्य के अध्ययन विषयक कुछ और भी सम्प्रदाय प्रचलित हैं जिनमें "मूल मानसवादी" एक है। यह सम्प्रदाय मानव के मूल मानस का अनुसंधान करता हैं यह फ्रायड के दमित, उपार्जित या ऐतिहासिक मनोविश्लेषण से भिन्न मानस है, जिसे हम अवचेतन के बहुत गहरे स्तर पर जाकर अनुभव कर सकते हैं। हमारी आदिम सृष्टि या आदिम मानव की प्रथम अनुभूतियों का वरदान यही मानस है।

इस दिशा में एक अन्य सम्प्रदाय 'हेतुकथावादी' (Aetiological School) की गणना की जाती है। इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि समस्त लोककथाएँ तथा धर्मगाथाएँ किसी व्यापार की व्याख्या करने के लिए ही सृजित हुई हैं। मनुष्य ने पुरातन और सनातन काल से ही इस जगत के सुलझे–अनसुलझे रहस्यों का कार्य व्यापारों अथवा दैनन्दिन अनुभवों को किसी न किसी कथा के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। इस विचारधारा का पोषण दहन हार्ट (Dahnhardt) तथा राइबर्स (Ribers) ने किया। उनकी मान्यता थी कि इन हेतुओं पर आधारित कथाओं से सांस्कृतिक आस्थाओं से प्रेरित मानसिकता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

एक अन्य सम्प्रदाय 'इह्युमेरीय सम्प्रदाय' ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि प्रत्येक धर्मगाथा अथवा लोककथा के मूल में किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य की कल्पना को आवेष्टित करके प्रस्तुत किया गया है।

3.3 सारांश

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि विगत डेढ़ शताब्दी से हमारी विश्वसभ्यता और संस्कृति की इन सनातन धरोहरों ने लोकसाहित्य के अध्येताओं को यह सोचने के लिए निरन्तर उत्प्रेरित किया है। इस चिन्तन अनुचिन्तन से लोक की अपूर्व उद्भाविनी शक्ति की विश्वव्यापी लीला का भी उदघाटन होता है। लोकवार्ता और लोकसाहित्य हमारी विश्वलोक चेतना की अनुपम रत्न राशियों का जगमगाता हुआ अक्षय कोश है। लोकवार्ताओं के उद्भव और उनके प्रसार के कारणों का जो सूक्ष्मतिसूक्ष्म अनुसंधान किया गया, वह अन्तिम नहीं है, फिर भी इस दिशा में अब तक किया गया विचार–विमर्श एक 'माइल स्टोन' अवश्य कहा जा सकता है।

3.4 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न 1. लोक साहित्य के अध्ययन विषयक सम्प्रदायों का महत्त्व बतलाइए।

प्रश्न 2. लोक साहित्य के अध्ययन में भारतीय सम्प्रदायों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3. लोक साहित्य के अध्ययन में पाश्चात्य सम्प्रदाय के चिंतन के महत्त्व को उद्घाटित कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4
लोकसाहित्य का अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 समाज शास्त्र
4.3 भाषा विज्ञान
4.4 इतिहास
4.5 पुरातत्त्व
4.6 मनोविज्ञान
4.7 पाठालोचन
4.8 धर्मशास्त्र एवं दर्शन
4.9 नृ–विज्ञान
4.10 सारांश
4.11 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

लोकसाहित्य मानव समाज की सनातन सांस्कृतिक अनुभूतियों का लहराता हुआ महासागर है। यह लोकाभिव्यक्ति के विविध आयामों को अकृत्रिम अभिव्यंजना का साकार कोष है जिसमें हमारे संस्कार, रीति–रिवाज, पर्व, त्यौहार, उत्सव, लोक विश्वास, इतिहास प्रसंग, पुराण गाथायें तथा भाषा भण्डार के अनमोल रत्न जड़ित हैं, इसलिए इसका सम्बन्ध समाजविज्ञान के सभी संकाय विषयों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। लोक साहित्य का अध्ययन करते समय विज्ञानों के सिद्धान्तों का ध्यान रखना अनिवार्य है। लोक साहित्य के विस्तृत, व्यापक तथा विशिष्ट क्षेत्र का इतर विषयों के साथ सम्बन्ध इस प्रकार समझे जा सकते हैं।

4.1 उद्देश्य

इस अध्ययन से लोक साहित्य एवं समाज विज्ञानों के सम्बन्ध को समझाया जा सकेगा।

4.2 समाजशास्त्र

समाजशास्त्र के अध्ययन की चिन्तन भूमि का मूल आधार समाज है समाजशास्त्र समाज की संरचना, जातियों, समुदायों, संगठनों, प्रथाओं, रीतियों, कुरीतियों आदि का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र आदिम व जन–जातियों के आदिम संस्कारों तथा उनकी संस्कृति का भी अध्ययन करता है। लोकसाहित्य का प्रत्यक्ष अध्ययनशास्त्र मानव जीवन ही है, जिसकी यथा तथ्य अभिव्यक्ति लोक साहित्य के विशाल फलक पर भली–भाँति अनुभव की जा सकती है। इस परस्पर सम्बन्ध को उद्घाटित करते हुए डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं – "लोक साहित्य में जन–जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है, उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके साहित्य का अध्ययन करना चाहिये। इन लोकगीतों, गाथाओं, और कथाओं में मनुष्यों के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान और रीति–रिवाज का सच्चा दित्र देखने को मिलता है।"[18] समाजशास्त्र जिन आदिम जातियों, वर्णाव्यवस्था, लोक संस्कृति के विभिन्न उपादानों का अध्ययन करना है, उसके लिये लोक साहित्य उपयोगी सिद्ध हो सकता है क्योंकि लोक साहित्य में अभिव्यक्ति का स्रोत यही समाज होता है।

4.3 भाषाविज्ञान

मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चरित भाषा ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था है। 'भाषा' में प्रयुक्त शब्द, पद, ध्वनि, अर्थ वाक्य आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण करना भाषा विज्ञान का ही कार्य है। लोकसाहित्य लोक भाषा में रचित होता है। भाषा–विज्ञान के लिए लोक शब्दावली अध्ययन का आधार स्रोत निर्मित करती है। कभी–कभी किसी तत्सम् शब्द का मूल भी लोकांचल में प्रयुक्त भाषा भण्डार में प्राप्त हो सकता है। अनंत प्रकार की अभिव्यक्तियों में प्रयुक्त परिभाषिक शब्द लोकोक्तियों तथा मुहावरों के द्वारा भाषाविज्ञान को अध्ययन की दिशा मिलती है। इसीलिए डॉ. वासुदेव शरण ने लिखा, "मेरा तो विश्वास है कि हिन्दी बिना जनपदों की बोलियों को साथ लिए, उन्नति कर ही नहीं सकती। भाषा की दृष्टि से जनपदों में, गाँवों में बेहिसाब मसाला भरा पड़ा है।"[20] सुप्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने धर्मगाथाओं को ही महत्व दिया है, और उन सबका मूल उद्गम स्रोत भारत को ही माना है। अब इनका विश्व स्तर पर प्रचलन है, उनको अलग–अलग स्तर पर जुड़ते हुये देख कर ही अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बन सकते हैं। लोकवार्ता से पाठ अनुसंधाता काफी सामग्री लेता है। मैक्समूलर ने तो धर्मगाथाओं की विश्वसत्ता को 'मैलोडी ऑऊ लेग्वेंज' कहा था। लोकवार्ताओं के विशाल भण्डार में अनेक लोक प्रचलित ऐसे शब्द हो सकते हैं। हिन्दी में प्रचलित 'अलाई–बलाई' शब्द को भाषावैज्ञानिकों ने आलिगी–बालिगी का रूपावेश माना। इसी प्रकार लोक प्रचलित शब्द 'लखैया' मूलतःयक्ष का स्थान है। जैन धर्म ग्रन्थानुसार 'जक्ख–चेइय' या 'जक्खाय तन' से 'जखैया' का संबंध है जो भगवान् महावीर के ठहरने के स्थान का नाम है। डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "इस प्रकार लोकवार्ता को भाषाविज्ञान का आश्रय लेना होता है और भाषाविज्ञान को लोकवार्ता का। शब्द के यथार्थ अर्थ के लिए जिन परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है, वे भाषाविज्ञान को लोकवार्ता से ही तो मिलती हैं।"[21]

4.4 इतिहास

अतीत में घटित घटनावृतान्तों का काल क्रमानुसार प्रामाणिक वृत्तांत इतिहास है। यह हमारी सभ्यता की विकास–यात्रा का 'माइल स्टोन' दर्शाने वाला शास्त्र है। इतिहास के साथ सबसे बडी कमजोरी यह है कि अधिकांश में यह विजेताओं की दृष्टि से ही लिखा जाता है, इसीलिए अनेक अवसरों पर तथ्य तोड़–मरोड़ या गायब ही कर दिये जाते हैं। राजवंशों से संबद्ध अनेक प्रेम प्रसंग, षड्यंत्र, घटनायें, इतिहास के पृष्ठों पर भले ही अंकित न हो, लेकिन 'लोक' समाज के हृदय पटल पर वे वार्ताओं के रूप में अमिट अक्षर बन जाते हैं। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में 'अनारकली और सलीम' का प्रणय प्रसंग इतिहास में भले ही अंकित न हो लेकिन लोकवार्ताओं में वह आज भी विद्यमान है। डॉ. शंकरलाल यादव लिखते हैं – "विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये, वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही दिशा–निर्देश कर सकता है।"[22] 'लोक' में प्रचलित अनेक ऐसे नाम, स्थान घटनाओं का संकेत हो सकता है जिन पर अनुसंधान करके इतिहास बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है। कर्नल जेम्स टॉड कृत 'एनल्स एण्ड एंटीक्विटिज ऑफ राजपूताना' नामक इतिहासग्रंथ तो पूरा का पूरा लोकवृतान्त पर ही आधारित होकर रचा गया है। जब पुरातत्व से उपलब्ध प्रमाणों से सत्यापित इतिहास प्राप्त नहीं होता तब तक लोकवार्ता ही इतिहास को संरक्षण देती है। "इतिहासकार लोकवार्ता का दो रूपों में उपयोग करता है – एक तो जैसा ऊपर उल्लेख किया गया इतिहास के कच्चे मसाले के रूप में, जिसमें ऐतिहासिक तथ्य के दाने निहित हो सकते हैं। दूसरे लोकवार्ता से लोकजीवन के ऐतिहासिक स्वरूप को आंकने के लिए। लोकवार्ता का संबंध लोक जीवन से बहुत घनिष्ठ हाता है। उसमें लोक रुचि–अरुचि और उसके संस्बकार प्रतबिम्बित रहते हैं।"[23] लोक प्रचलित अनेक नाम, स्थल और घटनाओं की प्रामाणिकता इतिहास के लिए एक अनुसंधान का विषय हो सकता है अतएव यह कहा जा सकता है कि दोनों का परस्पर अन्तःनिर्भर संबंध है।

4.5 पुरातत्व

लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक तथा बहुआयामी है। पुरातत्व तथा लोकवार्ता दोनों का परस्पर गहरा संबंध है। इतिहास का प्रारम्भ बिन्दु जहाँ से मान्य होता है, पुरातत्व की सीमा वहीं समाप्त होती है अर्थात् पुरातत्व का अंतिम छोर ही इतिहास का प्रारम्भ करता है। इसीलिए लोकवार्ता भी पुरातत्व का ही एक अंग मानी जा सकती है। यह ऐतिहासिक सत्य है कि विलियम जॉह्न थॉमस ने 1846 ई. में 'फोकलोर' शब्द का निर्माण ही पुरावशेष अर्थसूचक 'पापूलर एंटीक्विटीज' शब्द के संदर्भ में किय था। लोकवार्ताओं ने पुरातत्ववेत्ताओं को अपने प्रचलित आख्यानों से प्रेरणा देकर नये इतिहास का निर्माण किया है। विश्व प्रसिद्ध प्राचीन सभ्यता के केन्द्र 'मोहनजोदड़ो' तथा 'हड़प्पा' का उत्खनन तथा सिंधु घाटी की सभ्यता का परिचय लोकवार्ताओं से ही हुआ था जब सिंध प्रदेश के लरकाना जिले में 'मुर्दों का टीला' नाम से प्रसिद्ध स्थान प्र मजदूरों ने रेल लाइन बिछाने से इन्कार कर दिया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1920–22 ई. में इस लोक प्रवाद ने अंग्रेज अधिकारियों को सोचने पर विवश कर दिया। फलस्वरूप तत्कालीन भारत सरकार के पुरातत्व निदेशक सर जॉन मार्शल के निर्देश पर वहाँ उत्खनन किया गया और विश्व के सामने प्राचीनतम नदी घाटी की सभ्यता के ऐसे अवशेष प्राप्त हुए जो भारत का इतिहास एकदम सीधे हजारों वर्ष अतीत में ले गये। इस प्रकार पुरातत्व ने लोकवार्ता में छुपे हुए अनेक अन्मोल चरित्र–रत्नों अथवा घटना–स्थलों को इतिहास की प्रामाणिकता दिलवायी है। शताब्दियों से लोक प्रचलित प्रसंग रहा है कि श्रीकृष्ण भगवान की बसायी हुइ द्वारका नगरी समुद्र में निमग्न हो गई थी। पिछले दशकों से वर्तमान द्वारका के निकट समुद्र में पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन में जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं वे इस लोकवार्ता की शत–प्रतिशत पुष्टि करते हैं। डॉ. सत्येन्द्र के शब्दों में – "इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि लोकवार्ता में जो प्रचलित है, वह सब ज्यों का त्यों पुरातत्व में ग्रहणीय है। लोकवार्ता में विविध ऐतिहासिक–अनैतिहासिक सूत्रों का ऐसा लोकतात्विक गुम्फन होता है कि पुरातत्व को उससे संकेत लेकर प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिल सकती है और समय पाकर उपलब्ध सामग्री से से ऐतिहासिक संधि बिठाकर वह लोकवार्ता की सामग्री में से आवश्यक तन्तु निकाल कर कड़ी जोड़ सकता है। इतिहास के लिए ही नहीं, सांस्कृतिक गवेषण और अनुसंधान में भी लोकवार्ता और लोक साहित्य सहायक होते हैं।"[24] अतएव लोकवार्ता के अंतिम छोर से पुरातत्व अध्ययन का कार्य प्रारम्भ होता है।

4.6 मनोविज्ञान

मनोविज्ञान मन के आवेगों तथा चिन्तन स्तरों के मूल का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। हमारे चेतन, अवचेतन, सहज और अचेतन मन का सागोपांग विश्लेषण मनोविज्ञान ही करता है। हमारे दैनन्दिन जीवन की क्रिया–प्रतिक्रिया में अवचेतन मन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है इस तथ्य का उद्‌घाटन भी मनोविज्ञान ही करता है। लोक साहित्य के अध्येताओं के लिए 'लोकमानस' की अवधारणा मनावैज्ञानिकों से ही प्राप्त हुई है। लोकवार्ताओं के अध्ययन विषयक सम्प्रदायों के अन्तर्गत 'मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय' की स्थापना जर्मना के लब्ध प्रतिष्ठ मनोवैज्ञानिक विलहल्म वुंट ने की थी जिसमें राष्ट्रों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में लोकवार्ताओं में व्यंजित मनोवैज्ञानिक स्त्रोत पर अत्यधिक बल दिया था। फायड के मनोवैज्ञानिक दर्शन में काम–प्रकृति के माध्यम से लोकवार्ता के उत्स की व्याख्या की गई थी। यह सत्य है कि आज मनोविज्ञान सम्प्रदाय की उतनी प्रासंगिकता नहीं रह गई है फिर भी 'मनोविज्ञान' के लिए लोकवार्ता साहित्य के पास विचारार्थ इतनी सामग्री है कि वह समाज के व्यक्ति और समष्टि विषयक मनोविज्ञान केवल लोकवार्ता के अध्ययन पर खड़े होते हैं।"[25] निश्चय ही लोकमानस की प्रवृत्तियों तथा लोक विश्वासों ने मनोविज्ञान के अध्ययन की एक विशिष्ट दिशा निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकआचरण, लोकविश्वास तथा स्वप्न इत्यादि की व्याख्या समझने में मनोविज्ञान हमारा सहायक सिद्ध होता है। लोकमानस से मुनि मानस तक के विभिन्न वैचारिक स्तरों का विश्लेषण मनोविज्ञान से ही सम्भव है।

4.7 पाठालोचन

पाठालोचन का मूल उद्देश्य किसी भी कृति की समाज में उपलब्ध अनेक संस्करणों की परीक्षा पाठ अनुसंधान करके मूल पाठ की प्रामाणिक स्थापना करना होता है जिससे पाठक किसी भी रचना का मूल रूप प्राप्त कर सके। अनेक अवसर पर किसी प्रचलित शब्द के प्राचीन रूप के अनुसंधान में लोक साहित्य परम सहायक सिद्ध होता है। कई बार ऐसे शब्द जो कभी संस्कृत समाज में प्रचलित थे और बाद में साहित्यकारों द्वारा भी विस्मृत कर दिये गये उसे भी लोकवार्ता तथा लोक साहित्य गीतों तथा कथाओं में सहेज कर रखा है। सूफी काव्यों में उल्लखित जगदेव का वृतान्त लोकवार्ता से ही ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। इस प्रकार पाठानुसंधान लोकवार्ता की अतल गहराइयों के विस्मृत शब्दों को ढूँढ लाता है।

4.8 धर्मशास्त्र एवं दर्शन

लोक मानस की सम्पूर्ण चेतना और आस्था का मेरुदण्ड धर्म है। "लोक" धर्म जीवी होती है। इसमें इसी भाव की गति और मति होती है। धर्म, लोक की आत्मा तथा लोक आस्था के लिए अखण्ड ऊर्जा का स्त्रोत है। देह और प्राण की तरह धर्म और लोकवार्ता परस्पर अभिन्नार्थक सूत्र हैं। आदिम मानव का मूल विश्वास जादू तथा पूर्वजों की पूजा में सन्निहित रहता है। इन तीनों से ही धर्म की महान् प्रवृत्ति का निर्माण होता है। यदि हम धम्र का ऐतिहासिक विकास समझना चाहें तो लोकवार्ता से ही सहायता प्राप्त हो सकती है। धर्म के विषय में अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। पहला नृवैज्ञानिक सिद्धान्त जिनके अन्तर्गत लैंग महोदय ने यह मान्यता रखी कि धम्र को मृतात्माओं से सम्मानार्थ आदर भाव प्रकट करने के लिए ही समझा गया है। यह भी मान्यता है कि प्रकृति के व्यापारों के भीतर सशक्त आत्माओं का अस्तित्व है। यही सिद्धान्त उस भावना का प्रतिफलन है जो यह स्वीकार करता है कि प्रकृति में मनुष्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की शक्तियाँ देवताओं की शक्तियों से भी बढ़कर होती है। धर्मशास्त्र के विश्वास–शास्त्र में 'एनिमिज्म' के प्रवर्तक हर्बर्ट स्पेंसर तथा कालान्तर में ह्यूगो ऐलार्ड मेयेर, प्रो. रिजवे तथा इट्रेम आदि प्रमुख थे। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी मृतात्माओं के प्रति सम्मान और आदर भाव प्रदर्शन के लिए ही समस्त धर्मों का जन्म हुआ है। धर्म विषयक तीसरा सिद्धान्त मैरेट द्वारा प्रवर्तित हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य स्वयं यह स्वीकार करता है कि प्रकृति स्वयं में एक संजीवित शक्ति है। इसे एक प्रकार से पूर्व बनीमिज्मवादी सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। प्रसिद्ध लोकवार्ताविद् वैन गैन्नेप (Van Ganneg) ने 'मन' (Mana) का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए यह स्वीकार किया कि सार्वभौमिक सत्ता का विश्वास अत्यन्त ही पुरातन व आदिम है। 'मन' की सार्वदेशिक सत्ता सर्वव्याप्त है। यह सर्वोच्च है। अत्यन्त पुरातनकाल में भी मनुष्य जिस 'पदार्थ' की पूजा करता था उसमें भी मन की सत्ता रहती थी। समस्त पदार्थों (matter) में 'मन' व्याप्त है। धर्मविषयक सम्प्रदायों में बुंट ने यह प्रतिपादित किया कि प्रकृतिवाद और आत्मा से ही दानव आत्माओं में धर्म का मूल विद्यमान है। बुंट ने पाँच प्रकार की दानवी आत्माएँ (Spirits Demens) मानी हैं।

दानवी आत्माएँ

- प्रेत या बैताल (किसी विशेष) पदार्थ से कोई संबंध नही अतः मृत की आत्माओं के सदृश
- प्रकृति के छलने वाले या भयावह पहलू जो मकान में हवा, जंगल, पानी, खाली, गंदी जगहों में पाये जाते हैं, बौने या दैत्य।
- वनस्पतिक आत्माएँ
  - (सरल) किसी पेड़ या पौधे को प्रमाणित (Animated) करने वाली ।
    जंगल की आत्माएँ.. वनस्पतियों के जीवन की आत्माएँ
  - जटिल
  - आकाश, बादल समुद्र, पृथ्वी की आत्माएँ, बाह्यवानस्पतिक दानव।
    कभी–कभी ये आत्माएँ मृत से व्युत्पन्न होती हैं, शासन या समाधि स्थानों से इनका संबंध रहता है। (मृत की आत्माएं)
- वे आत्माएँ जो विविध कार्य व्यापारों की अधिष्ठात्री होती है यथा आखेट का देवता समुछ यात्रा का गृह निर्माण का देवता, युद्ध का देवता, व्यवसाय का देवता आदि।
- रोग तथा पागलपन की आत्माएँ

धर्म चिन्तन में 'ईश्वर' के विकास की तीन स्तर पर व्याख्या यूसेनेर ने की है। वह यह स्वीकार करता है कि प्रथम स्तर पर उन देवताओं की गणना की जा सकती है जो समय विशेष, काल या अवधि के लिए होते हैं, इन्हें हम 'निमिष देवता' (Augensbick-Gotter) कह सकते हैं। यह देवत्व अपने अवतरण की बेला के समय पर ही अधिकार रखता है। दूसरे स्तर पर 'एक ही देवता' का भाव विकसित हुआ यथासमस्त कार्यव्यापारों का एक ही देवता अधिष्ठाता है। तृतीय स्तर इस "देव" वाद के भाव का विस्तार 'भाषा' के माध्यम से हुआ एक कार्यव्यापार के 'एक देवता' का सिद्धान्त भाषा अथवा ध्वनि विकृति (Phonetichange) के द्वारा सम्पूर्ण कार्य व्यापारों का देवता बन गया। धर्म संबंधी सातवां सिद्धान्त वीर पूजा का है। इस भाव के कारण ही अपने–अपने 'इष्ट देवता' की परिकल्पना का जन्म हुआ है। धर्मविषयक आठवां सिद्धान्त वॉन श्रोदेर (Ven Schroder) द्वारा प्रतिपादित है। इनकी मान्यता है कि केवल प्रकृति या आत्मपूजा ही परमेश्वर की अथवा धर्म की परिकल्पना के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि आवश्यकता यह है कि इनसे भी ऊपर किसी सर्वोच्च और 'परम' की कल्पना की जानी चाहिए। वह "परमोच्च" परम मंगुलकारी भी होना चाहिए। इसी श्रृंखला में ऐस. रीनैक ने 'टाटेम सिद्धान्त' की व्याख्या करते हुए यह प्रतिपादित किया कि किसी पुरातन काल में कोई 'पशु' ही देवता था तत्पश्चात् तत्युगीन समुदाय ने यह पशु–देवगण विलुप्त हो गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टोना–तांत्रिक सिद्धान्त का प्रतिपादन मान्नहार्ट (**Mannhardt**) तथा सर जे. फ्रेजर ने करते हुए यह माना कि 'टोना' मूलत बलिदान है जो मनुष्य और पशु की आयु वृद्धि के लिए किया जाता है। सभी धर्मों का उदय मूल रूप से इसी 'टोनावादी' कल्पना से हुआ है। आदिम मानव यह मानता था कि टोना द्वारा वह प्रकृति पर मनचाहा नियंत्रण कर सकता है। यदि कहीं असफलता मिलती है तो इसका अर्थ यह होगा कि कुछ ऐसी भी शक्तियाँ हैं जो उसे हस्तगत नहीं हुई। तब वह ऐसी शक्तियों को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। गिलबर्ट मरे (**Gillbert Murray**) ने यह माना कि इस धरती पर सबसे पहला देवता कोई "स्याना" था, जो पृथ्वी की उत्पादिका शक्ति पर शासन करता था। उसे अनेकानेक शक्तियाँ प्राप्त थीं। इसके माध्यम से अन्य देवताओं का जन्म हुआ। धर्म के क्षेत्र में देवोत्पत्ति संबंधी एक अन्य सिद्धान्त यह भी है कि पराक्रमी राजाओं तथा विख्यात मनुष्यों के कारण देवों की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धर्मगाथाओं के द्वारा लोकवार्ता, लोकसाहित्य तथा अभिप्रायों का स्पष्ट एवं सुतर्क विवेचना होती है। आदिम मानव ने किस प्रकार पौराणिक गाथाओं के निर्माण की क्षमता प्राप्त की यह सभी लोकवार्ताओं के अन्तर्गत धर्मगाथाओं से स्पष्ट किया जा सकता है। अतएवं धर्मगाथा, दर्शन और लोक साहित्य का संबंध गहरा है।

4.9 नृ–विज्ञान

नृविज्ञान और लोकवार्ता का बहुत ही गहरा तथा परस्पर निर्भरता का संबंध रहा है। काफी समय पहले तो नृ–विज्ञानी की एक शाखा या सहायक अंग के रूप में लोकवार्ता को ग्रहण किया जा जाता था। कालान्तर में फ्रेजर और टेलर जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने लोकसाहित्य के अध्ययन विषयक सम्प्रदायों के अन्तर्गत एन्थ्रोपोलीजीकल सम्प्रदाय की स्थापना करके इस संबंध की परस्पर संबद्धता को प्रमाणीकृत ही किया है। नृविज्ञान, मानव शरीर की संरचना व आदिम समाज का अध्ययन करता है तो लोकवार्ता और लोकसाहित्य आदिम मानव की वाणी के वृहद् कोश का। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी प्रदेश की सम्पूर्ण सांस्कृतिक आस्था का मूलाधार 'मानव' है। लोकवार्ताओं का सूक्ष्म अध्ययन जब किसी लोककथा का अध्ययन करता है तो वह यह भी देखता है कि वे लोककथाएँ मूलतः किस जाति से संबंध रखती है। इस प्रकार से 'लोक मानव' और लोक समुदाय की विस्तृत तथा सर्वांगीण खोजन करना नृ–विज्ञानियों का ही कार्य है। नृ–विज्ञान शास्त्र को मानव विज्ञान का भी शास्त्र कहा जा सकता है। यह मानव के मौखिक इतिहास की खोज है। मनुष्य के शरीर और उसकी आत्मा के पारस्परिक प्रगाढ़ संबंधों के मूल में जो संबंध है उसका विवेचन नृ–विज्ञान अवश्य ही करेगा। यह सम्प्रदाय परिवर्तन और विकास के द्वन्द्व का परिणाम है। मानव विज्ञान की दो महत्वपूर्ण शाखाएँ–शारीरिक मानव विज्ञान उसके उद्गम स्थल आदि की विवेचना करता है जबकि सांस्कृतिक मानव–विज्ञान मनुष्य की भौतिक, आध्यात्मिक, कलात्मक चेतना के विकास की यात्रा का अध्ययन करता है। सांस्कृतिक मानव विज्ञान के नैतिक आचरणों तथा विश्वासों के साथ तद्जनित भाषाभिव्यक्ति का सर्वांगीण अध्ययन करता है। पूर्ण पाषाण काल से वर्तमान की परमाणु सभ्यता के मध्य की विकासयात्रा का अध्ययन नृ–विज्ञान का विषय है। यदि हम गहराई से चिन्तन करें तो सिद्ध होता है कि मनुष्य की विविध मनोवृत्तियों की अकृत्रिम अभिव्यंजना लोक साहित्य में देखी जा सकती है। इस प्रकार नृ–विज्ञान भी लोकवार्ता का सहचर ही सिद्ध होता है। डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "न तो नृ–विज्ञान एक कदम बिना लोकवार्ता के चल सकता है, न लोकवार्ता नृ–विज्ञान के बिना। नृ–विज्ञान शरीर और रक्त की परम्परा का अध्ययन है तो लोकवार्ता उस शरीर की वाणी का।"[26]

4.10 सारांश

सारांश यह है कि लोकसाहित्य का बहुआयामी विषय क्षेत्र मानवीय भावनओं, आस्थाओं तथा अनुभूतियों के साथ अभिन्न रूप में इतिहास, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान इत्यादि से भी जुड़ा हुआ है। लोकाभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ी है, इसलिए इसमें हमारा आदिम संस्कार, लोकविश्वास तथा पुरातन अभिव्यक्ति के विविध रूप भी जुड़कर अभिव्यंजित हुए हैं।

4.11 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न 1. लोक साहित्य का समाज विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है ?

प्रश्न 2. इतिहास व पुरातत्व शास्त्र का लोक साहित्य से क्या सम्बन्ध है ?

प्रश्न 3. लोक साहित्य के अध्ययन में धर्म, दर्शन और मनोविज्ञान की क्या भूमिका है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–5
लोकसाहित्य का संकलन एवं संरक्षण

संरचना

- 5.0 प्रस्तावना
- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 लोक साहित्य
- 5.3 प्रारम्भिक बाधाएँ
- 5.4 संग्रह कार्य स्तर भेद
- 5.5 संकलन संग्रह की प्रारम्भिक तैयारियाँ
- 5.6 संग्रह कार्य प्रणाली
- 5.7 संकलनकर्त्ता से अपेक्षाएँ
- 5.8 सारांश
- 5.9 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना

विगत दो शताब्दियों से जीवन और समाज जितना अधिक वैज्ञानिक चिन्तन तथा व्यक्तिवादी जीवन–पद्धति का अभ्यदस्त हुआ है, उसी का परिणाम है कि व्यक्ति निरन्तर तार्किक व बौद्धिक हो रहा है। परिस्थितियों की तीव्रगति में परिवर्तनों की तपन ने मनुष्य को अपनी परम्परागत आस्था से दूर लाकर पटक दिया है, इसीलिए वह दिन–प्रतिदिन अहम्‌निष्ठ होता गया है। उसका अहम् चैतन्य तथा शास्त्रीय ज्ञान का अभ्मिान अत्यन्त ही मुखर होगा गया है और इस कारण उसमें अपने पांडित्य की चेतना का बोध जागृत हो गया है। उसे अपने स्वयं के 'कृतिकार' होने का अभिमान है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से लोक साहित्य का संकलन एवं संरक्षण क्यों आवश्यक है, की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

5.2 लोक साहित्य

भौतिक सभ्यता की तीव्र चकाचौंध में उसकी मानवीय तथा आध्यात्मिक सरसता विलुप्त–सी हो रही है। अतिबौद्धिकता से आक्रान्त हमारा समाज विघटन व विश्रृंखलता के गर्त में दिन–प्रतिदिन बिखरने के लिए विवश होने लगा है। बौद्धिक संकटजन्य तनावों में लोकसाहित्य ही अमृतप्रदायक हो सकता है। लोकगीतों की भावुकता हो अथवा लोक कहानियों की सरलता, लोक गाथाओं की गेय अनुरंजना हो अथवा लोक नाटकों की स्वाभाविकता अथवा लोकसुवासित या मंत्रों से सहज विश्वास हो अथवा लोकोत्सव का अनुरंजक आह्लाद– इन सभी से समाज को जाने–अनजाने में एक अपूर्व आन्तरिक परितोष का बोध होता है। टूटते–बिखरते, विघटित होते, तनावग्रस्त, कुण्ठापीड़ित तथा दमित चेतना से आक्रान्त विश्व बौद्धिकों के तपते, सुलगते, दहकते–अंगरीले संस्कारों को जिस शीतल, सुहावनी, मनभावन, प्रेरक आनन्दमयी ऊर्जा की आवश्यकता है वह उसे लोकसाहित्य, लोकवार्ता तथा लोकसंस्कृति की पावन, निष्कलुष, अहम रहित एवं समष्टिवादी सृष्टि में ही प्राप्त हो सकती है। इसीलिए बर्तमान विघटित जीवन मूल्यों से चिंतित इस दुनिया को यदि कहीं से संरक्षण और शान्ति प्राप्त हो सकती है तो लोकसाहित्य के अध्ययन तथा मनन से ही संभव है। आज के अति तीव्र प्रायोगिक मानव को परम्परानुरागी बनने की आवश्यकता है। उसके लिए कहीं न कहीं आंशिक रूप से ही सही, किन्तु अतीत की प्राणोन्मादिनी स्मृतियों से जुड़ना आवश्यक है। लोकोत्सव, लोकानुष्ठान, लोकविश्वास अथवा लोकसंकृति ही प्राणों के ऊर्जा स्त्रोत हैं, इसीलिए लोक साहित्य के संकलन व संरक्षण की तीव्र आवश्यकता है। तीसरे महायुद्ध के विस्फोटक द्वार पर दस्तक देने वाली इस मानव पीढ़ी को लोक चेतना की सुवास ही सत्पथ का निर्देश दे सकती है। यही लोक आस्था उसे पुनः "व्यक्ति" से हटा कर "लोक" से सम्पृक्त कर सकती है। उसे "स्व" से अलग कर "समग्र" से जोड़ सकती है। इसीलिए उस विलुप्त होती

हुई महतोमहीयानी समष्टिबोधक लोक साहित्य परम्परा को पोषण करना वर्तमान युग की अपरिहार्य तथा अनविार्य आवश्यकता है और लोकसाहित्य व संस्कृति संबधी कार्य की उपादेयता को कोई प्रश्नचिह्न का विषय भी नहीं बना सकता। यह एक स्थापित सत्य है कि किसी भी राष्ट्र की आत्मा का इतिहास उसकी राजनीतिक सीमाओं से अथवा सैनिक, आर्थिक प्रगति के चित्रों से नहीं वरन् उसकी संस्कृति व लोकचेतना के स्पंदन से अनुभव किया जाता है। किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी सांस्कृतिक चेतना पर ही निर्भर करता है, इसीलिए पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति और जीवन–दर्शन को ग्रहण करने में अंधी प्रतिस्पर्द्धाग्रस्त भारतीय चिन्तना को उसकी निज की सांस्कृतिक अस्मिता से जोड़ने के लिए लोक जीवन का अनुसंधान करना अत्यन्त आवश्यक है। इस भागीरथ यज्ञ का प्रारम्भ केवल गाँवों से ही हो, यह आवश्यक नहीं है। यह गैर व्यावसायिक कार्य महानगरों से भी प्रारम्भ किया जा सकता है क्योंकि 'लोकमानस' 'लोक विश्वास', 'लोक आस्था' तथा 'लोक संस्कृति' की चेतना अकृत्रिम व सहज रूप से किसी भी 'मानस' में अवश्य ही विद्यमान होती है। इसीलिए लोक साहित्य के संकलन में सबसे पहले हमें इस भ्रान्त धारणा से निकलना होगा कि यह केवल आदिम या ग्रामीण जीवन की ही धरोहर है। यह तो सार्वजनिक, सार्वलौकिक व सार्वदेशिक है। 'लोक' की सत्ता से परे कुछ भी नहीं है। लोक चेतना का स्पंदन सर्वत्र है। वर्तमान समय में जन संचार माध्यम के साधनों यथा रेडियो, टी.वी. केबल कल्चर आदि के कारण हमारी परम्परागत सनातन आस्थाओं, मान्यताओं तथा विश्वासों में आमूल–चूल परिवर्तन लक्षित हो रहा है। हमारी शिक्षा प्रणाली भी जितना बल 'आज' पर दे रही है उतना बीते हुए 'कल' पर नहीं, जितना विश्वास 'प्रयोगधर्मिका' पर अंधगति से बढ़ रहा है उतना 'परम्परानुराग' पर नहीं। इसीलिए सर्वत्र एक प्रकार का बौद्धिक स्नेहरिक्त खिंचवा अनुभव किया जा रहा है, ऐसी स्थिति में लोक साहित्य का संकलन एवं संरक्षण करना अनिवार्य सा प्रतीत हो रहा है। डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "लोक साहित्य को यदि लोक–साहित्य के महत्व के कारण ही लेना हो तब भी सभ्य नागरिक क्षेत्र में ऐसे साहित्य की सत्ता स्वयं ही एक अध्ययन की चीज है। निश्चय ही उसमें आदिम जातियों के तत्वों की कुछ अनुकूलता भी होगी और कुछ लोक मानस के स्रोत से उद्भूत होने के कारण तत्वतः उनसे भिन्न होते हुए भी उनकी कोटि से बाहर नही हो सकेंगे। लोकवार्ता की दृष्टि से भी विकसित समाज में लोकसाहित्य की सत्ता नृवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय महत्व रखती है। लोक–मानस और मनीषी–मानस के पारस्परिक संबंध, क्रिया प्रतिक्रिया और संघर्ष का स्वरूप इनमें प्रतिनिधित्व मिल सकता है। एक ही समुदाय में विविध मानस स्तरों की अभिव्यक्ति क्यों और कैसी है, यह साहित्यिक रसास्वाद और सौन्दर्य दर्शन के लिए भी आवश्यक है जितनी कि यह सामाजिक जटिलताओं को समझने के लिए है। अतः यह निर्विवाद है कि लोकसाहित्य का क्षेत्र प्रत्येक समाज और समुदाय में है और प्रत्येक क्षेत्र से उसका संग्रह–संकलन होना चाहिए।"[15]

लोक साहित्य की सामग्री के संकलनकर्ता को इस बात का बोध होना चाहिए कि वह ऐसे अनमोल रत्नों का संग्रह व संकलन करने का दायित्व निर्वाह कर रहा है जो किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिमान बना हुआ है। वह एक ऐसा संग्रहकर्ता है जो किसी राष्ट्र का अतीत और वर्तमान ही नहीं वरन् भविष्य निर्माण की सामग्री को संग्रहीत करने वाला है। निश्चय ही यह कार्य सहज और सरल नहीं बल्कि गुरुतर दायित्व निर्वहन का है। इसे हम मशीनी व्यवस्था से पूरा नहीं कर सकते बल्कि ह्रदय के अनुराग से रंजित होकर ही सफल बना सकते हैं। लोक साहित्य की सामग्री हमारे आदिम पूर्वजों की विरासत है जिसका संकलन करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य बन जाता हैं।

लोक साहित्य का संकलन क्षेत्रीय अनुसंधान का विषय है। इसलिए यह विषय मनोविज्ञान, नृतत्व शास्त्र, समाज शास्त्र, इतिहास, धर्मशास्त्र, भाषाविज्ञान, भूगोलादि से संबंध है। इसलिए किसी भी लोक साहित्य संकलनकर्ता को किसी भी प्रदेश–देश की ही नहीं, बल्कि संकलन स्थल से जुड़े गाँव–कस्बा, नगर स्तर की भी सांस्कृतिक विशेषता, स्थानीय ऐतिहासिक, समाज संरचना, वर्ग या वर्ण व्यवस्था, लोकानुष्ठान, रीति–रिवाज, लोकोत्सव, देवी–देवता के अतिरिक्त लोक वर्जना और निषेध का भी ज्ञान होना अनिवार्य है। "क्षेत्रीय अनुसंधानकर्ता के मन में उस विषय वस्तु के संबंध में स्पष्ट धारणा बन जावे जिसे वह किसी क्षेत्र विशेष से एकत्र करना चाहता है।... लोकवार्ता में लोक साहित्य के विभिन्न उपादान तो सम्मिलित होते ही हैं। जैसे लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोकपुराण, लोक कथाएं, कहावतें, पहेलियां आदि। इनके अतिरिक्त कुछ विद्वानों की दृष्टि में भिन्न–भिन्न प्रकार के लोकनृत्व, लोक कलाएँ, जादू–टोना, मंत्र–तंत्र जैसे विषय भी इसकी व्यापक परिधि के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं। वैसे तो यह सामग्री मुख्यतः मोखिक होती है तथा पारम्परित रूप से संग्राह्य होती है, फिर भी यह आवश्यक नहीं कि लिखित सामग्री इसकी सीमा के बाहर कर दी जावें।[16]

उपर्युक्त विवेचन का प्रयोजन यह है कि संग्रहकर्ता को अपने चयनित विषय और क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान होना अपेक्षित नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। संग्रहकर्ता हो अथवा शोधकर्ता उसको संग्रह के लिए जिस विधा के विषय शिल्प

आदि का सम्पूर्ण बोध होगा तभी तो अपने संकल्पित कार्य के प्रति वह न्याय करेगा। लोककथाओं तथा लोकगाथाओं में अधिक रुचि रखने वाले के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह लोक नाटकों व लोक नृत्यों को भी समान महत्व दे। अतएव लोक कथाओं के संग्रह में उसकी विश्वसनीयता प्रामाणिक होगी उसके सामने लोकनृत्यों की प्रामाणिकता या लोकनाटकों के संकलन व संग्रह में संभवतः प्रामाणिक न बने। इस संदर्भ में स्मरणीय है कि आयरलैण्ड तथा डेनमार्क जैसे यूरोपीय देशों में क्षेत्रीय अनुसंधान में कार्यरत संस्कार के अनुरूप विषय क्षेत्र में संग्रह–संकलन की अनुमति दी जाती है। लोक साहित्य में लोक समाज की चेतना की अभिव्यक्ति होती है इसीलिए यहाँ तो अहम् चैतन्य रहित समर्पित भाव मण्डित संग्रहकर्ता ही प्रभावी तथा सफल हो सकता है। तर्क की कलम और अपने पांडित्य का आरोपण करने वाला तो लोकात्मा का हनन कर सकता है। स्कैडिनेविया जैसे देशों में क्षेत्रीय अनुसंधाता व संग्रहकर्ता को कुछ समय उसके चयनित विषय का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वह उस विद्या विशेष के साथ सम्पूर्ण न्याय कर सके।

5.3 प्रारम्भिक बाधाएं

लोकसाहित्य के संकलन का कार्य असंभव नहीं तो इतना सहज और सरल भी नहीं है। किसी हस्तलिखित ग्रंथ की खोज करना सरल हो सकता है लेकिन लोक साहित्य का संग्रह इसलिए कठिन होता है क्योंकि यह लिखित न होकर मौखिक है तथा मानव के दैनन्दिन कार्यव्यापारों से उसका संबंध है। वह अनुष्ठानमूलक है। ऋतुपरक है अतएव निश्चित तिथि पर्व या ऋतु पर ही उसे सुना जा सकता है। जिस क्षेत्र में लोकानुसंधान करना है, वहां के स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध मनमौजी हैं जो आवश्यकता नहीं कि संग्रहकर्ता के अनुरूप चलें ही। इसलिए लोक गायक या नर्तक जिसने दिन भर कमर तोड़ मेहनत की है, उदरपूर्ति के लिए श्रम किया है वह थक या ऊब सकता है या निद्राशरण भी हो सकता है। जिसके पास लोककथा, लोकगाथा, लोक चिकित्सा, पहेलियाँ या लोकोक्तियों का अटूट भण्डार हैं, वह कभी प्रसन्न, खिन्न, या उदास भी हो सकता है। लोक गायक गीतों को बोल कर नहीं लिखा सकता, उनके लिए बोलना कठिन होता है, गाना सरल। श्री राम नरेश त्रिपाठी ने 'ग्राम गीतों' के संकलन में अपनी कठिनाइयों के विषय में लिखा – "गीत संग्रह करने में मुझे जो तकलीफें भोगनी पड़ी हैं, मेरा शरीर और मन उनके लिए असमर्थ था। केवल गीतों के लिए सच्ची लगन ही मुझे उन तकलीफों से पार लगाने में समर्थ हुई हैं, कभी लहरें पर लहरें आ रही हैं, पूरवा हवा के झोंके चल रहे हैं, धान के खेत में घुटनों तक पानी में ख्ड़ी चमारिनें खेत में लगे हुए घास–पात को खेट कर – नोच कर निकाल रही हैं, वे गा भी रही हैं। शरीर तो उनका धान के खेत में काम कर रहा है, और मन गीत की दुनियाँ में है। मैं धान के मेंड़ पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ।... धान के मेंड़ों से तो ईश्वर ही बचावे क्योंकि तलवार की धार की तरह पहले मेंड़ के दोनों ओर से खेत लबालब पानी से भरे रहते हैं। जरा सी दृष्टि चूकी, या ध्यान बटा कि धड़ाम से पानी और कीचड़ के अन्दर। जो गीत मैंने चमारिनों के घर जाकर लिखे हैं, उनके लिखने में मुझे अपने मन की बड़ी कड़ी परीक्षा में बैठना पड़ता है। ध्यान से देखिए – गाँव से बिल्कुल बाहर चमार का घर है, जिसकी दीवारों लोनी से गल गई हैं। दीवारों के अन्दर कंकड खीस काढ़े हैं। दीवारों में सैकड़ों दरारें, छेद, बिल और गुफाएं हैं, जिनमें छिपकलियों, मकड़ियों, चूहों, चीटियों, झींगुरों के सैकड़ों परिवार निवास कर रहे हैं।... एक ही घर है। उसी में खाना भी पकता है... घर... में छोटा बच्चा है तो एक किनारे उसका पाखाना भी पड़ा है। घर के आस–पास खेत हैं, जो सूअर के गू से भरे हुए हैं... एक किनारे चूल्हे पर मरी हुई गाय का मांस पक रहा है। मैं उसी झोंपड़े के द्वार पर दीवार से पीठ टेके रुमाल पर बैठा हुआ एक साठ बरस की बुढ़ी चमारिन से गीत लिख रहा हूँ। ...उसके शरीर और धोती की बदबू नाक भौं को सिकोड़ने के लिए काफी है।[17] लोक साहित्य के संग्रहकार्य के कठिन अनुष्ठान में कुछ सामाजिक बाधायें भी आती हैं। जैसे संग्रहकर्ता व ग्रामीणों के जीवन स्तर, भाषा संवाद, कार्य की महत्ता की उपेक्षावृत्ति के कारण भी हतोत्साहित हुआ जा सकता है।

इस संदर्भ में मिस करपैलेस कहती हैं – ``If you go to the people with any idea that you are superior person, will of course the results are poor.''[18]

एक बार किसी भेंटवार्ता में ``Four symposia on folkfore'' में पाकिस्तान के श्री जसीमुद्दीन ने कहा था– ``Sometimes it so happens that people take me for a detective or for a member of the police. They say what is this man about? What is his intention of writing down these songs? He comes as a police detective and will he doing some thing against us.'' इस प्रकार यह स्वीकार किया जा सकता है कि संग्रह–संकलन कर्ता और ग्रामीण गायक–कथानक के स्तर में अन्तर नहीं होना चाहिए। अनेक अवसर पर संग्रहकर्ता के उद्देश्यों को ही संदिग्ध मान लिया जाता है। गायक या कथाकार की मनस्थिति या उसकी व्यावसायिक वृत्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अथवा अनुकूल वातावरण का अभाव कठिनाइयाँ पैदा कर सकता है। लोक साहित्य के संग्रहकर्ता को क्षेत्रीय भाषा, आंचलिक शब्दावली, शब्दोच्चारण की ध्वन्यार्थ व्यंजना के अतिरिक्त बोध होना आवश्यक है।

5.4 संग्रह कार्य स्तर–भेद

लोक साहित्य और लोकवार्ता के संग्रह करने वाले अनुसंधाताओं का स्तर भेद भी हो सकता है। एक वर्ग उन संग्रहकर्ता का होगा जो केवल अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि के कारण इस क्षेत्र में समर्पित है, वे व्यावसायिक लेखक भी हो सकते हैं, दूसरे स्तर पर संगठित अनुसंधान कार्य भी हो सकता है जो किसी विश्वविद्यालय अथवा सांस्कृतिक–साहित्यिक संगठनों द्वारा प्रायोजित हो। इस प्रकार के शोध संग्रहपरक कार्य में विधिवत् एक–एक टोली होती है जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले लोकवार्ताविद्, नृविज्ञानी, मूर्तिकार, चित्रकार, गायक, टेपरिकार्डिंग करने वाले, शॉर्टहैण्ड लेखक, पुरातत्वविद् तथा क्षेत्रीय स्त्री–पुरुष होते हैं। अनेक सरकारी संस्थान या स्वैच्छिक संगठन भी इस प्रकार का कार्य करते हैं।

5.5 संकलन–संग्रह की प्रारम्भिक तैयारियाँ

लोकसाहित्य का संग्रह कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ तैयारियाँ अवश्य होनी चाहिए। प्रो. वाल्टर एण्डरसन का कथन है कि – "किसी भी देश में लोकवार्ता के अध्ययन की तैयारी से पूर्व सबसे अधिक अनिवार्य बात है उस क्षेत्र में अब तक जो सामग्री एकत्र की जा चुकी है, उसका चित्र स्थापन। केवल इसी विधि से हम यह जान सकते हैं कि वह भाग कौन सा है जिसमें कुछ भी काम नहीं हुआ और जिसमें अनुसंधान अपेक्षित है। "चित्र स्थापन (Mapping) की सार्थकता यही है कि इससे पता चल सकता है कि किस क्षेत्र में लोकवार्ता संकलन का कार्य हो चुका है अथवा होने की संभावना हो सकती है। अलग–अलग विधाओं के संकलन या संग्रह के लिए पृथक्–पृथक् चिन्ह अंकित किये जा सकते हैं। इसके उपरान्त पूर्ववर्ती कार्य की उपयोगिता ली जा सकती है। संग्रह कार्य के लिए नियुक्त संकलनकर्ता की अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए जिसमें संग्रहकर्ता की अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण की व्यवस्थ की जानी चाहिए जिसमें संग्रहकर्ता को प्रश्नमाला तैयार करना, क्षेत्र की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा लोकाभिव्यक्ति का परिचय, क्षेत्रीय भाषा व शब्द उच्चारण की शैली, चित्रकारी, फोटोग्राफी व ध्वन्यंकन का भी ज्ञान होना चाहिए। यदि किसी क्षेत्र में टोली को ही कार्य करना हो तो उसमें लोक संगीतज्ञ, लोक कला, लोक नृत्य, लोक गीत, पुरातत्व ज्ञाता, भाषा, पुराण, लोक वार्ताविद्, साहित्य लेखक और पत्रकार अपने लक्ष्य समर्पित भाव के साथ होने चाहिए। एक अग्रिम टोली प्रारम्भिक प्रश्नमाला लेकर इच्छित गाँव में जाकर वातावरण बनाए तभी तो उसे समाज के सभी वर्गों के स्त्री–पुरुषों का अंदरुनी सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

5.6 संग्रह कार्य प्रणाली

लोकसाहित्य के संग्रहकर्ता को जिस गाँव में कार्य करना है, उसकी भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या, प्रमुख जातियाँ, व्यवसाय गाँव की स्थापना सम्बन्धी प्रचलित कथा, लोकवार्ता का ज्ञान रखने वाले पंडित, मौलवी या अन्य पुरुष, स्त्री, लोक साहित्य की विधाएँ–लोक–गीत के अवसर, कथक्कड गायक–व्यावसायिक, शौकिया, अनुष्ठानिक, श्रम आवसरिक गायक, लोकपर्व, लोकोत्सव की तिथियाँ, जातिगत उत्सवों का विवरण, प्रमुख वैदिक, पौराणिक, लोक देवी–देवता, वृक्ष, पशुपूजा, संस्कार, देवालय, बच्चों, युवाओं, स्त्रियों के खेल, विभिन्न वस्त्र, आभूषण, शिक्षा, यातायात आदि का सूक्ष्म अध्ययन तथा संग्रह होना चाहिए। संग्रह–क्षेत्र की लोककला, टोना–टोटका, तंत्र–मंत्र, जात–पात आदि का भी अध्ययन में योगदान होना चाहिए। लोककथाओं यथा लोकचित्र लोक अनुष्ठान, लोक विश्वास, अपशकुन–शकुन आदि का भी गहन अध्ययन होना चाहिए।

5.7 संकलनकर्ता से अपेक्षाएँ

लोकसाहित्य के संग्रह और संकलनकर्ता को इस बात का बोध होना चाहिए कि वह एक अनुपम शाश्वत सांस्कृतिक अनुष्ठान कार्य कर रहा है। उसके लिए यह एक विशिष्ट चुनौती है, इसलिए उसे अपने व्यवहार में अत्यन्त ही विनम्र ही नहीं बल्कि सहनशील भी बनना होगा। उसे यह स्पष्ट समझ लेना है कि उसका कार्यक्षेत्र उन लोगों के बीच है जो प्रबुद्ध या शिक्षित हो, यह आवश्यक नहीं। वे स्वयं संग्रहकर्ता के प्रति शंकालु भी हो सकते हैं। क्योंकि संग्रहकर्ता की महत्ता व गुरुगंभीरता उनके लिए समादृत हो, यह आवश्यक नहीं है। लोकगीतों के संकलनकर्ता को स्वरों के आरोह–अवरोह लय, ताल, स्थायी अन्तरा आदि का पूरा ज्ञान होना चाहिए। लोक नाटकों का संग्रह करने वाले को रास, स्वांग, भड़ैती, भगत, नौटंकी, लीला, तमाशा, रम्मत इत्यादि का परिचय होना आवश्यक है। लोक नृत्यों में पद संचलन गति, दैहिक थिरकन, संचालन, भावमुद्रा, ताल, लय, फिरकाबी खाने के अलावा सामूहिक लोक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नृत्य में साधारण व्यक्तिपरक अथवा सामूहिक नृत्य चेतना की पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार लोक कहानियाँ हो लोकगाथा अथवा लोक धर्मगाथाएँ इन सबका इस प्रकार से कर्त्तव्यनिष्ठ होकर संग्रह करे कि उसमें उन सबकी आत्मा झंकृत हो जायें।

5.8 सारांश

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि आज की वैज्ञानिक चेतना की अतिवादी बौद्धिक चेतना से आक्रान्त मनु सन्तान 'मानव' को लोक संस्कृति की वटवृक्ष की छाया ही विश्राम दे सकती है। लोकसाहित्य और लोकवार्ता से संकलन व संरक्षण कार्य मात्र भावावेश या विशुद्ध व्यावसायिक नहीं वरन् इसे मैं तो आध्यात्मिक राष्ट्रीय महत्त्व का सांस्कृतिक यज्ञ कहता हूँ जिसके लिए शोधार्थी, शोध संस्थान, जनता जनार्दन, समाज, स्वैच्छिक संगठन, शिक्षण संस्थाएँ और स्वयं सरकार भी अपना पावन कर्त्तव्य मानें तो निर्विवाद रूप में हमें हमारी विलुप्त अतीत की प्रेरणायें और आस्थायें प्राप्त होंगी।

5.9 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न 1. लोक साहित्य के संकलन की महत्ता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2. लोक साहित्य के संकलन पद्धति पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3. लोक साहित्य के संकलनकर्ता को किन–किन बाधाओं का सामना करना पड़ता है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2

इकाई –6

लोकसाहित्य की विविध विधाएँ

संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 लोककथा
6.3 लोककथा के नियामक तत्त्व
6.3.1 लोकमानस
6.3.2 कथा–स्वरूप
6.3.3 पात्र
6.3.4 कथातंतु अथवा कथानक रूढ़ि
6.3.5 कथा मानक
6.3.6 व्यवस्थापन
6.3.7 प्रयोजन
6.3.8 वातावरण एवं अलंकरण
6.4 लोककथाओं का वर्गीकरण
6.4.1 विषयवस्तु के आधार पर
6.4.2 शिल्पगत वर्गीकरण की दृष्टि से
6.5 लोककथाओं की विशेषताएँ
6.5.1 कथक्कड़ (लोककथा में वक्ता) और श्रोता का अभिन्न तादात्म्य
6.5.2 आधारभूत मनोवृत्तियों का सरस अंकन
6.5.3 सामाजिक संबंधजन्य परिवेश चित्रण
6.5.4 आशा, भाग्य और कर्म की त्रिवेणी
6.5.5 अलौकिक घटना का संयोजन
6.5.6 भरतवाक्यसम्मत सुखान्त
6.5.7 शिल्प–सौन्दर्य
6.6 सारांश
6.7 अभ्यास प्रश्नावली

6.0 प्रस्तावना

लोक साहित्य की विविध विधाओं में लोककथाओं का विशिष्ट स्थान हैं। लोककथाएँ इस विराट् संसार में क्षीर–नवनीतवत् समाहित है। इनका जन्म विश्व की उत्पत्ति के साथ हुआ है तथा इनकी सीमायें दुनिया के विस्तार के साथ–साथ बढ़ती रही हैं। सूर्यालोक तथा चन्द्रज्योत्सना की तरह कथाओं की लोकसत्ता सर्वत्र विराजमान है। इस धरती की सांसे इन कथाओं में शब्दायमान होती हैं। इन कथाओं ने सागर की लहरों पर बैठ कर लम्बी–लम्बी यात्रायें की हैं। सभ्यता और संस्कृति ने इनके माध्यम से विश्वव्यापी प्रसार पाया है। धरती की पगडंडियों और आकाश गंगा की राहें इन कथाओं से मुखरित हुई हैं। इतिहास अपनी सुदीर्घ जिन्दगी को इन्हीं लोककथाओं से सुवासित करता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रहा है। सभ्यता इनसे शोभित तथा संस्कृति श्रीसम्पन्न होती है। इन्सानी जिन्दगी इन कथाओं को कहने–सुनने तथा स्वयं का अनुभव जोड़ने में ही व्यतीत हो जाती है।

इन लोककथाओं के लिए कुछ भी वर्जनीय अथवा त्याज्य नहीं हैं। सब कुछ ग्रहणीय है, स्वीकार्य है। आज हमारे शिक्षित, बौद्धिक, तार्किक तथा कार्य–कारण श्रृंखलाजीवी वर्ग ने भले ही ग्रामीण, कस्बाई, नगरीय, शिक्षित–अशिक्षित, गरीब–अमीर, सुन्दर–असुन्दर आदि के अनेक भेद करके स्वयं को सभ्यता के निर्माता होने का दंभ पाला है लेकिन लोककथाओं की दुनिया इस भेद के बढ़ते–घटते तापमान से सर्वर्था अछूती रही है।

6.1 उद्देश्य

यहाँ लोक–साहित्य के विभिन्न वर्गीकरणों को समझाया जा सकेगा।

6.2 लोककथा

लोककथाओं ने युग दर युग, पीढ़ी दर पीढ़ी तथा मौखिक रूप में जलवर्षा करने वाली बदली की तरह आनन्द बरसाया है और सांसारिक क्षेत्र में त्रि–ताप संतप्त जन–जन को अपूर्व शान्ति प्रदान की है।

लोककथाएँ उस विशाल और सघन वट वृक्ष की भाँति हैं जिसकी जड़ें धरती के गर्भ में और शाखाओं का विस्तार धरती पर फैला रहता है। व्यावहारिक जीवन का अच्छा–बुरा, शुभ–अशुभ, आशा–निराशा तथा हर्ष–विषाद आदि इसके भोज्य खाद–पानी हैं जिसके बल पर ये लक्ष वर्षायु कथाएँ आज भी चिर नूतन प्रतीत होती हैं। पुरातन होते हुए भी इनमें नित्य नवीनता है। यह परम्पराजीवी हैं और प्रयोगधर्मी भी होना इनका सहज संस्कारी स्वभाव है। इसीलिए लोक कथाओं की दुनिया में बासीपन, मैलापन और प्रभावक्षीणता नहीं हो सकती। इस दृष्टि से यहाँ पतझड़ी विषाद आता भी है तो बासन्ती बयार आशा–विश्वास की ऊर्जा भी देती रहती है। इनमें ऊबाऊपन, नीरसता, दुरुहता, जटिलता, क्लिष्टता न होकर हरिद्वार के घाटों में मर्यादित होकर बहने वाली गंगा की सी निर्मलता तथा पवित्रतामण्डित सरसता व सहजता है।

लोककथाओं के प्राचीनतम उद्‌गम स्त्रोत पर चिन्तन करते हुए डॉ. सत्येन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि "धर्म–गाथाओं और लोक कथाओं के अध्ययन से विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है और ये सम्भवतः उस समय की धुँधली रूपरेखा का युग था, जब कि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्यजन विभाजन से पूर्व शान्तिपूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।"[1] इस प्राचीन परम्परा की पुष्टि करते हुए डॉ. शंकरलाल यादव ने इन्हें ऋग्वेद से भी पुरातन मानते हुए लिखा है – "कहानियों की उद्‌भावना की आदि भूमि भारत को माना गया है। ये परम्परित कहानियां उस देश में घास की तरह अपने आप पैदा हुई हैं, सभी देशों की वृद्धाओं ने बाल–मनोविनोद के लिए कहानियाँ कही हैं, किन्तु साहित्यिक कहानियाँ लिखने का श्रेय भारत को है। वहाँ इस साहित्य अभिव्यक्ति की परम्परा एक सुदूर अतीत से विद्यमान है।"[2] वैदिक साहित्य में लोककथाओं से भरा पड़ा है। वेदों की एक–एक ऋचाओं में ऋषि पुनः शेप का आख्यान, अपाला, आत्रेयी के नारी चरित्र और संवाद–सूक्त में पात्रों का कथोपकथन की प्राचीन परम्पराओं के द्योतक हैं। इन्हीं कथाओं में च्यवन भार्गव तथा सुकन्या मानवी की कथा मिलती है।"[3]

लोककथाओं के जन्म की कहानी मनुष्य की जीवनयात्रा के साथ ही प्रारम्भ हुई और हजारों–हजारों वर्षों के उसके सतत् संघर्षशील पुरुषार्थ के उतार–चढ़ाव, उत्कर्ष–अपकर्ष, यश–अपशयपरक अनुभूति की सहचरी और साक्षी रहीं है। डॉ. कुन्दन उप्रेती लिखते हैं – "जो कथावस्तु तथा उसकी कलात्मक कथन–प्रणाली एक साहित्यिक सौन्दर्य प्राप्त कर लेती है, लोक कथा कही जाती है। लोक कथा विश्वव्याप्त है। इसमें लोक जीवन नाना रूपों में प्रकट होता चला आ रहा है। मानव के दुःख–सुख, रीति–रिवाज, आस्थाएँ एवं विश्वास इन लोककथाओं में अभिव्यक्ति होते रहते हैं। लोककथा मौखिक रूप में ही प्राप्त हैं।"[4] लोककथाओं के मौखिक रूप में प्राप्त होने के ही कारण इनमें देश, काल और परिस्थिति के अनुसार रूपान्तरण होता रहता है। लोककथाओं को समय के साथ–साथ चलने में कोई कष्ट नहीं होता और इसीलिए काल का कराल अकरुण चक्र भी इन्हें पीसने में असमर्थ ही सिद्ध हुआ है। सभ्यता के उषाकाल से ही मानव के हृदयसिंहासन पर बिना किसी औपचारिक राजतिलक समारोह के इन लोककथाओं का अपराजेय प्रतिष्ठापन रहा है। हमारे समाज में लोक कथायें बेताज बादशाह हैं। सारी–सारी दुनिया में इनकी बादशाहत है। मानव के सुख–दुख, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा–उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाट बनता और बदलता रहता है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव समाज का प्राचीन रसायन है।[5] लोक कथा को परिभाषित करते हुए डॉ. विद्या चौहान ने लिखा है कि – "लोकभाषा के माध्यम से सामान्य लोकजीवन में प्रचलित विश्वास, आस्था और परम्परा पर आधारित कथाएँ लोककथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के अन्तर्गत आती हैं। इससे मानव का पर्याप्त आमोद–प्रमोद होता है और आये दिन की कथाएँ लोककथा के अन्तर्गत आती है।"[6]

मनीषी विद्वान् डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि – "लोकसाहित्य के क्षेत्र में लोक कथाओं का एक विशिष्ट स्थान है कि इन कथाओं के द्वारा सर्वसाधारण जनता के मन का जितना अनुरंजना होता है, उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं होता। भारतवर्ष लोककथाओं की उत्सभूमि है। यहाँ की प्राचीन कथाओं ने समस्त संसार के कथासाहित्य को प्रभावित किया है।"

6.3 लोककथा के नियामक तत्त्व

'लोककथा' के संदर्भ में उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् अब इसके निर्माणकारी तत्वों पर चिन्तन करना आवश्यक है। लोक कहानी के निर्माण में निम्नलिखित तत्वों की अनिवार्य उपस्थिति होती है –

6.3.1 लोकमानस

लोक वाङ्मय का मूलाधार लोकमानस है। यही लोकानुभूति की आधारशिला है तथा सम्पूर्ण लोकाभिव्यक्ति का मूल स्त्रोत ही यही है। लोकमानस की आनुष्ठानिक विचारणा, आत्मशीलता, विवेकपूर्वी परिकल्पना, टोनावादी आस्था तथा तर्केतर सहजता से लोककथा अन्य कहानियों से उनका पार्थक्य सिद्ध करती है। लोकमानस की लोकमानसिकता (Folk Mental element) का सृजन करता है और इसी कारण उत्सुकता, भय, पराप्राकृतिक शक्तियाँ, देवी अथवा आसुरी आत्माओं का अस्तित्व लोककथा को प्रभावशाली व सरस बना देता है।

6.3.2 कथा–स्वरूप

लोक कथा का अपना एक अलग रूप होता है। लोक कहानी का प्रारम्भ तो जिज्ञासामूलक होता ही है, लेकिन उसकी आगे बढ़ने की शैली अलग–अलग होती है। कहानी का एक रूप ऐसा होता है जिसमें एक आरम्भिक कथा के प्रारम्भ होने तथा बाद में कुछ व्यक्तियों द्वारा अपनी कहानी जोड़ दी जाती है इसे 'स्तबक कहानी' का रूप कह सकते हैं। लोक कहानी के अध्ययन में कथा रूप ;ज्मसम.वितउद्ध का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। कथारूपों के विभिन्न स्वरूपों में कभी कोई कहानी ऐसी भी होती है जिसमें एक कहानी के प्रारम्भ होने के पश्चात् कुछ दूर चलकर उसमें दूसरी, फिर तीसरी और क्रमशः चौथी कहानी निकलती है व अग्रसर होती रहती है। इनमें एक श्रृंखला सी बनी हुई होती है। इसे 'श्रृंखलित कहानी' कहा जा सकता है। लोककथा का एक रूप आस्ट्रेलिया की आदिम जातियों द्वारा प्रयुक्त 'बूमेरंग' जैसी हथियारशैली का होता हैं बूमेरंग की विशेषता यह होती है कि वह अपने लक्ष्य पर प्रहार करके प्रयुक्तकर्त्ता के पास लौअ आता है। ठीक इसी प्रकार कुछ लोक कहानियों के प्रारम्भिक कहानियों में कोई एक ऐसा तत्व होता है जिसमें कहानी लौटकर पुनः एक नयी कहानी को प्रारम्भ करती है। जैसे सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी या चौबोली रानी की कहानी। किसी कहानी में कोई प्रमुख पात्र हर बार कोई नई कहानी बनाता हुआ चलता है। इसे हम "यात्रा" शैली की कहानी कह सकते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक कथा रूप में अनेक सरल कहानियों का समायोजन हो सकता है।

6.3.3 पात्र (Personages)

लोक कहानी के पात्रों की सबसे बड़ी विशेष्ता यह होती है कि विभिन्न युगों तथा क्षेत्रों के अनुसार स्थान और पात्र भी सहज रूप में बदल जाते हैं। लोक कहानियाँ के पात्र स्थानीय आवश्यकता को अनायास ही पूर्ण करते हैं। इनका अध्ययन करने से लोक कहानी का "मानक रूप" भी सहज में प्राप्त हो सकता है।

6.3.4 कथातंतु अथवा कथानक रुढ़ि

लोक कहानी के निर्माणकारी तन्तुओं में कथा तंतु का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हें 'अभिप्राय' भी कहा जाता है। किसी लोक कहानी में कहानी तत्व में क्रिया–प्रतिक्रिया मूलक घटना 'विशिष्ट' रूप से योजित की जाती है, उसे 'अभिप्राय' (Motif) कहा जाता है। इस संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "वृत्ताविषयक कथातंतु (Motif) कभी–कभी बहुत भाव–चित्र (Concept) ही होते हैं, जो परम्परा से प्राप्त कहानियों में लगातार काम में आते हैं। ये अद्भुत प्राणी हो सकते हैं यथा परियाँ, जादूगरनियाँ, सूर्य, दान, क्रूर विमाता, बोलते पशु–पक्षी आदि। दैवी लोक, जादू प्रधान देश, जादू के पदार्थ तथा असाधारण शारीरिक व्यापारादि भी इसमें सम्मिलित होते हैं। कभी–कभी कोई सरल कहानी भी कथातंतु हो सकती है, इसी प्रकार कोई आकर्षक घटना भी।"8

6.3.5 कथा मानक (Tele-Type)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोक कथाओं की सृजन भूमि में कथा मानकों का विशिष्ट स्थान होता है। इस विशिष्ट स्थान को अध्ययन का विषय बनाने में फिनलैण्ड के प्रसिद्ध लोकवार्ताविद् कार्ल क्रोहन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्होंने विश्वभर की लोकवार्ताओं के संकलन की आवश्यकता पर बल देते हुए उनके तुलनात्मक अध्ययन का दिशा–निर्देश दिया है। उनकी यह मान्यता रही है कि इन समस्त लोक कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन से एक सरलीकृत "कथामानक" स्थापित किया जा सकता है। इस 'कथामानक' से ही विभिन्न देशों की लोक कहानियों के निर्माणकारी तंतुओं की विवेचना की जा सकती है। 'मानक' रूप निर्धारण से कथाओं के साम्य और वैषम्य का भी पता चलता है और कहानी के विविध रूपों के निर्माण में स्थान और काल के प्रभावों का अध्ययन भी किया जा सकता है।

6.3.6 व्यवस्थापन

लोककथा में विविध तत्वों के व्यवस्थापन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यवस्थापन एक इस प्रकार की संघटना है जो कथा के प्रारम्भ तथा समापन, विविध कथाएँ (Motifs) कथामानकों ;ज्मसम.ज्लचमद्ध, कथारूपों, पात्रों की रचना तथा उपयोग दृष्टि आदि का विशिष्ट चिन्तन करती है।

6.3.7 प्रयोजन

प्रत्येक लोक कहानी का प्रयोजन तो होता ही है। यह भी सत्य है कि कोइ भी लोककथा जब सृजित होती है तब उसकी उपादेयता का प्रयोजनीयता का अपना एक आधार भी होता है। वह आयु, वर्ग, देशकाल, पात्र या घटना केन्द्रित होते हुए भी किसी न किसी प्रयोजन से अवश्य ही जुड़ी होती है। कोई भी काव्य या कथा–निष्प्रयोजन तो हो ही नहीं सकता और फिर लोक का मूल उद्देश्य ही लोकानुरंजन तथा लोक कल्याणकारी होता है।

6.3.8 वातावरण एवम् अलंकरण

लोक कहानी के निर्माण में जहाँ एक ओर वातावरण की प्रमुख भूमिका रहती है, वहीं दूसरी ओर कहानी के प्रमुख पात्रों, घटनाओं तथा उद्गारों का मौलिक तथा महत्वपूर्ण स्थान होता है। लोक कहानी में 'आभिजात्य' संस्कारों के स्थान पर लोकांचल तथा लोकगृहीत अलंकारों का उल्लेख मनमोहक होता है। इन्हीं दो तत्वों के बल पर लोक कहानी आभिजात्य कथासाहित्य से अपना मौलिक पार्थक्य सिद्ध करती है। इन्हीं से लोककथा की मौलिक आभा भी विकीर्ण होती है। लोक कहानी को अपनी निजीपन मूलक वातावरण की सृष्टि तथा श्रृंगार प्रसाधन चेतना की विशिष्ट छवि है। जहाँ तक लोककथाओं में अलंकरण की स्थिति है, वहाँ तक तो स्थानीयता का सहज व सरल संस्कार दोनों ही रूपों में साथ निभाया जाता है। इस प्रकार की लोक कहानियों के निर्माण में इन तत्वों के आधार पर सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

6.4 लोककथाओं का वर्गीकरण

जनमनरंजक, उद्बोधक एवं प्रेरक लोककथाओं का विषय फलक इतना विस्तृत तथा व्यापक है कि उसे वर्गीकरण की स्थूल रेखाओं में समेटना असंभव तो नहीं किन्तु दुःसाध्य अवश्य है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से लोकवार्ताविदों ने लोककथाओं के वर्गीकरण का प्रयत्न किया है। सुप्रसिद्ध लोकवार्ताविद् सर जार्ज गोमे ने सम्पूर्ण लोककथाओं की चार श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। 1. लोककथा (Folk tales), 2. वीरगाथा (Hero tales), 3. वीरगाथात्मक गीति काव्य (Ballads), 4. स्थान विशेषपरक अनुश्रुति (Place legends) । इसी प्रकार एण्टी आर्ने ने 1. पशु–पक्षी परक कथा (Animal tales), 2. लोक कथा (Folk tales) तथा 3. परिहास कथा एवं चुटकुले (Jokes and anecdotes) नामक तीन प्रकार प्रस्तुत किये हैं जबकि समग्र रूप से इन्होंने पच्चीस सौ कथा श्रेणियाँ बनाई हैं।[9] लोकसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् स्टिथ् थामसन ने सम्पूर्ण उपलब्ध लोककथाओं को पाँच वर्गों में विभक्त किया है जिससे उनका गहन अध्ययन किया जा सके। यह वर्गीकरण निम्नलिखित है –1. परम्परागत कथाएँ – जिनमें संसार के बनने, परियों, भूत–प्रेतादि, बौने, अतिमानवीय पात्र या इतिहास की झलक देने वाली कहानियों की गणना होती है। 2. परी कथा – जिसमें परियों से संबंधित विशुद्ध कल्पना आश्रित कहानियों का अध्ययन किया जाता है। 3. पशु–पक्षी परक कथाओं में मानवोचित व्यवहार करने वाली पशु–पक्षियों की कथाएँ आती है। 4. नीति कथायें नैतिक आचरण तथा व्यवहार का निर्देश करती हैं। 5. पुराण कथाएँ–यद्यपि वर्गीकरण के इस शीर्षक को स्वीकारने में मतभेद हैं। यूरोप में प्रचलित लोक कथाओं का वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। 1. लोक कथा (मारवे), 2. वीरगाथा (सागेन), 3. गाथाएँ (लीजेण्ड्स), 4. परम्परागत कथाएँ (ट्रेडिशनल), 5. नीतिकथाएँ (फेबल्स), 6. पशुपक्षी परक कथाएँ तथा 7. पौराणिक कथाएँ (मिथ्स) आदि। यह वर्गीकरण थॉमसन ने यूरोपीय समाज को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया था।[10]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लोककथाओं के वर्गीकरण में कथाकार के उद्देश्यों को आधार बना कर देखा जाय तो कथाओं का एक रूप मनोरंजन अथवा मनबहलाव, दूसरा रूप उपदेशात्मक व्याख्यात्मक तथा तीसरा वाणी विलास प्रधान मूलत हो सकता है। विषय वस्तु की दृष्टि से दो आधार उद्देश्य तथा स्वभावपरक भी लोककथाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। 'स्वभाव' का तात्पर्य है – लोक कथाओं का लौकिक अथवा अलौकिक होना। कुछ कहानियाँ विशुद्ध धार्मिक हो सकती हैं, उनका प्रयोजन भी धर्म साधना हो सकता है जबकि कुछ कहानियों में धर्म का आधार हो सकता है लेकिन पात्र भी धार्मिक हो, यह आवश्यक नहीं हैं। डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – साधारण स्थूल दृष्टि से कहानियों को हम आठ बड़े भागों में बाँटते हैं : 1. गाथाएँ, 2. पशु–पक्षी संबंधी अथवा पंचतन्त्रीय, 3. बुझौवल सम्बन्धी, 4. विक्रम (Adventures) की कहानियाँ, 5. बुझौवल सम्बन्धी, 6. निरीक्षण गर्भित कहानियाँ 7. साधु–पीरों की कहानियाँ (Heageollgical) और 8. कारण–निर्देशक कहानियाँ (Aeteoligical) तथा 9. बाल कहानियाँ। गाथाओं के अन्तर्गत वे सभी कहानियाँ आ जाती हैं जो धर्मगाथा (Myth) लोकगाथा (Ballad) पंवाड़ा या वीरगाथा (Heroicales) कही जाती है। इस वर्गीकरण की परम्परा में दो अन्य रूप भी हैं। जैसे – पशु–पक्षियों की तथा पंचतन्त्रीय। ये दो प्रकार होती हैं – एक साभिप्राय, जिनसे कोई न कोई शिक्षा निकलती है, दूसरी वे जिनसे कोई शिक्षा नहीं निकलती। परी की कहानियों के कई वर्ग हो सकते हैं एक वे जो यथार्थ में परियों से, अप्सराओं से, दिव्य कन्याओं, विद्याधरियों से सम्बन्धित है। जैसे "वेजानगर" की कहानी। वेजानगर की रानी एक अप्सरा थी जिसे तँबोली के लड़के ने बड़े उद्योग से प्राप्त किया था। दूसरी वे जिनमें दाने (दानव) रहते हैं। तीसरी वे जिनमें डाइनें आती हैं। जादू और चमत्कारों की कहानियाँ भी इसी के अन्तर्गत होगी। विक्रम या पराक्रम की कहानी में किसी वीरनायक का चरित्र दिखाया जाता है। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैं : एक इतिहास–पुरुषाश्रित (अवदान), दूसरा अनैतिहासिक पुरुषाश्रित। ऐतिहासिक पुरुषाश्रित कहानियों में किसी भी राजा के लड़के या अन्य व्यक्ति के पराक्रम की कहानी आ सकती है। बुझौवल–कहानियाँ भी दो प्रकार प्रकार की होती हैं। एक तो वे जिनमें कुछ समस्याओं अथवा नीति की बातों को सुलझाने तथा परीक्षण करने का उद्योग होता है। दूसरी वे जिनमें समस्याएँ या पहेलियाँ शर्त के रूप में आती है, जिन्हें हल कर देने पर अभीप्सित वस्तु मिल जाती है। निरीक्षण–कहानियों में किसी के स्वभाव, धर्म आदि के सम्बन्ध में जो ज्ञान हुआ है, वह रहता है। ये कहानियाँ ही प्रायः चुटकलों का रूप ग्रहण कर लेती हैं। विविध जातियों से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ भी इसी के अन्तर्गत आयेंगी। साधु–पीरों की कहानियों में पहुँचे हुए साधुओं, सिद्धों तथा पीरों की कहानियाँ होती हैं। इनमें साधु–पीरों के द्वारा संकट–निवारण करने अथवा पुत्र–धन आदि प्रदान करने के चमत्कारों का उल्लेख रहता है। कारण–निर्देशक कहानियाँ वे हैं जिनमें किसी व्यापार का कारण प्रकट किया जाता है। इन कहानियों के अतिरिक्त एक और वर्ग भी कहानियों का है जिन्हें हम बाल कहानियाँ कह सकते हैं। ये कहानियाँ उपर्युक्त वर्ग से भिन्न प्रकार की होती हैं। उपरोक्त वर्ग की सभी कहानियों की भूमि के आधार पर हम मनुष्य को तीन वृत्तियों में बाँट सकते हैं। (1) विश्वासप्रतिपादक वृत्ति (2) आश्चर्यउद्दीपक वृत्ति (3) समाधानकारक वृत्ति। ये तीनों वृत्तियाँ विकसित अवस्था में ही विशेष प्रतिफलित होती हैं किन्तु अबोध बाल–मानस की वृत्तियाँ, इन वृत्तियों को सन्तुष्ट करने वाली कहानियों को सह नहीं सकतीं। उनका अपना छोटा संसार, वे उसी से घनिष्ठ परिचय रखना चाहते हैं, और उसी जगत की वस्तुओं से साहचर्य और जीवन सम्पर्क तथा रस प्राप्त करना चाहते हैं। बाल मनोवृत्ति की कहानियों में संक्षिप्त कथानक, परिचित पदार्थ, उनकी दुहरावट, उनके स्वभाव का चित्रण और कल्पनातिरेक कौतुहल आदि बातें मिलेंगी। इन कहानियों नें संगीतात्मकता (Rhythme) (संगीत नहीं) का पुट विशेष रहता है।11 इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोककथाओं का मानवीय, जातीय, बौद्धिक चेतना, स्वभावगत, पराक्रम, अति प्राकृतिक विशिष्ट वर्गीय पात्र तथा अवस्थाभेद के अनुसार वर्गीकरण किया जा सकता है। बालकों की कहानियों को भी हम विश्वास, समाधानपरक श्रेणी में विभाजित कर सकते हैं। कहानियों के वस्तु–स्वभाव की दृष्टि से तीन भागों में विभाजन किया जा सकता है। (1) गाथाएँ (Myths) (2) वीरगाथाएँ (Legends) तथा (3) कहानियाँ (Stories)।

बंगला लोककथाओं के अध्ययन के आधार पर डॉ. दिनेशचन्द्र ने लोककथाओं का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। (1) रूपकथा (Supermatural tales) (2) हास्य कथा (Humouros tales) (3) व्रत कथा (Religious tales) (4) गीत कथा (Nurserytales) रूप कथाओं में अमानवीय, अप्राकृतिक, असाधारण, अद्भुत दैवी या आसुरी पात्रों की कहानियाँ होती हैं। हास्य कथाओं में जीवन, जाति और समाज की विसंगतियों का मनोरंजनमूलक चित्रण होता है। हास्य कथाओं का प्रसार बाल, युवा, बृद्धादि समाज में समान रूप से होता है। इनमें हास्य के साथ–साथ यदा–कदा व्यंग्य का भी सम्पुट होता है। व्रत कथाओं में किसी पर्व या त्यौहार विशेष के दिन किसी देवी या देवता की पूजा ओर उससे फल प्राप्ति की भावना होती है। इन्हें अंग्रेजी में Crakle tales या Nursery tales कहा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोककथाओं का क्षेत्र उतना ही व्यापक और विस्तृत है जितना मानव जगत का कर्मक्षेत्र और संसार। जीवन और समाज का कोई भी पक्ष अथवा सत्यासत्य लोक कथा की विवेकी दृष्टि से अदृश्य नहीं होता। मेरी दृष्टि में लोक कथाओं के वर्गीकरण के सन्दर्भ में एक आधार यह भी हो सकता है। लोककथाओं के वर्गीकरण को हम दो दृष्टियों से प्रस्तुत कर सकते हैं – विषयवस्तु तथा 2. शिल्पसौष्ठव के आधार पर।

6.4.1 विषयवस्तु के आधार पर

उस दृष्टि से निम्न प्रकार से लोककथाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है –

1. धार्मिक तथा उपदेशात्मक कथाएँ – जिसके अन्तर्गत पौराणिक चरित्रों से सम्बन्धित कथाएँ, विभिन्न व्रत कथाएँ, नीति कथाएँ, आनुष्ठानिक कथाएँ, भाग्य तथा नियतिवादी कथाएँ तथा वरदान–अभिशाप मूलत कथाओं की गणना की जा सकती है।

2. सामाजिक विषय प्रधान कथाओं के अन्तर्गत पति–पत्नी, विमाता, भाई–बहन, विभिन्न जातीय चरित्र निरूपक उच्चवर्ग एवम् निर्धन वर्ग सम्बन्धी कथाओं को लिया जा सकता है।

3. प्रकृति और पर्यावरण सम्बन्धी कहानियाँ जिसमें पशु–पक्षी, जलचर, जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, धरती, नदी पहाड़, वायु, सूर्य, अग्नि, बादल से संबद्ध विषयों की चर्चा हो सकती है।

4. वर्गीय कहानियों में राजकुल व सामन्त वर्ग, सेवक–स्वामी, आदर्श मित्र, किसान–मजदूर, श्रमजीवी, व्यापारी, चतुर महाजन, प्रेमी युगल, चोर, डाकू–लूटेरे आदि से सम्बन्धित कहानियाँ अध्ययन का विषय बन सकती हैं।

5. मनोरंजनात्मक कहानियों में कौतूहलवर्द्धक, चुटकुले, जादू–टोना, परियाँ, राक्षस, असुर, चुडैल, समस्यापरक, प्रश्नोत्तरी, कहावतें आदि को लिया जा सकता है।

6. अवस्था भेद के अन्तर्गत बालक–बालिका, तरुण–तरुणियाँ, वृद्ध–वृद्धाओं की कहानियों को अध्ययन का आधार बनाया जा सकता है।

6.4.2 शिल्पगत वर्गीकरण की दृष्टि से लोक कथाओं को हम 1. लघु कथा 2. दीर्घाकार 3. श्रृंखलाबद्ध 4. पुनरावर्तनी 5. प्रतीकात्मक 6. एक पात्रीय तथा 7. बहुपात्रीय आदि भागों में विभक्त कर सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन अध्ययन की सुविधा को रखकर किया गया है जिसे हम इस चित्र के अनुसार समझ सकते हैं।

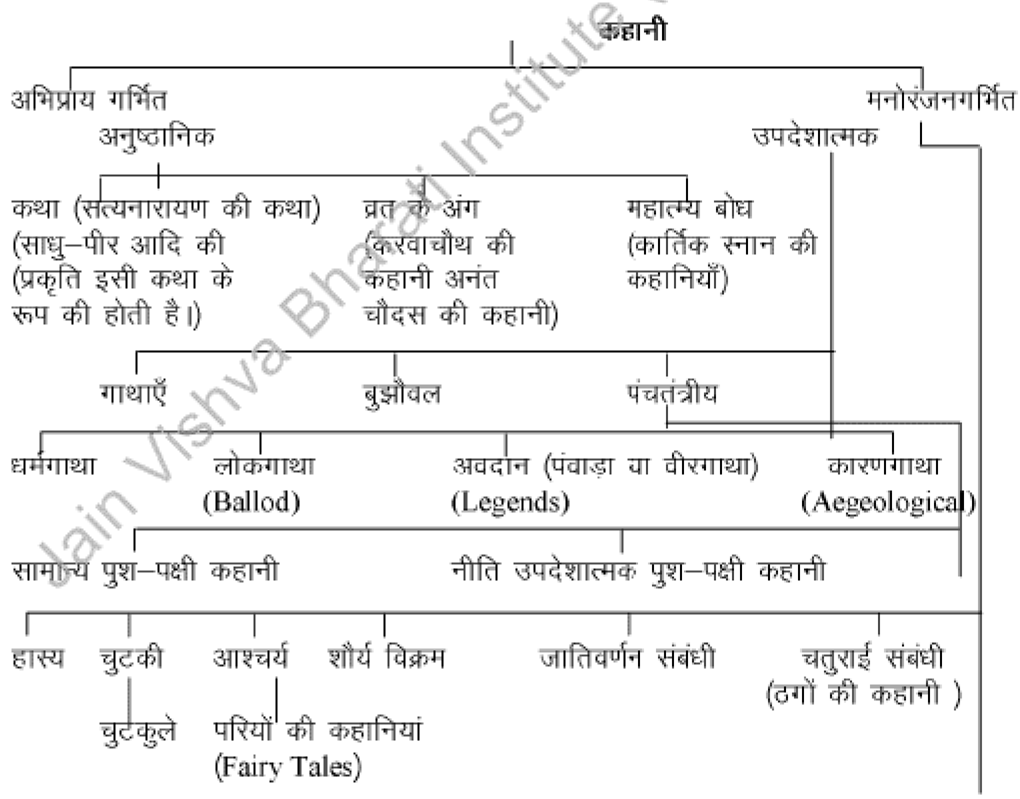

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लोककथा

1. उपदेशकथा 2. व्रतकथा 3. प्रेमकथा 4. मनोरंजन कथा 5. सामाजिक 6. पौराजिक कथा

लोककथाओं का कथ्य और शिल्प की दृष्टि से निम्नलिखित रूप से भी वर्गीकरण किया जा सकता है –

(i) लोक कहानी (विषयवस्तु का वर्गीकरण)

1. धार्मिक तथा उपदेशात्क	2. सामाजिक	3. प्रकृति व पर्यावरण	4. वर्गीय कहानियाँ	5. मनोरंजनात्मक	6. अवस्था भेद
1. पौराणिक चरित्र परक	1.पति–पत्नि	1. पशु–पक्षी	1. सामान्य वर्ग	1. कौतुहल–वर्द्धक	1. बालक–बालिका
2. व्रत–	2. विमाता	2. जीव–जन्तु	2. श्रम जीवी	2. चुटकले	2. तरुण–तरुणियाँ तीर्थादिपरक
3. नीतिपरक	3. भाई–बहिन	3. पेड़–पौधे	3. व्यावसायिक	3. जादू–टोना	3. वृद्ध वृद्धाएँ
4. आनुष्ठानिक	4. जातिय चरित्र	4. धरती–नदी पहाड़, सूर्य अग्नि, वर्षा बादल आदि।	4. चोर–डाकू लूटेरे	4. परियाँ–अप्सरा	
5. भाग्य व नियतिमूलक	5. वर्गभेद (अमीर–गरीब)	5. चतुर–महाजन		5. राक्षस–असुर चुडैल	
6. वरदान अभीशाप मूलक	6. गुरु–शिष्य	6. भोला किसान		6. समस्यामूलक प्रश्नोत्तरी	
7. प्रेमी–प्रेमिका					

लोक कहानी का शिल्पगत वर्गीकरणः शिल्पगत वैशिष्ट्य

लघु आकार   दीर्घाकार   श्रृंखलाबद्ध   पुनरावर्तनी   एक पात्रीय   बहुपात्रीय

6.5 लोककथाओं की विशेषताएं

लोककथाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक जीवन की अत्यन्त ही सुन्दर व कलात्मक अभिव्यंजना का अकृत्रिम सौन्दर्य देखने को मिलता है। यह ग्रामीण संस्कृति का वृहद् कथात्मक कोष है। "अचल" का समग्र वैशिष्ट्य ही लोक कथाओं की पहचान है। लोक कहानियों की विशेषताओं को समेटना शब्दों में जीवन को समेटना ही है। इन कथाओं की कुछ आधारभूत विशेषताएँ निम्नलिखित है –

6.5.1 कथक्कड़ (लोककथा में वक्ता) और श्रोता का अभिन्न तादात्म्य

लोककथा की सबसे पहली प्राणवान विशेषता है – 'कथक्कड़' और श्रोतावृंद का अभूतपूर्व तादात्म्य का होना। जब लोककथा कहने वाला कथा प्रारम्भ करता है तो उसकी अनिवार्य शर्त यह होती है कि सुनने वाले को समयानुसार बीच–बीच में 'हूँ' 'हाँ', अच्छा, 'ऐसा', 'हे राम', 'अब क्या होगा' जैसे स्वीकृतिसूचक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। यद्यपि इनका प्रयोग स्वैच्छिक तथा सहज ही में हो जाता है, प्रयत्नज नहीं होता। संगीत में जो स्थान लय और ताल का होता है वही स्थान लाककथाओं के वाचन और कथन में इन 'स्वीकृतिसूचक' शब्दों का होता है। राजस्थानी भाषा में इन्हें 'हुंकारा' कहा जाता है और यहाँ तक कहा गया है कि "जीवों बात कैंवणिया, अर जीवों हुकारा देवणिया।' तथा 'फौज में नगाड़ो अर बात में हुकारो' लोक कथाओं में वक्ता, श्रोता तथा हुकारा का त्रियोग होता है।

6.5.2 आधारभूत मनोवृत्तियों का सरस अंकन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लोककथाओं के विराट फलक पर मनुष्य की आधारभूत मनोवृत्तियों की सुन्दर, स्वाभाविक तथा प्रभावशाली अभिव्यंजना सहज ही में अंकित होती है। श्रृंगार (प्रेम), भय, विस्मय, आशा, निराशा, काम–क्रोध, उत्साह, वैराग्य, सुख–दुःख इत्यादि का हृदयस्पर्शी चित्रण होता है। सत्यनिष्ठ नायक, अपूर्व सौन्दर्यमूर्ति नायिका, भयोत्पादक राक्षस, शांति–सुखदायक साधु, विस्मयबोधक प्राकृतिक स्थल या नगर, आशाजनक वरदान, बाधाओं अथवा विघ्नों की अनुभूत निराशा, शत्रु से संघर्ष का उत्साह तथा "सर्वजन सुखाय" का भरत वाक्य और उससे अनुभूत शुभ भावनायें इन लोक कथाओं की पावनस्थली में मंगलमयी सरिता की तरह बहती रहती हैं। जन–जीवन इन आधारभूत मनोवृत्तियों से ही प्रेरित होकर संचालित होता है। इन लोककथाओं में श्रृंगार भी संयमित है। प्रेम है किन्तु उच्छृंखल वासना नहीं मिलेगी। इन कथाओं में दाम्पत्य जीवन की रमणीयता, विमाता की ईर्ष्या तथा वात्सल्य का अमृत भी प्रवाहित होता मिल जायेगा।

6.5.3 सामाजिक संबंधजन्य परिवेश चित्रण

लोकथाओं की दुनियाँ में सामाजिक सम्बन्धों का अत्यन्त ही मनमोहक व सजीव चित्रण मिलता है। यहाँ पति–पत्नी का हास–परिहास, माँ की ममता, विमाता की क्रूरता, भाइयों का बहन के प्रति निश्छल प्रेम, भाभी की ननद के प्रति ईर्ष्या, कृतघ्न सन्तान, दुष्ट मंत्री, प्रजावत्सल सम्राट, स्वामी भक्त एवं सर्वस्व त्यागी सेवक, मूर्ख पति की बुद्धिमती पत्नी, विवेकी मित्र, भयानक अभीष्ट हैं। प्रत्येक जाति की अपनी निजता ही अनेकानेक लोकोक्तियों की जनक बन जाती है।

6.5.5 आशा, भाग्य और कर्म की त्रिवेणी

लोककथाओं की सृष्टि में मानव के पुरुषार्थ के नूल में आशा, भाग्य और कर्म की तीन धारायें एक साथ प्रवाहित होती हैं। लोक कथाओं के नायकों के जीवन में नैराश्य नहीं है और न ही अपने उत्तरदायित्वों की सघनता से पलायनवादी भावना भी नहीं है। वे सतत उत्साही, उद्यमी, पुरुषार्थी व अथक कर्मवीर हैं। इसीलिए अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सघन वन, दहकते मरुकान्तार, उफनती सरिताएँ, उत्तंग पर्वत शिखर, आग से धधकते दरिया, कठोर चट्टान अट्टहास करते राक्षसों को भी हँसते–हँसते चुनौतियाँ देते नजर आते हैं तभी तो मैक्सिस गोर्की ने ठीक ही लिखा है – "लोककथाओं में इस बात को समझ लेना जरूरी है कि उनमें निराशावाद का नाम तक नहीं है। यद्यपि लोककथाओं के रचयिता बहुत ही कठिन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करते थे, उनके कठिन और कमर तोड़ देने वाले परिश्रम को शोषण विफल बना देता था और उनका व्यक्तिगत जीवन भी सुरक्षित नहीं था, क्योंकि उन पर कोई भी अत्याचार किया जा सकता था, फिर भी पूरे समुदाय को अपने अमरत्व और अपने शत्रुओं पर भावी विजय का विश्वास था।"

लोककथाओं की दुनिया नियतिवाद में विश्वास रखती है। उनके पात्र भाग्यवादी होते हैं। इसीलिए वे कार्य–कारण की श्रृंखला में संयोग और नियति की सत्ता की स्वीकारते हैं। इसीलिए मनुष्य को वे भाग्य के हाथों का खिलौना मानते हैं। इतना होते हुए भी लोककथाओं में पुरुषार्थ और भाग्य जब एक साथ सक्रिस होते हैं तो रेत भी सोना और कोयला हीरा बन जाता है।

6.5.6 अलौकिक घटना का संयोजन

लोककथाओं की विचित्र और विशिष्ट दुनिया में अलौकिक घटनाओं, अलौकिक स्थानों व अलौकिक सूत्रधारों की भी संयोजना रहती है। यहाँ कुछ भी असंभव नहीं है। सब संभाव्य है। यहाँ पल में अणु तो पल में महतोमहीयानी रूप धारक हैं, अभिमंत्रित जल सजीव को पत्थर बना देती है। उड़ने वाला घोड़ा हो या परी की जादुई छड़ी, अलादीन का चिराग हो या तिलस्मी गुफा, अदृश्य बनाने वाली गोली हो चमत्कारी अंगुठी जिनके कारण एक क्षण में प्रकट अप्रकट तो अप्रकट प्रकट हो सकता है। लोककथाओं में घटनाओं का संयोजन ऐसे सूत्रधारों के द्वारा होता हैं जिनमें पांडित्य की चेतना का अभिमान, शास्त्रीय ज्ञान क अहंकार, बौद्धकता का अहम् नहीं बल्कि परम्पराजीवी व सनातन आस्थापूर्ण होने का सहज संस्कार विद्यमान होता हैं।

6.5.7 भरतवाक्यसम्मत सुखान्त

समस्त लोककथाओं का समापन सुखान्त भूमि पर होता है। लोक का नायक चाहे राजकुमार हो या गरीब या राक्षस अथवा जादूगर के आतंक से पीड़ित नगरवासी, नरभक्षी असुर, दुष्ट व अत्याचारी मंत्री से संतप्त जनता, किसी शाप से ग्रस्त गाँववासी, किसी ऋषि के कोप से निःसंतान या पति सुख वंचित या पत्नी या वेश्यागामी पति से पीड़ित परिवार – सभी अन्ततोगत्वा किसी वरदान, आशीर्वाद, तपस्या, त्याग, पराक्रम और सहयोग से सुखी, प्रसन्न और आनन्दमय हो जाते हैं और लोक कथा का 'कथक्कड़' भी "हे रामजी! जैसे इनके दिन फिरे वैसे सबके ही फिरे" यह कह कर कथा समाप्त करता है। लोककथा का समापन ऐसे ही भरत वाक्यों के साथ होता है और इसी सुखान्तवादी दर्शन से श्रोतामण्डली भी मन में अपूर्व विश्वास के साथ अपने–अपने घरों की ओर प्रस्थान करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.5.8 शिल्प–सौन्दर्य

लोककथाओं का शिल्प संगठन भी विलक्षण होता है। यह किसी संस्कृत काव्यशास्त्र के रचित लक्षण ग्रंथों से नियमों की अपेक्षा नहीं करता, बल्कि सहज भाव से भावाभिव्यक्ति करता हुआ ग्रसर होता है। इसीलिए लोककथा की विषयवस्तु को उसकी कथन या प्रस्तुत करने की शैली सजीव बना देती है। लोक कथा का तंत्र 'कथक्कड़' पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण कथा का धार्मिक–सांस्कृतिक परिवेश कथक्कड के हाथों में पड़ कर बदल सकता है। कथक्कड़ अपने वाक्चातुर्य से एक ही कथा को शैव मत, जातक रूप, वैदिक दृष्टान्त से प्रारम्भ करके उसे लोक देवी–देवता के रंग में रंग सकते हैं। लोककथा में जा फूंकने वाला कथक्कड़ ही होता है। सोवियत रूस से लोककथाओं के प्रभाव में कथक्कड़ों की भूमिका पर गंभीर शोध हुआ है। लोककथा को संप्रेषणीय बनाने में कथक्कड़ की अपनी मानसिकता, उसकी आस्थाएँ, भावनाएँ ही नहीं बल्कि उसका चरित्र आचरण तथा भाव भंगिमायें ली हैं। 'गुरु–शिष्य की कथा' और उसमें दोनों का अन्त में संघर्ष उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि में कथक्कड़ अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत करता है। इस विषय में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – लोककथा का शैली तत्व निर्भर करता है कथक्कड़ के मानसिक स्तर पर, तब कथक्कड़ का मानसिक धरातल निर्भर करता है और संस्कृति के ऊपर। जिस प्रदेश का वह निवासी है, जिस सभ्यता और संस्कृति की परम्परा में वह पला है, वह उसके द्वारा कथित लोककथा में प्रतिबिम्बित होगी ही। साहित्य समाज का दर्पण है उतना ही सत्य सिद्ध होता है लोक कथा के क्षेत्र में जितना कि अन्य किसी क्षेत्र में।[12]

लोककथाओं की शिल्प संरचना में भाषायी योजना की महत्ती भूमिका रहती है। आंचलिक शब्दों की छटा, स्थानीय रंग मण्डित चित्रोपम शब्दावली, प्रतीक योजना, शब्दों की संगीतात्मकता, स्वरों का आरोह–अवरोह, गद्य के साथ–साथ ध्वन्यात्मक पद्य प्रयोग तथा मुहावरों या लोकोक्तियों का स्वच्छंद प्रयोग मन मोहक होता है। श्रोता मण्डली ऐसी सम्मोहित होती है कि कथा सुनते–सुनते कब आधी से भी ज्यादा रात बीत जाती है, पता ही नहीं चलता। इन शब्दों के अपूर्व प्रभावों के कारण की कथाएँ कई रातों तक चलती रहती हैं।

लोककथाओं में पात्रों की अनेक श्रेणियाँ होती हैं। उनमें दैवी पात्र, मानव, पशु–पक्षी, जड़ पदार्थ, हवा, सूर्य चन्द्रमा, पानी, नदी, पर्वत, राह में पड़ा कंकड़ हो या विशाल महोदधि – सभी अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते दिखलाई देते हैं। यहाँ नदियाँ गाती हैं, सागर गर्जते हैं, कलियाँ खिलखिलाती हैं, पहाड़–चट्टानें अट्टहास करते हैं, आसमान रोने लगता है, कांटे सुबकते हैं व प्रकृति गीत गाती है।

लोककथाओं का सर्वाधिक वैशिष्ट्य उसका "स्थानीय" होना है। एक ही लोककथा भारत में अलग रूप रखती है तो यूरोप में वही कथा दूसरा बाना धारण कर लेती है तो अरब में अन्य रूप धारण कर लेती है। प्रत्येक प्रदेश तथा देश ही नहीं, प्रत्येक गाँवों तक ही नहीं बल्कि प्रत्येक समाज स्तर पर लोक कथा नित्य नूतन रूप धारण करके प्रस्तुत होती है।

6.6 सारांश

लोककथाएँ अपने प्रयोजन में सुखान्त होती है। असत्य पर सत्य, अधर्म पर धर्म, अनीति पर नीति, पाप पर पुण्य, क्रोध पर क्षमा, क्रूरता पर करुणा की विजय श्रोताओं में उच्चतर जीवन मूल्यों के प्रति आस्था पुष्ट करती है तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की उर्जा का संचार भी करती है।

6.7 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न 1. लोक कथा किसे कहते है ?

प्रश्न 2. लोक कथा के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3. लोक कथाओं का वर्गीकरण कीजिए।

प्रश्न 4. लोक कथाओं का महत्त्व स्थापित कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 अ : लोकगीत

संरचना

6अ.0 प्रस्तावना
6अ.1 उद्देश्य
6अ.2 लोकगीत
6अ.3 लोकगीत और अभिजात्य गीत
6अ.4 लोकगीतों का वर्गीकरण
6अ.5 क्षेत्रीय आधार
6अ.6 लोकगीतों का वैशिष्ट्य
6अ.7 सारांश
6अ.8 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6अ.0 प्रस्तावना

लोकगीत, मानव मन की अनुभूतियों की सरस रागात्मक अभिव्यंजना का लयात्मक उपहार है। लोक संस्कृति की सच्ची मधुर, मनमोहक तथा स्वरमूला अभिव्यक्ति को "लोकगीत" की संज्ञा से अलंकृत किया जा सकता है। यह लोक आस्था तथा लोकानुभूत सत्य का अकृत्रिम, सहज, नैसर्गिक गीतात्मक उद्गार है।

'लोकगीत' लोक वाड्मय की अनमोल धरोहर है। लोकगीत विषयवैविध्य के अलंकरण से मण्डित है। इसीलिए यहाँ लोरियों में झूलता व सोता बचपन, प्रेम के संयोग रंग में आकण्ठ निमज्जित यौवन, विरह से उद्दीप्त अनुराग, वैराग्यबोध से प्रेरित वार्धक्य–सभी कुछ तो लोकगीतों के भाव जगत में समाया हुआ है। सामाजिक मान्यताओं तथा वर्जनाओं का वृहद्कोष, लोकगीतों की विशाल सृष्टि में कदम–कदम पर सृजित होता हुआ दिखलाई देता है। प्रौढ़ावस्था तक आते–आते मनुष्य संसार के यथार्थ अनुभवों का खजाना बन जाता है और इन्हीं "खजानों" में लोकगीत रत्नों की तरह जगमगाते हुए हमें प्राप्त होते हैं।

6अ.1 उद्देश्य

यहां लोकगीत के स्वरूप को अच्छी तरह जाना जा सकता है।

6अ.2 लोकगीत

लोकगीत प्राचीन होते हुए भी अर्वाचीन हैं। ये पुराने अथवा बासी तो होते ही नहीं। चिर नवीन व चिरयौवन बने रहने का सौन्दर्य ही लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। लोकगीतों में शास्त्रीय नियमों के बंधनों की सीमा नहीं होती। आकाश की उन्मुक्तता, पवन की स्वच्छंदता, सरिताओं की कल–कल नाद भरी सुन्दरता, पक्षियों की कर्णप्रिय चहचहाहट, सागर की गंभीरता, झरनों की चंचलता लिए लोकगीत मनोरंजन, मनमोदक तथा आह्लादक है। लोकगीतों में वर्ग या वर्ण का वैषम्य, अमीरी–गरीबी का भेद या सम्पन्न या विपन्न का अन्तर नहीं होता। लोकगीत सार्वजनिक, सार्वदेशिक, सार्वलौकिक है। देश, काल और परिस्थितियों की भेद लक्ष्मण रेखा लोकगीतों के लिए बनी है। दशों दिशाओं में लोकगीतों का ही अखण्ड साम्राज्य रहा है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को प्रदीप्त करने वाली सुरीली बानगी ही लोकगीत है। लोकगीत बौद्धिकता के शुष्क व बेजान कंटीले झाड़–झंखाड़ नहीं है वरन् हृदय–महासागर में अनंत भावनाओं के मंथन के उपरान्त प्राप्त नवनीत हैं। लोकगीत चमत्त करने वाले या सहसा चौंकाने वाले रस के छीटे नहीं उड़ाते बल्कि आपाद मस्तक रस वृष्टि में निमज्जित करने वाले भावपूर्ण उद्गार हैं।

लोकगीतों के अनादि उद्गम के प्रति चिन्तन करते हुए देवेन्द्र सत्यार्थी लिखते हैं – "कहाँ से आते हैं इतने गीत, स्मरण–विस्मरण की आँख मिचौली से। कुछ अट्टाहास से, कुछ उदास हृदय से, कहाँ से आते हैं इतने गीत, जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत। कल्पना भी अपना कम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी पर ये सब हैं, खाद। जीवन के सुख–दुख, ये हैं लोकगीतों के बीज।"[13] एक स्थान पर उन्होंने बहुत ही सारगर्भित वाक्य लिखा था कि – "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"[14] डॉ. आई.एन. चन्द्रशेखर रेड्डी लोकगीत की व्याख्या करते हुए लिखते हैं – "लिखाई–पढ़ाई से अनभिज्ञ ग्रामीण जनता के द्वारा रसोद्वेग में गाये जाने वाले

सुमधुर गीत ही लोकगीत हैं। कानों से कानों तक ही इनकी सम्प्रेषणीयता कायम है। भौतिक सुख सुविधाओं की पूर्ति के लिए और जीविका चलाने के लिए किसी भी राजाश्रय में लोकगीत पुष्पित–पल्लवित नहीं हुए हैं।" ग्रामीण जीवन के कटु अनुभवों से उत्पन्न होकर उनके हृदय में गूंज उठने वाली सहज कविताएँ ही लोकगीत है।[15] लोकगीत के अकृत्रिम रूप सौन्दर्य को उद्‌घाटित करते हुए सत्यव्रत अवस्थी लिखते हैं – "लोकगीत प्रकृत काव्य हैं। वह लोकहृदय की सरल स्वाभाविक एवं संगीतमय अभिव्यक्ति हैं। मानव–जाति के हृदय से, अपने अभावों द्वारा जन्मी, प्रकृति–प्रदत्त ध्वनि द्वारा सहसा घुमड़ कर प्रकट होने वाली उल्लासमय संगीत लहरी है, जो हृदय का भार हल्का करने के लिए भावों की अभिव्यक्ति हेतु बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त होती है।"[16]

श्यामाचरण दुबे के शब्दों में – "लोकगीत सामान्य लोक जीवन की पार्श्व भूमि में अचिन्त्य रूप में अनायास ही फूट पड़ने वाली लयात्मक अभिव्यक्ति है।"[17] शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज रूप में उधृत करता है, वही लोकगीत है।[18] देवेन्द्र सत्यार्थी के मतानुसार – "लोकगीत हृदय के खेत से उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुःख के गीत तो खौलते हुए लहू से पनपते हैं और आँसूओं के साथी बनते हैं।"[19] इन लोकगीतों में न कला हैं, न भाषा–सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बन्द कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानव ने गाया है। चूल्हें पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनायें हैं, जिस समय अन्तार को जो भी स्पर्श कर गया तुरन्त वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बनकर फूट पड़ा।"[20] किसी भी राष्ट्र का यथार्थ व जीवन्त इतिहास का गेय व लयात्मक स्वरूप देखना हो, नैतिक आदर्श, सामाजिक मर्यादा व शासक–शासित, मजदूर–मालिक, पारिवारिक व्यवस्था का रागात्मक रूप देखना हो तो वह लोकगीतों के माध्यम से जाना जा सकता है। लोकगीत संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ हैं। इनमें साधारणीकरण और सम्प्रेषणीकरण के साथ रस निष्पत्ति की सर्वोच्च साधना है। लोकगीतों में न तो किसी 'वाद' का स्थान है और न ही 'विवाद' का, हमें स्वरों के आरोह–अवरोह, सरगम या ताल के 'तराने' भले ही न आते हों, लोकगीत गाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वह लोगों के उस जीवन की निरन्तर प्रवाहात्मक अभिव्यंजना है, जो सुसभ्य प्रभावों से दूर अधिक या न्यूनतम रूप में आदि अवस्था में हैं।[21]

इस सन्दर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ठीक ही लिखते हैं – "लोकगीतों का समस्त महत्व उनके काव्य और सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं हैं। इनका एक महत्वपूर्ण कार्य है एक विशाल सभ्यता का उद्‌घाटन, जो अब तक या तो विस्मृत के गर्भ में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई है, लोकगीतों का महत्व मोहन जोदड़ों के भग्न स्तूपों के अवशेष एवं ईट–पत्थर के टुकड़ों से कहीं अधिक है। पुरातत्व के यह अंश–अंश हमारे इन गीतों के भाष्य का काम देते हैं।"[22] लोक गीतों की कतिपय परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं – "लोकगीत तो स्वतःजन्मा है।"[23] आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते हैं।[24] लोकगीत न तो नया होता है न तो पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें भूतकाल की जमीन में गहरी धंसी हुई है, परन्तु जिसमें निरन्तर नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं।[25] डॉ. श्याम परमार इस विषय में लिखते हैं – "इन गीतों के प्रारम्भ के प्रति हमारे पास एक सम्भावना है, पर उसके अन्त में कोई अन्त में कोई कल्पना नहीं। यह वही बडी धारा है जिसमें अनेक छोटी–छोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना रहा है, सदियों के घात–प्रतिघात ने उसमें प्रश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उनमें मन के ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन की कसम मिटाई है। विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की है।"[26] ग्रामगीत सम्भवतः वह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म, या क्रीड़ा के ताल पर रचा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है।"[27] इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि – "लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।"[28] यह सत्य ही कहा गया है कि "लोकगीत मानव हृदय की प्रवृत्त भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर या ताल को प्रधान तान देकर धुन प्रधान होते हैं।"[29] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने "बैलेड" को लोकगीत तथा "फोकसांग" को ग्रामगीत कहा है। वे लिखते हैं – "ग्रामगीत से मेरा आशय उन गीतों से है जो गेय हैं लोकगीत वे हैं जो प्रबन्धात्मक हैं और इनमें कथा की प्रधानता है।"[30] डॉ. सदाशिव फड़के लिखते हैं कि – "लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास हैं। वे भारी विद्वता के भार से, सूक्ष्म बुद्धि की नली के हजारे से छूटने वाला तर्क–वितर्क का फौव्वारा नहीं बल्कि अज्ञात मलयाचल से आने वाली सुगन्धित लहरियों से उद्‌भुत हृदय की सूक्ष्म तरंगे हैं। वे सहजानंद में से ही उत्पन्न होने वाली तथा श्रुति मनोहरता से सहजानंद में ही विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएँ हैं।"[31] विलियम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ग्रिम के कथन को उद्धत करते हुए गुमरे लिखते हैं– ``He (grime) maintained that the poetry of the people sings itself has on individual poet behind it and is the product of the whole folk.'' लोकगीत मानहृदय की वह नैसर्गिक अभिव्यक्ति है, जिसमें भाव, भाषा और छनद की नियमितता से मुक्त रह कर स्वच्छन्द रूप से निःसृत होने लगते हैं। जीवन और जगत में व्याप्त स्थितियों एवं घटनाओं के घात–प्रतिघात से उत्पन्न अन्तर्भावनाओं की लयात्मक उद्‌गीर्णता लोकगीतों में प्राप्त होती है।[32] लाला लाजपतराय ने लिखा है कि – "देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।[33]

लोकगीतों में संगीत एवं काव्य का सम्मिश्रण होता है।[34] लोकगीत हमारे जीवन–विकास का इतिहास है।[35] लोकगीत इससे सने हुए हैं।[36] लोकगीत लोक जन द्वारा विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। सामाजिक चेतना के साथ–साथ लोकगीतों का जन्म हुआ। इसका संबंध जीवन के साथ है। लोकगीत किसी एक व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होते और न ही सामूहिक रूप से रचे गये होते हैं, बल्कि इसकी रचना स्वतः होती है। लोकगीतों द्वारा हमें जन–जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं। प्रायः विभिन्न ऋतुओं में सामाजिक स्तर भेद को लोकगीत ही मिटाते हैं।[37] लोकगीतों की सरस व सहज सुन्दरता पर मुग्ध डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं – "नीले आकाश के नीचे प्रकृति के बहुरंगी परिवर्तन, युद्ध और शांतिमय जीवन के चित्र एवं विधाता कली स्त्री–संज्ञक रहस्यमय सृष्टि की मानवीय जीवन पर प्रसाद और विषादमयी छाया – ये इन गीतों के प्रधान विषय हैं, जो शत कोटि कण्ठों से सहस्त्रों बार गाये जाने पर भी पुराने नहीं पड़ते और जिनकी सतत किलकारी वायु में भरे हुए चिरन्तन स्वर की तरह सर्वत्र सुनाई पड़ती है। गीत मानों कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं। वे कण्ठ से गाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए है।"[38] डॉ. श्याम परमार के शब्दों में "इन गीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार है। भावों की लड़ियाँ लम्बे–लम्बे खेतों से स्वच्छ, पेड़ों की नंगे डालों सी अनगढ़ (Rough) और मिट्‌टी की भाँति सत्य है।"[39] कैन्नेथ रिचमण्ड लिखते हैं – "सभी लोकगीतों में समान्यतः यह बात मिलती है कि शब्द गौण होते हैं लय (Tunes) से और इसी कारण कभी–कभी यह कहा जाता है कि यह लय ही है जिसका सर्वापेक्षा अधिक महत्व था। यह विश्वास सत्य से बहुत दूर है। सच्चाई यह है कि कण्ठ से कण्ठ पर उतरते हुए शब्दों ने क्रमशः लघु विकारों और संशोधनों को झेला है। संगीत अधिक यथावत् रूप में स्मृत रहा है क्योंकि लोकनायक के लिए गीत का सम्पूर्ण अर्थ आवेग संपृक्त (Emotional) है उतना तार्किक (Logical) ugÈA (In all folksong it is a common thing to final that the inferior to the tunes and because of this it is often stated that it was the tune which mattered most. This truth is that passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification. The music is remembered more faithfully because to the folksinger, the whole'' meaning, ``of the song is emotional rather then logical)''

'लोकगीत' क्या है? इस प्रश्न का सारगर्भित उत्तर देते हुए डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "वह गीत जो लोकमानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक मानसभास भी हो लोकगीत के अन्तर्गत आएगा। लोकगीतों के शब्दों में लोक मानसपरक अथवा आदिम प्रवृत्ति के जैसा एक प्रभाव होता है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, केवल जिसे अनुभव किया जा सकता है।" उसमें आदिम मानवीय भावना के उत्तराधिकरण का एक रहस्य भिदा रहता है। उसमें जैसे एक रोना रहता है। लोकगीत जैसे एक दैवी वाक्य है, जिसका न कोई निर्माता है न स्वर संधाता। वह जैसे मानव–समुदाय में सहज ही स्वयं ही उद्धरित हो उठा हे, और बिना प्रयास के सहज की कण्ठ से कण्ठ पर उतरती हुई अपनी परम्परा स्थापित किरता रहा है। वह सामाजिक समुदायी जीवन से सम्बद्ध रहता हे, यह भूमिपुत्र है और निर्वेयक्तिक है, वह अपनी विकास–परम्परा मे देश काल से प्रभावित हो, उसके तत्वों को ग्रहण करता हुआ फिर उन देश–कालों के प्रभावों का संक्रमण करता हुआ उनकी उपेक्षा करता हुआ, अपनी मूल मानवीय मानसता के सत्व में उन्हें समाहित कर अपनी परम्परा और निरन्तरता बनाता है।[40] लोकगीतों का अन्य गीतों से पार्थक्य बतलाते हुए डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – "लोकगीत उन गीतों से भिन्न हैं जो किसी विशिष्ट मानस की विशेषता से युक्त होते हैं, जिन पर किसी व्यक्ति विशेष की अपनी शैली, उसके दर्शन, उसके अपने ज्ञान–कोश का प्रभाव रहता है और जो इतना वैयक्तिक होता है कि लोक के साथ एकमेव नहीं हो पाता।... लोकगीत के शब्द जैसे समस्त लोक के शब्द होते हैं, लोकगीत का ज्ञानकोश जैसे समस्त लोक का अपना ज्ञानकोश होता है। उसकी कल्पना–मूर्तियाँ लोक सम्भव होती है।... लोकगीत उन रहस्यवादी गीतों से भी भिन्न होता है, जिसमें कोई कवि अथवा संत अपनी दार्शनिक रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करता है।[41]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नरोत्तमदास स्वामी एवं सूर्यकरण पारीक ने लिखा है कि – "आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव–जीवन की, उसके उल्लास की, उसके उमंग कीं, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख दुःख की... कहानी इसमें चित्रित है।... काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता।... किसी भी कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं।"[42]

मैं यह कह सकता हूँ कि लोकगीत लोकमानस की अगणित सुख–दुखात्म, हर्ष–विषाद मूलक, आशा, आकांक्षा–आशंका, उत्साह, निराशा, आह्लाद–अवसाद मनोराग, मनोवेग, उल्लास, आस्था की सहज, स्वतःस्फूर्त, अकृत्रिम, रागों के बंधन से मुक्त, सामूहिक चेतना से मण्डित संस्कारों व तद्जनित अनुभूतियों की रागात्मक अभिव्यक्ति है। लय और ताल जिसे अनुचर तथा नृत्य जिसका सहचर है। इनका रचनाकार तथा रचनास्थल अज्ञात हैं। सनातन काल से ही इनकी मौखिक परम्परा ही अक्षुण्ण रही है। लोकगीत कलम–कागज जीवी नहीं, वरन् कण्ठजीवी हैं। इनमें अलंकारों का घटाटोप व छन्दों की बाधाएँ नहीं है। ये रस की अनुपम सरिताएँ हैं जहॉ भाव माधुर्य के विविध कमल खिलते हैं। लोकगीतों पर काल का अकरुण अट्हास भी प्रभावहीन है। लोकगीत केवल मनोरंजन ही नहीं करते वरन् मनोद्बोधन भी करते हैं।

लोकगीतों का रचनाकार भले ही अज्ञात रहता हो लेकिन इनमें व्यंजित माधुर्य, लालित्य, सारल्य व रसमयता अभूतपूर्व होती है। मानसिक व्यथा की कथा हो या अनुराग का उल्लास अपूर्व व विलक्षण रूप से अंकित होते हैं। इनमें जीवन की धारा का नैरन्तर्य है। प्राचीन परम्पराएँ हो अथवा अर्वाचीन प्रयोग धर्मिता दोनों का सुष्ठु समन्वय लोगीतों की प्राणवान विशेषता है। लोकगीतों में आशुकवित्व स्वतः ही मुखरित होता है इसीलिए इन पर किसी एक के रचनाकार होने की मोहर अंकित नहीं हो सकती।

शास्त्रीय गायन पद्धति की राग–रागनियों की कालावधि के बंधन से लोकगीत सर्वथा मुक्त है। लोक गीतों में काल की किलकारियाँ, प्रकृति का हास–परिहास, सरिताओं का स्वच्छंद प्रवाह सुमनों की सौरभ, हवा, हवाओं की निर्मलता, प्रभात की ताजगी व निशा की शांति का एकछत्र साम्राज्य रहता है।

6अ.3 लोकगीत और आभिजात्य गीत

लोकगीतों की दुनिया निराली है और इनके 'स्व' चैतन्य रहित रचनाकार भी निराले हैं और इनकी रसानुभूति करने वाले 'लोक' भी तो निराले हैं। उनका यह निरालापन भी मन मोहने वाला है। एक अजीब सी मस्ती, निर्द्वन्द्व भावना, स्वच्छंदता और सहजता का जो सरस सौंदर्य लोकगीतों की दुनिया में विचरता है वह आभिजात्य गीतों में नहीं होता।

लोकगीतों में एक विचित्र सा अवधूतीपन है। जहाँ रचनाकार का व्यक्तित्व बूँद की तरह 'लोक' चेतना के महासागर में विलीन हो जाता है लोकगीतों की सृष्टि में 'रचनाकार' होने के गर्व का अस्तित्व नहीं होता। शिष्ट गीत चाहे जितना मधुर, मोहक, मनोहर व श्रुति सुखद क्यों न हो फिर भी रचनाकार अपने 'स्व' चैतन्य बोध की अनुभूति से अलग नहीं रह सकता। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी कृति के 'कृतिकार' होने के अहम् से मुक्त नहीं हुआ हैं जब विद्यापति अपनी 'पदावली' में भनई विद्यापति' अनासक्त मस्त कवि कबीर 'कहत कबीर सुनो भाई साधो', रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास 'तुलसीदास संतन सुखदायी', कृष्ण भक्त सूरदास 'सूरदास की सबै अविद्या', भक्त कवयित्री मीरां 'मीरां के प्रभु गिरधर', रसखान, दादू व दरिया जैसे अत्युच्च कोटि के प्रभु समर्पित भक्त कवि अपनी रचनाओं में अपने नाम का प्रयोग करके स्वयं स्रष्टा होने को प्रमाणित करते हैं तब सामान्य जनों में अपनी रचना के रचयिता होने की मनोवृत्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह स्वाभाविक मनोविज्ञान है। इस दृष्टि से 'लोक' मानस का रचनाकार हृदय निश्चय ही महान् है जो अपने में इतना बड़ा शिल्पी हृदय रखते हुए भी कहीं भी अपनी रचना पर स्वयं के रचनाकार होने का दंभ या अहम् चैतन्य नहीं होता। वे केवल "लोक" की सम्पदा हैं। सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है जिसने छन्द, व्याकरण और अलंकार शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया है। ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते। यह तो माली निर्मित उस क्यारी की तरह है जिसके पौधे कैंची से कतर कर ठीक किये रहते हैं और जो खास तरह की रुचि से विवश होकर सजाई जाती है। ग्रामगीत तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों, में पहाड़ों तथा नदी तटों पर स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है। वह अकृत्रिम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ग्रामगीत वे फूल हैं झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आँखें खोलता है, मन्द–मन्द समीर जिसे झूले में झूलाता है, चन्द्रमा जिसक मुँह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब जल छिड़कती है। उनकी समता बंगले का कैदी फूल नहीं कर सकता।[43]

लोकगीतों की सहज सुन्दरता इसीलिए अकृत्रिम भावलय से मण्डित है क्योंकि "साहित्य की दुनिया में लोकजीवन छन–छन कर आता है। इसीलिए साहित्यिक गीत मंजे सुधरे होते हैं और उनकी चमक–दमक गिने चुने लोगों को ही आसानी से अपनी ओर खींच सकती है। पर इस पर माँजने–सुधारने और छानने में जीवन की बहुत सी हरियाली भी कट–छंट कर बाहर ही छूट जाती है जिससे साहित्य में उबले छाने पानी का आस्वाद होता है, जबकि लोकगीतों में ताजे पानी का आनन्द आता है।"[44] गुलाबराय ने इस अन्तर को इन शब्दों में स्पष्ट किया है – "गीत–लोकगीत भी होते हैं और साहित्यिक भी। लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते और कुछ में वह व्यक्त भी रहता है। वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है, किन्तु उनमें साधारणीकरण सामान्यता कुछ अधिक रहता है, तभी वे वैयक्तिक रस की उपेक्षा जनरस उत्पन्न कर सकते हैं। साहित्यिक गीतों में निर्माता का निजीपन अधिक रहता है।"[45] इस सन्दर्भ में श्री रामखिलावन पाण्डेल लिखते हैं – "लोकगीतों का उन्नत रूप इस अवस्था में मिलता है जिसमें शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता है किन्तु संगीत की नहीं, बल्कि संगीतात्मक एवं रागात्मक अनुभूति का प्रबल आग्रह है। लोकगीतों की स्वाभाविकता में काव्य के स्वीकृत प्रतिमानों की कृत्रिमता के प्रति विरोध का भाव है, जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता और संवेदनशीलता उनमें हैं, वह शास्त्रीय काव्य–विधान में नहीं।... लोकगीतों में काव्यत्व का अभाव मानने वाले काव्य की कृत्रिमता को ही महत्वपूर्ण मान बैठते हैं। कला यदि रागात्मक क्षणों की आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति है, तो ग्रामगीत निश्चय ही कलात्मक है। उनमें भावना और संगीतात्मकता का समन्वय है।"

इस प्रकार लोकगीतों और आभिजात्य गीतों में सहज ही में पार्थक्य किया जा सकता है। 'स्व' और 'सर्व' का ही भेद है जो आभिजात्य गीत और लोकगीतों को एक–दूसरे से पृथक् कर देता है। लोक में सामूहिकता का उल्लासमय समय संगीत गूंजता है, समष्टि चेतना गूंजती है और सामाजिकता का रंजन थिरकता है जबकि शिष्ट गीत में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवादिता की चेतना रहती है। डॉ. श्याम परमार लिखते हैं – "कलागीत साहित्य के अंग हैं, पर लोकगीत परम्परा अनुभूति और अनुष्ठान से संबंधित है।"[46] यदि गहराई से विचार किया जाय तो यह उचित ही होगा कि लोक गीतों की भाव सम्पदा को ही उधार में लेकर साहित्यिक गीतों की रचना होती है। लोकगीतों में जो सहज अनलंकृत का सौन्दर्य रहता है वह शिष्ट गीतों में प्रयुक्त होकर अलंकृत व कवित्वपूर्ण बन गया। डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी लिखते हैं – "कालान्तर में कला के सहयोग से यही लोकगीत साहित्यिक बन गए। इनमें कवि रुचि प्रधान होने लगी। फिर भी इनमें ऐसी कुछ विशेषताएँ बनी रही, जो इनके आदिम सामाजिक रूप की ओर संकेत करती है। इनका आकार और इनके संस्कार बहुत दिनों तक लोकगीतों के समान ही बने रहे। लोकगीतों के साहित्यिक गीतों में बदल जाने से कवित्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे। जो गीत अत्यन्त ही सहज, स्वाभाविक भावोद्वेग को व्यक्त करने वाले थे तथा विशेषतः काम करने वाली प्रसन्न स्त्रियों द्वारा गाये जाते थे अब अलंकृत एवं कवित्वपूर्ण बन गए।"[47]

इस प्रकार लोकगीतों में जहाँ भावोल्लास अधिक हैं, वही शिष्ट गीतों में बुद्धिविलास। शिष्ट गीतों की रचना का प्रयोजन वैयक्तिक हो सकता है जबकि लोकगीतों की संरचना में सामूहिकता की सिद्धि का लक्ष्य होता है।

लोकगीत छन्द, अलंकार, लय, ताल और काल की सीमा की लक्ष्मण रेखाओं से बंधकर सीमित होना नहीं जानते, इसीलिए वे विराट के उपासक हैं, सामान्य के आराधक हैं तथा वे किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष को रिझाने के लिए नहीं रचे जाते जबकि शिष्टगीतों की संरचना में एक निश्चित सीमा तक किसी व्यक्ति या वर्ग का मन बहलाव का ही भाव प्रमुख रहता है।

लोकगीत छन्द, अलंकार, लय, ताल और काल की सीमा की लक्ष्मण रेखाओं से बंधकर सीमित होना नहीं जानते, इसीलिए वे विराट के उपासक हैं, सामान्य के आराधक हैं तथा वे किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष को रिझाने के लिए नहीं रचे जाते जबकि शिष्टगीतों की संरचना में एक निश्चित सीमा तक किसी व्यक्ति या वर्ग का मन बहलाव का ही भाव प्रमुख रहता है।

लोकगीत के गायक के लिए स्वरों के आरोह–अवरोह को जानना आवश्यक नहीं है। लोकगीत और लोकगीत गायक तो अपने मनोराज्य की विस्तृत सीमा में स्वच्छंद विचरण करने के आदी होते हैं जबकि शिष्टगीतों की सीमित दुनिया की व्याकरण की सीमा उन्हें व्यापकता प्रदान नहीं करते क्योंकि वहाँ व्यष्टि चेतना का साम्राज्य रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोकगीतों में वैचारिक दर्शन का भार, अतिशयता, अलंकरण, गायक की सीमाएँ, कालावधि, मात्रा नियम की श्रृंखलाओं का अस्तित्व नहीं होता। वे तो रस से छलकती लताएँ है जिसकी प्रत्येक लहर पर मानव मन की अनंत अनुभूतियों की कलिकाएँ खिली हुई हैं, जो एक बार लोकगीतों की स्वर लहरियों की मधुसिक्त अनुभूति का आनन्द प्राप्त कर लेता है वह फिर शास्त्रीय गीतों की कड़वी निबोरी का स्वाद ग्रहण करने के लिए तत्पर नहीं होता।

6अ.4 लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों की भाव–गंगा का उद्भव अनुभूति प्रवण मानस–हिमालय की गंगोत्री से होता है, इसीलिए जिस प्रकार मानव की भाव–तरंगों को रेखांकित करना कठिन है ठीक इसी प्रकार से लोकगीतों को विविध "प्रकारों" की सीमाओं में बांटना भी दुष्कर है। लोकगीतों का उद्भव किसी एक सुनिश्चित प्रयोजन या अभिप्राय लेकर नहीं हुआ है वरन् जीवन के अनेक जटिल रूपों के अनुरूप विशेष उद्देश्यों की सम्पूर्ति को लेकर हुआ है अतएव विविध भावभूमियों, कर्मक्षेत्रों तथा परिकल्पनाओं की भूमि पर लोकगीतों का वर्गीकरण करना उचित होगा।

6अ.5 क्षेत्रीय आधार

जार्ज हरजोग की मान्यतानुसार प्रारम्भ में ग्रामीण मानव समुदाय के गीतों को "लोकगीत" कहा जाता था। इसके साथ यह भी माना जाता था कि लोक संस्कृति के अभिन्न अंग माने जाने वाले लोक गीत नागर संस्कृति से अलग हैं तथा वे ग्रामीण संस्कृति के ही अंग हैं। यह भेद नगर या गांवों में ही हो सकता है लेकिन आदिम जातियों में तो नहीं होगा। हाँ, पश्चिम में 'लोक' ;थ्वसाद्ध 'नागर' ;न्तइंदद्ध का पृथक् समाज अवश्य कल्पित रहा है अतएव यह कहा जा सकता है कि लोकगीत पश्चिम गांवों में ;त्नतंसद्ध तथा पूर्व के देशों में उपजते हैं। हिन्दी जगत में लोकगीतों का प्रारम्भिक स्तर पर संकलन 'ग्रामीण गीत' या 'ग्रामगीत' कह कर ही किया गया था बाद में 'लोकगीत' की संज्ञा स्वीकार की गई। हिन्दी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के ;थ्वसाद्ध की तर्ज पर स्वीकार किया गया लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से कभी यह शब्द ग्रामीण समाज के लिएप्रयुक्त हुआ तो कभी विशुद्ध आदिम जातियों के अर्थ में गृहीत हुआ। इस भ्रांति में संभव है नृतत्व विज्ञानियों (एन्थ्रापॉलोजिस्ट) की भूमिका रही। अतएव यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि 'लोक' तो प्रत्येक श्वास लेने वाले मनुष्य की अपनी परम्परानुमोदित धरोहर है। "लोकगीत अथवा लोकवार्ता का क्षेत्र न तो गॉव ही है, न जंगल पहाड़ ही हैं, न गँवार न कोल–किरात ही लोकमानस सर्वत्र विद्यमान है। अतः लोक भी नगर ग्राम सीमा का भेद किये बिना सर्वत्र है।"[48] क्षेत्रीय आधार पर लोकगीतों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है –

लोकगीत[49]

नगर के लोकगीत	ग्राम के लोकगीत	जंगल के गीत
	नगर के लोकगीत	
आनुष्ठानिक	सामूहिक मनोरंजन	ग्रामीण अनुकरण

ग्राम के लोकगीत — आनुष्ठानिक, सामान्य, उद्योग समर्पित, उद्योग सम्पर्कित, तिथिवारक

जंगल के गीत — आनुष्ठानिक, तिथिवारक, मनोरंजनार्थ

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि "अनुष्ठान का भाव जंगल से नगर तक के समान रूप से व्याप्त है। लोकगीतों के वर्गीकरण का एक आधार वर्ण तथा अवस्था, योनि एवं उपयोगिता की दृष्टि से भी बनाया जा सकता है। हमारे समाज में जातीय विभाजनमूलक वर्ण व्यवस्था राष्ट्रीय पहचान का एक रूप है, इसलिए लोकगीतों का भी विभिन्न जातियों का आधार पर विभाजन किया जा सकता है। अनेक जातियों की उत्पत्ति व्यवसाय के आधार पर भी हुई है इसीलिए वर्गीकरण का एक आधार यह भी हो सकता है। इसी प्रकार अवस्था के अनुसार बालगीत, युवा–वर्ग के रसीले गीत तथा वृद्धों के वैरागय, नीति व उपदेशमूलक लोकगीतों की गणना की जा सकती है। योनि भेद के अनुसार लोकगीत केवल स्त्रियाँ ही गाये तो अच्छा लगता है और कुछ गीत केवल पुरुषों के मुख से ही कर्णप्रिय तथा सुखद लगते हैं। उपयोगिता की दृष्टि से इसे हम अनुष्ठानमूलक, व्यवसाय या कर्मपरक तथा तिथि विशिष्ट के सन्दर्भ में गाये जाने वाले लोकगीतों की श्रेणियाँ बना सकते हैं। अनुष्ठानमूलक लोकगीत जन्मोत्सव, विवाह तथा मरणादि अवसरों पर गाये जाते हैं। व्यवसाय अथवा उद्योग परक लोकगीत किसी तिथि, ऋतु, माह, त्यौहार आदि से जुड़े हुए होते हैं। लोकगीतों का वर्गीकरण विषयवस्तु की दृष्टि से भी किया जाता है। स्तुत्यात्मक गीत, लोरी साके अथवा पंवारें, गाथा या पंबारे में प्रबन्धात्मक गीत भी हो सकते हैं। स्वरूप के आधार पर लोकगीत अपने वृहद् रूप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'लोकगाथा' हो सकते हैं तथा सामान्य लघु लोकगीत भी। प्रकृति के आधार पर लोकगीतों को पाँच रूपों में वर्गीकृत कर सकते है यथा (1) गेय लोकगीत, (2) पाठ्य लोकगीत। गेय लोकगीतो की भी तीन श्रेणियाँ बनायी जा सकती है – (1) शुद्ध गेय लोकगीत (2) नृत्य परक लोकगीत (3) नाट्य लोकगीत। लोकगीतों के विस्तृत और व्यापक क्षेत्र को वर्गीकरण की सीमाओं में बांधने वाले लोक साहित्य मर्मज्ञें में रामनरेश त्रिपाठी, सूर्यकरण पारीक, रामचन्द्र भालेराव, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. शकुन्तला वर्मा, डॉ. शंकरलाल यादव, भगवती देवी बधौतियाँ एवं डॉ. गणेशदत्त बधौतिया आदि का उल्लेखनीय स्थान है। रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है – 1. संस्कार सम्बन्धी गीत 2. चक्की और चरखे के गेत 3. धर्मगीत 4. ऋतु सम्बन्धी गीत 5. खेती के गीत 6. भीखमंगों के गीत 7. मेले के गीत 8. भिन्न–भिन्न जातियों के गीत 9. वीर गाथा – आल्हा, ढोला, मारन, हीर–रांझा आदि। 10. गीत कथा 11. अनुभव के वचन।[50] राजस्थानी लोकगीतों के मर्मज्ञ अध्येता सूर्यकरण पारीक ने लोकगीत को 1. देवी–देवताओं और पितरों के गीत 2. ऋतुओं के गीत 3. तीर्थों के गीत 4. व्रत, उपवास व त्योहार के गीत 5. संस्कारों के गीत 6. विवाह के गीत, 7. भाई–बहिन के गीत, 8. साली–सलहज के गीत, 9. पति–पत्नी के गीत, 10. पनिहारिनी के गीत, 11. प्रेम के गीत, 12., चक्की पीसते समय के गीत, 13. बालिकाओं के गीत, 14. चरखे के गीत, 15. प्रभाती गीत, 16. हरजस–राधा कृष्ण के प्रेम गीत, 17. धमारें–होली पर पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले गीत, 18. देश प्रेम के गीत, 19. राजकीय गीत, 20. राजदरबार के गीत–शिकार तथा मदिरापान के समय के गीत, 21. जागरण 'जन्मे' के गीत, 22. सिद्ध पुरुषों के गीत, 23. वीरों के गीत, 24. ग्वालों के गीत, हास्यरस के गीत, 25. पशु–पक्षी संबंधी गीत, 26. शान्तरस के गीत, 27. गाँवों के गीत, 28. नाट्यगीत और 29. विविध श्रेणी में विभाजित किया है।[51] लोक साहित्य के उल्लेखनीय विद्वान डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों को 1. संस्कार 2. रसानुभूति 3. ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम 4. विभिन्न जातियों के प्रकार तथा 5. श्रम के आधार पर वर्गीकृत किया है।52 डॉ. शकुन्तला वर्मा ने लोकगीतों को तीन रूपों में यथा 1. संस्कार गीत 2. पर्वगीत 3. श्रृंगार गीत।53 एवं डॉ. गोविन्द चातक ने पाँच प्रकार के लोकगीतों यथा 1. धार्मिक गीत 2. संस्कार गीत 3. ऋतु गीत 4. प्रणयगीत तथा 5. विविध गीत–श्रम, जाति, हास्य, व्यंग्य ऐतिहासिक तथा सामायिक की चर्चा की है।[54] हरियाणा प्रदेश के लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले डॉ. शंकरलाल यादव ने लोकगीतों के दो आधार बतलाये हैं 1. मुक्तक या लघु गीत–संस्कार संबंधी (जन्म, विवाह, मृत्यु) ऋतु संबंधी (व्रत, पर्व, त्यौहार, देवी, माता, जाता, मल्लार, भजन आदि) कृषि संबंधी, राजनीति संबंधी अन्य (पनघट, हुचकी, हास्य रस के गीत) तथा 2. कथात्मक (प्रबन्ध गीत) राग, किस्सा, गाथा व अवदान पंवारा, देवी की यात्रा।54 भगवती देवी बधौतियो ने लोकगीतों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है –

1. रसानुभूति की दृष्टि से – श्रृंगार, हास्य करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, वीर, अद्भुत, शान्त तथा वात्सल्य – इन दस रसों के आधार पर लोकगीतों के दस भेद हो सकते हैं।

2. जातियों की दृष्टि से – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – इन चारों वर्णों अथवा जातियों के आधार पर लोकगीतों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

3. लिंग भेद के आधार पर – स्त्रियों तथा पुरुषों के गीत।

4. अवस्था भेद के आधार पर – बच्चों के गीत, युवक एवं युवतियों के गीत, वृद्धों अथवा वृद्धावस्था के गीत।

5. सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से – षोडश संस्कार तथा धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित लोकगीत।

6. कार्य एवं अवसर की अनुकूलता की दृष्टि से – श्रम एवं व्रत, पर्व तथा ऋतु संबंधी लोकगीत।

7. कथानक के आधार पर – लघु तथा प्रबन्ध – इन दो कोटियों में लोकगीतों को विभाजित किया जा सकता है।[56] डॉ. विद्या चौहान ने लोकगीतों को निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है –

1. संस्कार गीत।
2. जन्म संस्कार गीत।
3. यज्ञोपवीत संस्कार संबंधी गीत।
4. विवाह संस्कार संबंधी गीत।
5. मृत्यु संस्कार संबंधी गीत
6. ऋतु संबंधी गीत
7. व्रत एवं उपासना संबंधी गीत
8. जाति संबंधी गीत
9. विविध गीत।[57]

लोकगीतों का वर्गीकरण करना इतना सहज व सरल नहीं होता है। लोकसाहित्य के मूर्धण्य अध्येता मनीषी डॉ. सत्येन्द्र लोकगीतों की विपुल संख्या को वर्गीकृत निम्न प्रकार से किया है[56] –

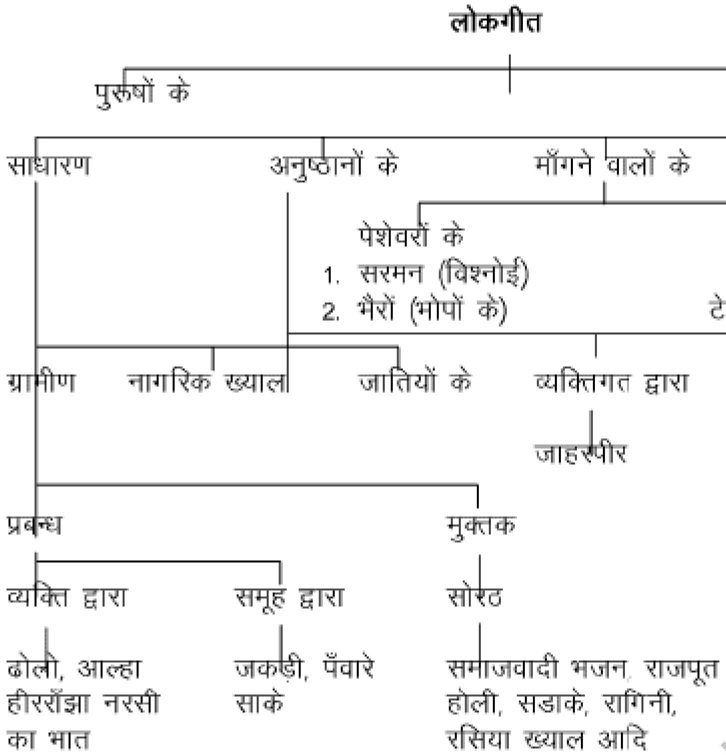

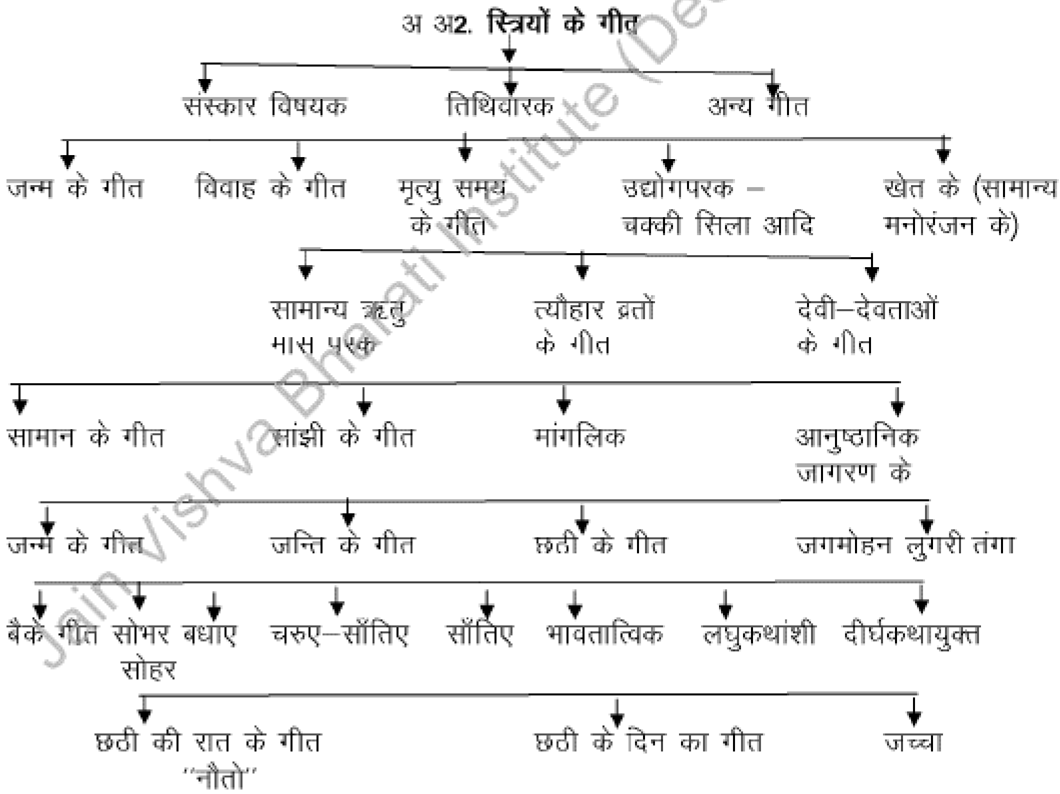

1. कढ़ौहुती 2. लपसी 3. डेलन 4. हिरनी 5. सार 6. तिलड़ी 7 नरग फल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. पालना 9. झझना 10. कौमरी सोहिले 11. सौठ 12 दामोदरियाँ 13. काजल

कामना पीड़ा प्रसव विविध नेग जच्चा के नखरे नन्द आनन्द बधाए अभिलाषा दार्शनिक

स्त्रियों के (लोकगीत)

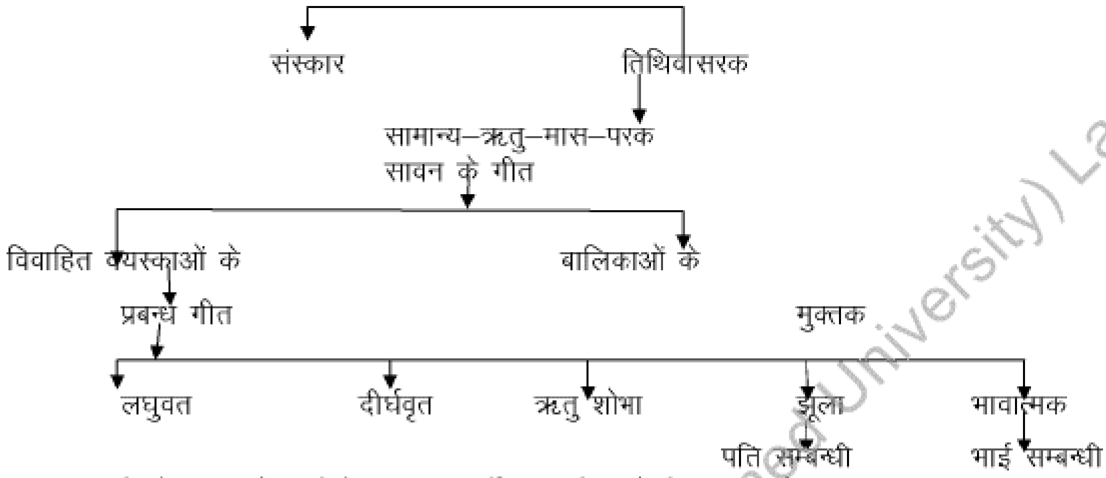

इसी के साथ लोक गीतों का एक वर्गीकरण भी अगे दिया गया है।

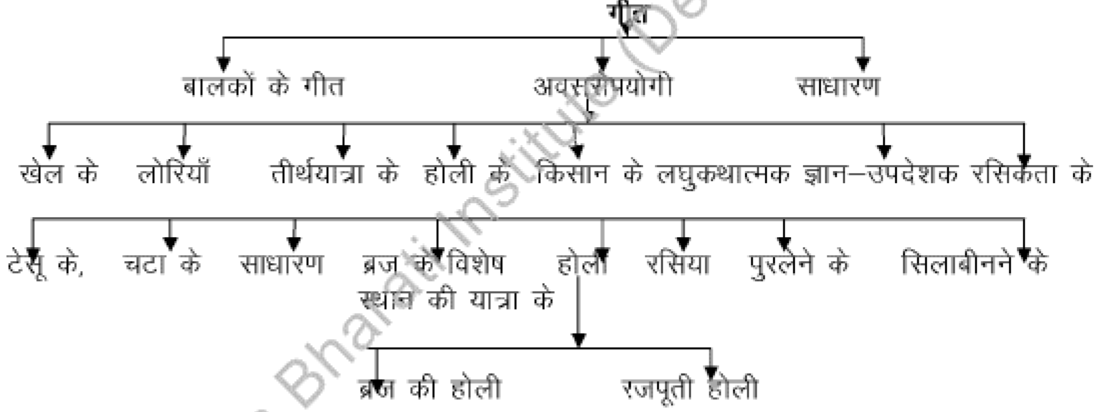

श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव जी ने लोकगीतों का बहुत विस्तार से वर्गीकरण किया है–

1. संस्कार विषयक लोकगीत

1. पुत्र जन्म सोहर 2. चरूबा गीत 3. चौक के गीत 4. साध के गीत 5. करौंधनी कंदारा बांधने के गीत 6. मुण्डन 7. जनेऊ, 8. मामा के यहाँ पहली बार जाने के गीत 9. पहली बार बारात में जाने के गीत 10. टीका 11. विवाह 12. द्विरागमन 13. तिरागमन अर्थात् रोने के गीत 14. समधियों के आने के गीत 15. गौदान, देवस्थान, पुराण बैठाने, कूप खनन, गृहारण्य के गीत, 16. तीर्थ और गमन–आगमन के गीत 17. अन्नप्राशन के गीत 18. पलने के गीत 19. अवरनी–गर्भवती स्त्री विषयक 20. माता कढ़ने के गीत–भेंद 21. जेवनागर 22. पक्षल बाँधनवि खोल 23. भरनी या ठाँक के गीत (सांप काटने पर) 24. मेले के गीत 25. जन्मगाँठ के गीत 26. छात्री स्थापना के गीत।

Jain Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. माहवारी गीत

1. बारहमासा 2. नोरता–नौरात्र आश्विन 3. रामनौमी 4. आखातीज 5. दसहरा (जेठ आश्विन) 6. देवशयनी, देवउठान 7. सावनःहिंडोला 8. सांझी (झेंझी हंडी के गीत) 9. झांझी बछवाछठ 15. मोरछठ 16. नौदुर्गा 17. गनगौर 18. कार्तिक और माघ–स्नान के गीत 19. टोली 20. अहोरी "ओठें कार्तिक के गीत" 21. कजरिया तीज 22. भुजरिया।

3. सामाजिक–ऐतिहासिक गीत

1. चन्द्रावल 2. बेलावता 3. ठोला मारु 4. हरदौल 5. बाबू के गीत 6. कारसदेव के गीत 7. कुँवर के गीत 8. हीरामन 9. नगरा 10. मन्नादेव 11. पंडत मेहतर 12. जाहरपीर 13. अलरा 14. हीलों के, गूजरों के गीत 15. कन्हैया 16. सलग सदावृक्ष 17. गोरा बादल 18. बुलाकीदास 19. घासीराम पटेल 20. पापूजी के गीत 21. राजा केवट 22. ओरवाजी 23. तेजाजी 24. गोराजी 25. भैरूजी।

4. विविध

1. खेती की कहावतें 2. ऊख की फसल होने के गीत 3. बारी पूलने के गीत 4. जात व चक्की के गीत 5. लावनी 6. रसिया 7. ख्याल 8. छून्दस 9. दोहे–साखी 10. सोरठे 11. सकैये 12. भजन 13. कवित्त 14. सिन्धु 15. धौल।62 डॉ. सत्येन्द्र ने एक अन्य वर्गीकरण इस प्रकार से भी प्रस्तुत किया है–63

लोकगीत

1	2	3	4	5	6
संस्कार संबंधी	ऋतु संबंधी	व्रत संबंधी	जाति संबंधी	क्रियासंबंधी	विविध गीत
पुत्र जन्म	कजली	नागपंचमी	अहीरों के गीत	रोपनी	झूमर
मुण्डन	हिंडोला	बहुरा	दुसाधों के गीत	सोहनी	अलचारी
यज्ञोपवीत	होली	गोधन	चमारों के गीत	जंतसार	पूर्वी
विवाह	चैता	पिड़िया	गोड़ों के गीत	चरखा	निर्गुन
गवना	बारहमासा	छाटीमाता	कहारों के गीत	–	भजन
मृत्यु	–	–	धोबियों के गीत	–	खेल

सारांश यह है कि उपर्युक्त समस्त वर्गीकरण प्रदेश विशेष को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किये हैं। लोकमानस की प्रधान सत्ता तो देश, जातियों व समाजों की सीमाओं के बन्धनों को स्वीकार नहीं करती। यह तो बुद्धिजीवियों तथा शास्त्रीय ज्ञान के अभिमानी पंडितों का भ्रम है कि उन्होंने लोकगीतों का वर्गीकरण किया है अन्यथा लोकानुभूति तो सार्वदेशिक रूप में समान होती हे, काल, स्थान भेद से उनका नाम अलग–अलग भले ही हो जाये। अध्ययन और विश्लेषण की सुविधा एक दूसरी बात है। मैं समझता हूँ कि यदि लोकगीतों को हम 1. सामाजिक संस्कार या अनुष्ठान 2. रसानुभूति 3. उद्योगपरक 4. अवस्था भेद 5. तिथिवासरक तथा 6. मनोरंजनपरक श्रेणियों में विभक्त कर सकें तो समाचीन ही होगा। सामाजिक संस्कारों में जन्म से मृत्युपर्यन्त सभी संस्कार तथा उनसे सम्पर्कित अनुष्ठान, रसानुभूति के अन्तर्गत नौ रस प्रधान, उद्योगपरक में घर में चक्की चलाने से लेकर खेती तक, अवस्था भेद में स्त्री, पुरुष, बालक–बालिका, युवा–युवतियों, वृद्ध आदि सभी की परिगणना हो जायेगी, तिथिवासरक में पर्व, तीज, त्यौहार आदि तथा मनोरंजन में नृत्य, नाट्य, कथामूलक गीतों की गणना भी हो सकती है। निश्चय ही लोकगीत लोकमानस के अनुभवों के मुक्तक चित्रखण्ड है जो लय, ताल और सुरो की भूमि पर सज्जित हुए हैं। लोक गीतों की इस अद्भुत और विलक्षण दुनियाँ में ही हमारी सभ्यता का मूल स्वरूप सुरक्षित रहा है। यही कारण है कि इन गीतों का स्वर आज भी उतना ही माधुर्य, रसपूर्ण तथा आनन्ददायक है जितना शताब्दियों पूर्व रहा होगा। इनकी इसी अकृत्रिमता ने इन्हें चिरंजीवी बना रखा है। लोकगीतों में रचनाकारों ने अपने रचनाकार होने के अहम् को अहमियत नहीं दी, इसीलिए यहाँ कर्ता इतना महत्वपूर्ण नहीं बन सका जितना कि उसका कर्म। तभी लो लोक ने उनको अमर बनाया है। आदिकव की रचना 'रामायण', कवि–कुल–गुरु कालिदास का 'अभिज्ञान चरित शाकुन्तलम्' लोक नायक गोस्वामी तुलसीदास रचित 'श्री रामचरित मानस' हो या लोक अनुरंजक श्री कृष्ण के चित्रण का "सूरसागर" भले ही विस्मृत हो जाये लेकिन 'लोकगीत' सदैव अमर व अक्षय प्रभावी रहेंगे।

6अ.6 लोकगीतों का वैशिष्ट्य

लोकगीतों की विशेषताओं को समेटना दुष्कार है। जीवन के अनुभवों का यह रागात्मक अभिव्यंजन है। लोकगीत रस के निर्झर हैं। लोकगीत स्वतः स्फूर्त भावोच्छवासों का सहज व सरस, अकृत्रिम व संगीतपूर्ण उद्गार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लोकसमाज का रसोद्वेग है। यह मनोजन्मा है। इसका रचनाकार, रचनास्थल, व रचनाकार तीनों ही अज्ञात हैं। इसका कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं है। स्थानीय संस्कृति का रंग ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। प्रत्येक अँचल की आत्मा इन लोकगीतों की दुनिया में विश्राम लेती है। इसीलिए इनमें अपूर्व आनन्ददायक सम्प्रेषणीयता है। मौखिक होते हुए भी लोकगीत अक्षय हैं। भाषा की सहज स्वाभाविकता व स्पष्टता इन गीतों का प्राण हैं। यह रस, छंद व अलंकार के बंधनों से बंधा नहीं बल्कि रससरिता में मुक्त कल्लोल करने वाली मीन है। गेयता व संगीतात्मकता इसकी रसमयी संप्रेषणीयता की मूल शक्ति है। लोकगीत अज्ञातशत्रु हैं तथा कालचक्र भी इनके समक्ष नतमस्तक है। समान मानव हृदय का अकाट्य प्रमाण प्रदान करने वाले लोकगीत भाषा व स्वरूप में भले ही भिन्न लगते हों लेकिन इनकी विषयानुभूति सार्वजनीन है। यह भारत की सांस्कृतिक एकता के रचनात्मक प्रमाण हैं जो लोकमानस द्वारा रचित हुए हैं।

6अ.7 सारांश

भाषा का चोला भले ही बदल गया हो, भावात्मा में कहीं भी दुराव या छुपाय नहीं है। इनमें अलंकरण के प्रति आग्रह न होकर भाव सबलता व अनुभूति की प्रणवता के प्रति अधिक लगाव रहता है। इसीलिए लोकमानस इन्हें गाते समय अपने कण्ठ माधुर्य के प्रति इतना सजग नहीं होता जितना गाते समय आनन्दजन्य उल्लास की उर्जस्वी अनुभूति करने में रसमग्न होता है। लोकगीत लोकमानस की कालजयी यात्रा के कीर्तिस्तम्भ हैं।

6अ.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. लोक गीत किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2. लोक गीतों की परिभाषा दीजिए ?

प्रश्न 3. लोक गीतों का वर्गीकरण कीजिए।

प्रश्न 4. लोक गीतों का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 ब
लोकनाटक का स्वरूप

संरचना

- 6ब.0 प्रस्तावना
- 6ब.1 उद्देश्य
- 6ब.2 लोकनाटक
- 6ब.3 लोकनाटकों के उद्भव की पृष्ठभूमि
- 6ब.4 लोकनाटकों के तत्त्व
- 6ब.5 वेशविन्यास और अलंकरण
- 6ब.6 लोकनाट्य प्रस्तुति
- 6ब.7 लोकनाटकों में नृत्य व संगीत–सौन्दर्य
- 6ब.8 लोकनाटकों का वर्गीकरण
- 6ब.9 सारांश
- 6ब.10 अभ्यास प्रश्नावली

6ब.0 प्रस्तावना

लोकनाटक, जनता–जनार्दन की अकृत्रिम जीवनशैली के रूप का यथार्थ अभिनयमूलक प्रतिबिम्ब है। यह अनौपचारिक अभिनेय व्यक्त जीवन दर्शन है। लोकनाटक में "लोक" चेतना की अभिनेयता व्यंजित होती है। यह लोक मानस की अभिनय क्षमता का सहज प्रदर्शनीय रूप है जिसके मंथन के लिए किसी औपचारिक रंगमंच की अपेक्षा व आवश्यकता भी नहीं होती। विद्वानों ने लोक नाटकों को 'पंचम वेद' की संज्ञा से अलकृत किया है। वह लोकानुरंजन का नितान्त अकृत्रिम व आह्लादित रूप है जिसकी व्याख्या के लिए किसी भी बीज, बिन्दु, पताका, प्रहरी आदि की शास्त्रीय व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। यह अकृत्रिम सामूहिक अभिनय मूलक अनौपचारिक प्रस्तुतिकरण है। लोक–नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है और जो परम्परा से अपने–अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक नाट्य एक ऐसी मनोरंजनात्मक विधा है जो शिक्षित समाज की बौद्धिक चेतना अथवा उनके वैयक्तिक वैचारिक आग्रहों से आक्रान्त नहीं है तथा जिसमें अपनी क्षेत्रीय परम्पराओं की विशेषताओं तथा आस्थाओं को नाटकीय ढंग से मंच पर प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है। यह मंत्री प्रस्तुतिकरण भी नितान्त अनौपचारिक है। 'लोक–नाट्य' पृथ्वीपुत्र की भावनाओं को समुचित अभिव्यक्ति करते हैं।

6ब.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से लोक नाटक के स्वरूप को स्पष्ट समझा जा सकेगा।

6ब.2 लोक नाटक

निश्चय ही लोकनाटक, संस्कृत भाषा के मर्म को समझने में असमर्थ था। मनोरंजन का विकल्प खोजने में लोकमानस सदा से अद्वितीय रहा है और इसी खोजी अद्वितीय संस्कार का एक रूप "लोकनाटक" है। लोक धर्मी परम्पराओं का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन लोक नाटकों के माध्यम से होता हैं। लोक नाटकों के उद्‌गम में शास्त्रीय विधान सम्मत 'पंचम वेद' कह कर सम्बोधित किया है। भरतमुनि ने तीन बातों की ओर विशेष ध्यान दिया – पहली बात तो यह कि उस युग में शूद्र एवं अन्य वन्य जातियाँ वेद–पाठ के अधिकार से वंचित थे, इसलिए ऐसे वेदशास्त्र की आवश्यकता थी जो सर्वजन हिताय सुलभ हो सके। दूसरी बात इसी की पूरक कहीं जा सकती हैं कि सर्वजन हित को ध्यान में रखकर ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस का संग्रह करके 'नाट्य' रचना की गई। चूँकि 'नाटक' में समस्त कलाओं, शिल्प तथा ज्ञान का भण्डार सन्निहित है, इसीलिए इस विद्या को 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई। 'नाट्यशास्त्र' में इससे सम्बन्धित एक प्रसंग भी वर्णित हुआ है। सर्वप्रथम भरतमुनि ने 'देवासुर–संग्राम' नाट्य प्रस्तुत किया उसमें असुरों की पराजय व देवताओं की विजय दर्शायी गयी थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस बात से रुष्ट होकर दैत्यों ने अपनी अदृश्य ताकतों से नटों की अभिनेयता व स्मरण शक्ति को जड़ बना दिया। देवराज इन्द्र ने अपने 'जर्जर' संज्ञक शस्त्र से दैत्यों के नेता विरूपाक्ष को बुलाकर यह आश्वासन दिया कि नाटक केवल देवताओं अथवा दैत्यों के लिए ही नहीं होगा बल्कि त्रैलोक्य समाज के भावों को प्रकट करने वाला होगा तथा उसमें देवताओं, दानवों, दैत्यों, गृहस्थितयों, ऋषियों के चरित्र जीवन के जीवन क्रिया कलाप होंगे। लोकउपदेश, युद्ध, शान्ति, प्रेम, प्रकृति क्रीड़ायें, धन के अलावा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दायक पुरुषार्थ का अभिनयात्मक प्रस्तुतिकरण होगा। प्रयोजन की सिद्धि के लिए ही 'नाट्य' का जन्म हुआ। नाटकों की परम्परा साक्षी रही है कि अपने उद्‌भव काल से ही 'नाटक' राजकुल तथा उच्चकुल के लोगों तक ही सीमित रह गया। नाटक विद्या का पूर्ण आनन्द तो आभिजात्य वर्ग में ही सीमित रह गया। यह केवल उच्चवर्ग के मनोरागों व भावों का प्रतिबिम्ब बनकर ही रह गया। ऐसी स्थिति में नाट्ययान्त में जिस 'लोक' कल्याणकारी 'भरतवाक्य' की कल्पना की गई वह तो अधूरी ही रही संभवतः इसीलिए सर्वजन मनोरंजनार्थ एक ऐसी नाट्य प्रदर्शन पद्धति का विकास हुआ जिसका मंचन मंदिर, धर्म स्थल, मेलों, उत्सवों, सार्वजनिक स्थलों पर हुआ, जिसमें लक्षणकारों द्वारा निर्धारित व स्थापित सिद्धान्तों की उपेक्षा हुई, वह प्रदर्शन, अभिजात्य मंचीत नाटकों की तुलना में अधिक संप्रेषणीय तथा लोकप्रिय रही। सच्चे अर्थों में 'पंचम वेद' का संबोधन प्राप्त करने का अधिकारी वह 'लोक नाटक' ही है जिसमें राष्ट्रव्यापी एकता का सूत्र देखा जा सकता है। इन्हीं में जनसाधारण को रसाप्लावित, संचालित तथा प्रेरित करने की अखूट क्षमता है। आज के नगरों के भव्य और उच्चवर्ग के लोगों का मनोरंजन करने वाले प्रेक्षागृहों में मंचित होने वाले की तुलना में यह अधिक लोकप्रिय, संप्रेषणीय तथा प्रभावशाली है।

लोकनाट्य शब्द अंग्रेजी के 'फोक ड्रामा' से उधार लिया गया है। 'ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑफ ड्रामा' के अनुसार 'फोकप्ले' यानी लोक नाटक, ऐसा नाट्य मनोरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों पर ग्रामवासियों द्वारा स्वयं प्रस्तुत किया जाता है और प्रायः अशिष्ट और देहाती होता है। यूरोप में लोक–नाटक आदिम जीवन में लोकत्सवों में प्रारम्भ हुए थे। उनमें मृत्यु, पुनर्जन्म तथा महापुरुषों के विवरण, नटों के खेल इत्यादि होते थे। इंग्लैण्ड में 'मर्मसप्ले' को लोक नाटक कहा जाता है।[66] इस कथन से एक बात स्पष्ट होती है पश्चिम में जहाँ 'लोक नाट्य' केवल मनोरंजन का हल्का व देहाती स्तरीय साधन माना गया है वहीं भारत में इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा देकर अत्युच्च स्तर की गरिमा प्रदान की गई है। आचार्य भरत ने अपने 'नाट्य शास्त्र' में स्पष्ट रूप से लोक धर्मी चेतना को स्वतंत्र मानते हुए चर्चा की है। वे लिखते हैं –

'वेदाध्यात्मोपपन्नं तु शब्दच्छन्दः समन्वितम्
लेकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्य लोक स्वभावजम्।
तस्मात नाट्यप्रयोगे प्रमाणं लोक इष्यते।।[67]

अर्थात् वेदों से उत्पन्न अथवा अध्यात्म से उत्पन्न हो लेकिन नाटक सार्थक भी तभी माना जावेगा जब उसकी इस कथा या पात्रयोजना 'लोक' समाजसम्मत होगी। लोकस्वभाव से उत्पन्न नाटक ही लोकसिद्ध होता है। किसी भी नाटक की सार्थकता और सफलता उसकी लोकगर्मिता पर निर्भर करती है। यों स्वयं नाट्य पुरुषवाचक संस्कृत का शब्द है। यह नृत्य, नाटकादि का अभिनय, नृत्यकला, अभिनयकला, अभिनेता की वेशभूषा तथा अभिनेता अर्थ का द्योतक है।[68] डॉ. महेन्द्र भानावत के मतानुसार "लोक धर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने–अपने क्षेत्र के लोक मानस को उलादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोक नाट्य कहलाता है।[69] जन सामान्य की दृष्टि में लोकनाट्य लोकमानस की लोकानुरंजन का अभिनेयात्मक तथा अनुकरणात्मक माध्यम है जो मनोरंजक भी है तथा आनुष्ठानिक भी। इन नाटकों में जनपदीय चेतना का पूर्ण निर्माण होता है। डॉ. श्याम परमार लोकनाट्यों का स्वरूप विवेचित करते हुए लिखते हैं "लोकनाट्य लोकरंजन का आडम्बरहीन साधन है, जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से संबंधित है। ग्रामीण जनता में इसकी परम्परा युगों से चली आ रही है। चूँकि लोक में ग्रामीग एवं नागरिकजन सम्मिलित है, अतः लोक नाट्य एक मिले–जुले जन समजा का मंच है। परिष्कृत रुचि के लोक के लिए जिन नाटकों का विधान है, उसकी आधार भूमि यही लोकनाट्य है।[70] इसी सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – "लोकनाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों, लोकविश्वासों और लोकतत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।[71]

अन्य लोककलाओं की ही तरह 'लोकनाट्य' का कोई विशिष्ट रचयिता नहीं होता। वह समस्त समाज की अभिव्यक्ति का प्रतीत तथा अनेक प्रतिभाओं के सम्मिलित चमत्कार का साकार स्वरूप होता है। उसमें जनजीवन की भावनाओं तथा उपलब्धियों की प्रतिच्छाया होती है तथा नाटक की सफलता–असफलता का भागीदार समाज होता

है।[72] लोकनाटकों का सृजन सामाजिक चिन्तन व परिवेश जन्य प्रतिक्रिया का स्वतः स्फूर्त एक ऐसा मंचीय प्रस्तुतीकरण है जिसमें सामूहिकता का योगदान रहता है तथा लोक चेतना व लोक संस्कृति का सम्यक् निर्वहन होता है। प्राचीन और समसामायिकता के दो कूलों के मध्य लोकनाटकों की सरिता प्रवाहित होती है। सरसता, सहजता, अकृत्रिमता, अनौपचारिक वेश सज्जा व वाणीविलास लोक नाटकों के सबसे बड़े आभूषण हैं। लोक नाटक बहुजन सम्प्रेषण का सर्वाधिक सशक्त मंचीय माध्यम है। यह सार्वभौमिक अभिव्यक्ति का लोकगृहीत रूप है जिसे किसी सरकारी या स्वैच्छिक संगइन के संरक्षक की अपेक्षा नहीं है। लोकनाट्यों की व्याख्या के लिए आज तक कोई लोकनाट्य शास्त्र नहीं रचा गया क्योंकि लोक जीवन की व्याख्या शास्त्रीय चेतना अथवा पांडितत्य पूर्ण अहम् चेतना द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों की सीमाओं में नहीं की जा सकती। लोक नाटकों का कथ्य पक्ष जितना विस्तृत है उतना ही शिल्प व्यापक। पात्र संरचना, संवाद योजना, वेश–भूषा, अभिनेता, वादित्र, सूत्रधार, दर्शक इत्यादि की अलग–अलग भूमिका रहती है लेकिन प्रस्तुतिकरण में इन सबकी सामूहिकता मनमोहक बनकर जब गूंजने लगती है तब दर्शक तो झूमता ही है गाँव की चौपाल या मंदिर का चबूतरा भी सार्थक हो जाता है। निश्चय ही लोकनाटकों में भारतीय संस्कृति का परमोज्जवल पक्ष अभिव्यंजित हुआ है। लोक संस्कृति के सजीव प्रहरी लोक नाटक हमारी, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक, आनुष्ठानिक तथा सांस्कृतिक आस्थाओं के वृहद् कोश हैं जिनके द्वारा लोक मानस ने ही नहीं बल्कि जनमानस तथा मुनि मानस ने भी अनुरंजित होकर आह्लाद अनुभव किया है। इसीलिए इन्हे पंचम वेद की संज्ञा देकर लोक ने स्वयं को ही सार्थक किया है।

6ब.3 लोक नाटकों के उद्‌भव की पृष्ठभूमि

लोकनाटकों के प्रचलित विभिन्न रूपों की नाटक के लक्षण ग्रन्थों में निरूपित मानदण्डों के आधार पर व्याख्या नहीं की जा सकती। आचार्य भरतमुनि से प्रारम्भ हुए नाट्य शास्त्र विवेचन की परम्परा में अभिनवगुप्त, धनंजय, रामचन्द्रगुणचन्द्र, नन्दिकेश्वर इत्यादि विद्वानों ने उपरूपकों की संख्या में वृद्धि की। इतना अवश्य सत्य है कि कोई भी एक उपरूपक वर्तमान लोक नाट्यों का जनक नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक उपरूपक में नाटकों के पृथक्–पृथक् अंगों का उल्लेख अवश्य उपलब्ध होता है जैसे श्री गदित संज्ञक उपरूपक में अंशतः संवाद गेय और शेष वाचित, हल्लीस में संगीत व नृत्य का प्रदर्शन, उल्लाप्य में एक अंक तथा विषय वस्तु पौराणिक, गीतात्मक संवाद, रासक में उच्च कुलोत्पन्न मूर्खनायक विदुषीनायिका, एक अंक तथा पांच पात्रों की कल्पना की गई है। यद्यपि यह सत्य है कि इन सभी उपरूपकों के उदाहरण लिखित रूप में अनुपब्ध हैं। हाँ, इतना अवश्य सत्य है कि कतिपय प्रादेशिक लोकनाटकों के शीर्षक इन उपरूपकों से साम्य रखते हैं जैसे – आसाम के मठों में प्रस्तुत किये जाने वाले अंकिया नाट्य उपरूपक अंक से साम्य रखते हैं लेकिन दोनों एक ही नहीं है। आंध्र प्रदेश में भागवत–मेलनृत्य–गीत मूलक नाट्य विधिनाटकम रूपक भेद वीथी से साम्य रखता हुआ भी अलग है। कश्मीरी भॉड़जश्न संस्कृत के के रूपक भाण से थोड़ी समानता रखता है हालाँकि संस्कृत भाषा तो एकपात्री गद्य प्रधान विद्या है। जिसमें पात्र नेपथ्य की ओर उन्मुख होकर कल्पित पात्रों से वार्तालाप करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि वर्तमान लोक नाटकों का मूल संगीतक है। संगीत तो केवल वाद्य संगीत के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु संगीतक के लिए तो सहगान, वाद्य, नृत्य, गीत और संवाद और प्रेक्षाशाला की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इसका प्रदर्शन भी रंगशाला में ही होता है। अभिनय संगीत के समन्वय का प्रामाणिक संकेत नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय के द्वारा प्राप्त होता है। महादेवी वर्मा ने भरतमुनि द्वारा प्रस्तुत अमृतमंथन को देखने के पश्चात् यह कहा था कि उसके पूर्व रंग के शुद्ध अभिनय में करण, अंगहार इत्यादि नृत्य के प्रकार और वर्द्धमानक आधारित गीत और महागीत के जोड़ देने से यह चित्र–संज्ञक अभिनय हो जायेगा।[73] कवि श्रेष्ठ कालिदास ने 'मच्छकटिक', 'मालविकाग्निमित्र' तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में भी गीतों का प्रयोग किया है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' एवं कालिकादास कृत 'मालविकाग्निमित्र' में 'संगीतक' का उल्लेख हुआ है। ग्याहरवीं शताब्दी में यादव प्रकाश रचित 'वैजयन्ती' में संगीतक की विशेषताओं का उल्लेख है। पन्द्रहवीं शताब्दी में शुभंकर रचित 'संगीत दामोदर' में गीत, वाद्य, नृत्य, रंगशाला और नट–नटी इन पांच तत्वों को संगीतक के लिए अनिवार्य माना है। इसी काल में उमापति उपाध्याय कृत 'पारिजातहरण', ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित 'धूर्त समागम' तथा विद्यापति के 'गोरक्ष विजय' नामक भाषा नाटकों में संगीतक शब्द का स्पष्ट उल्लेख है। पूर्व मध्यकाल से ही संस्कृत नाटक ह्रासोन्मुखी हो रहे थे, इधर पुराण कथाओं की ओर जन साधारण की रुचि बढ़ रही थी और देशी भाषा यथा अपभ्रंश के माध्यम से नाटकों की प्रेषणीयता का विस्तार भी हो रहा था। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' को भारतवर्ष की नाट्य–परम्परा में लोक प्रवर्तक काव्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार भाषा–संगीतक के माध्यम से नाटकों में लोकशैली तथा नागरिक शैली का तालमेल बनता जा रहा था। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में सन्त कवियों ने भी भाषा–संगीतक पद्धति को ग्रहण किया। आंध्र प्रदेश तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर्नाटक में भागवतलु सन्तों द्वारा प्रेरित भाषा संगीतकों को "भागवतम्" कहा जाता था। इसी शताब्दी में दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से अनेक सन्त वृन्दो ने ब्रज क्षेत्र की यात्रा की जिनमें आंध्र से पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य तथा गौड़ से महाप्रभु चैतन्यदेव तथा आसाम के शंकरदेव आदि उल्लेखनीय हैं। ब्रज भूमि की रास योजना ने अब नाटकों की भूमि का स्पर्श किया। इनमें लोक भाषा का ही प्रयोग होता था। कृष्ण लीला के साथ–साथ रामलीला का भी चलन प्रारम्भ हुआ। उत्तर मध्यकाल तक आते–आते सुदूर दक्षिण अंचल में तंजोर और मैसूर राज्य, पश्चिम में मराठा, राजस्थान तथा बुंदेलखण्ड की छोटी–छोटी रियासतें भी इन नाटकों को संरक्षण देने लगी थीं। मुस्लिम सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव लोक संगीत व धुनों में परिलक्षित होने लगा था। अठाहरवीं शताब्दी तक राजस्थान में चित्तौड़ तथा घेसुण्डा में 'तुर्राकलंगी' तथा 'माच' शैली का विकास हुआ। किशनगढ़ रियासतों के संरक्षण में "ख्याल" शैली का विकास हुआ जो आगे चलकर कूचामनी तथा शेखावटी शैली के रूप में विकसित हुई। राजस्थानी ख्यालों में शौर्य व श्रृंगार के साथ–साथ लोक संगीत, धुन व ताल का अद्भुत मिश्रण हुआ। मालवा का 'माच' तथा पंजाब–हरियाणा के 'स्वांग' का विकास भी इसी काल में हुआ। अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् राजनैतिक स्थिरता के कारण बम्बई और कलकत्ता में पारसी थियेटर का सूत्रपात हुआ। लोक नाट्य शैली के सांग, नौटंकी, जात्रा, माँच, भागवतमेल, दौडाड्डा, भवाई, करियाला, विदेसिया आदि रूपों का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में जनसाधारण को पूर्ववर्ती शताब्दियों की तुलना में राजनैतिक स्थिरता का अनुभव हुआ। फलस्वरूप नृत्य, संगीत और नाट्य कलाओं के प्रदर्शन में जनरुचि का विस्तार हुआ। लोकनाट्यों की प्रस्तुति में सामाजिक चेतना का सगुम्फन होने लगा। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखण्डों तथा कोरे उपदेशकों पर तीखा व्यंग्य किया जाने लगा था। यह सत्य है कि पश्चिमी, शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के दुष्प्रभावों ने इस परम्परागत सनातन नाटक शैली को भी प्रभावित किया है। परम्पराशील नाट्य और रंगमंच में दो हजार वर्षों की नाट्य–परम्परा के खण्डित अंश यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। एक ओर तो भरत द्वारा निर्देशिक पूर्व रंग के तत्व, दूसरी ओर जयदेव द्वारा प्रचलित संलाप और सूत्रधार की शैली, एक ओर भागवत धर्म के अवतारी पुरुषों की कथाएँ और दूसरी ओर मुगल दरबार के परिहास और विनोद, एक ओर हस्तमुक्तवाली में दी गई मुद्राओं का चमत्कार दूसरी ओर सत्रहवी शताब्दी की वेश–भूषा। उल्लेख योग्य बात यह है कि इन विभिन्न तत्वों से मिश्रित शैलियाँ अपने निजत्व का अब तक निर्वाह कर सकीं और उनमें से कुछ ने अपनी परम्परा अक्षुण्ण बनाये रखी हैं।

सारांश यह है कि लोकनाट्य की उत्पत्ति "नट" शब्द से हुई। "नट" का प्रमुख उद्देश्य अंग संचालन के माध्यम से किसी व्यक्ति या परिवेश को प्रस्तुत करना होता है। कालान्तर में इसी नट कला में गीत, नृत्य, वेश, हाव–भाव, संभाषण इत्यादि जुड़ गये। वर्तमान में नाटक के समझे जाने वाले अंगों का विकास एक साथ न होकर अलग–अलग समय और परिस्थितियों के सन्दर्भ में हुआ। ऋग्वेद एवं सामदेव की संभाषण प्रधान तथा भावोद्रेकपूरित ऋचाओं में, पुरुरवा और उर्वशी, यम–यमी के भाव संचालित संवादों में नाट्यबीज के दर्शन किये जा सकते हैं। इन वैदिक ऋचाओं में श्रवय आनंद ही मिलता था – दृश्य आनंद नहीं। कालान्तर में मनुष्य अपने पूर्वज युगपुरुषों की जीवन घटनाओं को वृक्षों की छालों, पशु चर्मों, दीवारों तथा वस्त्रों पर विविध रंगों से चित्रित करते थे। इन्हें किसी भी बाँस या लकड़ी पर लिपटा दिया जाता और गाँव के चौराहों पर इन्हें फैला कर प्रदर्शित किया जाता। राजस्थान में इस नृत्य, संगीत व अभिनयमूलक प्रस्तुति को 'पड़' कहा जाता है। बंगाल और बिहार में इन्हें 'यमपट्टा' कहा जाता है जिनमें नर्क जाने वाले कुकर्मियों तथा उनको मिलने वाली सजाओं का अंकन होता है। पंतजलि के 'महाभाष्य' में इन्हें 'शोभनिका' नाट्यकार कहा गया है। जैन और बौद्ध साधुओं के पास भी ऐसे चित्र होते हैं। कालान्तर में चकड़े पर रंगीन चित्रों को बना कर उन्हें बाँस की खपच्चियों पर चिपका दिया जाता तथा गायन, वाचन शैली के साथ नाट्य रूप दिया जाता था। राजस्थान में पाबूजी और देवनारायण की 'पड़ें' ऐसे ही प्रस्तुत की जाती है। बाद में छायापुतलियों की नाट्य प्रणाली विकसित हुई। इनमें भी गीत, संवाद, कथोपकथन, प्रारम्भ और अन्त की योजना की गई। छाया पुतलियों के स्रष्टा मानव मनोविज्ञान से परिचित थे इसलिए उनकी रंगाकृत, चेहरों पर रंग आदि पात्रों के मनोभावों तथा स्वभावों के अनुकूल होता था। इनका ही विकसित रूप हमें काष्ठपुतलियों तथा मानवीय नाट्य की मुखौटा प्रणाली के विकास में दिखाई देता है। प्राचीन जैन आगमों में तीर्थकरों के सामने प्रस्तुत होने वाले नाटकों का विस्तार से उल्लेख मिलता है। प्रायः इन नाटकों का रूप मौखिक होता था। इस प्रकार लोकनाटकों के उद्भव की यात्रा का सुदीर्घ इतिहास अत्यन्त ही रोचक रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6ब.4 लोक नाटकों के तत्त्व

यह सत्य है कि लोकनाटकों को आचार्य भरतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र' में उल्लिखित नाट्य–तत्वों की सीमाओं में आबाद्ध नहीं किया जा सकता। लोकनाटकों की संरचना और उसके अवयव स्वयंभू हैं तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए लोक नाटकों के निम्नलिखित तत्व स्वीकार किये जा सकते हैं –

कथावस्तु

लोकनाटकों की कथावस्तु किसी व्यक्ति विशेष की मानसिक सृष्टि की कल्पना से प्रसूत न होकर किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि विषय की हो सकती है। इनसे जुड़े कथानकों का विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से धार्मिक होना कोई आवश्यक नहीं है। इसीलिए धार्मिक कथानकों में वैदिक, पौराणिक, देवी–देवताओं के अलावा तेजाजी, पाबूजी व रामदेव जी जैसे लोक देवताओं का भी चरित्रांकन होता है। इन कथानायकों में अमर प्रेमी भी होते हैं तथा साधारण से साधारण पात्र भी अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। पारिवारिक पात्रों से संबंधित घटना प्रधान कथावस्तु से लोकानुरंजन होता है। लोकानाट्यों में आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथानक का उलझाव नहीं होता। कथा संबंधी अनेक प्रसंगों के विषय को दर्शकों के समक्ष स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। "लोक नाट्यों का रंगमंचीय सार्वजनिक प्रदर्शन तो उस सम्पूर्ण नाटक का अवशिष्ट अंश है जिसके अन्य दृश्य दर्शक पहले ही अपनी कल्पना में देख चुका होता है। इसीलिए कथावस्तु के इसी अंश को रचनाकार स्पर्श करता है जिसके माध्यम से वह नाट्य तत्वों को अधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कर सके। शेष को वह छोड़ देता है।"[74] डॉ. जगदीशचन्द्र माथुर ने लोकनाट्यों (परम्पराशील नाट्य) की कथावस्तु के विषय में लिखा है – "तीन प्रकार की कथावस्तु परम्पराशील नाट्यों या भाषा संगीतकों में मिलती है। एक तो सारे देश के प्रेक्षकों की पौराणिक कथाओं और पात्रों में विशेष अभिरुचि इन नाटकों में प्रतिबिम्बित होती रही है, दूसरे सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया–स्वरूप यथार्थ जीवन को प्रदर्शित करने वाली कथाएँ भी प्रायः प्रारम्भिक रूप में कुछ नाटकों का आधार रही हैं। तीसरे, प्रेम और शौर्य की कथाएँ, जिनका निरन्तर प्रवाह जनजीवन को सिंचित करना रहा है, कुछ नाट्य शैलियों में विशेषतः पाई जाती हैं।"[75] लोक नाट्यों का अधिकांश कथा कलेवर पौराणिक कथा प्रसंगों से ही उद्भासित है। इसका कारण यह रहा है कि तद्युगीन आडम्बर धार्मिक कृत्यों जो शाक्तो, तांत्रिकों और वाममार्गियों द्वारा पूर्ण कये जाते थे तथा संस्कृत राजदरबार संबंधी उच्चवर्गीय समाज की तथाकथित अनैतिकतापूर्ण आचरण के विरुद्ध भी इन लोकनाटकों की रचना हुई। अधिकतर भागवत धर्म की कथाएँ इस देश के एक किनारे से दूसरे छोर तक परम्परानुमोदित होने के कारण लोकनाटकों की प्रिय कथावस्तु बनी। आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में हिरण्यकश्यप और नृसिंह अवतार का वृतान्त लोक नाटकों का प्रधान कथानक बना है। अयोध्या में रामलीला तो बंगाल में आदि शक्ति भगवती का मातृ स्वरूप दुर्गा और चण्डी की लीला "जात्रा" नाटकों में अतिलोकप्रिय रही है। लोकनाटकों में सामाजिक कुरीतियों, ग्रामीण समाज, बदलती आर्थिक–सामाजिक परिस्थितियाँ तथा समस्याएँ भी लोकनाटकों के कथ्य हैं। हिमाचली लोक नाट्य 'करियाला' में साहुकार, नम्बरदार, थानेदार, अंग्रेज साहब व मेम आदि ही नहीं वरन् साधुओं के आडम्बर तथा फिल्मी प्रभाव पर भी व्यंग्य इन कथानकों में मिलता है। बिहार के 'बिदेशिया' में वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, महाराष्ट्र के "तमाशा" में समसामायिक समाज, प्रेम विवाह आदि पर भी कथावस्तुएँ संयोजित की जाती है। वर्तमान नागरिक और साहित्यिक नाटक तो एक अन्तर्द्वन्द्व से उद्वेलित हैं – एक ओर तो सामाजिक समस्याओं का खिंचवा और दूसरी ओर विकृत–व्यक्तित्व के अचेतन मानस का आग्रह परम्परागत आंचलिक नाट्य इस दुविधा से मुक्त है। वह बिना अंकुश के मनोरंजन कर सकता है और बिना संशय या हिचकिचाहट के उपदेश भी देता है।[76] निश्चय ही लोक नाटकों की कथावस्तु का कैनवास बहुत ही विस्तृत और व्यापक है। समाज के सभी वर्गों की अच्छाइयों अथवा विकृतियों का सहज चित्रांकन करने में लोक नाटकों को कोई संकोच, भय या हिचक नहीं होती। लोकनाटक, वास्तव में अभिनयात्मक अवधूत चितेरे हैं, अक्खड़ और फक्कड़, मान–अपमान से परे, सर्वथा मुक्त होकर जीवन्त प्रस्तुत करने वाले कथानकों के कारण ही ये चिरंजीवी हैं। लोकनाटकों की कथावस्तु का एक प्रमुख विषय प्रेमाख्यान, शौर्य और रोमांच भी है।

दिल्ली और आगरा क्षेत्र के सॉंग तथा 'सांगीत' तथा पंजाब में राजा रसालू की कथा का 'सांग' आदि में अत्युच्च कोटि का प्रेमाख्यान प्रापत होता है। राजस्थान के 'ख्याल' तथा मालवा के 'मॉंच' में उन वीरों के चरित्र प्रसंग अधिक है जिन्होंने सर्वसाधारण जनता के लिए तथा पशुधन की रक्षा निर्वाह आदि के निर्मित अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। इन कथानकों में जातीय गरिमा भी है और नारी प्रतिष्ठा भी है। संसार की नश्वरता, गुरु भक्ति और उपदेशात्मकता का सरस अंकन भी इनमें उपलब्ध होता है तेजाजी, पाबूजी, रामदेवजी की कथा राजस्थान के ख्याल

व मॉच में, गुजरात के भवाई में जसमा ओडण, मालवा के मॉच में राजा भरथरी की कथा इसी उद्देश्य से ग्रहण की गई है। प्रेमाख्यान प्रायः दुखान्तक है। प्रेम और त्याग लोकनाटकों के लिए स्वतंत्र रूप से प्रेक्षाग्रहो की योजना नहीं होती। प्रायः मंदिर, सार्वजनिक स्थलों, ठाकुरद्वारों, सेठों की हवेलियों, गाँव के ठाकुर के गढ़ों के बाहर, चौपाल आदि स्थानों पर लोक नाटकों का मंचन होता है। प्राचीनकाल से ही देव स्थान सामूहिक पूजन और उपासना ही नहीं बल्कि मनोरंजन और कला की साधना के स्थान रहे हैं। इसी कारण श्रीमद्भागवत में मंदिर की कार्य प्रणाली के विभिन्न अंगों में नृत्य–नाट्य प्रस्तुत करना भी प्रमुख कार्य माना गया है।

धारवाड़ के मुगुड नामक स्थान पर एक मंदिर में सन् 1045 ई. के शिलालेख में नाट्यशाला के निर्माण का उल्लेख मिलता है। ग्यारहवीं शताब्दी में उन्नीसवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में नट–मण्डप बनाने की परम्परा रही है। महाकवि जयदेवकृत "गीत गोविन्द" ने तो मंदिरों और रंगशाला के मध्य अभिन्न संबंध स्थापित कर लिया था। केरल में 'कूथाम्बलम्' असम के मठों में 'ओनारधर' ब्रजक्षेत्र में रासमण्डप तथा बंगाल में मंदिरों के आहतों में लोकनाटकों के मंचन करने की शताब्दियों पुरानी पम्परा रही है। बरसाना और गाँव में मंदिर के गर्भग्रह के सामने ही मण्डप का निर्माण करके लीलाओं का अभिनय किया जाता था। गुजरात की 'भवई' का प्रदर्शन आबू के पास स्थित अम्बाजी के मंदिर में ही किया जाता रहा है। हिमाचल प्रदेश का करियाला–नाट्य स्थानीय लोकदेवता 'बिज्जूदेवता' के मंदिर के निकट खेला जाता है। इन लोकमंचों की रंगशाला में केवल धार्मिक ही नहीं वरन् सभी प्रकार के लोक नाटकों का मंचन हो सकता है।

लोक रंगमंच की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि उनमें बैक–ग्राउंड सिनेरी की व्यवस्था नहीं होती। प्रेक्षक प्रायः खुले मैदानों या स्थानों पर बैठते हैं। उत्तरी कर्नाटक में यक्षगान की एक शैली का ही नाम 'बयलाट' है, 'बय' का अर्थ है खुला स्थान और "लाट" का मतलब खेल या लीला है। असम के 'भाओनघर' में अनुमानतः सौ गज लम्बे तथा बीरा गज चौड़े मण्डप में दुहरी छत लकड़ी के स्तम्भ होते हैं। मण्डप की भूमि कच्ची होते हुए भी पुती होती है। एक ऊंचा स्थान बनाकर उस पर भागवत ग्रंथ रखा जाता है। गायन वाचन और वादियों की मण्डली के बेठने का स्थान अलग निर्धारित होता है। मध्य में चालीस गज की आयताकार भूमि "रंगस्थली" कही जाती है जिस पर चन्दोवा तना रहता है। अभिनेतागण वादकों की दिशा से मंच पर प्रवेश करते हैं। अलग–अलग स्थानों को दिखलाने के लिए अलग चौकियाँ रख दी जाती हैं जैसे एक द्वारका की तो दूसरी कुन्दनपुर की। तमिलनाडु में 'मेलातुर' की रंगशाला में सौ गज तक गली को नारियल के पत्तों से ढक दिया जाता है। हिमाचल प्रदेश में जहाँ अखाड़ा होता है उसके पास अग्नि जलाकर अभिनय किया जाता है। बंगाल के 'जात्रा' में मंच ऊंचा बनाया जाता है जिसके चारों ओर दर्शक बैठते हैं। उत्तर प्रदेश की 'रामलीला' में रंगस्थल विशाल होता है। पांच सौ गज की आयताकार भूमि के चारों और खेमा लगाकर 'बाड़ा' बनाया जाता है। वही पर बल्लियों से बांधकर एक चौड़ा तख्ता भी तैयार किया जाता है। मालवा और राजस्थान के "मांच" के लिए तो चौमुहाने पर तिमंजिला मंच खड़ा किया जाता है। 'तुर्राकलंगी' के लिए ऐसा मंच निर्माण किया जाता है जिसमें एक तरफ महल होते हैं तथा मध्य में खुला युद्धस्थल होता है। लोक नाटकों के मंच में 'पर्दा गिराओ' 'पर्दा उठाओ' का विधान नहीं होता, किसी पात्र के प्रवेश के पूर्व उसका परिचयात्मक प्रवेश गीत गाया जाता है। 'रामलीला' में पृष्ठभूमि के तौर पर एक पर्दा टंगा रहता है, उसे "पिछवई" कहते हैं। असम के अंकिया नाटक में यवनिका को 'आड–कापड़' कहा जाता है। लोक नाटकों में "ग्रीन–रूम" की अलग से कोई व्यवस्था नहीं होती। प्रायः पात्र गायक के ही निकट बैठते हैं। अधिकांश पात्रों को मंच पर खड़ा ही रहना पड़ता है। महाराष्ट्र के "तमाशा" में गायक मण्डली कलाकारों के पीछे ही खड़ी होकर गीतों की रीढ़ सम्हाले रखती है।

6ब.5 वेशविन्यास और अलंकरण

लोक नाटकों के मंचन में पात्रों की वेश सज्जा का मौलिक महत्व है। यहाँ कहीं–कहीं पर आचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' के अंगों की अनुपालना होती है। यह अनुपालना भी क्षेत्रीय विशिष्टताओं से युक्त है, जैसे भरतमुनि के निर्देशानुसार विदुषक के हाथ में वक्रदण्ड होना चाहिए। राजस्थान के लोक नाटक तेजाजी में सहायक अपने हाथ में लकड़ी रखता है। कश्मीरी लोक नाटकों में विदुषक "मसखरा" अपने साथ एक टेढ़ी लकड़ी रखता है। केरल के "कूटियाट्टम" का विदुषक देढ़ा दण्ड रखता है। वह अपने मुख, बदल और भुजाओं पर चावल का रंगा आटा, मस्तक, नाक, कपोल पर लाल रंग, आँखों में गहरा काजल जो कानों तक फैला हुआ रहता है, एक मूँछ ऊपर उठी व दूसरी गिरी हुई होती है। वह अपने पास एक टेढ़ा दण्ड भी रखता है। लोक नाटकों के पात्रों की वेशभूषा भी विचित्र विशेषताएँ रखती है। प्रायः चटकीले रंग के वस्त्रों का प्रयोग होता है। सामान्य पात्रों की वेशभूशा परम्परागत

अलंकरण से सज्जित होती है। कण्ठ में मोतियों व मूँगों के हार, कोहनी पर भुजबन्द, कलाई पर तोल पवाड़ा भुजाआं में सोने की पत्ती, सिर पर मुकुट, कानों में कर्णफूल तथा कमर में "दगले" नामक कढ़ाईदार वस्त्र सुशोभित होता है। देवताओं व राक्षसों के मुकुटों की बनावट में अन्तर होता है। राक्षस पात्रों की मुखसज्जा में आँखों व मूँछों को बड़ा आकार दिया जाता है। बादशाहों, सुल्तानों, बेगमों, शहजादियों व सामन्तों सरदारों की वेशभूषा में मध्ययुगीन मुस्लिम सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव लक्षित हाता है रासलीला के श्रीकृष्ण व रामलीला के राम जामा व चूड़ीदार पाजामे भी पहन लेते हैं।

6ब.6 लोक नाट्य प्रस्तुति

लोक नाटकों की प्रस्तुति भिन्न परिस्थितियों में भी एक विचित्र समानता रखती है और यह समानता की लोकमानस की सार्वदेशिक समानता को प्रमाणित भी करती है। आचार्य भरतमुनि ने भी अपने 'नाट्यशास्त्र' में रंगपूजन तथा पूर्वरंग का उल्लेख किया है। केरल के 'कूट्टियाटम' में नाट्य प्रस्तुति के पूर्व मृदंग बजाया जाता है तत्पश्चात् नान्दीश्लोक पाठ के पश्चात् मंच पर पवित्र जल छिड़का जाता है। सूत्रधार एक विशिष्ट मुद्रा में (क्रियाचवट) नृत्य करते हुए मंच पर आकर पदों का पाठ करता है। फिर मुख्य विषयवस्तु की 'स्थापना' अर्थात् प्रमुख पात्रों का परिचय देता है बाद में विदूषक उपस्थित दर्शकें को पुरातन पुरुषार्थ चतुष्टय के स्थान पर नूतन पुरुषार्थ की व्याख्या करते हुए विनोद, वंचना, अशन व राजसेवा को महत्ता बतलाता है। 'भवई' व 'भागवत मेल' में सर्वप्रथम विघ्नों के स्वामी श्री गणेश जी की वन्दना होती है। कश्मीरी के "माण्डजश्न" में मुसलमान–कलाकार परमात्मा की वन्दना तथा पूजा पाठ अवश्य करते हैं। सांगीत तथा 'बिदेसिया' में गणेशा, सरस्वती व लक्ष्मी की उपासना होती है। 'करियाला' (हिमाचल प्रदेश) लोक नाटक की प्रस्तावना में विदूषक एक स्त्री–पात्र 'चन्द्रावली' के साथ नृत्य करते हुए उपस्थित होता है। उत्तर प्रदेश के 'नक्काल' में एक विदूषक एक दूसरे कलाकार को जोड़ा बनाकर लाता है और दर्शकों को हँसाता हुआ उसके विशिष्ट गुणों का बखान करता है। 'माँच' में पहले एक भिश्ती आता है और अपने वंश का परिचय देने के पश्चात् मशक से जल छिड़कता है।

लोकनाटकों की प्रस्तुति का मूल उद्देश्य यह है कि वह अनौपचारिक, आत्मीय तथा अकृत्रिम ढंग से मंचित हो। इसीलिए लोकनाटकों में अभिनय करने वाला अभिनेता पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त अथवा पूर्वाभ्यासी नहीं होता। दृश्यावली की प्रस्तुति भी प्रतीकात्मक होती है। मंच पर एक पेड़ की शाखा सम्पूर्ण जंगल का बोध कराती है। कोई पात्र नीले रंग का साफा लहराकर बहती हुई नदी का आभास करा देता है। मंच पर दस बीस चक्कर काट लेने पर श्रीराम–लक्ष्मण व सीताजी की वन यात्रा सम्पन्न हुई मान ली जाती है। एक छोटी सी छलांग ही हनुमान जी की सागर छलांग मान ली जाती है। अभिनेता थकने पर किसी भी दर्शक के साथ बैठकर धूम्रपान कर सकता है। यदा–कदा दर्शकों में से भी कोइ अभिनेता भी हो सकता है। रंगमंच पर प्रवेश करने की कोई विशेष औपचारिकता नहीं होती। भिखारी का अभिनय करने वाला पात्र दर्शकों के मध्य से ही भीख मांगता हुआ मंच पर आता है तो राजा किसी निकटस्थ मकान से ऐसे उतरता है जैसे वह महल से ही आ रहा हो। कोतवाल किसी दर्शक को बन्दी बनाकर मंच पर प्रस्तुत कर सकता है। आवश्यकता होने पर कोई भी पुरुष साड़ी लपेट कर घूंघट निकाल कर स्त्री पात्र का अभिनय कर सकता है। यह दर्शक प्रदर्शकों का भाव सम्प्रेषण व साधारणीकरण का अनुठा प्रमाण है। दर्शकों का अभिनय के दौरान अभिनेताओं के साथ अपूर्व भाव साम्य स्थापित हो जाता है। राम का वनगमन प्रसंग उन्हें रुला देता है तो हनुमान जी का लंकादहन उन्हें उल्लसित कर देता है। कुछ पात्र अपने हाथ में एक छड़ी रखते हैं जो उनके अभिनय के दौरान अंग संचालन के साथ–साथ घूमती रहती है। 'गवरी' लोकनाट्य में तो सम्पूर्ण गाँव की ही भूमिका रहती है। यहाँ का सूत्रधार 'कूटड़िया' ही पात्रों से विचित्र भाव भंगिमा में प्रश्न करता है और खुद ही उत्तर भी देता है। लोक नाट्यों की प्रस्तुति में संवाद शैली की अद्भुत महत्ता रहती है। राजस्थान के ख्याल, मध्यप्रदेश के माँच, महाराष्ट्र के तमाशा में पात्र अपने संवादों की अदायगी को हृदयस्पर्शी बनाने के लिए एक दूसरे को पार करते हुए विपरीत दिशाओं में नृत्य पैर की ठोकर मार कर करते हैं व तीव्र गति से चक्कर काट कर खड़े हो जाते हैं। निकहम लोकनाटकों में स्वरों की प्रधानता होती है तो कही शब्द तथा किसी में ताल प्रमुख होती रही। कथकली और यक्षगान में लय–ताल युक्त पादचाप गीत की प्रधानता रहती है जबकि राजस्थानी ख्यालों व मालवी माच में शब्द प्रधान हैं। रासलीला, जात्रा, विदेशिया में लालित्य भरे स्वरों की प्रमुख भूमिका होती है।

लोकनाट्यों की प्रस्तुति में स्त्रियों का अभिनय स्त्री पात्रों के लिए नहीं होता बल्कि पुरुष पात्र ही यह कार्य सम्पन्न करते हैं। राजस्थान, महाराष्ट्र, आसाम, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि में खेले जाने वाले सभी लोकनाट्यों में स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष ही निभाते हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता आदि की

भूमिका बाल या किशोर उम्र के कलाकारों द्वारा अभिनित होती है। भवई में मुख्य भूमिका भी पुरुष पात्र निभाते हैं। यह सब कुछ सम्भवतः इसीलिए हुआ होगा कि लोक नाट्य प्रायः रात–रात भर असंख्य दर्शकों के समक्ष खेले जाते हैं जिनमें निरन्तर नाच, गगनचुम्बी उछलकूद, छलागें, त्वरित चालें, दर्शकों, की बेबाक टिप्पणियों आदि के कारण ही स्त्रियों की लोकनाटकों में अभिनय करने की छूट नहीं दी गई।

लोकनाटकों की प्रस्तुति में दर्शकों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। लोकनाटकों के ग्रामीण दर्शकों को वंशानुगत नाट्य अनुराग प्राप्त होता है। बचपन से उनके मनोरंजन का प्रमुख साधन लोक नाटक ही रहा है अतएव उसका संबंध सहज व अनौपचारिक है। रंगमंच पर कार्यरत श्रान्त क्लान्त कलाकार को विश्राम कोई भी दर्शक दे सकता है, जनता भी उसका विरोध नहीं करती। दर्शकों का बचपन से ही लोक नाटकों के प्रति अनुराग होता है। वे यह भी जानते हैं कि उने आत्मीय जन, संबंधी व मित्र ही तो इसके कलाकार हैं, इसलिए आवश्यकता होने पर अपने अपने घरों से स्त्री–पुरुषों की श्रेष्ठ वेशभूषा, अलंकरण व प्रसाधन सामग्री तो देते ही हैं, साथ ही अपने घरों को भी वे मंचीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए दे भी देते हैं। घर का चबूतरा, झरोखा, आंगन, छत, अट्टालिका, खिड़की सब नाटक में काम आ सकती है। अभिनेता व दर्शक प्रदर्शक के मध्य में ही उसे उच्च स्वर में गाकर या बोलकर याद दिला देते हैं और इस प्रक्रिया में नाटकीय रसानंद की अनुभूति में कोई विघ्न भी नहीं आता। अनेक दर्शकों को तो पूरा नाटक ही कण्ठस्थ होता है। रामलीलाओं में दर्शकों को हनुमान जी की वानरसेना, सीता की सखियाँ तथा राक्षसी सेना के सिपाही बनने में कोई संकोच नहीं होता। लोकनाटक देखने के लिए दर्शकों को टिकट नहीं लेना पड़ता लेकिन नाटक के दौरान आरती उतारने के पश्चात् जब थाली फिरती है त बवह अपनी जेब खाली करने में संकोच नहीं करता। अतएव यह कहा जा सकता है कि लोकनाटकों को दर्शक अपना हृदय देकर देखता है।

6ब.7 लोक नाटकों में नृत्य व संगीत–सौन्दर्य

लोक नाटकों का मंचीय संगीत व नृत्यगीत सामान्य दैनिक जीवन में गाये जाने वाले लोकगीत और लोकनृत्यों से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी भावमुद्राएँ तथा स्वर लहरी में पूर्णतः पार्थक्य है। दोनों के गायक तथा नर्तक भिन्न–भिन्न परिवेश में अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। रंगमंच पर कलाकारों के अभिनय का एक अनिवार्य अंग बनकर गायक जब उच्च स्वर में टेर छेड़ता है तो दूर–दूर तक उसकी स्वर लहरी गूँज उठती है। वहाँ ध्वनि विस्तारक यंत्रों की सुविधा नहीं होती। उन गीतों में संवाद भार वहन करने की अपूर्व क्षमता होती है। यहाँ स्वर–ताल के व्याकरण की श्रृंखलाएँ नहीं होती बल्कि प्रसंगानुसार उनकी संयोजना होती है। क्रोधावेश में गीतों की स्वर लहरी गद्यात्मक शब्दोच्चारण बन जाता है। करुणोद्रेक करने के लिए पीलू, साहेनी, कालींगड़ा, मांड आदि राग, दीपचंदी, कहरवा आदि तालों में स्वतः ही निबद्ध होकर प्रस्तुत हो जाती हे। कभी–कभी गीत की स्वर लय और ताल की गति के साथ नृत्य प्रतिस्पर्धा भी हो जाती है। लोक नाटकों में गीतों की धुनें लयात्मक अधिक होती है। गीत का स्थायी व टेर समाप्त हो जाने के साथ ताल द्रुत हो जाता है और अभिनेताओं के पांव थिरकने लगते हैं। फिर ताल विलम्बित हो जाता है। 'गवरी' में थाल व मांदले की झंकार ऐसा ही सम्मोहन उत्पन्न कर देती है। मध्यप्रदेश के 'मांच' तथा उत्तरप्रदेश की 'नौटंकी' में ढोलक तथा नगाड़ा वादन सम्मोहित कर देता है। 'तमाशा' में लावणी की धुन और पवाड़ा छन्द सम्पूर्ण प्रस्तुति को अनुपम बना देते हैं। 'यक्षगान' और 'कुचीपुडी' में प्रत्येक अभिनेता पद गाता है और फिर अंग भंगिमाओं द्वारा उन्हें अभिनीत करता है। अभिनेताओं का अंग–प्रत्यंग भाव व्यंजित कराने में काम आता है। जहाँ उत्तर भारत में लोक नाट्यों में गीत और नाच प्रधान होते हैं वही दक्षिण भारत में अभिनय और संवाद मूलक गीतों की प्रधानता रहती है। हरियाणा के "स्वांगों" में गीतों की प्रधानता अधिक है। मंच पर अभिनेताओं के दल एक दूसरे के सामने बुलंद आवाजों में लम्बी–लम्बी आलापों में गीत गाते हैं। उत्तर प्रदेश की 'रामलीला' व 'कृष्णलीला' में क्रमशः रामचरितमानस और श्रीमद्भागवत के कारण अलग से कोई संवाद रचना नहीं होती। दोहा, चौपाई की परम्परागत गायन पद्धति का प्रयोग होता है तथा उसका अर्थ गायन में अभिनेता द्वारा बताने की अवश्य परम्परा है। रामलीलाओं में लोक शैली में डांडिया नृत्यों का समावेश अवश्य किया जाता है। कभी–कभी नन्ददास, ध्रुवदास एवं ब्रजवासीदास की रचनाओं व गायकी की भी सहायता ली जाती हैं। मणिपुर की रासलीला में मणिपुरी गीत–नृत्य शैली का उपयोग होता है। बंगाल की 'जात्राओं' में संवादमूलक गीतों का अभाव है। राजस्थानी 'ख्यालों' में गीत तथा नृत्यों की अनुपम छटा है। 'तुर्रकलंगी' में नृत्यपक्ष का अभाव सा ही है और गेय पक्ष भी दुर्बल है।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि लोक नाटकों का मंचन व अभिव्यंजन सामूहिक सृजन की अपूर्व सहभागितामण्डित प्रदर्शन की लोकधर्मी कला है। लोक नाटकों का प्रदर्शन एक सामाजिक प्रक्रिया है। सम्पूर्ण गाँव की भागीदारी के साथ लोक नाटकों का प्रदर्शन एक सामाजिक प्रक्रिया है। सम्पूर्ण गाँव की भागीदारी ही लोक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ सामान्य ग्रामीण कलाकारों की वेश सज्जा जुटाते हैं, संगीतकार वाद्य देते हैं और बजाते भी हैं, रंगरेज निःशुल्क पोशाकें रंग देता है, दर्जी कपड़े सीता है, हलवाई नाश्ता–पानी करवाता है, खाती रंगमंच बनाता है, महाजन सारा खर्चा देता है, ठाकुर संरक्षण तथा विदाई में दक्षिणा देता है, गाँव का सफाई कर्मचारी व भिश्ती छिड़काव करने में पीछे नहीं रहते। यदि कोई अभिनेता गायन में कमजोर दिखलाई देता है तो दर्शकों में से कोई भी उसका स्थापन्न हो सकता है। जब कोई दर्शक नाटक मंचन के मध्य कलाकार के रूप में उपस्थित होता है तो एक विचित्र सी आनन्दपूर्ण उत्तेजना की अनुभूति करता है। वास्तव में, लोक नाटक लोकाभिव्यक्ति का मनोहर गीत, संगीत, नृत्य व अभिनय मूलक नाट्य विधा है और लोक आस्था व लोक चेतना का विशाल दर्पण भी है।

6ब.8 लोक नाटकों का वर्गीकरण

लोक नाटकों का वर्गीकरण केवल अध्ययन की सुविधा के लिए किया जा सकता है क्योंकि वर्गीकरण करने में हमारी जो पांडित्य चेतना कार्य करती हे या हमारे शास्त्रीय ज्ञान का अभिमान जब क्रियाशील होते हैं तब लोक चेतना की अकृत्रिम सहज शोभा मंद पड़ने लग जाती है। 'लोक' तो अपने मूल में ही संरक्षित है और सुरक्षित भी है। लोक नाटकों की सनातन परम्परा को डॉ. श्याम परमार ने निम्नलिखित आधार पर वर्गीकृत किया है।[77]

लोकधर्मी नाट्य परम्परा

- सामयिक लघु प्रहसन, नाटिका
  - प्रहसन स्वांग या नकल
    - होली के अवसर बहुरूपियों द्वारा पर परुषों द्वारा
  - भॉड़–भड़ैती
- धार्मिक पौराणिक कथाओं पर आधारित
- ऐतिहासिक (मध्यकालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित)
- लौकिक किवदंन्तियों पर आधारित

पेशेवर लोगों द्वार

- स्त्रियों द्वारा
- पुरुषों द्वारा
- बालक–बालिकाओं द्वारा

डॉ. सत्येन्द्र ने प्रवृत्ति के आधार पर लोक नाटकों का निम्न वर्गीकरण किया है –[78]

लोकनाट्य

- नृत्य प्रधान
- नाट्य हास्य प्रधान
- संगीत प्रधान
- नाट्यवार्ता प्रधान

"आइने अकबरी" में उल्लिखित कीर्तनियों का वर्तमान रूप "रास" में देखने को मिलता है जो नृत्य–गीत प्रधान नाटक रूप है। सम्राट अकबर महान् के काल में हास्य प्रधान नाटक ही मॉड़ है। इन्हें संस्कृत रूपक 'भांड़' का एक भेद मान सकते हैं। संगीत प्रधान कथाबद्ध नाट्य रूपों के अंतर्गत नौटंकी, भगत, मॉच आदि की गणना की जा सकती है। नाट्य वार्ता प्रधान में सामान्य संवाद के साथ–साथ यदा–कदा संगीत का उपयोग होता है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने राजस्थानी लोकनाटकों का अध्ययन करते हुए वर्गीकरण के निम्नलिखित बिन्दु निर्धारित किए हैं –

1. बोली अथवा भाषा 2. भौगोलिक स्थिति 3. रंगमंच 4. नाट्य तत्व 5. पर्व एवं उत्सव 6. उद्देश्य 7. रंगशैली 8. शिल्प प्रक्रिया 9. अन्य आधार।79 इसी श्रृंखला में उन्होंने रंगमंच, नाट्य तत्व तथा उद्देश्यों की दृष्टि से वर्गीकरण करते हुए लिखा है – "रंगमंच के अनुसार जिन नाट्यों के लिए जिस प्रकार का मंच उपयोग में लाया जाता है उसके अनुसार 1. सर्वादिशीय लोकनाट्य 2. त्रिदिशीय लोकनाट्य 3. मंडपीय लोकनाट्य 4. अट्टाली लोकनाट्य 5. तिबारी लोकनाट्य 6. अमंचीय लोकनाट्य।... नाट्य तत्वों के आधार पर नृतय प्रधान, गीत प्रधान, अभिनय प्रधान, वेशभूषा प्रधान तथा काव्य प्रधान लोकनाट्य कहे जा सकते हैं।... उद्देश्य के अनुसार लोकनाट्यों का वर्गीकरण इस प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होगा। 1. आदिवासियों के लोकनाट्य 2. सामुदायिक लोकनाट्य 3. व्यावसायिक लोकनाट्य।"[80] आदिवासियों के लोकनाटकों से डॉ. भानावत का तात्पर्य संभवतः पर्वतीय तथा वनवासी आदिवासी समाज से हो सकता है। सामुदायिक लोकनाटकों से उनका प्रयोजन सामाजिक आनंद व उल्लास पर आयोजित नाटकों से तथा व्यावसायिक लोकनाट्य तो व्यवसाय प्रधान हो सकते हैं। लेकिन इस वर्गीकरण को पूर्णतया सटीक नहीं कहा जा सकता। मेरी दृष्टि में लोक नाटकों के वर्गीकरण का एक आधार यह भी हो सकता है।

लोक नाट्य

विषयवस्तु परक	क्षेत्रीय आधार पर	शिल्पगत
1. धार्मिक पौराणिक लीला व लोकदेवी–देवताओं के आख्यान तथा आनुष्ठानिक (होली, दीवाली आदि)	1. नगर	1.मंचीय व्यवस्थापरक
2. सामाजिक पारिवारिक स्वाँग	2. गाँव या कस्बा	2. नृत्य–गीत संवादपरक
3. विशुद्ध ऐतिहासिक प्रसंग	3. वन्य जातियाँ	3. लघु प्रहसनी परक
4. इतिहासाश्रित प्रसंग		4. दीर्घावधि परक
5. लोक किंवदन्ती परक		5.अभिनय की रंग शैली परक
6. मनोरंजनात्मक		
7. प्रेमाख्यान मूलक		

6ब.9 सारांश

सारांशत यह कहा जा सकता है कि लोक अनुरंजनमूलक अभिव्यक्ति का सर्वाधिक अनुकरण मूलक रूप 'लोकनाट्य' लोक चेतना की अभिषेयता के मूर्त्त रूप है जो सामूहिक सृजनशीलता तथा सम्प्रेषणीयता का भी सर्वोत्तम प्रकाशन है। लोक नाटक, लोक रंगमंच पर लोक कलाकारों द्वारा लोक मानस की आस्थाओं की कलात्मक अभिव्यंजना का सुन्दरतम निदर्शन है। लोकानुरंजन का आडम्बरहीन, अकृत्रिम, शास्त्रीय नियमावली की जकड़ से मुक्त सनातन मनोरंजक मंचीय साधन है।

6ब.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. लोक नाटक किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2. लोक नाटकों के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3. लोक नाटकों का वर्गीकरण कीजिए।

प्रश्न 4. लोक नाटकों का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–6 स
लोक गाथा

संरचना

- 6स.0 प्रस्तावना
- 6स.1 उद्देश्य
- 6स.2 लोक गाथा
- 6स.3 लोकगाथाओं की व्युत्पत्ति
- 6स.4 लोकगाथाओं का वर्गीकरण
- 6स.5 लोकगाथाओं का वैशिष्ट्य
- 6स.6 सारांश
- 6स.7 अभ्यास प्रश्नावली

6स.0 प्रस्तावना

आभिजात्य समाज के संस्कार, संस्कृति तथा मनोरंजन के स्रोत से सर्वथा हट कर 'लोक' समाज ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए जिन साधनों का विकास किया है उन श्रुत परम्पराओं पर आधारित गेय स्रोतों में लोकगीत तथा लोक गाथाओं का शीर्ष स्थान है। 'लोक गाथा' सम्पूर्ण लोक साहित्य संसाकर की दृश्य–श्रव्य विद्या है। संगीत की पृष्ठभूमि में दीर्घाकार कथा का गेय रूप ही लोकगाथा है।

6स.1 उद्देश्य

इस अध्ययन से लोक गाथा की सम्यक् जानकारी हो सकेगी।

6स.2 लोकगाथा

लोकगीतों का प्रबन्धात्मक स्वरूप ही "लोकगाथा" है। अंग्रेजी में इस विद्या के लिए 'बैलेड' शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द की व्युत्पति लैटिन शब्द `Ballare' बैलारे जिसका अर्थ 'नाचना' है, से हुई है। राबर्ट ग्रेव्स के मतानुसार संगीत व नृत्य व नृत्यमिश्रित ऐसा गेय रूप जो सामूहिक रूप से गाया जाता gksA ''It is connected with the word ballad' and originally meant a song or refraintended as accompaniment to dancing but later covered any song in which a group of people socially joined.81 वैबस्टर शब्द कोश के अनुसार `ballade' का अर्थ dancing song' तथा ballare का अर्थ to dance' बतलाया गया है। A short narrative poem, especially such as is adepted for singing a poem partabing of the nature both of the apic and the lyric.''82 कालान्तर में इसका एक यह अर्थ भी माना गया कि किसी अज्ञात रचनाकार रचित ऐसी कथात्मक पद्य रचना जो सर्वथा सरल, वाचिक, परम्परागत तथा अनलंकृत हो, वहीं "लोकगाथा" है। प्रो. किटरिज के अनुसार "कहानी संवलित गीत अथवा ऐसी कहानी जो गीतों में व्यक्त हो गई हो।"83 (A ballad is a song that tells a story or a story told in song) हैजलिट इसे 'गीतात्मक' आख्यान (Lyrical narrative) तथा फ्रैंक सिजविक इसे 'अव्याख्यायेय अमूर्त पदार्थ' कहा है। "इट इज डिफिकल्ट टू डिफाइन द बैलेड फॉर इट हेज सम ऑफ द क्वालिटी ऑफ एन एक्सट्रेक्ट थिंग।"[84] एफ.बी. गुमेर के शब्दों में लोकगाथा एक ऐसी गेय कहानी है जो सामग्री की दृष्टि से व्यक्ति शून्य तथा सामूहिक नृत्य से सम्बद्ध मौखिक परम्परा प्रधान होने के कारण साहित्यिक प्रभाव से मुक्त है। (A Poem meant for singing quite impersonal in material, …….connnected in its origin with the communial dance… process of oral tradition people who are free from literary influences)''[85] मैक एडवर्डलीज ने "बैलेड" को प्रबन्धमूलक अथवा आख्यानपरक लोकप्रिय गीत कहा है।86 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार – "लोकगाथा वे प्रबन्धात्मक लोकगीत हैं जो आकार में किसी महाकाव्य को चुनौती दे सकते हैं और जिनमें प्रधान तत्व कथा है।"[87] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं –

"लोकगाथा वृतान्त या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने के कारण कालान्तर में यह शब्द आख्यान, कहानी या जीवनवृत्तान्त के की अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है।"[88] जी.एच. जीरोल्ड की मान्यता के अनुसार लोकगाथा एक ऐसी कथा है जिसमें कथा के साथ–साथ गीत व वर्णनात्मकता है तथा जो मौखिक परम्परा से सीखी जाती है (दी बैलेड इज ए फॉक सांग दैट टैल्स ए स्टोरी एण्ड

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आलवेज लर्नड् बाई लिप्स)"87 इसी प्रकार एम.जे.सी. होगार्ट लिखते हैं – "लोकगाथा में सबसे अनिवार्य तत्व उसका मौखिक परम्परा में उपलब्ध होना है (द ऑनली सेट्सफैक्टरी डेफीनिशन ऑफ सांग इज ए सांग दैट हैज बीन ट्रांसमीटेड ओरली)"90 इवलीन केन्ड्रिक वेल्स ने लोकगाथा की व्याख्या के लिए निम्नलिखित तत्वों को अनिवार्य माना है – 1. इट हैज थीम्स ऑफ युनीवर्सल अपील 2. सिम्पलीसिटी ऑफ इमोशंस 3. मैलोडी एण्ड रिद्म 4. ओरल ट्रांसफारमेशन 5. द हेज नो वन आरिजनल टैक्स्ट बींग फ्रेशली क्रीएटेड बाई ईच एक्सेसिव–सिंगर एज ही मैक्स हिज ऑन वर्सन 6. इट इज प्रोडक्ट ऑफ नो वन टाइम आर पर्सन 7. इट गोज इट्स वे इण्डीपेन्डेन्ट ऑफ लिटरेरी इन्फलूएन्सेज अर्थात् विश्वजनीन कथा, भाव, प्राबल्य, लयात्मक माधुर्य संगीत, मौखिक सम्प्रेषण, मूलपाठ का अभाव, व्यक्ति विशेष की रचना का न होना तथा साहित्यिक अलंकरण से दूर रचना को "लोकगाथा" कहा जाता है।[91] एलेक्जेंडर एच. क्रेप के मतानुसार 'सरल वर्णनात्मक कविता जो जनरुचि के अनुकूल हो व मौखिक प्रसारण से युक्त रचना" 'लोकगाथा' है।[92] श्री यदुनाथ सरकार के मतानुसार "लोकगाथा का स्वरूप विशिष्ट है। लोकगाथा में 1. द्रुतगति 2. शब्द विन्यास की सादगी 3. विश्वजनीन मर्मस्पर्शी, प्राकृतिक तथा आदिम मनोरागों की अभिव्यक्ति 4. वर्णनात्मक होते हुए भी प्रभावी चरित्र–चित्रण 5. साहित्यिक कृत्रिमताओं की न्यूनतम स्थिति अथवा सर्वथा अभाव इत्यादि तत्व अनिवार्य हैं।"[93] डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा के शब्दों में – "वही लोकगाथा काल के प्रवाह में ठहर सकती है जिसमें लोकप्रिय कथानक हो।... लोकगाथा साहित्यिक कृत्रिमताओं से बोझिल नहीं होती, किन्तु उक्ति का स्वाभाविक वैचित्र्य जो लोकगाथा में भी उपलब्ध होता है।... एक घटना अथवा 'पूर्ण जीवन संस्तित' ये दो ही प्रकार के गेय आख्यान काव्य है जिसमें चरित्र नायक का लोकप्रिय जनाधार होता है। वह मौखिक परम्परानुमोदित तथा अकृत्रिम जीवन चरित्र है। उसमें वर्णनात्मकता का सहज रस भीना सौन्दर्य है। लोक मानस की सहज भावाभिव्यंजना का वृहद्कोश 'लोकगाथा' दृश्य एवं श्रव्य दोनों ही विधा का समन्वित प्रकाशन है। लोकगाथा का स्वरूप लोकगीत एवं लोक नाट्यों से भिन्न है। लोकगाथा में प्रबन्धात्मकता अनिवार्य तत्व है जबकि लोकगीत में भावाविशेष का रागात्मक मनोभाव रहता है। लोकगीत, लोकगाथाओं की तरह दीर्घाकार नही होते। लोकगीतों की प्रस्तुति में अभिनेयता अनिवार्य नहीं हे, यह तो जीवन का खण्ड चित्र मात्र है जो राग में व्यंजित होता है जबकि लोकगाथा में गद्य की भी योजना हो सकती है। लोकगाथा, लोकनाट्यों से भी भिन्न होती हैं। लोकगाथा में प्रायः आठ फुट लम्बा व तीन फुट चौड़ा एक पर्दा होता है जिस पर संबंधित गाथा के चित्र अंकित होते हैं। राजस्थानी वेश में गायक, कलाकार को साथ लेकर अपने पैरों में घुंघरु बांध कर उन्हें मंद और द्रुत गति से संचालित करता हुआ गीत कथा प्रस्तुत करता है। रात्रि में प्रस्तुति के समय गायक का एक साथी एक बड़ा दीपक लकड़ी की सहायता से लटकाये रहता है। लोकगाथा में प्रधानता कथा वाचक की ही होती है। वह कोरा गायक होता है। उसमें संवादों की जगह नहीं होती। गायक ही सूत्रधार, नट और भावजनित प्रतिक्रिया भी वही अभिव्यक्त करता है।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि "लोकगाथा" एक ऐसी मनोरंजनात्मक, आह्लादक, प्रेरक लोक विद्या है जिसमें गीतात्मकता, वर्णनात्मकता एवं अभिनेयता की त्रिवेणी का संगम है जो लोक मानस को लोक हितकारी पुण्यमना चरित्रों को जानने का सौभाग्य प्रदान करता है।

6स.3 लोकगाथाओं की व्युत्पत्ति

यह तो स्थापित सत्य है कि लोक सम्पदा की विविध विधाओं की उत्पत्ति का इतिहास खोजना बहुत ही जटिल व विवादास्पद कार्य है क्योंकि लोक–साहित्य का सृजन किसी एक व्यक्ति विशेष की रचना नहीं है। एक काल विशेष अथवा एक स्थान विशेष की ही उपलब्धि लोक साहित्य नहीं है बल्कि वह तो सामुदायिक साधना का पुण्यफल है। इसीलिए लोक गाथाओं की व्युत्पत्ति भी बौद्धिकों के शास्त्रार्थ का भले ही विषय रहा हो, "लोकमानस" तो केवल रसास्वादन को अपनी चरम सिद्धि मानता है। शास्त्रीय ज्ञान के अभिमानियों की दृष्टि में लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में निम्न मान्यताएँ प्रचलित हैं –

1. 'समुदाय' – लोक गाथा का रचनाकार

जर्मनी के विख्यात लोकवार्ताविद् जेकबग्रिम की मान्यता है कि लोकगाथाएँ किसी एक विशिष्ट कवि या रचनाकार का सृजन न होकर लोकचेतना की "सामुदायिक" अभिव्यंजना है यह सहज भावोच्छवासों का काव्यमय कथामूलक उद्गार है। किसी पर्व त्यौहार अथवा अनुष्ठान के अवसर पर लोक समाज एकत्रित होता है तथा अपने हृदयोल्लास को अभिव्यक्त करने के लिए उनमें से कोई एक गीत पंक्ति बोल देता है, दूसरा सहज भाव से उनमें कुछ जोड़ देता है। इस प्रकार विविध व्यक्तियों के सामुदायिक प्रयत्नों से कुछ सुन्दर गाथाएँ स्वतः ही बन जाती है। जैसे इतिहास की रचना किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं हो सकती ठीक इसी प्रकार लोकगाथा भी समष्टि चेतना का

सर्वनात्मक प्रयास होती है। इस प्रकार कड़ियों की पृथक्–पृथक् रचनाएँ एक लोकगाथा बन जाती है। अतएव लोकगाथा को "लोक" के द्वारा लोक के लिए तथा लोक की ही कथा सृष्टि कही जानी चाहिए।

2. 'व्यक्तिवाद'

जेकब ग्रिम के लोकगाथाओं की उत्पत्ति विषयक "सामुदायिक रचना" कर्म के सिद्धान्त के विरोध में ए.डब्लू श्लेगल की मान्यता है कि किसी भी काव्य का रचनाकार तो कोई एक ही व्यक्ति होता है, बाद में समाज उसमें अलग–अलग अपनी भाव सृष्टि भी मिल देता है। किसी भी कलाकृति की निर्मित के मूल में तो किसी कलाकार विशेष का ही योगदान रहता है, लोकगाथा भी अपने मूल में किसी एक रचनाकार के 'व्यक्तिमानस' की ही रचना होती है जिसे बाद में 'लोक' अपना अंग बना लेता है।

3. जातिवाद और लोकगाथा

प्रख्यात लोकवार्ताविद् स्टेन्थल की मान्यता है कि लोकगाथा न तो किसी व्यक्ति की रचना होती है और न ही किसी समुदाय (Community) की वरन् सम्पूर्ण "जाति" (Race) की भावनाओं का सृजनात्मक परिणाम है। आज भी अनेक ऐसी जातियाँ हैं जो वर्ष में एक बार किसी पवित्र तीर्थ या नदी किनारे एकत्रित होती हैं और इसी अवसर पर वे किसी गीत का भी अनजाने में निर्माण कर सकते हैं।

4. 'चारणवाद'

इग्लैंड के प्रसिद्ध लोक गीत संग्रहकर्ता विशप पर्सी ने यह प्रतिपादित किया है कि लोकगाथाओं की रचना मध्यकालीन इंग्लैंड के चारण या भाटों के द्वारा हुई है। इस जाति के लोग ढोल अथवा सारंगी लेकर (हार्प) धनी तथा शूरवीरों के चरित्रगान के साथ भिक्षा याचना करते थे। इनके गीतों को "मिन्सट्रल बैलेड" कहा जाता था। यूरोप की अधिकांश प्राचीन व मध्ययुगीन वीर गाथाओं की रचना इन चारणों के द्वारा हुई है। सर वाल्टर तथा जोसेफ रितसन भी विशप पर्सी की मान्यता का समर्थन करते हैं।

5. व्यक्तित्वशून्य व्यक्तिवाद

अमेरिकन लोकसाहित्यविद् प्रो. चाइल्ड ने अपनी रचना "इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स" में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि लोकगाथा किसी एक व्यक्ति मानस की चेतना का वरदान अवश्य होती है किन्तु उसकी वैयक्तिक प्रज्ञा लोकचेतना से अभेद रूप में मिल कर तिरोहित हो जाती है। डेनमार्क के विद्वान् प्रो. स्टीन स्ट्रप का भी यह मत है कि लोकगाथाओं का निर्माण किसी एक व्यक्ति के द्वारा होकर भी वह रचना उसकी नहीं होती, यह व्यक्तित्व रहित होकर सामाजिक बन जाती है। कालान्तर में मूल स्वरूप प्राप्त करना ही दुष्कर हो जाता है जैसे जगनिक का 'आल्हा'। आल्हा का मूल खोजना असंभव सा ही है।

उपर्युक्त समस्त मान्यताओं को देखने पर पता चलता है कि इन सभी में आंशिक सत्य है। यह तो सत्य है कि रचनाकार तो लोकगाथा का कोई व्यक्तिविशेष होगा ही, क्योंकि लोकगाथा हो या लोककथा लोकगीत हो या धर्मगाथा, ये सभी आकाश से नहीं बरसती या धरती फोड़ कर प्रकट भी नहीं होती। जैसे भोजपुरी लोकसाहित्य में बुलाकीदास, उत्तरप्रदेश में मदारी व सनेह राय, बुंदेलखण्ड में ईसुरी आदि ने रचनाएँ की लेकिन वे सभी उसकी न होकर सम्पूर्ण लोक की सम्पदा बन गई। कहीं–कहीं पर स्म्पूर्ण समुदाय भी रचनाकार बन जाती है जैसे अहीर जाति के लोग बारात के अवसर पर दो दल बनाकर "बिरहा" गाते हैं, उनमें प्रतियोगिता सी होती है, यहाँ अनेक पंक्तियाँ स्वतः ही बन जाती है। इसी प्रकार "झूमर" की रचना महिलाओं का समूह रच देता है। मध्यकालीन चारणों द्वारा भी अनेक गाथाओं की रचना हुई है।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि लोकगाथाओं की सृष्टि के मूल में व्यक्ति, जाति, समुदाय तथा चारणों का योगदान रहा है। इसीलिए डॉ. कृष्णदेव ने लोकगाथाओ की उत्पत्ति में समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया है।

6स.4 लोकगाथाओं का वर्गीकरण

लोकगाथा मूलतः लोक महाकाव्य है। यह लोककवि का प्रबन्ध मूलक रोचक व संगीतात्मक वाणी विलास का रससिक्त उद्गार होता है। लोकगाथाओं का वर्गीकरण दो दृष्टियों में किया जा सकता है। (1) विषयवस्तु तथा (2) आकार के आधार पर। आकार में लघु अथवा दीर्घाकार लोकगाथायें होंगी जैसे ब्रज में 'सरवरनीर' अत्यन्त ही लघु गाथा है जबकि "राँझा, 'ढोला', 'जहरपीर या गुरुगुग्गा' दीर्घाकार है। इन लोकगाथाओं में मूल कथा के साथ–साथ अन्य जीवनोपयोगी प्रसंग भी जोड़ दिये जाते हैं जिससे कथा प्रसंग अत्यन्त ही सरस व हृदयस्पर्शी बन जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भारतीय लोकसाहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार 'लोक–गाथाओं के अनेक भेद पाये जाते हैं। इनका वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है।' 1. आकार की दृष्टि से 2. विषयवस्तु की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से विचार करने गाथाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं। (1) लघु तथा (2) वृहत्त लघु गाथाएँ वे हैं जिनका आकार छोटा है, जैसे भगवती देवी और कुसुमादेवी की गाथाएँ। वृहत् गाथाएँ प्रबन्धात्मक काव्य के समान हैं जिनको लिपिबद्ध करने में सैकड़ों पृष्ठ काले किये जा सकते हैं। हीर–राँझा, ढोला–मारु, राजा–रसालू और आल्हा–ऊदल की गाथा बड़ी विस्तृत है, जिसकी तुलना किसी भी प्रबन्ध काव्य से की जा सकती है।"95 डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने वर्गीकरण का विषयगत आधार लेकर 1. प्रेम–कथात्मक गाथाएँ (Love Ballads) 2. वीर कथात्मक गाथाएँ (Heroic Ballads) तथा 3. रोमांच–कथात्मक गाथाओं की चर्चा है। (Supernatural Ballads)96 लोकगाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रेम की अनुभूति का उद्गम अत्यन्त ही विषम परिस्थिति में होता है। नायक अथवा नायिका – दोनों को ही अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है। भोजपुरी लोकगाथा 'कुसुमा देवी', 'भगवती देवी' तथा 'लचिया' इसका प्रमाण है। 'विहुला', 'भरथरी चरित', 'ढोला–मारु', "हीर राँझा", 'मूमल–महेन्द्र', 'जलाल–बबूना', 'सोहनी और महिवाल' आदि लोकगाथाएँ प्रणयमूलक संघर्ष की गाथाएँ हैं जो सुखान्त भी हैं तथा दुखान्त भी हैं। वीर कथात्मक गाथाओं में 'आल्हा' का श्रेष्ठ स्थान है। इन गाथाओं में शौर्य, पराक्रम, उत्साह के अतिरिक्त ज्ञानधर्म की प्रतिष्ठा, नारी की गरिमा की रक्षा, वचनपालन आदि मर्यादाओं का प्रभावी अंकन होता है। रोमांच तथा रोमांसपूर्ण कथाओं की गाथा में साहस, जिज्ञासा, हठ विचार व प्रतिज्ञापालन को उजागर किया जाता है।

कीट्रीज ने दो प्रकार की लोकगाथाओं को माना है – 1. चारण गाथाएँ तथा 2. परम्परागत गाथाएँ। इनमें चारण गाथाएँ तो उन चारण कवियों ने रची जो मध्यकाल में राजाओं के दरबार में जाकर राजाओं के ही पराक्रम व चरित्र की गाथा गाते थे। इन परम्परागत गाथाओं का उद्गम सनातन काल से ही लोक परम्पराओं में संजीवित स्रोत से हुआ है। इसी प्रकार प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं को छह श्रेणियों में विभाजित किया है – 1. प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest ballads) 2. कौटुम्बिक गाथाएँ (Ballads of Kinship) 3. अलौकिक गाथाएँ (Coronach and ballads of supernaturals) 4. पौराणिक गाथाएँ (Legendary ballads) 5. सीमान्त गाथाएँ (Border ballads) तथा 6. आख्यानक गाथाएँ (Green wood ballads)। प्राचीनतम गाथाओं की कथावस्तु प्रायः समस्यामूलक होती हे जो ऋतुओं, धरती या गगन मण्डल अथवा कभी–कभी इनसे संबद्ध प्रश्नोत्तरी शैली में रचित होती है। इसमें नारीत्व की प्रतिष्ठा भी उद्घाटित होती है। यूरोप के स्काटलैंड में ऐसी अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं। कोटुम्बिक गाथाओं की विषयवस्तु सम्पूर्णतः पारिवारिक परिवेश से सम्पृक्त रहती हैं। इनमें पति–पत्नि, सौत, विमाता, ननद–भौजाई, भाई–बहिन, सास–बहू आदि के स्नेह, सौहार्द ईर्ष्या का अंकन रहता है। अलौकिक गाथाओं में जादू, टोना का चमत्कार, देह परिवर्तन, परी प्रसंग, अप्सराएँ, भूत–प्रेत आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। पौराणिक लोकगाथाएँ प्रायः महाभारत व पुराणों, रामायण, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं से प्रेरित होती हैं। सीमान्त गाथाएँ प्रायः स्थानीय इतिहास चरित्रों के आख्यानों से मण्डिल होती है जैसे बीर बाबू कुँवरसिंह का पंवाड़ा, जगदेव की वीरगाथा, अवधी में प्रचलित राणा बेणी माधव की गाथा इसी श्रेणी की है। आख्यानक गाथाओं में लोक हितैषी व कल्याणकारी डाकुओं, लुटेरों की गाथाएँ भी परिगणित की जा सकती है। राजस्थान में "डूंगजी जवाहरजी" जोरजी चांपावत, इंगलैंड का "राबिनहुड" इसी प्रकार की लोकगाथाओं के नायक हैं। लोकमानस ने जन साधारण की संवेदनाओं की लोकगाथाओं में समर्थ अभिव्यक्ति दी है।

6स.5 लोकगाथाओं का वैशिष्ट्य

लोकगाथाएँ लोकचेतना का सजीव गेय प्रतिबिम्ब हैं। लोकगाथाओं की विशेषताओं को लोकचेतना की दृष्टि से ही हृदयंगम किया जा सकता है। इनमें रचनाकार का रीतिवादी आचार्यत्व उद्घाटित नहीं होता क्योंकि इनकी रचना परान्तसुखाय न होकर सर्वजनहिताय तथा सर्वजनसुखाय होती है।

1. 'अज्ञात' सिरजनहार

लोकगाथाओं का रचनाकाल, रचना स्थल तथा "सिरजनहार" का नाम अज्ञात रहता है। वह तो उस बूंद के समान है जो सागर में सहज ही में विलीन होकर अपना व्यक्तित्व ही तिरोहित कर देती है। "बूंद समाना समद में सो कत हेरी जाय।" यही कारण है कि ढोला–मरवण, सोरठी, गोपीचंद भरथरी, हीर–राँझा, बगड़ावत, लोकिर चांदा आदि लोकगाथाओं के रचनाकार का आज भी पता नहीं है। इस सन्दर्भ में राबर्ट ग्रेब्स लिखते हैं कि आज के सन्दर्भ में किसी रचनाकार का अज्ञात रह जाना किसी लज्जास्पद परिस्थितिवश हो जाता है किन्तु पुरातन आदिम युग में यह सहज ही लापरवाही का विषय होता था। (Anonymity in the present structure of society usally imples that the author is ashamed of his authorship or afraid of the consequences if he reveals himself, but in a primitive

society it is due just to carelessness of the author's name)97 प्रायः यह देखा जाता है कि गाँवों में कई बार छोटे–छोटे बच्चे समूह में खेलते हुए कुछ गुनगुनाते हुए तुकबंदी करते रहते हैं किन्तु कोई भी उन पंक्तियों के रचनाकार होने कर दावा नहीं करता और किसी को भी यह याद नहीं रहता कि उसने कौन सी पंक्ति जोड़ दी थी, ठीक यही स्थिति लोकगाथाओं की भी होती है।

2. 'पाठ' की प्रामाणिकता संदिग्ध

लोकगाथाओं की प्रामाणिकता उसके "मूलपाठ" के निर्धारण से नहीं बल्कि उसके लोक कण्ठ में विराजने से सिद्ध होती हे। लोकगाथा की गेयता किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय और प्रान्तीयता से बंधी नहीं होने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बना लेती हैं। वस्तुत काव्यों की भी दो श्रेणियाँ की जा सकती है पहली श्रेणी उस अलंकृत काव्य की हो सकती है जिसे किसी एक कवि ने अपनी प्रतिभा के कौशल से सृजित किया है, दूसरी श्रेणी उस काव्य की होती है जो विभिन्न कालों में भिन्न–भिन्न कवियों या गायकों द्वारा मनमर्जी से रचित होती है। उदाहरणार्थ वाल्मीकि कृत "रामायण" प्रथम श्रेणी काव्य है तो व्यास रचित "महाभारत" द्वितीय श्रेणी का काव्य कहा जा सकता है। इन गाथाओं के चलन की सुदीर्घ परम्परा में तो लोकगाथा के मूल स्वरूप तथा उसके पात्रों एवं घटनाओं में परिवर्तनन तथा परिवर्द्धन हो जाता है। इसका कारण यह है कि लोकगाथाओं की परम्परा मौखिक होती है। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने "भगवती देवी" लोकगाथा के चार–चार पाठ संग्रहीत किये थे। यह सत्य है कि महाकवि जगनिक ने 'आल्हा' शीर्षक से काव्य की रचना की लेकिन वर्तमान में जो 'आल्हा' प्राप्त होता है वह 'मूल' की तुलना में बहुत ही विशालकाय है। मूल "आल्हा" तो बुंदेलखण्डी में लिखा गया था लेकिन आज तो वह कन्नौजी, बुंदेलखण्डी, भोजपुरी, ब्रज व अवधी में भी प्राप्त हो रहा है।

3. संगीतात्मकता एवं नृत्य का अनुपम समन्वय

लोकगाथा की देह नृत्य है, वाणी काया है तथा आत्मा संगीत है। अंग्रेजी शब्द "बैलेड" का अर्थ ही "नाचना" होता है। राबर्ट ग्रेब्स का तो कहना है – "उत्तेजना पुनरावृत्ति के अभाव में लोकगाथा अधूरी रहती हैं।" (The ballad is incomplete without an exciting and repetitive music.)98 यूरोप में चारणों द्वारा रचित बैलेड्स को मिन्स्ट्रल्स कहा जाता है जिसमें ढोल व सितार का प्रयोग होता था। "आल्हा" के गायन में भी गायक गले में ढोल बजाकर गाता है जो उसके गाने की गति के साथ द्रुत गति से बजता रहता है।

4. पुनरावृत्ति प्रधान टेक शैली

लोकगाथाओं में प्रायः टेक पदों की पुनरावृत्ति की प्रधानता रहती है। टेक पदो के दुहराने से श्रोताओं में उन गीतों के प्रति संगीतमय आनंद की वृद्धि होती रहती है। इससे गाथा के प्रभाव की एक रूपता बनी रहती है। सिजविक की मान्यता है कि टेक पदों की पुनारावृत्ति करने का प्रमुख कारण संभवतः यह रहा होगा कि पुरातन काल में इन गाथाओं को सामूहिक रूप में गाया जाता था तब प्हले गायक एक कड़ी गाता था तब शेष जनसमूह के टेक को दुहराते थे।98 इससे लोकगाथाओं के प्रबन्धत्व के निर्वाह में कोई बाधा नहीं होती और उसका तारतम्य भी बना रहता है।

5. आंचलिक वैशिष्ट्य

लोकगाथा में आंचलिक वैशिष्ट्य ही उसकी शाश्वत जीवन्तता का प्रमाण है। लोक गाथाओं में प्रत्येक प्रदेश और अंचल की सम्पूर्ण विशेषताएँ सुरक्षित रहती है। लोकगाथा का गायन गुजरात का हो या राजस्थानी ब्रजवासी हो अथवा भोजपुरी सभी क्षेत्र की ऐतिहासिक, सामाजक, धार्मिक, भौगोलिक विशेषताओं का सुन्दर समायोजन ही लोकगाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता है। यही कारण है कि "आल्हा" में बुंदेलखण्ड, कजरीबन, कालिंजर, महोबा के किले और नगरों का विस्तृत वर्णन मिलता है तो भोजपुरी लोकगाथाओं में बलिया जिला, हरदिया के राजा का उल्लेख है तो राजस्थानी लोकगाथाओं में ढोल मारु की लोकगाथा में मरुस्थल, ऊँट, वनस्पतियों में कैर, खेजड़ी, बबूल आदि की विस्तार से चर्चा मिलती है। इस स्थानीय रंग के कारण ही लोकगाथा सदैव कालजयी व चिरन्तन आनंद की अखण्ड सरिता बन जाती है जिसकी प्रत्येक लहर पर आंचलिकता की रत्नावलियाँ लहराती हुई दिखलाई देती है।

6. उपदेशात्मक प्रवृत्ति रहित सुदीर्घ कथानक

लोकगाथा साधु–सन्तों की वाणियाँ अथवा मात्र नीति व उपदेशात्मक कथनों के भार से बोझिल न होकर सहज भावाभिव्यक्ति के अकृत्रिम सौन्दर्य से युक्त होती है। राबर्ट ग्रेम्स लिखते हैं – "कोई लोकगाथा नीति या

सदाचार की शिक्षा नहीं देती और न पृथक्ता की भावना का प्रचार करती है। यदि गाथा में उपदेश की यह भावना पाई जाय तब यह समझना चाहिए कि चारण अथवा रचयिता अपने को समुदाय से बाहर समझता है।"[99] लोकगाथाओं का कथानक सुदीर्घ फलक युक्त होता है। भोजपुरी की "आल्हा" राजस्थानी का "ढोलामारु", उत्तरप्रदेश का "लोरिकायन" तथा "विजयमल" की गाथाएँ पाँच सौ पृष्ठों से कम नहीं है। अंग्रेजी साहित्य में "ए गेस्ट ऑफ राबिनहुड" तो चार सौ छप्पन छन्दों की लोकगाथा है जिसके प्रत्येक छनद में चार–चार पंक्तियाँ हैं।

7. अनलंकृत काव्य

लोकगाथा मानव मन–प्रकृति का सहज उद्गार है, जिसमें छंदों की छटा, अलंकारों का वैचित्र्य तथा रचना कौशल की विशिष्ट संघटना भले ही न हो लेकिन रस निष्पत्ति की सर्वोच्च अनुभूति कदम–कदम पर प्राप्त होती है। इसकी अनगढ़ता में अनूठी और मनोमुग्धकारी नैसर्गिक छटा है, इसीलिए श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगाथाओं को "हृदय का धन" तथा "प्रकृति का उद्गार" कहा है।101 इनमें वाणी की वक्रता एवं काव्यशास्त्रीय आचार्यत्व भले ही न हो लेकिन इसका प्रत्येक प्रसंग मर्मस्पर्शिता में अद्भुत है।

8. सर्व धर्म सममाव

लोकगाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सर्व धर्म समभावी आस्था का होना है। सहजजीवी लोकमानस हिन्दू, मुस्लिम, शाक्त, वैष्णव, शैव, ऊंच–नीच, छूआछूत आदि किसी में भेद नहीं करता। वहाँ हिन्दू देवता हो या मुस्लिम पीर–सभी एक समान पूजनीय हैं। बहुत से हिन्दू देवता भी "पीर" के समान वन्दनीय बने हुए हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध लोकदेवता रामदेवजी, पाबूजी, हड़बूजी आदि मुसलमान समाज में भी समान रूप से स्मरणीय हैं। राजस्थान की लोकगाथाओं में कहा जाता है –

"पाबू, हड़बू, रामदेव, मांगलिया मेहा।
पाँचों पीर पधारजो, गोगाजी जेहा।।"

लोकगाथाओं में गोरखनाथ और इस्माइलनाथ – दोनों ही वरेण्य हैं। राजस्थान की एक प्रसिद्ध लोकगाथा "निहालदे–सुल्तान" है। यह धर्मनिरपेक्षता ही लोकगाथाओं का उदात्त सौन्दर्य सृजित करती है।

6स.6 सारांश

सारांशतः लोकगाथा जनभाषा में रचित, विविध रूपी, अज्ञात रचनाकार की अद्भुत व अनलंकृत रचना होते हुए भी रसासिक्त ऐसी गेय कथामूलक सृष्टि है जिसमें लोकमानस व लोकविश्वासों की इन्द्रधनुषी छटा का निराला सौन्दर्य चमकता है। लोकगाथा का रचनाकार एक व्यक्ति या जाति नहीं है बल्कि यह सामूहिक प्रतिमा का अकृत्रिम प्रतिफलन है जो काल की अकरुण सत्ता को चुनौती देता हुआ सतत् चिरंजीवी बना हुआ है। लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकविश्वास तथा लोक संस्कृति का पंचमेल ही लोकगाथा का अमर सौन्दर्य है।

—

6स.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. लोक गाथा किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2. लोक गाथा व लोक कथा में क्या अन्तर है ?

प्रश्न 3. लोक गाथाओं की व्युत्पत्ति विभिन्न मान्यताओं का परिचय दीजिए।

प्रश्न 4. लोक गाथाओं का वैशिष्ट्य बतलाइए।

प्रश्न 5. लोक गाथाओं का वर्गीकरण कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7

कथानक–अभिप्राय

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 कथानक–अभिप्राय का स्वरूप
7.3 कथानक अभिप्रायों का वर्गीकरण
7.4 अभिप्राय–अनुक्रमणिका
7.5 कथानक रूढ़ियाँ
7.6 कथा मानक
7.7 सारांश
7.8 अभ्यास प्रश्नावली

7.0 प्रस्तावना

लोकगाथा के अध्ययन की दिशाओं को निर्धारित करने वाले तत्वों में 'कथानक अभिप्राय' का विशिष्ट स्थान है। लोककथाओं की जीवन्त ऊर्जा तथा उसकी विशिष्टता के मूल में इन 'अभिप्रायों' की निर्णायक भूमिका रहती है। लोककथाओं के सृजनकर्म में इन कथानक अभिप्रायों की भूमिका असंदिग्ध है। इनमें लोकानुभव, लोक आस्था तथा लोक संस्कृति की जीवन्त भूमिका रहती है। इन्हीं से लोककथाओं में नैरन्तर्य की पुण्यसलिला प्रवहमान रहती है। लोककथा जिस सांस्कृतिक चेतना की भूमि पर अग्रसर होती है उसमें परम्परा पुष्ट संस्कार 'अभिप्राय' के ही रूप में व्यंजित होते हैं।

7.1 उद्देश्य

इस अध्ययन से कथानक अभिप्राय की सम्यक् जानकारी हो सकेगी।

7.2 कथानक–अभिप्राय का स्वरूप

कथानक अभिप्राय को हम लोककथा का एक प्रमुख निर्माणकारी तत्व भी कह सकते हैं। किसी 'मकान' को 'भवन' की तरह भव्य बनाने के लिए जिस सज्जा, अलंकरण, वैभव सामग्री की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार लोककथा में जो असाधारण तत्व संयोजित होता है उसका उत्स 'कथानक अभिप्राय' ही है। लोककथाओं में 'अभिप्राय' ही गत्यात्मकता की प्राणवत्ता का संचार करते हैं। लोककथाओं में ध्यानकर्षक तत्वों में कथानक अभिप्रायों की मुख्य भूमिका रहती है। "लोक कथाओं में अभिप्रायों का विशेष महत्व है। ये ही इनकी रोचकता बढ़ाते हैं, इनसे ही लोककथाओं में अलौकिकता आती है एवं उनके सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। वस्तुतः लोककथा का अस्तित्व इन अभिप्रायों से ही सिद्ध होता है और इनके माध्यम से ही विश्व की समस्त कथाओं का सुव्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है। इन अभिप्रायों का क्षेत्र विस्तृत है तथा इनकी संख्या भी असीमित है।[1] चूँकि लोककथा के निर्माण में इन अभिप्रायों की भूमिका रहती है व इसकी उपस्थिति लोककथा को अलौकिक, असाधारण, अद्भुत व आकर्षक युक्त बना देती है, इसीलिए लोककथा का केन्द्र बिन्दु भी 'अभिप्रायों' में ही सन्निहित रहा है। 'कथानक अभिप्राय' के लिए जहाँ अँग्रेजी में 'मोटिफ' शब्द है, वहीं हिन्दी में इसके लिए अनेक शब्द हैं जिनका साहित्य जगत् में आज भी चलन है। 'मोटिफ' के लिए 'कथानक रूढ़ि[2] आधार–बीज[3] प्रयुक्ति[4], अभिप्राय[5], मूल या मूल लक्षण[6] कथा अभिप्राय[7], मूलभाव,[8] मूल तन्तु[9], और कल्पना बन्ध[10] आदि शब्दों को स्वीकार किया गया है। लोक कथा की संरचना में कथानक अभिप्राय का महत्व निरुपित करते हुए सिद्धनाथ पाण्डेय ठीक ही लिखते हैं – 'वर्णन की रोचकता की वृद्धि के लिए नई, दिशा में मोड़ देने के लिए, फलागम की प्राप्ति के लिए, इप्सित चरित्र–चित्रण के लिए कवि लोग जिन बाह्य उपादानों का प्रयोग करते हैं, उन्हें कथानक रूढ़ियाँ कहा जाता है। किन्तु कथा अभिप्राय कथा का अविभाज्य अंग होता हैं। यदि किसी कथानक रूढ़ि को हम कथा से अलग कर दे तो कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं होगी। किन्तु यदि किसी अभिप्राय को उससे अलग कर दिया जाय तो कथा पंगु होकर निरर्थक हो जायगी।[11] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

– 'अभिप्राय जिसे अंग्रेजी में 'मोटिफ' कहते हैं, उस शब्द अथवा एक सांचे में ढले हुए विचार को कहते हैं, जो एक ही जाति की विभिन्न कृतियो मे बार–बार आता है।[12] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं – 'अभिप्राय कहानियों के अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग हैं। उनका कथन है कि ईंट गारे की सहायता से जैसे भवन बनते हैं, वैसे ही भिन्न–भिन्न अभिप्रायों की सहायता से कहानियों का रूप संपादित होता है।[13] इस सन्दर्भ में लोक साहित्यविद् डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं – 'अभिप्राय कथा का लघुतम तत्व है जो परम्परा में स्थिर रूप से रहने की शक्ति रखता है। इस प्रकार की शक्ति रखने के लिए उसमें कुछ असाधारण और अपूर्वता होनी चाहिए। अभिप्राय कथानक के निर्माण तत्व हैं। कथानक का मूल तत्व अभिप्राय ही है और कथाओं के अध्ययन में यह विशद् स्थान रखता है। लोक कथा का परम्पारागम रूप, नैतिक रूप और परिभ्रणकारी रूप अभिप्राय ही लक्षित होता है। संसार भर की लोककथाओं की एकता इसी के द्वारा अभिव्यक्त की गयी है।[14] यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि 'अभिप्राय' ही वह मूल तत्व है जो कथा को 'लोक' की धरोहर होने की आत्मा प्रदान करता है।

इसीलिए अभिप्राय ही कथानक का लोक कथात्मक बाना है। अभिप्रायों के सहज व सरल अंचल में संस्कृति का परम्परित स्वरूप सुरक्षित तथा संरक्षित भी रहता है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं – 'लोककथाओं के अभिप्राय निस्संदेह अभिप्रायों की संख्या बहुत कम रह जायगी।'[15] डॉ. श्यामाचरण दुबे ने अभिप्रायों के आधार पर ही विश्व भर की लोककथाओं का अध्ययन करने के सन्दर्भ में लिख है – 'मानव में नेय अभिप्राय निर्मित करने की शक्ति आश्चर्यजनक रूप से सीमित है। थोड़े से ही अभिप्राय नए–नए रूपों में हमें मानव जाति की लोक कथाओं में मिलते हैं।'[16] अभिप्राय स्वयं में तो एक तत्व मात्रा ही हैं लेकिन महत्वपूर्ण तो उसे प्राप्त वह लोक बल है जिसके द्वारा लोक कथा का प्रयोजन सिद्ध होता है। इसकी महत्ता को ब्लूम फील्ड के कथन–भाव को डॉ. सत्येन्द्र व्यक्त करते हुए लिखते हैं – "सर्वत्र प्रत्येक कथक्कड़ और संग्रहकर्ता मानों ऐसा लगता है कि इन अभिप्रायों की समूची माला को उठाता है जिसकी तुलना हम मनके की माला से कर सकते हैं, उसे वह छिन्न–भिन्न कर देता है, जिसके मनके चतुर्दिक बिखर जाते हैं और फिर प्रारम्भ से वह इन मनकों को पिरोता है।"[17] कथानक अभिप्राय (Motif) की रचना प्रक्रिया में यह कहा जा सकता है कि "इन अभिप्रायों के निर्माण में कथक्कड़ों एवं लोक–कथाओं की कुशलता प्रशंसनीय है। जैसे चतुर चित्रकार एक ही सामान्य तथ्य को अपने कौशल से विभिन्न रूपों में चित्रित करता है ठीक उसी प्रकार से कथक्कड़ एवं कथाकार नए अभिप्रायों को निर्मित करते हैं, "उन्हें सजाते हैं ओर उनके रूपों में ऐसा परिवर्तन ला देते हैं कि वे पुरातन होने पर भी नूतन से लगे हैं। ये (कथक्कड़ एवं कथाकार) कभी–कभी कथाओं में विलक्षण पात्रों को लाकर श्रोताओं के जिज्ञासा को पूर्ण करते हैं एवं उनके मानसिक धरातल को ही परिवर्तन कर देते हैं।"[18] इन कथानक अभिप्रायों की सार्वदेशिक व्यापकता को उद्घाटित करते हुए आर्चर महोदय लिखते हैं – "अभिप्रायों का व्यापक प्रसार के कारण शायद ही कोई ऐस कथा होगी जो किसी एक कबीले की अपनी सम्पत्ति कहीं जा सके। हो सकता है कि एक संथाल कथा का अभिप्राय (मोटिफ) बस्तर की किसी मुड़िया कथा में भी दिखाई दे जाय, या यह भी हो सकता है कि यह आसाम की किसी नागा कथा से मिलता जुलता हो। इसलिए यदि अभिप्राय ही कथा का सब कुछ हो सकता है तो एक कबीले की लोक कथाओं को दूसरे कबीलों की लोकगाथाओं से लिवग करना सहज नहीं होगा। वे एक कबीले को अन्य सभी कबीलों से मिलता–जुलता दिखाएंगे और उसकी अलग संस्कृति दिखाने के बजाय उसकी अति आवश्यक भिन्नताओं को छिपा लेंगे। असल में वस्तुस्थिति भिन्न है और यदि किसी कबीले के पास अपने अभिप्राय न भी हों तो भी प्रत्येक कबीला प्रत्येक अभिप्राय का तो उपयोग नहीं करता, पर उसके द्वारा उपयोग में लाये गए अभिप्राय जाति विषयक महत्व होता है। अभिप्राय तो एक कथा में एक तत्व मात्र होता है। अभिप्राय से कहीं अधिक महत्वपूर्ण तो वह बल है जो उसे प्राप्त होता है, या फिर यह उद्देश्य जो इसके द्वारा पूरा किया जाता है।"[19] इस संदर्भ में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं – 'साधारणतया मोटिफ शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं के किसी तत्व के लिए किया जाता है। परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि परम्परा का वास्तवित अंग बनने के लिए यह तत्व (Element) ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि इसे सर्वसाधारण जनता स्मरण रख सके। अतएव यह तत्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए।'[20] डॉ. कन्हैयालाल सहल ने 'कथानक अभिप्राय' (Motiff) के लिए 'प्ररुढ़ि' शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा – "मैं समझता हूँ आवृत्ति और गति दोनों का भाव एक साथ पाया जाता है इसलिए "मोटिफ" के पयार्य के रूप में प्ररुढ़ि शब्द अपनाया जा सकता है।"[21] पाश्चात्य विचारक टी.पी. शिप्ले लिखते हैं – "अभिप्राय यह शब्द अथवा एक ढॉचे में ढले हुए उस विचार को कहते हैं जो समान स्थितियों में अथवा समान मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियों में बार–बार आता है।"[22] आर्थर क्लाइस्टेंशन ने लिखा है – "कथानक में कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जो अपने अप्रत्याशित गुण तथा सुखात्मक अथवा दुखात्मक प्रभाव के कारण पाठक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है और ये घटनाएँ चूँकि नाटकीय अथवा पकड़ने वाली होती हैं, पूरे ब्यूरे के साथ याद रहती है। कथानक के

ये तन्तु जो इतने ध्यानाकर्षक होते हैं, मूल संबंधों से अलग किये जा सकते हैं। कथानक के इन मूलों को हम अभिप्राय के नाम से अभिहित करते हैं।"[23] (These are incidents which hold the attention of the reader because of their unexpected quality or because of these comics ortragic effect… these vital great difficulty from their original connections..these element we call motif.)

'मोटिफ' के संदर्भ में 'डिक्शनरी ऑफ लिटरेचर' में लिखा है कि– 'Motifs a word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a word or in various work of a gener.' इसी में अन्यत्र कहा गया है – 'Motif is the smallest recognizable element that goes to make up a complete story, its importance for comparative study is to show what metetrial of particular type is common to other types.'

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कथानक में लोकमानस की सीधी–सपाट और सत्याभिव्यक्ति होती है; यदि गहराई से देखा जाय तो यह अनुभव होगा कि लोककथाएँ कुछ "कहती" ही नहीं वरन् "करती" भी हैं, इसीलिए लोकमानस लोककथाओं में कुछ आश्चर्य, असाधारण अद्भुत एवं रहस्य के अवगाहन की अपेक्षा रखता है और इन अपेक्षाओं की पूर्ति इन कथानक अभिप्रायों से ही होती है। पात्र के साथ विशिष्ट घटना का संयोग ही 'मोटिफ' की रचना करता है। डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा के शब्दों में 'मोटिफ' किसी लोककथा में उन तत्वों की खोज है जिनसे कहानी का प्ररोहण–अंकुरण, पल्लवन और परिणमन होता है। ये तत्व मात्र अथवा 'लघुतम अवयव' जैसे किसी पदार्थ के परमाणु अथवा ऊर्जा–कण अथवा कथा के अस्थि–कंकाल नहीं हे जितन पर चाम, मांस मढ़ कर कथा–जीवन्त कहानी अपने आप बन जाये। मोटिफ का अध्ययन कहानी का भौतिक शास्त्र, अस्थि–विज्ञान अथवा यांत्रिकी नहीं है, जिसमें 'जीवन' स्वयं 'स्फूर्त' होता है।"[46] यही घटनात्मक मूल भाव ही "मोटिफ" की आत्मा है और लोककथा की संरचनात्मक प्राणवान कोशिका भी है। इस प्रकार "मोटिफ" के लक्षणों को निम्न प्रकार से निर्धारित कर सकते हैं। 'मोटिफ' सहज और सरल रूप में स्मरणीय हो जिससे लोककथा अपने देश–काल की सीमाओं को अतिक्रमित करने वाली यात्रा आसानी व सहजता से कर सके। मोटिफ सरल हो व्यापकता के गुण से वेष्टित हो, जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की संभावनाएँ निरन्तर बनी रहे। उसमें अनोखापन तथा वैचित्र्य भाव विद्यमान हो। कहानी की आत्मा कहानियों में बखरे पड़े 'अभिप्रायों' (Motif) में निवास करती है; सच पूछा जाये तो ये 'अभिप्राय' ही कहानी की व्यापकता का द्योतक हैं।"[47]

कतिपय प्रदेशों के 'कथानक अभिप्राय' इस प्रकार है –

1. हरियाणा –

(1) कल्पथाली –

एक ऐसी थाली जिसमें भोजन कभी समाप्त नहीं होता। (2) मनुष्य का पत्थर बन जाना और पवित्र जल छिड़के जाने पर पुनः मनुष्य बन जाना। (3) दानव के प्राणों का सात समुद्र पार पिंजरे में बंद किसी तोते में रहना। (4) पशु–पक्षी का मानवी बोली में बात करना और आगामी घटनाओं का संकेत देना। (5) राजकुमार या नायक को बारह वर्ष का देश निकाला। (6) आदमखोर डाइन का होना। (7) कटार की सहायता से फेरे लेना। (8) स्वेच्छा से स्त्री या पुरुष बनना। (9) पत्नी के सतीत्व की परीक्षा लेना। (10) मानवी बोली में बोलने वाले पशु–पक्षी। (11) फूलों या अंगूठी में मनुष्य को छिपा लेना, आदि।

2. राजस्थानी लोककथाओं में कथानक अभिप्राय –

1. पुत्र प्राप्ति हेतु देवताओं को बलि चढ़ाना। 2. वचनबद्ध "बे माता" द्वारा भाग्य के अक्षरों को पढ़ना। 3. परी को नग्न अवस्था में न देखना। 4. "सुगन चिड़ी" द्वारा आगामी घटनाओं को संकेत देना। 5. जादुई रोग, मिश्रित वस्त्र, जादुई अंजन। 6. किसी सुन्दरी की सहायता से दैत्य की मृत्यु का रहस्य 7. भूत–प्रेतों द्वारा भक्ति करने वाले युवक की सहायता 8. परियों द्वारा स्त्री या पक्षी के रूप में सहायता। 9. परियों द्वारा स्त्री या पक्षी के रूप में आगमन। 10. प्रतीकात्मक प्रश्न करना। 11. अपने आपको न गिनने की मूर्खता। 12. निःशुल्क भोजन वितरण द्वारा नायक की प्राप्ति। 13. भाग्य एवं संयोग की प्रधानता आदि।

3. ब्रज की लोककथाओं में प्रयुक्त अभिप्राय –

1. पशु–पक्षी का अभिभावकता। 2. बिछड़े हुए पति या पुत्र से मिलने के उपाय। 3. मनुष्य को अदृश्य करने वाली टोपी। 4. हँसने पर फूल झड़ना। 5. पार्वती द्वारा शिव से किसी की सहायता करने के लिए हठ करना। 6. हाथी द्वारा राजा का चयन। 7. सौतेली माता का पुत्र विरोध। 8. परकाया प्रवेश आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. खड़ी बोली की कथाओं के अभिप्राय –

1. पलंग के पायों का बोलना। 2. तीन वचन बुलवाकर मनुष्य को वचनबद्ध करवाना। 3. चमत्कारी डंडे द्वारा दुर्जनों की पिटाई। 4. मनुष्य को मक्खी या भेड़ बनाकर रखना। 5. पिछले जन्म के पापों का परिणाम अगले जन्म में भोगाना। 6. झूठा पानी पीने से गर्भ का रह जाना। 7. तोते में किसी राक्षस या जादूगर के प्राणों का होना आदि।

5. बुंदेली लोककथाओं के अभिपाय –

1. चित्रदर्शन से पारस्परिक प्रेम होना। 2. साधु के वरदान से सूखे तालाब में पानी भर जाना। 3. राजकुमार का फूलों से तुलना। 4. मैढ़क या वानर के साथ राजकुमारी का विवाह तथा बाद में राजकुमारी के रूप में योनीपरिवर्तन। 5. सर्प का मानव रूप धारण करना। 6. नागिन का बदला लेना। 7. काठ के मोर द्वारा राजकुमारी का हार निगलना। 8. मंत्री के पुत्र की बुद्धिमता। 9. उड़ते हुए घोड़े पर बैठ कर स्वर्ग जाना आदि।

6. बघेलखण्डी लोककथाओं के अभिप्राय –

1. करामाती गाय का सौ मन दूध देना। 2. शेरनी का स्त्री बनकर रहना। 3. परी या अप्सरा से विवाह का हठ तथा शर्तो का पालन। 4. सती के शाप से पूरे समाज को प्रताड़ित होना। 5. सिद्ध पुरुष का वरदान। 6. पुत्र का ईश्वर की खोज में स्वर्ग जाना। 7. जप करने से ईष्ट की प्राप्ति आदि।

7.3 कथानक अभिप्रायों का वर्गीकरण

लोककथाओं में प्रचलित अभिप्रायों का संसार इतना विराट व विशाल है कि उसका वर्गीकरण करना इतना सहज और सरल नहीं है। सुविख्यात लोकवार्ताविद् स्टिथ थाम्पसन के आधार पर सत्येन्द्र लिखते हैं – "अधिकांशः अभिप्राय तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। प्रथम–कर्ता–कथाओं में देवता, असाधारण पशु, आश्चर्यजनक प्राणी जैसे चुड़ैल, राक्षस, अप्सरा व पारम्परिक मानव चरित्र जैसे प्रिय सबसे छोटा बच्चा या क्रूर सौतेली माँ। द्वितीय – कुछेक ऐसी वस्तुएँ, असाधारण रिवाज तथा अनोखे विश्वास। तृतीय स्थान कुछेक घटनाओं का है जिनमें बहुत से अभिप्राय आ जाते हैं।... अभिप्राय कथानक के सभी अंगों को अपने में समेटे हुए है क्योंकि कथानक घटना, चरित्र और कार्य के मेल से बनता है। 'अभिप्राय' घटना के भी हो सकते हैं, चरित्र और कार्य के मेल से बनता है। 'अभिप्राय' घटना के भी हो सकते हैं, चरित्र के भी और कार्य के भी।"[26]

कथानक अभिप्रायों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा को कहने वाला (कथक्कड़) एक ही अभिप्राय को अनेक अंगों की छटा के साथ प्रस्तुत कर देता है। लोककथाओं का परम्परित रूप सुरक्षित रखने में इन अभप्रायों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

कथानक अभिप्रायों के अध्ययन को इतिहास अमेरिका के लोकवार्ताविद् ब्लूम फील्ड के द्वारा प्रारम्भ होता है तत्पश्चात् स्टिथ थामसन ने इस दिशा में चर्चित कार्य किया है।

ब्लूमफील्ड के शिष्यों में रुथनार्टन, नार्मन, ब्राउन आदि उल्लेखनीय अध्ययनकर्ता हैं। भारत में सर्वप्रथम टेम्पेल तथा स्टीन की पुस्तक 'वाइडएवेक स्टोरिज' (1884 ई.) में इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य हुआ इसमें अभिप्रायों को उन्होंने "घटनाओं का नाम देते हुए लिखा है कि "घटनाएँ चाहे कितनी ही मनोरंजक क्यों न हो केवल गड़बड़झाला के समान हैं जब तब की किसी एक कथानक में ग्रथित न हों और कथानक भी एक मांस रहित ढांचे के समान हैं बिना उपर्युक्त घटनाओं के।"[27] इसी ग्रंथ की टिप्पणियों को "टेल्स ऑफ पंजाब" में जोड़ दिया गया जो वर्ष 1894 ई. में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् फ्रेजर ने "ओसन ऑफ स्टोरी" में ब्लूमफील्ड द्वारा निर्धारित आधारित अभिप्रायों के आधार पर घटनाओं (अभिप्राय) का वर्गीकरण किया गया। इसी श्रृंखला में बेरियर एलविन ने 'फोकटेल्स ऑफ उड़िया' तथा 'फोक टेल्स ऑफ महाकौशल' में भी अभिप्रायों का कोश प्रस्तुत किया गया।

हिन्दी भाषा में डॉ. सत्येन्द्र ने 'ब्रजलोक साहित्य' के अध्ययन में तथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का आदिलकाल' संबंधी अपने व्याख्यानों में इस दिशा में प्रकाश डाला हैं। इनके अलावा डॉ. सावित्री सरीन तथा राजस्थानी साहित्य के संदर्भ में डॉ. कन्हैयाला सहल ने भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। डॉ. सावित्री सरीन ने स्टिथ थामसन की पद्धति का अनुकरण करते हुए 600 अभिप्रायों का परिचय दिया। डॉ. सत्या गुप्ता ने खड़ी बोली तथा डॉ. शंकरलाल यादव ने हरियाणा लोकसाहित्य के संदर्भ में लोककथाओं में प्रयुक्त 'कथानक अभिप्रायों' का विस्तार से अध्ययन किया है। इन कथानक अभिप्रायों में ही लोककथाओं की आत्मा का संगीत गूंजता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.4 अभिप्राय–अनुक्रमणिका (Motif Index)

यह तो निर्विवाद सत्य है कि कथानक अभिप्रायों के अध्ययन के बिना लोककथाओं का विश्लेषण करना असंभव है क्योंकि कथानक अभिप्राय ही उन्हें कालजयी लोक आस्था प्रदान करते हैं। कथानक अभिप्राय नींव का वह पत्थर है जिस पर लोक कथा की इमारत निर्मित होती है। शब्द का वाक्यों से जो अभेद संबंध है वही इन अभिप्रायों का लोककथाओं से है। ब्लूमफील्ड, आर्न, रुथनार्टन, नार्मन ब्राउन तथा स्टिथ थामसन ने अभिप्रायों का वृहद कोश बनाने की दिशा में उल्लेख्य कार्य किया है। भारत में डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. सावित्री सरीन तथा डॉ. कन्हैयाला सहल का कार्य इस दिशा में 'माइलस्टोन' है। कथानक अभिप्रायों के संग्रह कार्य की आवश्यकता तथा उपादेयता पर स्टिम थामसन के विचारों को उद्धत करते हुए डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है – "हमारे वे महान् पुस्तकालय जिनमें लोकवार्ताओं का संग्रह किया जा रहा है, हमारे लोकवार्ता के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं और संग्रहकर्ताओं के अनवरत उद्योग से निरन्तर अधिकाधिक समृद्ध होते जा रहे हैं और उनका पूरा–पूरा अनुसंधान कठिन हो चला है। कहानियाँ, पँवाड़े धर्मगाथाएँ तथा अनुश्रुतियाँ संसार के सभी भागों में, सभ्य तथा असभ्य दोनों क्षेत्रों में आकर बरस पड़ी हैं कि उनके संग्रहों के हजारों खण्डों को पढ़ना एक व्यक्ति के पूरे जीवन के वश की बात नहीं। इसीलिए विगत काल में यह अनुभव किया जाता रहा है कि उन्हें अनुक्रमणिका बद्ध करने की किसी व्यवस्थित प्रणाली का उपयोग किया जाना चाहिए।"28 यह सत्य है कि लोक कहानियों के अध्ययन के क्षेत्र में एण्टी आर्ने के वर्गीकरण को अत्यन्त ही उपादेय एवं लाभदायक समझा जाता रहा है फिर भी उसकी सार्थकता यूरोपीय लोककथाओं के संदर्भ में तो सिद्ध हो गयी। यूरापे के बाहरी देशों में कथा रूपों मे समानता नहीं है बल्कि उनमें गुम्फित कथानक अभिप्रायों में अवश्य ही समानता मिलती है। इन्हीं अभिप्रायों से लोककथा का ताना–बाना गूंजा जाता है। स्टिथ थामसन ने सामान्य पुस्तकालय में बनने वाली पुस्तक सूची तथा कथानक अभिप्राय संग्रहण की सूची में महत्व के आधार पर भेद सिद्ध करते हुए लिखा है कि – "पुस्तकालय की सूची बनाने वाला इस बात पर ध्यान नहीं देता कि जिस पुस्तक को वह सूची में रख रहा है, उसका मूल्य या महत्व क्या है ? न वह साहित्यिक समालोचना के किसी सिद्धान्त के आधार पर ही सूची बना सकता है। ज्ञान विषयक साहित्य तथा शक्ति का साहित्यक संबंधी सिद्धान्त अवश्य ही आलोकप्रद है, पर इनके आधार पर ग्रंथों को व्यवस्थित करने की योजना खड़ी नहीं की जा सकती। इसी प्रकार कथा साहित्य की कथानक रुढ़ियों की सुगठित सूची बनाने का काम इसी सीधे तथा सामान्यतः सरल उपाय से ही सबसे अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है कि एक विषय से संबंधित सभी रुढ़ियों को एक स्थान पर ही व्यवस्थित कर दिया जाय।" 'मोटिफ' (कथानक रुढ़ि या अभिप्राय) शब्द का उपयोग जब किया गया है तब बहुत ढीले–ढीले अर्थ में किया गया है और कथा–विलास के सभी तत्वों की समाई इसके अन्तर्गत कर ली गई।29 कथानक अभिप्राय की अनुक्रमणिका तैयार करते समय न केवल रोमन वर्णमाला के क्रम को ही रखा बल्कि इसमें धर्मगाथापरक दैवी अथवा पराप्राकृतिक से लेकर विशुद्ध लोक धरातल पर प्रकृति, हास–परिहास स्तर भी वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। 'अ' खण्ड में सृष्टिकर्ता, सृष्टि एवं देवी–देवताओं से जुड़े कथानक–अभिप्रायों को रखा गया है। डॉ. सत्येन्द्र ने "लोक साहित्य विज्ञान" में एक विस्तृत सूची दी है –

(क) धर्मगाथा–अभिप्राय

A 0 – A99 सृष्टिकर्ता
A 100 – A 499 देवता
A 100 – A 199 देवताओं के सामान्य रूप में
A 200 – A 299 उच्चलोक (स्वर्ग) के देवता
A 300 – A 399 पाताल या नीचे के लोक देवता
A 400 – A 499 पृथ्वी के देवता
A 500 – A 599 अर्द्ध देवता तथा संस्कृति–वीर (नायक)
A 600 – A 999 सृष्टि
    A 600 – A 699 विश्व–ब्रह्मा
    A 700 – A 799 द्युलोक
    A 800 – A 899 पृथ्वी–मर्त्यलोक
A 900 – A 999 पृथ्वी के भूतात्विक लक्षण
A 1000 – A 1099 संसार के संकट
A 1100 – A 1199 प्राकृतिक व्यवस्था की स्थापना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

A 1200 – A 1299 सृष्टि प्रक्रिया तथा मानव जीवन

A 1200 – A 1299 मनुष्य की सृष्टि

A 1300 – A 1399 मानव जीवन की व्यवस्था

A 1400 – A 1499 संस्कृति की उपलब्धि

A 1500 – A 1599 रीति रिवाजों तथा प्रथाओं का मूल

A 1600 – A 1699 लोगों का वितरण तथा विभेदन

A 1700 – A 1799 पशु जीवन का सृजन

A 1700 – A 1799 पशु जीवन का सृजन–सामान्य

A 1800 – A 1899 स्तनपायियों का सृजन

A 1900 – A 1999 पक्षियों का सृजन

A 2000 – A 2099 कीड़े–मकोड़ों का सृजन

A 2103 – A 2199 मछलियों तथा अन्य जानवरों का सृजन

A 2200 – A 2599 पशुओं की प्रकृति तथा लक्षण

A 2200 – A 2299 पशुओं की प्रकृतियों के विविध कारण

A 2300 – A 2399 पशुओं की प्रकृतियों के कारण : शरीर विषयक

A 2400 – A 2499 पशुओं की प्रकृतियों के कारण : रूप तथा स्वभाव

A 2500 – A 2599 पशुओं की प्रकृतियों के विविध कारण : विविध

A 2600 – A 2699 वृक्षों और पौधों का सृजन

A 2700 – A 2799 वृक्षों की प्रकृति का मूल

A 2800 – A 2899 विविध व्याख्याएँ;

(ख) पशु विषयक अभिप्राय

B 0 – B 99 धर्मगाथाई पशु

B 100 – B 199 मानव गुणों वाले पशु

B 200 – B 299 जादुई पशु

B 300 – B 599 मित्र पशु

B 300 – B 399 सहायक पशु–सामान्य

B 350 – B 399 कृतज्ञ पशु

B 400 – B 499 सहायक पशुओं के प्रकार

B 500 – B 599 सहायक पशुओं की सेवाएँ

B 600 – B 699 पशु से मानव का विवाह

B 700 – B 799 पशुओं के कल्पनात्मक गुण

B 800 – B 899 पशु विषयक अन्य अभिप्राय

(ग) वर्जन (Tabu) अभिप्राय

C 0 – C 99 पराप्राकृतिकों से संबंधित वर्जन

C 100 – C 199 यौन वर्जन

C 200 – C 299 खाने–पीने विषयक वर्जन

C 300 – C 399 देखने के वर्जन

C 400 – C 499 बोलने के वर्जन

C 500 – C 599 वर्जन–स्पर्श विषयक

C 550 – C 599 जाति या वर्गगत वर्जन

C 600 – C 699 अनोखे आवर्जन तथा विवशीकरण

C 700 – C 899 विविध अन्य वर्जन

C 900 – C 999 वर्जन के उल्लंघन पर दण्ड

(घ) जादुई अभिप्राय

D 0 – D 699 रूपान्तरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

D 10 – D 99 रूपान्तरण : मनुष्य का भिन्न मनुष्य में।
D 100 – D 199 रूपान्तरण : मनुष्य से पशु
D 200 – D 299 रूपान्तरण : मनुष्य से पदार्थ
D 300 – D 399 रूपान्तरण : पशु से मनुष्य
D 400 – D 499 रूपान्तरण : रूपान्तरण के अन्य प्रकार
D 500 – D 599 रूपान्तरण के साधन
D 600 – D 699 विविध रूपान्तरण संबंधी घटनाएँ

D 700 – D 799 टोने से मुक्ति

D 800 – D 1699 जादुई–पदार्थ

D 800 – D 899 जादुई वस्तुओं का स्वामित्व
D 900 – D 1299 जादुई वस्तुओं के प्रकार
D 1300 – D 1599 जादुई पदार्थों के काम
D 1600 – D 1699 जादुई वस्तुओं के उपलक्षण

D 1700 – D 2199 जादुई ताकतें तथा प्रदर्शन

D 1710 – D 1799 जादुई शक्तियों पर अधिकार तथा उपयोग
D 1800 – D 2199 जादुई शक्तियों का चमत्कार

(च) मृतक

E 0 – E 199 मृतक पुनरुज्जीवन

E 200 – E 599 भूत या अन्य प्रेत

E 200 – E 299 दुष्टात्मा का मृतकावस्था से लौटना
E 300 – E 399 मृतकों से मैत्री युक्त लौटना
E 400 – E 599 भूत–प्रेत–विविध

E 600 – E 699 पुनरावतार

E 700 – E 799 चमत्कारी प्राणी

F 200 – F 399 अप्सराएँ तथा परियाँ
F 400 – F 499 आत्माएँ तथा दाँने
F 500 – F 599 अनोखे व्यक्ति
F 600 – F 699 मनुष्य असाधारण शक्तियों वाले

F 700 – F 899 असाधारण स्थान तथा वस्तुएँ

F 900 – F 1099 असाधारण स्थान तथा वस्तुएँ

(ज) दैयंत

G 10 – G 99 दैयंतो के प्रकार

G 10 – G 99 मनुष्यभक्षी तथा मनुष्यभक्षण
G 100 – G 199 महाकाय दैयंत
G 200 – G 299 जादुगरनियाँ
G 300 – G 399 अन्य दैत्य

G 400 – G 499 दैत्य के चंगुल में फँसना

G 500 – G 599 दैत्य परास्त

G 600 – G 699 दैत्यविषयक अन्य अभिप्राय

(झ) परीक्षाएँ :

H 0 – H 199 पहचान के लिए परीक्षाएँ : पहचान लेना

H 200 – H 299 सच्चाई की परख

H 300 – H 499 विवाह के लिए परीक्षा

H 500 – H 899 चतुराई के लिए परीक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

H 500 – H 529 चतुराई या योग्यता के लिए परीक्षा
H 530 – H 899 पहेलियाँ
H 900 – H 1129 तेज की परीक्षा : साहस के कार्य
H 900 – H 999 साहस के कामों को सौंपना तथा करना
H 1000 – H 1199 साहस के कामों के रूप में
H 1200 – H 1399 तेज की परीक्षा : खोज
H 1200 – H 1249 खोजों के साथ की स्थितियाँ
H 1250 – H 1399 खोजों के रूप
H 1400 – H 1599 अन्य परीक्षाएँ
H 1400 – H 1499 भय की परीक्षा
H 1450 – H 1499 चौकसी की परीक्षा
H 1500 – H 1549 सहिष्णुता तथा बच जाने की शक्ति की परीक्षा
H 1550 – H 1569 चरित्र की परीक्षा
H 1570 – H 1599 विविध परीक्षाएँ

(ट) बुद्धिमान तथा मूर्ख

J 0 – J 99 बुद्धिमान (ज्ञान) की उपलब्धि तथा उस पर अधिकार
J 200 – J 1099 समझदारी तथा मूर्खता के आचरण
J 200 – J 499 निर्वाचन
J 500 – J 599 दूरदृष्टि तथा निजी निर्णय
J 600 – J 799 पूर्व विचार
J 800 – J 849 अवसरानुकूलता
J 850 – J 899 दुर्भाग्य में धीरज
J 900 – J 999 अपदार्थता
J 1000 – J 1099 बुद्धिमान के अन्य पहलू
J 1100 – J 1699 चतुराई
J 1110 – J 1129 चतुर व्यक्ति
J 1130 – J 1199 कचहरी में चतुराई
J 1200 – J 1229 चतुर आदमी दूसरे के छक्के छुड़ाता है
J 1230 – J 1249 चतुर बाँट
J 1250 – J 1499 चतुर व्यंग्य
J 1500 – J 1649 चतुर व्यक्ति
J 16510 – J 1699 विविध चतुराई के कर्म
J 1700 – J 2949 मूर्ख (तथा अन्य अबुद्धिमान, बुद्धू व्यक्ति)
J 1700 – J 1749 मूर्ख (सामान्य)
J 1750 – J 1849 भद्दे भ्रम
J 1850 – J 1999 तथ्यों की भद्दी प्रवंचना
J 2000 – J 2049 भद्दा खोया–खोयापन
J 2050 – J 2199 भद्दी संकुचित दृष्टि
J 2200 – J 2259 तर्क का अभाव
J 2260 – J 2299 भेद वैज्ञानिक सिद्धान्त
J 2300 – J 2349 गप्पी मूर्ख
J 2350 – J 2369 वाचाल मूर्ख
J 2370 – J 2399 छिद्रान्वेषी मूर्ख
J 2400 – J 2449 मूर्खतापूर्ण नकल
J 2450 – J 2499 शब्दतः मूर्ख
J 2500 – J 2549 मूर्खता की अति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

J 2550 – J 2599 धन्यवाद देने वाले मूर्ख
J 2600 – J 2649 कायर मूर्ख
J 2650 – J 2699 गड़बड़ करने वाले मूर्ख
J 2700 – J 2749 सरल समस्या भी कठिन
J 2750 – J 2799 बुद्धिमानी तथा मूर्खता के अन्य पहलू

(ठ) धोखे

K 0 – K 99 धोखे से प्रतियोगिता में जीत
K 100 – K 299 धोखे के सौदे
K 300 – K 499 चोरियाँ तथा ठगाई
K 500 – K 699 धोखे से बच निकलना
K 700 – K 799 धोखे से पकड़ना
K 800 – K 999 घातक धोखा
K 1000 – K 1199 स्वयं के चोट पहुँचाने वाला धोखा
K 1200 – K 1299 अपर्दाता की स्थिति में पहुँचाने वाला धोखा
K 1300 – K 1399 धोखे की शादी
K 1400 – K 1499 ठग की ;क्नचमद्ध सम्पत्ति का नाश
K 1500 – K 1599 व्यभिचार विषयक धोखे
K 1600 – K 1699 धोखेबाज स्वयं अपने जाल का शिकार
K 1700 – K 2099 बनावटों से धोखा

K 1700 – K 1799 उल्लू बनाकर धोखा
K 1800 – K 1899 उछन्नम या मरीचिका से धोखा
K 1900 – K 1999 छद्मधारी
K 2000 – K 2099 धूर्त

K 2100 – K 2199 मिथ्या अपवाद
K 2200 – K 2299 दुष्ट तथा विद्रोही
K 2300 – K 2399 अन्य धोखे

(ड) भाग्य का पलटना

L 0 – L 99 विजयी सबसे छोटा बालक
L 100 – L 199 अहोनहार नायक (नायिका)
L 200 – L 299 शील से पुरस्कार मिला
L 300 – L 399 दुर्बल की जीत
L 400 – L 499 घमण्ड का सिर नीचा

(ढ) भविष्यनिर्देशन

M 0 – M 99 निर्णय तथा आदेश
M 100 – M 199 वचन तथा शपथ
M 200 – M 299 सौदे तथा वायदे
M 300 – M 399 भविष्यवाणियाँ
M 400 – M 499 शाप

(त) अवसर तथा भाग्य

N 0 – N 99 दाँव तथा जुए
N 100 – N 299 भाग्य तथा कर्म
N 300 – N 399 दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ
N 400 – N 499 भाग्यपूर्ण घटनाएँ

N 410 – N 439 भाग्यपूर्ण व्यवसायिक साहस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

N 440 – N 499 मूल्यवान रहस्य सीखे
N 500 – N 599 छिपे खजाने
N 600 – N 699 अन्य भाग्यपूर्ण घटनाएँ
N 700 – N 799 आकस्मिक मुठाभेड़ें
N 80 – N 899 सहायक

(घ) समाज

P 0 – P 99 राजकीय तथा अभिजात्य
P 100 – P 199 अन्य सामाजिक वर्ग
P 200 – P 299 कुटुम्ब
P 300 – P 399 अन्य सामाजिक संबंध
P 400 – P 499 व्यवसाय तथा व्यापार
P 500 – P 599 शासन
P 600 – P 699 प्रथाएँ
P 700 – P 799 समाज–विविध अभिप्राय

(द) पुरस्कार तथा दण्ड

Q 10 – P 99 कामों पर पुरस्कार
Q 100 – P 199 पुरस्कार के रूप
Q 200 – P 399 कामों पर दण्ड
Q 400 – P 599 दण्ड के रूप

(घ) कैदी तथा पलातक

R 0 – R 99 कैद
R 100 – R 199 छुड़ाना
R 200 – R 299 बच निकलना तथा पीछा करना
R 300 – R 399 शरण तथा पुनःबन्दी

(न) अप्राकृतिक क्रूरता

S 0 – S 99 प्रेम
S 100 – S 199 मन उमेठने वाली हत्याएँ या अंग भंगीकरण
S 200 – S 299 क्रूर बलिदान
S 300 – S 399 परित्यक्त या मारा गया बालक
S 400 – S 499 क्रूर उत्पीड़न

(4) यौन

T 0 – T 99 प्रेम
T 100 – T 199 विवाह
T 200 – T 299 विवाहित जीवन
T 300 – T 399 पवित्रता तथा सतीत्व तथा ब्रह्मचर्य
T 400 – T 499 अवैध यौन संबंध
T 500 – T 599 गर्भधारण तथा जन्म
T 600 – T 699 बच्चों का पोषण

(फ) जीवन का रूप

U 0 – U 99 जीवन की विषमताएँ
U 100 – U 299 जीवन की रूप–विविध

(ब) धर्म

V 0 – V 99 धार्मिक सेवाएँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

V 100 – V 199 धार्मिक भवन तथा वस्तुएँ
V 200 – V 299 पावन व्यक्ति
V 300 – V 399 धार्मिक विश्वास
V 400 – V 449 दान तथा उदारता
V 450 – V 499 धार्मिक समुदाय
V 500 – V 599 धार्मिक अभिप्राय–विविध

(भ) चरित्र की विशेषता

W 0 – W 99 चरित्र की अच्छी विशेषताएँ
W 100 – W 199 चरित्र की बुरी विशेषताएँ
W 200 – W 299 चरित्र की विशेषताएँ – अन्य तथा विविध

(म) हास्य

X 0 – X 99 विकलस्थता में हास्य
X 100 – X 199 लुंज–पुजता (शारीरिक) में हास्य
X 200 – X 599 सामाजिक वर्गों या जातियों का हास्य
  X 200 – X 299 व्यापारियों से व्यवहार में हास्य
  X 300 – X 499 व्यवसायों से व्यवहार में हास्य
  X 500 – X 599 अन्य सामाजिक वर्गों के विषय में हास्य
X 600 – X 699 वंशों और जातियों से संबंधित हास्य
X 700 – X 799 यौन संबंधी हास्य
X 800 – X 899 पियक्कड़पन पर हास्य
X 900 – X 1099 झूठ और गधों के हास्य

(य) अभिप्रायों के अन्य विविध समूह

Z 0 – Z 99 गुर
Z 100 – Z 199 प्रतिकात्मकता
Z 200 – Z 299 वीर
Z 300 – Z 399 अनोखे अपवाद
Z 4000 – अवर्गीकृत अभिप्राय

इतने वर्गों में सहस्त्रशः अभिप्राय पुस्तकालय की सूचीकरण प्रणाली के अनुसरण पर संजो दिये गये हैं। इस प्रणाली में सबसे बड़ा लाभ यह है कि और भी नये अभिप्राय अनुक्रमणिका में ठीक–ठीक स्थानों पर जमाये जा सकते हैं जिससे अध्ययनकर्ता को उन्हें खोजने में भी कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। लोककहानियों के अध्ययन की यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थित प्रणाली बहुत है। प्रथम संस्करण की उक्त सूची में स्टिथ थामसन, ने ण्ट तथा ल छोड़ दिये थे। इनमें से आगे दूसरे संस्करण (J) में कुछ परिवर्तन करके। (ई) को बढ़ा दिया है। अब। (इ) तथा श्र (ट) का रूप यह हो गया है –

1,O – L 1099 बुद्धिमान सम्बन्धी प्रसंग के
1,O – 1 199 विद्योपार्जन कथातन्तु
1200 & 1599 ठीक चुनाव एवं विवके
1600 & 1799 दूरदर्शिता
1800 & 1899 बदलती परिस्थितियों में निर्वाह तथा संकट में आश्वस्त
1900 & 1999 विद्या से विनय
J (2)
J 1100 & J 1699 चातुर्य पूर्ण प्रसंग
J 1130 & J 1199 न्यायालय में बुद्धिमानी
J 1230 & J 1249 भेद नीति
J 1250 & J 1499 वाक्वैदग्ध्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

J 1700 & 2749 मूर्ख एवं शेखचिल्ली

अभिप्रायों के इस कथन से अनुक्रमणिका की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।29

सारांश यह है कि कथानक–अभिप्रायों का यदि विश्वस्तर पर अध्ययन किया जाय तो लोककथाओं की संरचना तथा उसकी व्यापकता के आधारों को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। इस दिशा में शोध की व्यापक संभावनाएँ हैं।

7.5 कथानक रुढ़ियाँ

लोककथाओं के अध्ययन के दिशा–निर्देशक तत्वों में कथानक रुढ़ियों की भी उल्लेखनीय भूमिका रहती है। लोककथाओं में कथानक अभिप्राय (Motif) प्रयुक्त होते हुये जब रुढ़ चलन में परिवर्तन होने लगते हैं तब वे 'कथानक रुढ़ियाँ' बन जाते हैं। इसीलिए कई बार कथानक अभिप्राय (Motif) तथा कथानक रुढ़ि में अध्येता अन्तर नहीं कर पाता है। किसी भी लोककथा में कुछ घटनाएँ ऐसी होती है। जो अपने अप्रत्याशित गुण अथवा सुखा–दुखात्मक प्रभाव के कारण पाठकों का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। लोककथा के ध्यानाकर्षण तंतु घूम फिर कर कथा को जीवंत बनाते रहते हैं। कथानक रुढ़ि को समझने के लिए कथा के लिए कथा के प्रतिपाद्य को हृदयंगम करना अनिवार्य है। कभी–कभी कुछ ऐसी कथाएँ भी होती हैं जिनका प्रतिपाद्य सर्वथा स्पष्ट नहीं होता जैसे साहसी एवं उत्साही नाविक सिंदबाद की यात्राओं की कथा लेकिन इसमें भी कथानक रुढ़ि यह हो सकती है कि जीवन में खतरों को झेलने तथा नया अनुसंधान करने वाले ही अपार सम्पत्ति के स्वामी हो सकते हैं। ठगने वाला जब स्वयं ही दूसरों को ठगने की चेष्टा करता है तब बदले में वह स्वयं ही ठगा जाता है। इस प्रकार ठग का ठगा जाना – यह एक कथानक रुढ़ि है।

कथानक रुढ़ियों को परिभाषित करते हुए डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा लिखते हैं – "उस शब्द अथवा साँचे में ढले हुए विचार को कथानक रुढ़ि कहते हैं जो समान प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एक अथवा एक ही जाति की अनेक कृतियों में बार–बार प्रयुक्त किया जाता है। ये कहानियाँ अनेक समान स्थलों एवं अनेक गाथाओं में प्रयुक्त होते–होते रुढ़ हो जाती है।... गाथाकार विशेष मन्तव्य से कथानक रुढ़ियों का प्रयोग करता है। अनेक असंभाव्य घटनाओं का समाधान कथानक के प्रयोग से होता है, वहाँ तर्क के लिए कोई स्थान नहीं रहता। ...कथानक रुढ़ियों के प्रयोग में गाथाकारों के अनुभव, सहृदयता, कल्पना और वस्तुविन्यास कौशल का परिचय मिलता है।"[30] डॉ. दिनेश्वर प्रसाद कथानक रुढ़ियों को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – "कथानक रुढ़ियाँ कहानी के वे तत्व है जो अपनी विशिष्टता के कारण अलग पहचाने जा सकते हैं। यह विशिष्टता उन्हें कथा समूह में विशेष प्रकार के पात्रों, घटनाओं और धारणाओं के रूप में आवृत्ति के कारण प्राप्त होती है। लोक साहित्य में उनकी स्थिति बहुत कुछ वैसी ही है जैसे संस्कृति के लक्षणों और भाषा में वाक्य गठनों की। जहाँ कई कथानक रुढ़ियों का विशेष संयोग कथा प्रारूप हो सकता है, वहाँ एक ही कथानक रुढ़ि परस्पर भिन्न अर्थात् स्वतंत्र कथा रूपों में आयोजित मिल सकती है।"31 कथानक रुढ़ियाँ इसीलिए विश्वव्यापी हो जती हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध लोकवार्ताविद् ग्रिम बन्धुओं ने अपने जर्मन लोक कथा संग्रह में दो कहानियों के माध्यम से कथानक रुढ़ियों की विश्वव्याकुलता का एक कहानी संकेत दिया है – "गाने वाली कहानी में छोटा भाई उस सुअर को मार डालता है जिसके मारने वाले के साथ राजा अपनी पुत्री का विवाह की घोषणा करता है। रास्ते में बड़ा भाई अपने छोटे भाई की हत्या करके उसे गाड़ देता है तथा स्वयं राजकुमारी से विवाह कर लेता है। अनेक वर्षोपरान्त एक गडरिया उसी जंगल में पड़ी एक हड्डी से बाजा बनाता है और जब वह उसे बजाता है तो चौंक पड़ता है क्योंकि वह हड्डी उसी छोटे भाई की होती है। तब वह उसे राजा के सामने बजाता है और सबके सामने छोटे भाई की हत्या का रहस्य उद्‌घाटित हो जाती है। इसी प्रकार दूसरी कहानी "जूनी पर वृक्ष" की है जिसमें माँ अपनी सौतेली पुत्री को मार कर उसका माँस पकाती है तथा अपने पति को खिला देती है। वहीं पर फैली हुई हड्डियों को छोटी बहन चुनकर एक जूनी पर वृक्ष के नीचे छोड़ देती है। बाद में वहाँ एक पक्षी उत्पन्न होता है जो अपनी सौतेली माँ के अत्याचारों की करुण कथा कह कर रहस्य उद्‌घाटित कर देता है। भारत में भी इस प्रकार की अनेक लोक कथाएँ जिसमें पेड़ की लकड़ी से बनाये गये ढोल से रहस्य उद्‌घाटित होते हैं या बांसुरी से तथ्यों का परिचय प्राप्त होता है। ऐसी कथानक रुढ़ि का मूल अभिप्राय मृत व्यक्ति का गाये जाने वाली वस्तु या प्राणी बनकर अपने प्रति किये गये अत्याचार का उद्‌घाटन है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कथानक रुढ़ियों का क्षेत्र विश्वव्यापी है। यही स्थिति कविता में भी देखी जा सकती है। कुछ कथानक रुढ़ियाँ तो ऐसी है जिनका लोक साहित्य तथा अभिजात्य साहित्य दोनों में ही बराबर व समान रूप से प्रयोग होता रहा है जैसे संदेश वाहक के रूप में पक्षियों का उपयोग। यह कथानक रुढ़ि महाकवि कालिदास के "मेघदूत" में बादल, भ्रमरगीत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(सूरसागर) में भ्रमर, जायसी कृत 'पद्मावत' में भ्रमर और काग, हरऔध कृत "प्रियप्रवास" में पवन तथा लोक गीतों में भ्रमर, काग, शुक आदि के द्वारा हुआ है अतएवं पक्षियों द्वारा संप्रेषण कथानक रुढ़ि बन गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – "ऐतिहासिक चरित का लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घ काल से व्यवहृत होते आये हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रुढ़ि में बदल जाते हैं। चित्तोड़ के राजा से सिंघल देश की राजपुत्री का विवाह हुआ था या नहीं, इस ऐतिहासिक तथ्य से कुछ लेना देना नहीं है, हुआ हो तो बहुत बात है, न हुआ हो तो होने की संभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा तो किससे होगा? शुक नामक पक्षी थोड़ा–बहुत मानव प्राणी का अनुकरण कर लेता है, और कर भी क्या सकता था। जितनी शक्ति उसे प्राप्त है उससे अधिक की संभावना तो है ही। ऋषि के वरदान से वह शक्ति बढ़ सकती है, ऋषि के शाप से पतित गंधर्व यदि सुआ हो गया हो तो पूर्वजन्म के संस्कार उसको कला मर्मज्ञ बना सकते हैं। जब ये संभावनाऐं हैं तो क्यों न उसे सकल शास्त्र सिद्ध कर दिया जाय। इस प्रकार संभावना पक्ष पर जोर देने के कारण बहुत सी कथानक रुढ़ियाँ इस देश में चल पड़ी हैं। कुछ रुढ़ियाँ ये हैं –

1. कहानी कहने वाला सुग्गा,
2. (क) स्वप्न में प्रिय का दर्शन पाकर आसक्त होना
   (ख) चित्र में देख कर किसी पर मोहित हो जाना,
   (ग) भिक्षुकों या बंदियों के मुख से कीर्ति–वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना इत्यादि।

3. मुनि का शाप, 4. रुप–परिवर्तन, 5. लिंग–परिवर्तन, 6. परकाया प्रवेश, 7. आकाशवाणी, 8. अभिज्ञान, 9. परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान, 10. नायक का औदार्य, 11. षडऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह वेदना, 12. हंस कपोत के माध्यम से संदेश भेजना, 13. घोड़े का आखेट के समय निर्जन वन में पहुँच जाना, मार्ग भलूना, मान सरोवर पर किसी सुन्दरी या उसकी मूर्ति का दिखाइ देना फिर प्रेम और प्रयत्न, 14 विजनवल में सुन्दरियों से साक्षात्कार, 15. युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से, या कापालिक की बलिवेदी से सुन्दरी स्त्री का उद्धार व प्रेम, 16. गणिका द्वारा दरिद्र नायक को स्वीकार करना तथा गणिका की माता का तिरस्कार, 18. पिपासा और जल की खोज में जाते समय असुर दर्शन और प्रिया वियोग, 19. ऐसे शहर का मिल जाना जो 20. उजाड हो गया हो, नायक का हाथी आदि द्वारा जयमाला पाना, 20. प्रिय की दोहद कामना की शर्त के लिए प्रिय का असाध्य साधन का संकल्प, 21. शत्रु–संतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ देना, और फलस्वरूप युद्ध इत्यादि। इसी प्रकार डॉ. कृष्णकुमार शर्मा ने राजस्थानी लोकगाथाओं का अध्ययन करते हुए कथानक रुढ़ियों के प्रयोग के कारणों का भी उल्लेख करते हुए लिखा है कि "गाथा में इन रुढ़ियों का प्रयोग विशेष कारणों से किया जाता है, कुछ निम्नलिखित हैं – (क) लोकगाथा में घटना व्यापार को अग्रसर करने के लिए। (ख) अलौकिक एवं आश्चर्यजनक क्रिया–कलाप का समाधान करने के लिए। (ग) उत्सुकता वृद्धि हेतु।"[32] राजस्थान की लोककथाओं में प्रयुक्त कतिपय कथानक रुढ़ियां निम्नलिखित हैं –

1. ईश्वर अथवा गुरुकृपा अथवा ऋषि के वरदान से पुत्र की प्राप्ति इस कथानक रुढि का संकेत 'गोगाजी' लोकगाथा तथा 'निहालदे सुल्तान' में मिलता है। गोगाजी का जन्म गोरखनाथ की कृपा से होता है।

2. किसी फल या अनाज द्वारा पुत्र की प्राप्ति 'निहालदे सुल्तान' में सुल्तान का जन्म गोरखनाथ प्रदत्त जव (जौ) से होता है।

3. शंकर–पार्वती द्वारा मृतनायक अथवा नायिका को फिर से जीवित करना। इस कथानक रुढ़ि का प्रमाण 'ढोला–मारु', 'जलालबूबना', 'नागजी नागवन्ती' आदि से प्राप्त होता है। सर्पदंश से मृत मारु को शिवजी पार्वती के आग्रह करने पर फिर से जीवनदान देते हैं। 'जलाल बूबना' में शंकर–पार्वती की कृपा से कब्र में दफनाये जाने के पश्चात् भी जलाल–बूबना फिर से जन्म धारण कर लेते हैं।

4. दिये गये वचनों के कारण मृत्यु का वरण करने के लिए वापिस लौटना राजस्थान की अनेक लोककथाओं व गाथाओं में इस कथानक रुढ़ि का उल्लेख मिलता है। सिंह द्वारा गाय को मारकर खाने के लिए तत्पर होना, गाय द्वारा अपने बछड़े को दु पिला कर पुनः लौटने का वचन देना तथा गाय के लौटने पर सिंह द्वारा उसे अभयदान देना इसी रुढ़ि का संकेत है। इसी प्रकार लोक देवता तेजाजी भी स्वेच्छा से जलते हुए सर्प को दिये वचनों का पालन करने के लिए अत्यन्त ही घायल होते हुए भी पुनः लौट कर उसी सर्प से दंश ग्रहण करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. पशु–पक्षियों का मानव वाणी में वार्तालाप।

6. स्वप्न में प्रिय के दर्शन (ढोला मारु में मारु स्वप्न में ही अपने प्रियतम के दर्शन करती है। "निहालदे सुल्तान" में ऊहा सुल्तान के स्वप्न में देखती हैं।)

7. उपवन में नायक–दर्शन तथा नायिका द्वारा उसी से विवाह करने का निश्चय। नागजी–नागवन्ती, पाशजी तथा निहालदे सुल्तान गाथा में इस कथानक रुढ़ि का प्रयोग हुआ है।

8. चित्र अथवा मूर्ति देखकर मुग्ध होना।

9. रूप–परिवर्तन।

10. राक्षस द्वारा नित्य एक व्यक्ति का भोजन।

11. राजकुमारी द्वारा फूलों से तुलना।

12. उड़ने वाली पादुका या उड़न खटोला।

13. समुद्र में दैत्य द्वारा राजकन्या को रखना।

14. नायिका को जीतने की शर्त।

15. शंकर की गाय की नायक द्वारा सेवा।

16. परीक्षा लेने के लिए ईश्वर का कोढ़ी रूप में आना।

17. सत् के प्रभाव से समुद्र का मार्ग देना।

18. नायक की परीक्षा के लिए पहेली बूझना।

19. धड़ का युद्ध करना।

20. जीव को अन्यत्र सुरक्षित रखना।

7.6 कथा मानक (Tale Type)

लोक साहित्य के अध्ययन की दिशा में जब विश्व के लोकवार्ताविदों का ध्यान आकर्षित हुआ तब उन्हें यह जानकर अत्यन्त ही विस्मय हुआ कि लोक तत्वों की सत्ता विश्वव्यापी है। लोक साहित्य अब किसी जाति, समाज, देश विशेष अथवा भाषावर्ग की लक्ष्मण रेखाओं में विभाजित नहीं किया जा सकता। लोक साहित्य सार्वदेशिक, सार्वजनीन, सार्वलौकिक तथा सार्वभौम है। विश्व जीवन के महासमुद्र में लोकसत्ता की रत्नावलियाँ तैरती हुई दिखलाई देती है। इन्हीं में हमारा भूत, वर्तमान और भविष्य सुरक्षित है। उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक सामाजिक भारतीय पुनर्जागरण के कारण विश्व का ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर केन्द्रित हुआ। संस्कृत साहित्य में वर्णित कथा संसार ने विश्वभर के लोकवार्ताविदों को चौंका दिया। वे यह जानकर अचम्भित थे कि उनकी लोक कथाओं के मूल तत्वों तथा भारतीय लोककथाओं में विद्यमान मूल तत्वों में केवल नाम का ही अन्तर है अन्यथा बड़ी अद्‌भुत व अविश्वसनीय समानता है। इसी कारण विश्व लोकवार्ताविशारदों को लोक कथाओं के परस्पर तुलनात्मक अध्ययन करने में सुविधा प्राप्त करने के लिए कथा मानकों (टेल टाइप) का अनुसंधान करना पड़ा। स्टिथ थाम्पसन ने इस समानता को "स्ट्राइकिंग रिजेम्बेलेंस" कह कर संबोधित किया है। संस्कृत तथा अन्य विश्वभाषाओं की परस्पर समानता के ही कारण तुलनात्मक भाषा विज्ञान, तुलनात्मक दर्शनशास्त्र, तुलनात्मक नृविज्ञान, तुलनात्मक इतिहास आदि के साथ ही तुलनात्मक लोकवार्ताविदों की अध्ययन दृष्टि का भी विकास हुआ है। "पश्चिम की लोक कहानियों से पूर्व की लोक कहानियों की तुलना होने लगी। इसी तुलना में यह आभास मिला कि मूलतः एक ही कहानी विविध आर्य–भाषाओं तथा अन्य भाषाओं के क्षेत्रों में नाम रूप के संशोधन और कुछ गौण परिवर्तन तथा परिवर्द्धन के साथ मिलती है। उस मूल रूप को खोज कर प्रस्तुत करने से ही मानक रूप का जन्म हो गया इसी निष्कर्ष के उपरान्त ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो पश्चिम में प्रचलित समस्त लोक कथाओं का जन्म भारत से ही हुआ है तथा बाद में अनेक मार्गों की खोज भी की। विलहेल्म ग्रिम ने अपने गहन और विशद तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष स्थापित किया कि प्राचीन भारतीय यूरोप का मूल ही कहानियों का जनक है। बेन्फे ने तो हाशिए पर रखी कहानियाँ जो यहाँ (भारत में) प्रचलित हैं उन्हीं को मूल कहानियों के रूप में स्वीकार किया। ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा भौगोलिक कारणों से जब इन यूरोपीय जातियों को अपने घर से ही च्युत होना पड़ा तब लोक वार्ता की विविध विधाओं का विस्तार होकर फैलाव हुआ। इसीलिए आज भी लोक कहानियों अथवा धर्मगाथाओं के अनेकानेक मानक रूप भारत भी लोक कथाओं में भी देखे गये और इस प्रकार अनेक लोक कथा मानकों का जन्म हुआ। इसीलिए बेन्फे की तो मान्यता है कि यूरोप की लोक कथाओं का जन्म भारत में हुआ। सोफिया बर्न ने अपनी पुस्तक Hand Book of Folk Lore में ऐसे अनेक कथा मानकों की चर्चा की हैं। आर्ने तथा थामसन ने 'टाइप आफ द फोकटेल' में कथा मानकों पर विस्तार से चर्चा की है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं – "इस शब्द का प्रयोग उन कथाओं के लिए है जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मौखिक परम्परा में अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने में समर्थ हो। कोई कथा स्वतंत्र कहानी के रूप में कही जाती हैं। 'टाइप' समझी जा सकती है। ...अपनी कुछ विशेषताएँ (CËracteristics) के कारण किसी कथा का वर्गीकरण दूसरी कक्षा से पृथक् होता है। इस वर्ग को टाइप कहते हैं।[33] इस दृष्टि से यह तो कहा जा सकता है कि "मोटिफ" का क्षेत्र 'कथामानक' की तुलना में कहीं व्यापक होता है। कथामानक का आधार क्षेत्रीय होता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि 'कथानक' परम्परा से प्राप्त वह कथा बीज है जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। वह अपने में पूर्ण कथा की संभावना का निर्वाह करता है। लोक कथाओं के अध्ययन में इसकी महत्ता को उद्घाटित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं –"साधारण लोक कथाओं के अध्ययन के लिए 'टाइप' और 'मोटिफ' का अध्ययन यह संकेत दे देता है कि जैसे 'कथानक अभिप्राय' रुढ़ि बन जाते हैं और कथानक रुढ़ि के अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। (Research has been fostered by recognition of this complementary concepts type and `motif`. The `motif is the smallest recognizable element that goes to make up a complete story`) इस प्रकार यह कहना उचित प्रतीत होता है कि 'कथानक' लोककथाओं के अध्ययन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है। कथा मानक बीज तत्व है जिसमें लोक कथा का रूपी वृहद् वटवृक्ष बनने की असीम संभावना रहती है। 'कथामानक' के लिए एक अन्य शब्द 'कथारूप' का भी प्रयोग किया जाता है। विश्वविख्यात लोकवार्ताविद् सोफियाबर्न ने अपनी 'द हैण्ड बुक ऑफ फोकलोर' में लगभग सत्तर कथामानकों का उल्लेख किया है। 1928 में फिनलैण्ड के एण्टी आर्ने ने सम्पूर्ण यूरोप में प्रचलित लोककथाओं का अध्ययन करने के उपरान्त संकलित कथामानकों को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया है – (1) पशु कथाएँ – जिसमें जंगली और घरेलू पशु–पक्षियों से संबद्ध। (2) सामान्य लोककथाओं में यथा जादू, अलौकिक घटनाओं, रोमांचक आख्यानों में प्रयुक्त कथामानक। (3) हास्य–मनोरंजन मूलक चुटकुले, भाग्यशाली घटनाओं, मूर्खों गप्पबाजों से संबद्ध कथामानक। (4) सूत्र प्रधान कथाएँ जिनमें क्रम संवर्द्धक लोककथाओं में प्रयुक्त तथा (5) अन्य अवर्गीकृत लोककथाओं में प्रयुक्त कथामानकों का परिचय दिया है।

7.7 सारांश

सरांश यह है कि कथानक रुढ़ियों से लोक कथा हो या लोकगाथा – दोनों को अपूर्व भाव सौष्ठव प्राप्त होता है। लोकवार्ता के सभी अंगों में कथानक रुढ़ि का वैशिष्ट्य रहता है। प्रायः लोकवार्ता के अध्येता 'कथानक अभिप्राय' तथा 'कथानक रुढ़ि' में अन्तर नहीं करते लेकिन मेरी मान्यता है कि जब कोई कथानक रुढ़ि प्रयुक्त होकर किसी लोककथा का आधार बन जाती है तब वह 'कथानक अभिप्राय' अथवा 'मोटिफ' होती है तथा उसका चलन तब रुढ़ हो जाता है तब वह 'कथानक रुढ़ि' बन जाती है।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. कथानक–अभिप्राय से क्या तात्पर्य है?
2. राजस्थानी लोककथाओं में कथानक अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
3. कथामानक को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–3

इकाई–8

लोकसंस्कृति

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 लोक संस्कृति
8.3 लोक संस्कृति तथा अभिजात्य संस्कृति में अन्तर
8.4 सारांश
8.5 अभ्यास प्रश्नावली

8.0 प्रस्तावना

'लोकसंस्कृति' भाब्द की रचना में 'लोक' और 'संस्कृति' का पृथक पृथक विवेचन करना अध्ययन की दृश्टि से सुविधाजनक होगा। 'संस्कृति' भाब्द के पूर्व 'लोक' जब जुड़ जाता है तब 'लोकसंस्कृति' संज्ञा बनती है। समाजभास्त्र वेत्ता एम.एल. गुप्ता लिखते हैं – ''लोकसमाज की संस्कृति को ही लोक संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है। ... उनमें नगरीय समाज से विपरीत प्रकार की विभोशताएँ पायी जाती है वह एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा होता है तथा जिसमें, अकेलापन, अभिक्षा, समानता–समूहदृढ़ता की भावना एवं जीवन का रूढ़िगत ढंग पाया जाता है। ऐसे समाज की अन्य विभोशताओं के रूप में कानून का अभाव, परम्परागत प्रकार का व्यवहार जो प्रमुखतः वैयक्तिक एवं आलोचनारहित होता है, परिवार तथा नातेदारी समूह में लोगों के क्रिया कलापों में एकता, धर्म का प्रभाव, अर्थ–व्यवस्था का बाजार के बजाय प्रस्थिति पर आधारित होना तथा बुद्धिजीवी वर्ग के चिन्तन का अभाव, आदि प्रमुख है।[1] जार्ज एम. फोस्टर लिखते हैं– ''लोकसंस्कृति को जीवन के अन्य सामान्य तरीके के रूप में देखा जा सकता है जो एक क्षेत्र विभोश में बहुत से गाँवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी लोगों की विभोशता के रूप में है और लोकसमाज के एक संगठित समूह के रूप में है जिसकी एक लोकसंस्कृति है।'' (A folk culture may be thought of a common way of life, which characterizes some or all of the people many villagesm towns and cities within a given area and a folk society may be thoughts of as an organize group of individuals characterizes by folk culture)[2]

8.1 उद्देश्य

इससे लोकसंस्कृति के स्वरूप को समझा जा सकेगा।

8.2 लोकसंस्कृति

लोकसंस्कृति नगरीय संस्कृति से नितान्त भिन्न है जो लिखित न होकर मौखिक परम्पराओं पर अधिक निर्भर है। इसीलिए यह चिरन्तन भाभवत तथा कालजयी है। यह एक प्रकार से मौखिक सांस्कृतिक परम्परा है जो पीढ़ी एक दूसरे को हस्तान्तरित होती रहती है। यहाँ ज्ञान और कला के व्यावसायिकरण की सम्भावना बहुत ही कम होती है। 'लोकसंस्कृति के अन्तर्गत वे सभी देवी–देवता, धार्मिक विधि–विधान तथा अनुश्ठान, विभवास, ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य, संगीत कहावतें, मुहावरे, लोकगाथाएँ नाटक आदि आते हैं जिनका स्त्रोत प्रत्यक्ष रूप में कोई धर्मग्रन्थ या कोई अन्य ग्रंथ नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक ऐसी देवी–देवताओं की पूजा होती है और कई ऐसे त्यौहार मनाये जाते हैं जिनके फैलाव का क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्श है जिनका उद्गम कोई अखिल (Elite tradition of culture) या दीर्घ परम्परा (Great tradition) से संबंधित है। लेकिन साधारणतः प्रत्येक ग्राम में कुछ ऐसे देवी–देवता, मेले, अनुश्ठान आदि भी होते हैं जो उस स्थान या क्षेत्र विभोश से संबंधित हैं तथा जिनका अभिजात्य संस्कृति से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं पाया जाता है। इस प्रकार लोकसंस्कृति का एक स्थानीय स्वरूप देखा जा सकता है।[3] उदाहरणार्थ राजस्थान में करणीमाता, उत्तरप्रदेभा के किभानगढ़ी ग्राम में 'बासूर पूजा', 'कुँए के देवता की पूजा', 'बरहो बाबू की पूजा,' किसी भास्त्रीय या वैदिक परम्परा से सम्ब नहीं है। इसी प्रकार दीपावली पर वहाँ का समाज लक्ष्मी की पूजा न करके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'सौरती' की पूजा करता है। इस देवी की प्रतिमा चावल के आटे से बनायी जाती है। यहाँ लक्ष्मी तो धनवानों की देवी है। 'सौरती' देवी से ग्रामीण समाज अपने परिवार और पशुओं की रक्षा तथा समृद्धि की प्रार्थना करते हैं। किशानगढ़ी गाँव में ही रक्षाबंधन के दिन ग्रामीण एक अन्य त्यौहार भी मनाते हैं जिसे 'सैलूजों' के नाम से पुकारते हैं। इस अवसर पर युवा पत्नी अपने भाइयों के पास पन्द्रह दिन पीहर में रहने के लिए आती है। 'सैलूनों' के दिन पति अपनी पत्नी को लेने आता है। बहनें अपने भाइयों के प्रति श्री व्यक्त करने हेतु उनके कान और सिर पर जौ की बालियाँ रखती है। इससे यह असंदिग्ध रूप से स्पष्ट होता है कि लोकसंस्कृति में स्वयं सृजन करने की अपूर्व क्षमता होती है। लोकसंस्कृति बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन की दृष्टि से अपूर्व है तथा अभिजात संस्कृति उप सरंचना (**Elite Culture Sub Structure**) के संग अनवरत तथा निरन्तर अन्तःक्रिया होती रहती है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं तथा प्रभावित भी करते हैं। लोकसंस्कृति में सृजन की अपूर्व क्षमता होती है। लोककला, साहित्य, भजन–कीर्तन, उत्सव, व्रत, त्यौहार, नृत्य, गीत, नाटक, कहानियाँ तथा गाथाओं से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।''

लोकसंस्कृति को मात्र स्थानीय अथवा सीमित क्षेत्र व्यापी ही नहीं माना जा सकता बल्कि इसका क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है। लोकसंस्कृति का बाहरी अभियान भले ही भिन्न–भिन्न लगता हो लेकिन आन्तरिक रूप से बहुत साम्य है। उदाहरणार्थ ग्रामदेवता के विशय में यह कहा जा सकता है कि भारत के सभी गाँवो के अपने अपने देवता होते हैं। उन्नीथान लिखते हैं– ''प्रत्येक ग्राम में कुछ ऐसे देवता पाये जाते हैं जो उस ग्राम विशेश के स्वयं के ही हैं, लेकिन यदि उनका तुलनात्मक दृश्टि से अध्ययन किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि जनसाधारण के विश्वास और अनुश्ठान की प्रणालियाँ मौलिक रूप से करीब–करीब सम्पूर्ण भारतवर्श में एक सी ही है, यद्यपि अभिजात धार्मिक प्रणालियों से कुछ मामलों में ये भिन्न भी है।''[4] लोकसंस्कृति से संबंधित कुछ देवी–देवता तो राश्ट्रव्यापी हैं जैसे नागदेवता और शीतला माता की पूजा सम्पूर्ण भारतवर्श में जनता द्वारा की जाती है। इसके अलग–अलग नाम और पूजा पद्धति प्रत्येक प्रान्त में अलग हो सकती है। बलदेव उपाध्याय लोकसंस्कृति के विशय में लिखते हैं– 'लोकसंस्कृति शिश्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुश्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृश्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। यदि अथर्ववेद लोकसंस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का दर्पण है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन–जीवन तो ऋग्वेद का विशिश्ट जनजीवन है।'

डॉ. कृश्णदेव उपाध्याय की मान्यता है ''लोकसंस्कृति से हमारा अभिप्राय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। जिसकी उत्स भूमि जनता थी। इस संस्कृति के अनुयायी बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थे।''[6] वैदिक काल से ही लोकसंस्कृति के बीज प्राप्त होते हैं। यदि ऋग्वेद में यज्ञ कर्मकाण्ड आदि का शास्त्रीय विधान है तो अथर्ववेद में अंधविश्वास, टोना, टोटका, जादू और मंत्र का उल्लेख है। इसी प्रकार उपनिशदों में भी यथा वृहदारण्यक, कठोपनिषद आदि में लोक आचार विचारों के संकेत मूलक विवरण प्राप्त होता है। पालिजातक कथाओं में ग्रामीण जीवन का उल्लेख मिलता है। आदि कवि वाल्मीकिकृत 'रामायण' में भी अशोक वाटिका में पवनपुत्र हनुमान भी सीता जी से संवाद करने के लिए संस्कृत भाशा को ग्रहण न करके लोकभाशा का प्रयोग करते हैं। कविशिरोमणि कालिदास कृत 'कुमार संभव' में भी संस्कार पुत्र भाशा संस्कृत तथा सहज, सरल व आसानी से सम्प्रेशित होने वाली प्राकृत की भी चर्चा की गई है। संस्कृत वाड्मय में लोकसंस्कृति का विराट् परिदृश्य देखने को मिलता है। लोक जीवन का सम्पूर्ण अंश लोकसंस्कृत में ही अन्तर्भुक्त होता है।

लोकसंस्कृति के क्षेत्रविस्तार की चर्चा करते हुए सोफिया बर्न के तीन श्रेणियाँ यथा–

1. लोकविश्वास 2. रीति रिवाज तथा प्रथाएँ 3. लोक साहित्य बनायी है। डॉ. कृश्णदेव उपाध्याय लिखते हैं– ''इसका क्षेत्र–विस्तार अत्यन्त अधिक है। इसके अन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों में प्रचलित अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिश्ट लोक विश्वास, रीति–रिवाज, खान–पान, संस्कार, प्रथाएँ, रहन–सहन एवं आचार–विचार आते हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में भूत–प्रेतों की दुनियाँ तथा मनुश्यों के विशय में जादू–टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य जातियों की अंध परम्पराएं इसके भीतर अवशिश्ट होती है। इसके साथ ही विवाह उत्तराधिकार, बाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति रिवाज, अनुश्ठान और त्यौहार, युद्ध पशुपालन, मत्स्य–व्यवसाय आदि विशयों के विधि–विधान इसके अन्तर्गत है।''[7]

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सारांभा यह है कि लोकसंस्कृति का स्वरूप 'हरिअनंत, हरिकथा अनंता' की तरह अनंत है। यह घट घटवासी है। सौरभ की तरह प्रत्येक सुहृदय को सुवासित करती है। किसी भी राश्ट्र की अस्मिता, उसकी पहचान का निश्कर्श उसकी लोक सांस्कृतिक चेतना है। लोकसंस्कृति मनुश्य को अधिकाधिक 'प्रकृत' बनाती है, उसे सहज व अकृत्रिम करती है। यह परम्परानुमोदित है।

'लोक' से हमारा तात्पर्य उस विराट् विभाल, व्यानक समाज से होता है जिसके जीवन मूल्यों का निर्धारण किसी व्यक्ति अथवा वर्ग विभोश के द्वारा नहीं होता, जो किसी संसदीय विवेचना या भाास्त्रीय भाश्य का मुखापेक्षी नहीं होता तथा जिसका अर्थ बोधगम्य बनाने के लिए पाण्डित्य की आवभयकता भी नहीं होती। यह 'लोक' भूमा का मधुमय दान है। यह लोक उस वन्य कुसुम की भांति है जिसको अंकुरित होने से विकसित होने तक किसी कृत्रिम खाद–पानी की आवभयकता नहीं पड़ती। इसकी सौरभ को चतुर्दिक व्याप्त होने में विज्ञापित होने की आवभयकता नहीं हुई। यह सघन वृक्ष की उस छांह की तरह है जिसका उपयोग करने के लिए राहगीर को किसी की स्वीकृति प्राप्त करने की आवभयकता नहीं जान पड़ी। जिसने अनंतकाल से प्रत्येक थके–मांदे तथा धूप से झुलसे राहगीर को सुख बांटने में कंजूसी नहीं दिखलायी। यह 'लोक' उस चांदनी की तरह है जिसने प्रचण्ड धूप में हल चलाते, मजदूरी करते किसानों व श्रमिकों को रात्रि में अपने अमृत–आलोक में नहलाया है। 'लोक' वह संगीत है जिसको सुनने तथा आनंद भाव से ग्रहण करने के पूर्व किसी रागिनी या ताल का पूर्व ज्ञान आवभयक नहीं है। यह 'लोक' हमारे जीवन और संस्कारों के साथ धूप–छांव की तरह जुड़ा है। यह हनारे जीवन के प्रथम स्पंदन के साथ सचेतन है। यह सहज अवचेतन का अमर प्रसाद है जिसे प्राप्त कर हम अपने अस्तित्व को सार्थक बनाते हैं। इस लोक में बुद्धि की कतर ब्यौंत नहीं, मतवादों का पूर्वाग्रह–दुराग्रह नहीं, अहंकारों की लक्ष्मण रेखा नहीं, तर्क की भाुश्कता नहीं, प्रयोगभाालाओं की रासायनिक गंध नहीं, पाण्डित्यबोध के कांटे नहीं, अवचेतना की कुण्ठा नहीं बल्कि, 'अति सुधौ सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।' जिसकी सीमाओं में प्रवेभा करने के पूर्व तर्क और भाास्त्रीय ज्ञानजन्य अभिमान तथा वैयक्तिक चेतना के अहंकार को प्रवेभाद्वार पर ही छोड़ना पड़ता है तब हमारा 'मानस' इस 'लोक' की दुनियाँ में संचरण करने का अधिकारी हो सकता है। इस 'लोक' का जन्मेतिहास उतना ही पुरातन है जितना हमारी इस सभ्यता का। इस 'लोक' ने सूर्य रभिमयों की तेजस्विता तथा चंद्र–किरणों की स्निग्ध भीतलता को लेकर कालचक्र के उत्कर्शपकर्श के साथ–साथ यात्रा की है। यह हमारी सभ्यता के उत्थान–पतन का जीवन्त साक्षी है। इस 'लोक' के महासागर में हमारा वर्तमान है और भविश्य भी। इस महासागर की गहराई में ही हमारा अतीत है। इसकी प्रत्येक लहर पर हमारे जीवनानुभवों के मोती अपनी तरल आभा विकीर्ण करते हुए तैरते दिखलाई देते हैं। यह 'लोक' कल भी था, आज भी है और 'कल' भी रहेगा। यह आणविक सभ्यता भले ही न रहे, वैज्ञानिक संसाधन भले ही चूर–चूर हो जायें, कल कारखानों की आकाभाचुम्बी चिमनियों से उगलता धूंआ भले ही बंद हो जाये, भौतिक साधनों की चमक–दकम धुंधला जाये लेकिन 'लोक' की दीप्ति, उसका आलोक और उसकी तेजोमयता कभी मंद नहीं होगी क्योंकि यह सार्वजनिक है, सार्वलौकिक है तथा सार्वदेभिक है। यह ऐसा कालयात्री है जिसके पांव में सूरज है, हृदय में चंद्रमा है, आँखों में तारों भरा विराट गगनमण्डल है तथा चिन्तन में वायु का अवरिल प्रवाह है। जिसकी वाणी में झरनों का कल–कल करता नाद है। इसीलिए यह 'लोक' अजर, अमर, अविरल, अनंत व अनादि है। वर्तमान मानव सभ्यता से भी पुरातन किन्तु नित्यनूतन।

'लोक' के मूल में लोकमानस की सत्ता सदैव क्रियाभील रहती है। 'लोकमानस' चिरन्तन है। यह भाभवत है। लोकमानस ही वह जीवन रस है जिससे अभिसिंचित होकर सांस्कृतिक महावृक्ष समृद्ध होता है। इस लोकमानस के मूल में आज का तथाकथित उपभोक्तावाद या भाहरीकरण का प्रदूशण नहीं है। इसमें आदिम रागात्मक लगाव है लोकमानस, वैदिक मानस से भी पुराना है। भारत का यह लोकमन आज तक कबी नहीं मरा। चाहे कितना वैभवीकरण का नारा लगे, भाास्त्रवादी चाहे जितना अपने पांडित्य का भाोर मचाये लेकिन 'लोक मानस' तो फिर भी हरा–भरा ही रहेगा। इसका भावभरा घट कभी रीता नहीं होगा।

लोकमानस धर्मजीवी होता है। वह समश्टि बोध की धरती पर समश्टि चिन्तन की दृश्टि लेकर समश्टि समर्पित आस्था के साथ निरन्तर संचरण करता है। वह आनुश्ठानिक है। रहस्यभील है। आत्मभील है। वह पराप्राकृतिक भाक्तियों में विभवास करता है। नियति के धरातल पर कार्य कारण की श्रृंखला निर्मित करता है। इसीलिए वैदिक देवता से लोक देवी–देवता तक इसके पूज्य होते हैं।

लोकमानस की सम्पूर्ण आस्थाओं की श्रेश्ठतम अनुभूत्यात्मक साधना का नाम लोक संस्कृति है। लोकसंस्कृति का बहिरंग लोकजीवन के भौतिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें खानपान, वेभाभूशा, रहन–सहन, व्यवसाय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आमोद–प्रमोद, आभूशण, वस्त्रादि, बर्तन, खेती उद्यम होते हैं तो उसके अन्तरंग क्षेत्र में धर्म, दर्भान, कला और साहित्य की गणना की जा सकती है। लोक संस्कृति में जीवन का सर्वांगीण स्वरूप विद्यमान होता है। लोकसंस्कृति मानव की सामूहिक ऊर्जा का अखण्ड स्त्रोत है। लोक संस्कृति में वैयक्तिकता का अस्तित्व नहीं होता। ''लोकसंस्कृति जन–जन के श्रम से सिंचित होकर प्रकृति की गोद में पलती–पनपती रही है। मानव की मानव के प्रति सहज प्रेम ही लोक संस्कृति का साध्य रहा है। श्रम की पूजा के साथ ही पारस्परिक प्रेम से भरी विभव बंधुत्व की भावना हमारे लोक–जीवन का मूल आधार है। जन–जीवन के बीच कलाओं में लोक संस्कृति आज भी स्पंदित है।''[8]

इ.एस.एस.नंबूदिरिपाद लोकसंस्कृति का स्वरूप विवेचन करते हुए लिखते हैं– ''गोर्की ने जनसंस्कृति की तुलना एक बिना तराभो हुए, अनगढ़ पत्थर से की है। लोकगीत, लोकनृत्य, लोक कला और अन्य सांस्कृतिक रूप, बिना तराभो हुए पत्थरों की तरह है। कुभाल दस्तकार इन पत्थरों को सुन्दर हीरों में बदल देते हैं। लेकिन ये दस्तकार कौन है? लोक गीतों, नृत्यों आदि के बिना तराभो हुए पत्थरों को साहित्य और रचना का परिश्कृत रूप देने वाले ये लोग कौन है? ये प्रभुत्वभाली वर्ग के प्रतिनिधि ही है, ये वर्ग समाज में प्रभुत्वभाली सामाजिक तबकों के प्रतिनिधि ही हैं, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, यद्यपि संस्कृति का वास्तविक स्त्रोत जनता, यानी मेहनतकभा वर्ग ही हैं।''[9] श्री नर्मदेभवर चतुर्वेदी लिखते हैं– ''लोक–संस्कृति विकासभील लोक–संस्कार पर आश्रित है और संस्कार परम्परागत होकर भी रूढ़ि का पर्याय नहीं है। वह व्यक्तिगत संस्कार से किंचित भिन्न हैं जो व्यक्ति की भांति जन्म लेकर मरता नहीं, अपितु विकसित होता रहता है। वह गतिभील, वृद्धिभील और प्रसारण–प्रवण है। आनंद उसका स्त्रोत है और मंगल भावना प्रवण। परन्तु वह आनंद व्यक्ति–मानस का न होकर लोक–मानस का होता है।''[10] सुप्रसिद्ध समाजभास्त्री रेडफील्ड तथा जार्ज एम.फोस्टर ने लोकसंस्कृति के मूल में एक ऐसे समाज की परिकल्पना की है जिसका विस्तार नहीं होता जिसमें भिक्षा का प्रसार नहीं होता किन्तु समूह दृढ़ता की भावना तथा जीवन का रूढ़िगत आधार फलक पाया जाता है। इनकी जीवन व्यवस्था नियमन में परिवार, नातेदारी, मित्र समूह, अड़ौस–पड़ौस, बुद्धिजीवी वर्ग के चिंतन का अभाव, प्राकृतिक भाक्तियों में विभवास तथा सामूहिकता का आदर्भा प्रमुख रहता है। इस चिंतन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोकसंस्कृति मौखिक परम्परा की सांस्कृतिक धरोहर है। लोक अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए स्वयं ही गीत रचना है, कहानी कहता है, गाथा गाता है, देवी देवताओं की उपासना करता है, भाग्य को मानता है तथा सौभाग्य की कामना करता है।

लोक संस्कृति–जीवन को जीने का सीधा, सरल, अनलंकृत, अकृत्रिम, परम्परापुश्ट धर्मानुमोदित, आनुश्ठानिक तथा नियतिवादी जीवन आदर्भा है। इन आदर्भों की व्याख्या निकहम धर्मग्रन्थों अथवा आचार संहिताओं में उल्लेखित नहीं है। भावाभिव्यक्ति के कलात्मक स्वरूप तथा सामाजिक आचार विचार पीढ़ी दर पीढ़ी सुदीर्घ परम्परा के पथ पर अनादिकाल से संचरण करते रहे हैं। भास्त्रीय चिन्तन तथा पारिभाशित व्याख्याओं की पगडंडियों पर लोकसंस्कृति का यान संचरण नहीं करता। सहज विभवास तथा नियतिवाद, अनुश्ठान, भाकुन, टोना–टोटका, उत्सव, पर्व, अनुरंजन लोक संस्कृति की अनुपम धरोहर है।

लोकसंस्कृति का क्षेत्र व्यापक है। हमारी प्रत्येक भवास, हृदय की प्रत्येक धड़कन तथा प्रत्येक कर्म लोकसंस्कृति की सीमा में आते हैं। लोकसंस्कृति की सीमा की कोई तारबन्दी नहीं है। यह गांव की चौपाल, खेत–खलिहान, घर का चूल्हा–चौक से प्रारम्भ होकर महानगर की अभ्रस्पर्भी अट्टालिकाओं में रहने वाले सभी के हृदय में विद्यमान है। इसके क्षेत्र में इस भूमण्डल से गगन मण्डल, पभु–पक्षी समाज से मानव समाज, भारीर व प्राण से आत्मा तक, मृत्यु, पुनर्जन्म तथा मोक्ष, भाकुन, भविश्यवाणी, आकाभावाणी, नजर उतारने, पौराणिक देवी–देवताओं से स्थानीय लोक देवी–देवता, पितृ भाक्ति, भूत–प्रेत, व्रत त्यौहार, खेल–कूद एवं मनोरंजन के साधन तक–सभी कुछ सहज ही में परिगणित किया जा रहा है।

8.3 लोकसंस्कृति तथा आभिजात्य संस्कृति में अन्तर

लोकसंस्कृति तथा आभिजात्य संस्कृति में वही अन्तर है जो राजकीय उद्यान में खिलने वाले चटकीले सुमन तथा जंगल में खिलने वाले अकृत्रिम सौन्दर्य सम्पन्न फूल में होता है। इस वन्य कुसुम की देखभाल कोई कर्मचारी नहीं करता, उसे खाद–पानी प्रकृति देती है। बादल उसका सिंचन करते हैं।

लोकसंस्कृति की परम्परा नदी घाटियों की सभ्यता के विकास के इतिहास से भी पुरानी है जबकि आभिजात्य संस्कृति का विकास परवर्तीकाल का है। लोक संस्कृति मौखिक है। यह परम्परा जीवी है। यह आस्था व भाव प्रधान है। हृदय प्रदेभा में ही इसका आवागमन है। यह किसी व्यक्ति, समूह, जाति या समाज विभोश की रचना नहीं है।

सम्पूर्ण 'लोक' की अनुभूतियों ने अपने अकृत्रिम उद्‌गारों तथा हस्तकलाओं से उसे उत्कीर्ण किया है। लोकसंस्कृति की भावभिव्यक्ति में प्रयुक्त भाशा मे व्याकरण, छंद, अलंकार स्वतः ही प्रयुक्त होकर स्वयं अपना सम्मान बढ़ाये तो बढ़ाये लेकिन लोक कलाकार, लोक गायक, लोक नर्तक, लोक वादित्र को इनकी अपेक्षा नहीं होती। लोक संगीत में राग–रागिनियों के प्रति आग्रह नहीं होता। गायन की कालावधि का बंधन भी नहीं होता बल्कि कभी, कहीं और किसी भी समय एकल या सामूहिक रूप में गाया जा सकता है। लोकसंस्कृति में कर्त्ता या रचनाकार का व्यक्तित्व नहीं केवल कृतित्व रहता है। बूंद का समुद्र में मिलकर एक रूप हो जाना या दूध और पानी का अभिन्न बन जाने जैसा ही भाव लोक रचनाकार होता है। लोक कलाकार की अपनी भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा 'लोक' की ही धरोहर होती है।

आभिजात्य संस्कृति में रचनाकार की वैयक्तिकता, पांडित्य की प्रखर चेतना, भाास्त्रीय ज्ञान का अभिमान, भाशायी प्रांजल सौंदर्य, छान्दसिक छटा, आलंकारिक चमत्कार तथा सुसंस्कृत जीवन भौली की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। आभिजात्य संस्कृति में जीवन के प्रतिमानों में बदलाव भी भीघ्र आ जाते हैं। यही कारण है कि विगत अर्द्ध भाताब्दी में ही आभिजात्य संस्कृति में जीवनदृश्टि में जितना परिवर्तन आया है, उसकी तुलना में हजारों–हजारों वर्श पुरानी लोकसंस्कृति में नहीं आया है। अभी तक जितने भी साधन हैं उनमें लोकनाट्यों को आधुनिक प्रेक्षाग्रह, लोकसंगीत को राग व ताल का व्याकरण, लोकचिकित्सा को 'एक्स–रे' तथा 'ऑपरेभान थियेटर', लोककलाओं की रंगायनी तुलिकावादी व्याख्या, लोकनृत्यों की 'मुद्रा' 'ताल' का अनुभाासन तथा लोकधर्म व आस्थाओं को यज्ञकर्मकाण्डादि की व्यवस्था की आवभयकता नहीं होती बल्कि नितान्त आडम्बररहित, अकृत्रिक, रससिक्त, भावप्रधान, व्याकरण के अनुभाासन से मुक्त, छंद, राग, ताल व गायन के नियमों से स्वतंत्र संसार ही लोकसंस्कृति की पहचान है।

लोकसंस्कृति में सूर्य का तेज, चन्द्रमा का अमृत, बादलों की छाया, बसन्त का उल्लास, वर्शा की ताजगी, धरती की सहिश्णुता, आकाभा की असीमता, हवा की स्वछन्दता, नदियों की प्रवाहात्मकता, फूलों की ताजगी, कोयल की मीठी तान के साथ ग्रीश्म की तपन, वर्शा की उमस एवं भीत की ठिठुरन भी है।

8.4 सारांश

लोकसंस्कृति अमर, अजय तथा अक्षय है। आज के राजनैतिक मतवादों के कुचक्र, वैभवीकरण की नारेबाजियों तथा उपभोक्तावादी जीवन के महानगरीय कोहरे को भेद कर मानवता का अमर संदेभा देने वाली 'लोकसंस्कृति' ही हो सकती है। पर्यटन, पर्यावरण व प्रदूशण की चिन्ता वाली सरकार यदि इस पावन, अकलुश, अमंद व उज्जवल मानवता का आलोक विकीर्ण करने वाली लोकसंस्कृति के संरक्षण का चिन्तन करें तो ज्यादा मंगलकारी व कल्याणकारी होगा।

8.5 अभ्यास प्रश्नावली

प्रश्न 1. संस्कृति किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2. लोक संस्कृति से क्या तात्पर्य है ?

प्रश्न 3. लोक संस्कृति एवं आभिजात्य संस्कृति में क्या अन्तर है ?

प्रश्न 4. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि लोक संस्कृति में राष्ट्र की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–8 अ
राजस्थानी लोकगीत

संरचना

8अ.0 प्रस्तावना
8अ.1 उद्देश्य
8अ.2 राजस्थानी लोकगीत से तात्पर्य
8अ.3 लोकगीतों का वर्गीकरण
8अ.4 विभिन्न पर्वोत्सवों के गीत
8अ.5 बालक–बालिकाओं के गीत
8अ.6 पारिवारिक सम्बन्धों के गीत
8अ.7 पेशेवर गायकों के गीत
8अ.8 ऐतिहासिक चरित्रप्रधान गीत
8अ.9 विविध गीत
8अ.10 सारांश
8अ.11 अभ्यास प्रश्नावली

8अ.0 प्रस्तावना

निखिल संसृति में व्याप्त लोकमानस की सुख–दुःखात्मक अनुभूतियों की सरस रागात्मक अभिव्यंजना का लयात्मक उपहार लोकगीत है। लोकगीतों में मानव की भावनाएँ, हर्ष–उल्लास, शोक–विषाद, प्रेम–ईर्ष्या, भय–आशंका, घृणा, ग्लानि, विस्मय, भक्ति, निवृत्ति आदि भाव सरल एवं विशुद्ध रागात्मक रूप से प्रकट होते हैं। लोकगीतों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसमें प्रकृति, पृथ्वी, व्योम एवं मानव–मन की अनंत कल्पनाओं का ब्रह्माण्ड समाया है। मानव का शैशव लोरियों में झूलता व सोता है, यौवन प्रेमोन्माद में प्रमत्त हो गीतों के द्वारा नृत्य करता है तथा वार्धक्य जीवन–यात्रा से थकित हो इन्हीं गीतों में विश्राम करता है। सभ्यता के उषाकाल से ही इन लोकगीतों ने मानव–चेतना की वीणा के तारों को झंकृत किया है। सच्चे अर्थों में लोकगीत ही लोकसंस्कृति के प्रतिनिधि है। लोकगीत प्राचीन होते हुए भी नित्य–नूतन है। इनमें प्राचीनता एवं नवीनता का ताफता रंग झलकता हैं।

8अ.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से राजस्थानी लोकगीत के स्वरूप को समझा जा सकेगा।

8अ.2 राजस्थानी लोकगीत से तात्पर्य

लोकगीतों में शास्त्रीय नियमों का बन्धन नहीं होता। ये आकाश की तरह उन्मुक्त एवं पवन की तरह स्वच्छंद होते है। इनमें पहाड़ी–झरने की चंचलता, सागर की गंभीरता एवं सरिता की प्रवाहशीलता, है। लोकगीतों में एक ओर फूलों की भावभीनी सौरभ है, कलियों की चटक है, पक्षियों का कलरव है, तारों की जगमगाहट एवं चन्द्रज्योत्स्ना का उज्ज्वल सौन्दर्य है तो दूसरी ओर कांटों की चुभन हैं। मेघों का गर्जन है। निशि का तमस है। सूरज की तपन है। जीवन की मृदुलता एवं कठोरता का गंगा–यमुनी संगम लोकगीतों में दिखाई देता है। लोकगीत दुःख–सुख भरे जीवन का इन्द्रधनुष है। लोकगीत मनुष्य की आत्मा है। ये जनता की मौखिक भावाभिव्यक्ति है। एक कंठ से दूसरे कंठ में, एक ह्रदय से दूसरे ह्रदय में प्रतिध्वनित होते हुए ये लोकगीत पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। लोकगीत सार्वजनिक, सार्वदेशिक, सार्वलौकिक तथा सार्वजनीन है। दसों दिशाओं में लोकगीत का ही अखण्ड साम्राज्य है। देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार लोकगीत लोकसंस्कृति के मुँह बोलते चित्र है। लोकगीत ह्रदय के खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं, दुःख के गीत के गीत खौलते हुए लहू से पनपते हैं और आंसुओं के साथी बनते हैं। इन लोकगीतों में न कला है, न भाषा सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बन्द कमरों में की है। ये गीत तपते सूर्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के नीचे खेतों में काम करते हुए लोकमानव ने गाये हैं। चूल्हे पर कसार भूनती हुई तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं। जिस समय अन्तर को जो भी स्पर्श कर गया तुरन्त वही भाव बोलचाल की भाषा मे गीत बनकर फूट पड़ा।

लोकगीत मानवजीवन को प्रमुदित करने करने वाली एक अचूक औषधि है। लोकगीतों का महत्व प्रतिपादित करते हुए श्री नानूराम संस्कर्ता लिखते हैं–''दुख–सुख के समय मानव–मन में जैसे भी भाव उठे, वे सब रामबाण का काम कर गये। इनसे हमारी रागात्मक वृत्ति जागृत होती है जिससे सारा संसार प्रिय भी लगता है। लोकगीत न होते तो संसार दुःखी और निराशमय होता। लोकगीत विषाद को मिटाने, शोक को समेटने एवं दुःख को मेटने वाले नित नये उपदेश हैं।'' विवाह, त्यौहार पुत्रजन्म पर हर्ष का भाव, तो बहिन और बेटी की विदाई पर ये लौकिक दुःख की तीव्रता को सहन की शक्ति देते है। कहीं–कहीं मृत्यु के अवसर पर भी लोकगीत या भजन गाकर आपत्ति–वेला को शीघ्र व्यतीत किया जाता है। इस तरह लोकगीत मानसिक प्रावृत्तियों का परिष्कार करके सुख–शान्ति प्रदान करते हैं। मानव–जीवन उसके उल्लास, उमंगों, करूणा, रूदन तथा उसकी समस्त सुख–दुःख की कहानी लोकगीतों में चित्रित है। मानव–मन की आकांक्षाऍं, इच्छाऍं, लोकगीतों में सजीव हो उठी हैं। राजस्थान में ओळूं, आम्बौ, इमली, इकथंभियों महल उमराव, निहाळदे, नीबूं, नारंगी, नीमड़लौ, नीमड़ली, नागजी, नींदडली, बाड़लौ, बावळियों, सपनौ, कुरजां, कसुंभौ, लहरियो, जल्लौ पणियारी, हिंडोळौ, आदि 'मनड़े री प्रीत' रा गीत' है।

8अ.3 लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिये इनको वर्गीकरण की रेखाओं में बांटना आवश्यक है। यद्यपि वर्गीकरण की सीमारेखा में लोकगीतों का बांटना कठिन कार्य है। फिर भी मोटे तौर पर इनका वर्गीकरण इस तरह किया जा सकता है

(1) देवी देवताओं के गीत
(2) सोलह संस्कारों के गीत
(3) विभिन्न पर्वोत्सवों के गीत
(4) बालक–बालिकाओं के गीत
(5) पारिवारिक संबंधों के गीत
(6) पेशेवर गायकों के गीत
(7) ऐतिहासिक चरित्रप्रधान गीत
(8) विविध गीत

(1) देवी–देवताओं के गीत– राजस्थान धर्म–प्रधान प्रदेश है। यहाँ अनेक पौराणिक एवं लोकदेवी–देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है। भिन्न–भिन्न त्यौहारों, पर्वों, विवाह, रातीजोगा आदि अवसरों पर इन देवी–देवताओं के गीत गाकर जनमानस अपनी आस्था प्रकट करता है। पौराणिक देवीदेवताओं में दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, सरस्वती, इन्द्र, सूर्य शिव, सत्यनारायण, शनिचर आदि की पूजा का विधान है तो लोक देवीदेवताओं में–करणीमाता, जीणमाता, हिंगळाज, नागणेच्याजी, शीतलामाता, सच्चियाय माता, मावड़ियाजी, जसोल री भटियाणीजी, जमवाय माता आदि अनेक देवियाँ, अविवाहित बायां, पितराणियां तथा पूजनीय लोकदेवताओं मे रामदेव जी, पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी, जांभोजी, बालाजी, काळा–गोरा भैरूं, खेतरपाल, भोमिया जी आदि की स्तुति के गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में देवी–देवताओं की महिमा, दिव्य छवि एवं उनके अलौकिक कृत्यों का वर्णन होता है।

देवियों की स्तुति व आराधना का एक गीत द्रष्टव्य है–
''चालो चालो आपां चौसठ देवियां, जोधांणौ जोवा जी जाय।
जोधांणारों कासुण जोवणो जोवणो अ जोधाणे महाराजो रा राज।।
चलो अपै चौसठ देवियां अ मंडोवर जोवाजी जाय।
मंडोवर रौ कासुण जोवजे अ मंडोवर दाड़म दाख।।
वाड़ी रा वड़ रूलियांमणा अ सियली बड़ री जी छाय।
नागादड़ी नाड़े भरी, अ झिलती झालर वाव।।
औरां रे दातण लाकड़िये म्हारी अंबाजी रे काचीजी केळ।
औरां रे जींमण खाजा लाडू लापसी, अ म्हारी अंबाजी रे पांच पकवान।।

औरां रे मोचण डोडा अेलची, अ म्हारी अंबाजी रे नागर बेल।
औरां रे पोढ़ण हिंगळ ढोलियों, अ म्हारी अंबाजीरे लूंबलम्बाली सेज।
बहुवों ने दीजों डीकरा, अ धीयड़ियां रो अमर अहवत्।
साळगजी ने तूठे घणा हेतु सूं, अ महावीर जीरी तू रखवाळ।।
राजस्थान में देवी की पूजा के साथ–साथ भैरूं की भी स्तुति की जाती है यथा–
भैरव काळा अर भैरव गौरा ओ वेगेरौ आव।
तो बिन ओ भैरव तो बिन विरध न होवसी।।
कठड़े ओ भैरव कठड़े लागी, अती वार सगळां।
ओ भैरव सगळाओ पेला नूतरिया।।
जो इमकिम ये राणियां इककिम आव्यौ न जाय।
आडा अ राणियां आडा तो गंगा जमना सरसती।।
जे गंगा ओ भैरव गंगा हर हर जाय।
जिमना ओ भैरव जिमना, ओ बेवे, गोडां तणी।।

राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में शीतलामाता की आराधना की जाती है। शीतलामाता की आराधना करने से चेचक रोग नहीं होता, ऐसी मान्यता प्रचलित है। अतः शीतलामाता की कृपालुता को उजागर करने वाला एक गीत द्रष्टव्य है–

रामचन्दर जी ओ दरवाजा खोल,
थां पर मया करैछै माता शीतला।
म्हानै कांई ओ फरमावै माता शीतला?
थानै देसी ओ नगरी रो राज।
थां पर मया करै छै माता शीताला।।
म्हानै कांई ओ फरमावै माता शीतला?
थानै देसी ओ बेटा पोता री जोड़।
थानै ठंडा झोला देसी माता शीतला।।

राजस्थान में पितर–पितराणी की आराधना में गीत गाये जाते हैं। परिवार में मृत पूर्वज पितर रूप में पूजे जाते हैं। पत्नी की मृत्यु हो जाने के पश्चात् दूसरा विवाह करने से जो नयी पत्नी घर में आती है, वह ल्होड़ी कहलाती है और मृत पत्नी (बड़ी) कहलाती है। ल्होड़ी बड़ी पितरानी की पूजा करती है।

बड़ी तो आया जी ल्होड़ी के प्यारा पावणा।
चौकी तो चावळा, जी बडी जी थाने बैसाण
दूध परवाळां पाव।।
बड़ी तो आया जी ल्होड़ी के प्यारा पावणा।
चावळ तो राधां, जी बड़ी जी थांनै उजळा
हरिया मूंगा री दाळ।।

लोकदेवता बाबा रामदेव से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना करते हुए एक नारी गाती है–

रामसा! उभी ओ, पीराजी, उभी ओ।
रूणिचे दरबार एक करूं, ओ धणियाँ, वीनती।।
अक रामसा' मॉगू ओ, पीर सा मांगू ओ।
आउजी रो पेट भाई रे भतीजा जाझा झूलरा।।
दूजे रामसा, मॉगू ओ, पीर सा, मॉगू ओ।
सासूजी रो पेट देराण्यां जेठाण्यां जाझाा झूलरा।।
तीजै कै राम सा, मॉगू ओ, पीर सा, मांगू ओ।
पूतड़ला री जाड़ झबलक आवै कुळ बहुवां।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) संस्कार सम्बन्धी गीत– हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है। इनमें गर्भाधान, जन्मोत्सव, नामकरण, उपनयन, विवाह व अन्त्येष्टि प्रमुख संस्कार माने मये है। इन संस्कारों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं।

(अ) जन्म के गीत – इन गीतों में गर्भाधान तथा गर्भवती के शरीर में होने वाले परिवर्तनों एवं उसकी प्रत्येक मास में होन वाली इच्छाओं का वैज्ञानिक ढंग से वर्णन होता है। यथा–

पेलो मास उलरियां आ जच्चा वेंरौ आळसिये मन जाय।
अ दूजो अ मास उलरियों अ जच्चा वैंरों थूकतड़े मन जाय।
अलबेली अ जच्चा चांदी रे प्याले केसर पांवसां।।
तीजो मास उलरियो अ जच्चा नींबूड़े मन जाय।
चौथे मास उलरियो अ जच्चा मालपूड़े मन जाय।
पांचवे मास उलरियो अ जच्चा घेवरिये मन जाय।
छठो मास उलरियो अ जच्चा घेवरिये मन जाय।
सातमो मासा उलरियो अ जच्चा कंद रे पेड़े मन जाय।
आठमां मास उलरियो अ जच्चा अगरणी मन जाय।
नमो मास उलरियो अ जच्चा ओवरिये मन जाय।
दसमो मास उलरियो अ जच्चा हालरिये मन जाय।

प्रसव–पीड़ा का मर्मस्पर्शी चित्रण करने वाले गीत भी गाये जाते है–

नैनी सी नार नारेळी सो पेट
चालै है चीस अतावळी सा
ज्यूं चालै ज्यूं धण लुळ लुळ जाय
चालै है चीस अतावळी सा।
करै है सांईना सूं वीणती जी
घडी दोय ओ ढोला साथियां में जाय।
साथियों में चौपड़ खेल जो सा।

प्रसव–पीड़ा से छुटकारा दिलाने हेतु दाई को बुलाया जाता है। जब शिशु का जन्म हो जाता है, परिवार के लोग खुशी से झूम उठते है। जन्मोत्सव के समय गीत गाया जाता है–

हे म्हांरे अतर दिखण पी, अ जच्चा पीपळी
हे म्हांरे पूरब नमी–नमी डाळ रे
हे म्हांने घणी अ सुवावै जच्चा पीपळी।।
हे थारें गीगों अ जलम्यो आधी रात।
हे थारे गुड़ बंटैगो परभात।।
हे ओरै तो मांय मारी अ जच्चा राणी रे
हे ओवरो हे जठे रातो सो पिलंग बिछायों ओ
हे म्हाने घणी अ सुवावै जच्चा पीपळी।।
हे जठे बहू सिणगार दे पोढियां अ
हे वाँणे दासी ढोळै छे वाव।।

जन्म के दसवें दिन दसोटण होता है। इस दिन बच्चे सहित जच्चा को सिर धोकर नहलाया जाता है। प्रसूति–गृह से जच्चा–बच्चा के बार निकलने पर शकून रूप में सूरज की पूजा कराई जाती है। तब भी गीत गाते जाते हैं। जच्चा को अजवाइन, गोंद–गिरि (नारियल), सोंठ, लोद आदि के लड्डू खिलाये जाते हैं ताकि उसके स्वास्थ्य में वृद्धि हो।

गीगा की मां ने लाडू गूंद का
कांई कुण रे खिनायों लाडू गूंद का।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काई गाड़ी भर–भर ल्याआ अ
नणदूणी म्हारी गीगा की मां ने लाडू गूंद का
म्हारी माया खिनाये लाडू गूंद का
म्हारो छोटो वीरां गाड़ी भर भर लाय
अ लणदूणी म्हारी गीगा की माँ ने लाडू गूंद का

सौभाग्यवती प्रसूती को 'पीला' ओढाया जाता है। यह मांगलिक परिधान होता है। गीतों में इसका वर्णन भी मिलता है।

उदयपुर से तो सायबा पीळो मंगाओ जी।
तो नानीसी बंधण बंधाओ गाढ़ा मारूजी।
पीळा तो पल्ला साहेबा बंधण बंधावौ जी।
तो अधबिच चांद छपावौ गाढ़ा मारूजी।।

जब शिशु घुटनों के बल चलने लगता है तो माता का हृदय–कमल खिल उठता है वह चाहती है कि बच्चा शीघ्र ही दौड़ने लगे, इसलिए वह खाती के बेटे से कहती है–

सुण–सुण रे खाती रा बेटा, गाडूलौ घड़ ल्याय।
गाडूलौ घड़ ल्याय, म्हारै गीगा रे मन भाय।
आम को गाडूळौ घड़ ल्याय, चांदी का पात चढ़ाय।
सुण–सुण रे खाती रा ...

(ब) विवाह के गीत – विवाह गृहस्थ–जीवन के भव्य का प्रवेश द्वार है। विवाह दो हृदयों के मिलन की सामाजिक स्वीकृति है। विवाह के पूर्व सगाई होती है। सगाई के अवसर पर कन्यापक्ष वाले वर को चांदी के रूपये के साथ नारियल देते हैं। उसके तिलक करते हैं। बर के पिता दादा नाना आदि के सामर्थ्य के अनुसार रूपये देते है। फिर जोशी से लग्न का मुहूर्त्त निकलवा कर कन्यापक्ष वाले वरपक्ष को विवाह की निश्चित–तिथि बताते हैं तथा वरपक्ष उस तिथि को स्वीकार कर 'सावा झेल' लेते हैं। इस विधान के पश्चात् 'मूंग उछालणा' की रस्म होती है। आस पड़ौस की औरतें मिकर मूंग साफ करते हुए गीत गाती हैं। फिर उन्हें मांगलिक गुड़ दिया जाता है। फिर किसी शुभ–दिन व शुभ घड़ी में गणेश जी की स्थापना की जाती है। तदनन्तर वर और वधू अपने–अपने घर में बाजोट पर बैठते हैं। अनके पीठी चढ़ाई जाती है। हल्दी व तेल के उबटन को पीठी कहते हैं।

इस प्रकार 'पाठ बिठाने' और 'घी पिलाने' की रस्म पूरी होती है। इस अवसर जो गीत गाया जाता है वह इस प्रकार है–

घी ही पी म्हारा आछ्या लाडा घी ही पी
थारी दाद्यां पावै मायां पावै
डोर हिलावै हमसूं रळिया रंग करे।

उबटन के समय भी स्त्रियां गाती है–

म्हारी हळदी रौ रंग सुरंग निपजै माळवै
मोलावै सुगनवाई रा भाभोसा माताजी रै मन रळै।
वांरा माताजी चतुर सुजाण, केसर केवटै
बनड़ा थे हौ जी केसर जोग, हळदी अंग चढ़ै।

पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के शुभ अवसर पर बहन अपने भाई की प्रतीक्षा करती है। वह भाई भावज को भात भरने अथवा मायेरा लाने का आग्रह करती हुई कहती है–

वीरा थे आइजो भावज लाइजो
सिरदार भतीजा उमराव भाणेजा
साथे लाइजो जी ओ वीरा रिमक–झिमक होय आइजो।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीरा थे आइजो चुन्दड़ लाइजो
सिरदार भतीजा उमराव भाणेजा
साथै लाइजो जी ओ वीरा रिमक झीमक होय आइजो।।

राजस्थानी संस्कृति में रोडी (घूरा) पूजन का भी विधान है। बारात के रवाना होने से पहले कूड़ाकचरा के स्थान की पूजा की जाती है। तब यह गीत गाया जाता है–

अजी रोड़ी पूजतां म्हांनै लादो मोतीड़ा रो हार
अजी रोड़ी पूजतां म्हांनै लादो जड़िया धनरा।
धन सूं व्यापार चला दिया, मैं तो बण गयो मालामाल रे।

दूल्हा बारात में जाने हेतु सजधज कर तैयार होता है। उसका सेवरा (मोह मेवड़ों) भी प्रशंसनीय है–

मारे पांच कली रो सेवरो, बिचे लटके मोतीड़ा री लूंब
सैंया देखो अ उमराव बन्ने रो सेवरो
इण सेवरिये भामोसा लुळरया, लुळरया
ओ सुखबीर जी रा सीस सैंया देखो अ।

दूल्हा घोड़ी पर चढ़ता है। बारात प्रस्थान करने लगती है। तब स्त्रियाँ गाती है–

भाभोसा रो प्यारो बनड़ो घोड़ी चढ़े सा
तो माताजी रो प्यारो बनड़ो लुळ जोवे
घोड़ी घेर लो वावा घोड़ी घेर लो
केसरिया हरिये बांगां में घोड़ी घेर लो
थोरी घोड़ी नाचै नै सारो मोहल्लौ जागे
तो सुतोड़ी नार चिमक जावै घोड़ी घेर लो।

कन्या पक्ष की स्त्रियाँ 'कामण' गाती है–

सुहाग मांगण चाली, आपरै भाभोसा रै आगे
भाभोसा देवोनी सुहाग, माताजी देवोनी सुहाग।
बाई सुगना ने सुहाग बाई लाडकंवर ने सुहाग
ऐ बाई मैं क्या जाणूं कामण धुळ धुळ रह्या
इन्दली–बिन्दी में धुळ रह्या चुड़ा–चुन्दड़ में धुळ रह्या
ऐ बाई मैं क्या जाणूं कामण धुळ धुळ रह्या

विवाह के अवसर पर विभिन्न बन्ने गाने की प्रथा है। मनचली बन्नी बन्ने से मांग करती हैं–

(1)बन्ना म्हारा ओ अंगूरां री हवेली चुणाय
छाजा लगावायदो दाड़म दाख रा।
बनी म्हारी ए कुळ में होवै सोई मांगए
छाजा नीं लागै दाड़म दाख रा।
(2)बन्ना म्हारा ओ धरती को लेंहगों सींवाय
मगजी लगवायदो चलती रेलरी
बन्नी म्हारी ए कुल में होवै सोई मांग ए
मगजी नई लागै चलती रेल री

विवाह के समय वरपक्ष वाले वधू के लिये वस्त्राभूषण भेजते हैं जिन्हें पहनकर वधू सजधज कर तैयार होती है। यह 'पडला' कहलाता है। शुभ मुहूर्त में 'माया' (देवी देवताओं का स्थान) के समक्ष वर–वधू दोनों के हाथों में मेंहदी रखकर पुरोहित हथलेवा जुड़वाता है। तब स्त्रियाँ गाती है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हाथ ज दो म्हारी सदा सहेली
राज कहेली, ज्यूं हथलेवो जुडै।
हाथ नह देऊं म्हारा सतगुरू
जोशीराज पुरोहित जी
नानोसा ओ देखै प्यारां री
लासरड़े धीयां लाजै।

पाणिग्रहण के पश्चात् ब्राह्मण मंत्रोच्चारणों से विधिवत् फेरे करवाता है। तीन फेरों में वधू आगे रहती हैं तथा वर पीछे रहता है। चौथे फेरे में वर आगे तथा वधू पीछे होकर पराई हो जाती ह–

पैलो फेरो तो बनड़ी भाभोसा री लाडली
दूजो फेरो तो बनड़ी काकोसा री भतीजी
तीजो फेरो बनड़ी वीरसा री बैनड़
चौथो फेरो तो बनड़ी हुई रे पराई।।

फेरों के पश्चात् कन्यादान होता है। दिनभर भूखे रहकर (कन्यावळ) करने वाले माता–पिता कन्यादान करते हैं। इस अवसर पर भी मर्मस्पर्शी गीत गाया जाता है–

धरहर धरहर धरती धूजै,
हुई रे धम री वेळा ओ राज
हस्तियां रा दान बाई रा भाभोसा देसी।

विवाह के दूसरे दिन दामाद को प्रातःकाल कलेवा कराया जाता है। फिर दूल्हा–दुल्हन विविध देवी–देवताओं की 'जात' (परिक्रमा) देते हैं। बारात को भोजन कराया जाता है तब हास्य–विनोद के वातावरण में परस्पर सगे–सम्बन्धियों को मीठी 'गाळ' गाई जाती है। अविवाहित सगों को गायी जाने वाली हास्यप्रधान गाळ–

'सगाजी ने काळी कुत्ती परणावौ जी, नारायण जी परमेसर जी।
हथलेवों कींकर जोड़ां जी, नारायण जी परमेसर जी।
सगोजी रो हाथ कुत्ती रो पंजौ, यूं हथलेवों जोड़ो जी।
अे फेरा किण विध खासी जी, नारायण जी परमेसर जी।
आगै सगाजी नै लारै कुत्ती जी, लप लप फेरा खासी जी।।'

कन्या की विदा का अवसर बहुत ही हृदयविदारक होता है। विदाई के गीतों में तो करूणा की ऐसी धारा प्रवाहित है कि बरबस ही लोगों की आंखों से गंगा–यमुना बहने लग जाती है। कोयलड़ी, मींजळियों, ओळूं, सुवटों आदि गीतों में विदाई के करूण चित्र अंकिम हैं–

आंबा पाका ने आंबली
मुहड़ा लुटैरा खाय
कोयलबाई सिध चाल्या
अे म्है थांनै पूछां धीवड़ी म्हैं थांसू पूछां
इतरो भाभोसा रौ लाड छोड'र बाई सिध चाल्या
हे आयो सगा रौ सूवटौ, हे आयो बांगां रो सूवटो
ले गयो टोळी मांय सूं टाळ, गयड़मल ले चाल्यो।

पिता की छत्रछाया, मां की ममता, भाई का स्नेह छोड़कर जाना कन्या के लिये भी दुःखद घड़ी है। वह अपनी व्यथा सुनाती हुई कहती है–

आंगण वाई अंळची कंवळे नागर बेल
आळै में ढूली पड़ी ए माय उणनै आगी मेल
मावड़ म्हनै अळगी दीनी ए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परदेसण कीनी ए
उड़ने पखेरू नीं आय

वधू वर के साथ ससुराल जाती है तो उसे गीतों के साथ 'बधाया' जाता है। बहू को आदर सत्कार मान–सम्मान के साथ घर में बधावा गाते हुए प्रवेश कराया जाता है–

बाज्यां रे बरगू ढोल
जोधाणें नगर बधवाणा
करौ नीं प्यारां माई कोड
पूत परण घर आविया।''

इस अवसर पर बहिन द्वार नववधू व वीरा (भाई) को रोककर 'बाहर रोकाई' का नेग मांगती है–

हूं तो तिलक करंती वीरा टोडो जी मांगू
चावल चांढती मेड़तौ
हूं तो कापड़ नै गूजरात मांगू, काठा गवां री गूगरी

भाई द्वारा नेग चुकाये जाने पर ही कुलवधू कर घर में प्रवेश होता है।

(स) मृत्युसंस्कार के गीत– मृत्यु चिर सत्य है। जिसने इस संसार में जन्म लिया है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। राजस्थान में वृद्ध की मृत्यु पर गीत गाये जाते हैं। मृत्यु से बारह दिन तक गीत, हरजस भजन आदि गाये जाते हैं। इसमें संसार की नश्वरता, ज्ञान भक्ति वैराग्य एवं नैतिक उपदेशों की प्रधानता होती है। ये गीत शान्त रस से ओतप्रात हैं। मृत्यु के अवसर पर 'हर का हिंडोला' गाया जाता है, जो इस प्रकार है–

हर हर करता वडेरां थे उठ हालिया
कोई तुलछां री माळा थारै हाथ।
बेटा जी देवै थारै परकमा
कोई पोता जी करै रे डंडौत
जी ओ बड़भागी थारै हर रौ हिंडोळौ
सदा संग रे हालै।

मृत्यु के दूसरे दिन से बाहर दिनों तक घर की बड़ी बहू व बहन बेटियाँ पंथवारी सींचती हैं इस अवसर पर स्त्रियाँ गीत गाती है–

कैनी सुवा घर री जी बात
कांई तौ करै भोजाइयां
सात सोनै रा कळसियां पंथवारी सींचता
म्हैं देखिया सिरीराम।

मृतक का बडा पुत्र मृतक की अस्थियों को देवन ही गंगा में प्रवाहित करता है। अस्थियाँ विसर्जित कर वापस लौटता है तो डांगडी रात जगाई जाती है। इस अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं। बारह दिनों तक गरूड़ पुराण का वाचन करवाया जाता है। ग्यारवें दिन क्रिया–कर्म, बारहवें दिन द्वादशा कर्म पूर्ण करने के उपरान्त ब्राह्मण भोज होता है। तत्पश्चात् कुटुम्ब–कबीले के लोग भोजन करते हैं। महीने का घड़ा भराया जाता है। छः माह में छः माही का घड़ा भराया जाता है। बारह मास की अवधि पूर्ण होने पर बरसी होती है जिसमें भी कुटुम्ब के लोगों को भोजन तथा ब्राह्मणों को दान–दक्षिण दी जाती है। रात्रि में 'जागरण' होता है। मृतक की स्मृति में भोजन आदि गाये जाते है।

8.अ.4 विभिन्न पर्वोत्सवों के गीत

रंग रंगीले राजस्थान में अनेक पर्वोत्सव मनाये जाते हैं। 'बारह मास में चौबीस तिंवार' कहावत यही सिद्ध करती है कि राजस्थान वासी विभिन्न त्यौहारों, पर्वो के आनन्दपूर्ण क्षणों में अपने समस्त दुःखों को भुला देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

त्यौहारों व पर्वोत्सवों से उनका जीवन सरस बना रहता है तथा साथ ही धार्मिक भावना एवं लोकहति में आस्था बनी रहती है। होली, गणगौर, काजळी तीज, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली आदि प्रमुख त्यौहार हैं। अक्षय तृतीया, बछबारस, धनतेरस, गोवर्धनपूजा, भाईदूज, कृष्णाष्टमी, नृसिंह चोदस, रामनवमी आदि अन्य त्यौहार भी मनाये जाते हैं। नवरात्रि में नौ दिन तक मेला लगा रहता है। कार्तिक मास का तो धार्मिक दृष्टि से बहुत ही माहात्म्य है। स्त्रियाँ इस मास में बहुत उपवास व्रत करती हैं तथा दान–पुण्य भी करती है।

(1) गणगौर – राजस्थान में गणगौर (गौरी) पूजा का प्रचलन है। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को विशेष रूप से गणगौर–पूजा होती है। जगह जगह मेले लगते है जयपुर में गणगौर की विशाल सवारी निकलती है। गणगौर–पूजन के समय अनेक गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में गौरी की दिव्य छवि, आभूषणों, वस्त्रों एवं ईसर गणगौर के हास–परिहास का वर्णन है। स्त्रियाँ गणगौर पूजन के लिये अपने पति से आग्रह करती है कि–

खेलण दो गिणगौर भंवर पूजण दो गिणगौर
ओ जी म्हारी सहेलियां जोवै बाट
भंवर म्हानै पूजण दो गिणगौर।
कींकर खेलण देऊं ए सुन्दर गौरी कींकर खेलण देऊं?
ओ जी म्हारी रात रिझावण नार थांनै नहीं पूजण दो गिणगौर
माथा नै मैमद ल्याव भंवर म्हारै माथां नै मैमद ल्याव
ओ जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव
भंवर म्हानै खेलण दो गिणगौर।

पति से आज्ञा पाकर नारियाँ गणगौर की विधिवत पूजा आरम्भ करती हैं। चैत्र मास की कृष्ण प्रतिपदा से ही जवारां एवं कुंकुम से गणगौर–पूजन कर चूरमा व लापसी का भोग लगाती हैं और गीत गाती हैं–

गवरी ए गवरी माता खोल किवाड़ी
बारै ऊभी थारी पूजणवाळी
ए कुण छो ए डावड़ियो थे पूजणवाळी
पूजो अ. पूजाया बायां आसण–कासण मांगा?
ए नगरी बैठा बाबोसा मांगा, दई बिलोडत्रती मायड़
ए कान्हकंवर सो वीरो मांग, राई–सी भोजाई।
ए साँवळियो बहनोई मांगा, राते चुड़लै बैनड़।

शीतलाष्टमी से घुड़ला घुमाया जाता है। कहा जाता है कि वि.सं. 1548 की चैत्र वदि 1 शुक्रवार (ई. सन् 1491 की 25 फरवरी) की कोसाणे (तहसील बिलाड़ा जिला जोधपुर) की कुछ लड़कियां तालाब पर गौरीपूजन हेतु गई। अजमेर के सूबेदार के सैनिकों ने उनका अपहरण कर लिया। तब जोधपुर के सातल राठौड़ ने लड़कियों को मुक्त कराने हेतु अपने सेनापति सारंगजी खींची को भेजा। सारंगजी ने मुस्लिम सेनापति घुड़लेखां को तीरों से छेद दिया व कन्याओं को ले आये। इसी ऐतिहासिक घटना की याद में स्त्रियाँ कुम्हार के धर से एक ऐसी मटकी लेती है जिसमें छेद ही छेद होते है। उस मटकी में दीया जलाकर वे गीत गाती हुई आती है–

घुड़लो घूमेला जी घूमेला, घुड़ला रै बांध्यो सूत?
घुड़लो घूमला जी घूमेला, सुहागण बारै आग।
घुड़लो घूमेला जी घूमेला।
तेल बळै घी लाव घुड़लो घूमेलो जी घूमेला।
मोत्यां रा आखा लाव घुड़लो घूमेला जी घूमेला।

इसी तरह घुड़ले का एक अन्य गीत–

घुड़लो ऐ सोपारियां छायो, तारा छायी रात
ए हणवन्तसिंह जी रा गजसिंह जी ओम्हारै
घुड़ले रै सामा आय।
ए म्है घुड़ले री तींजणियां, ओ वीरा थे छोटा मोटा राव।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

म्हारो घुड़लो, राज बखाण्यो राठौड़ी राजपूत।

इसके पश्चात् चैत्र की शुक्ला प्रतिपदा या दूज को कुमारियां एवं विवाहित स्त्रियाँ सुसज्जित हो खाली कलश (लोटियां) लेकर तालाब जाती हैं। जलदेव की पूजा कर कलश भरती हैं। फूलों से उन्हें सजाकर सिर पर रखती हैं और साथ में अन्य स्त्रियाँ गाती हुई आती हैं–

दळ बादळ बिच चमके जी तारा
सांझ पड्या पीव लागै जी प्यारा
कांई रे जवाब करूं रसिया
कांई रे मिजाज करूँ रसिया
कांई रे मिजाज करूं रसिया
माथां रो रस मैमद लियो
मैमद रो रस पन्ना मारू लियो
कांई रे मिजाज करूं रसियां

फिर तीज को 'गिणगौर' की सवारी निकाली जाती है। तत्पश्चात् तालाब में गिणगौर का विसर्जन कर दिया जाता है।

(2) नवरात्रि एवं रामनवमी– चैत्रमास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्रि पर्व मनाया जाता है। यह पर्व आश्विन मास में हर्षोल्लास से मनाया जाता है। दुर्गा की उपासना करते हुए व्रत किये जाते हैं। गेहूँ के दाने बो कर 'जवारा' उगाये जाते हैं। ऐसी लोक मान्यता है कि जवारों की वृद्धि के साथ–साथ सुख–सम्पत्ति की वृद्धि होती है। अष्टमी को हवन किया जाता है। चैत्र शुक्ला नवमी को रामनवमी मनाई जाती है। दशरथसुत मर्यादापुरूषोत्तम राम का जन्म इसी दिन हुआ था। अतः पौराणिक झांकियों के साथ राम की सवारी निकलती है। लोग लापसी, चूरमा आदि पकवान बनाते हैं।

(3) आखातीज (अक्षयतृतीय)– राजस्थान में वैशाखमास की शुक्ल पक्ष की तृतीया को आखातीज मनाई जाती है। इस दिन बड़ी की सब्जी, गुड़ की मीठी गुळवाणी तथा साबुत अन्न (गेहूँ बाजरा आदि) का खीचड़ा बनाया जाता है। इस दिन विवाह भी होते हैं। छोटे–छोटे बच्चे दूल्हा–दुल्हन बन कर घर–घर जाते हैं व गीत गाते हैं–

आखातीज बांडा बीज
गळवाणी रो गळियों खीच
घालो आखा घालो गुड़
नहीं घालो तो पइसा दो
कोरी तो कुलड़ी राज दइयो जमायो
सासू रो जायो राज सुसरा जी री पोळ
केसरियो बनड़ो जीवतो
ऐ तो रामचन्दी जी रै आई कुळबहू
आ तो है लिछमी ओ राज
केसरियो बनड़ो जीवतो
ए तो जीतोड़े रा ढोल घुराय
केसरियों बनड़ो जीवतो।

(4) तीज– श्रावण शुक्ल तृतीया को सावणी तीज तथा भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की तृतीया को 'बड़ी तीज' का त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर कुमारियां एवं सौभाग्यवती स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। सत्तू बनाती हैं। नीम की डाली की पूजा कर रात में चांद देखकर उसे अर्घ्य देती हैं। फिर सत्तू खाती हैं। इस दिन झूला–झूलने की भी प्रथा हैं। हर विवाहित स्त्री पीहर जाकर सखियों संग झूला–झूलने की इच्छा रखती है–

सावणियै रो हींडौ रै बांधण जाय
भादवियै रौ हांड़ौ रे बांधण जाय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हींड़ौ रै बांधण धण गई रे
सात सहेल्यां रै साथ।

जब कोई लड़की किसी कारणवश श्रावण में पीहर नहीं जा पाती तो वह ससुराल में अपने पीहर की याद के करूण गीत गाती है–

आयो आयो माँ, सावणिये रो अ मास
म्हनै भेजी माँ सासरे जे
और सहेली माँ खिलण–मिलण ने अ जाय
म्हनै दीनो माँ, पीसणू जे
फोडू फोडू माँ काचळिये रो ऐ पाट
चाकळिये रो अ पाट
बगड़ बखेरूं माँ पीसणू जे।

(5) रामदेवजी का मेला– भाद्रपद शुक्ल दशमी को रामदेवरा नामक स्थान पर रामदेवजी का मेला लगता है। विभिन्न प्रदेशों से 'जातरू' (यात्री) रामदेव जी के दर्शनार्थ आते हैं और रात भर जागरण करते तथा भजन गाते हैं–

खम्मा–खम्मा म्हारा रूणिचा रा धणियाँ
थानै तो ध्यावै आखी मारवाड़, ओ आखी गुजरात ओ
अजमल जी रा कँवरां।
खम्मा खम्मा ओ म्हारा...............

(6) दशहरा– आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा से ले कर नवमी तक नवरात्रि मनाई जाती है। उन दिनों दुर्गा, चामुण्डा एवं कुळदेवी की पूजा की जाती है। दशम को दशहरा मनाया जाता है। इस दिन मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने दुष्ट दुराचारी रावण को मारकर सम्पूर्ण लोक को भयमुक्त किया था। असत् पर सत् की विजय हुई। इसी की याद में धूमधाम से दशहरा मनाया जाता है।

(7) दीपावली– दीपावली भारत का प्रमुख त्यौहार है। यह प्रकाश का त्यौहार है। दीपावली के कई दिनों पहले से ही घरों की सफाई होने लग जाती है। रंग–रोगन से दीवारों को चमकाया जाता है। विभिन्न आकर्षक वस्तुओं से घरों की सजावट की जाती है। धनतेरस को मिट्टी के दीप प्रज्ज्वलित कर धन्वंतरि की पूजा की जाती है। कुमारियाँ थाल में मिट्टी की पूजा कर लक्ष्मीरूप में उसे घर लाती है। दूसरे दिन वे 'रूप चौदस' को बाजोट के नीचे दीप जलाकर ब्रह्ममुहूर्त्त में स्नान करती हैं। ऐसा करने से रूप में निखार आता है–यह मान्यता प्रचलित है दीपावली के दिन विधिवत् लक्ष्मीपूजन होता है। घरों के भीतर छत पर दीपकों की कतारें बहुत आकर्षक लगती हैं। स्त्रियाँ दीपदान करती हुई गाती हैं–

सोने रो म्हैं दीवळो घड़ास्यां
रेशम बाट बटास्यां जी
च्यार बाट रो चौमुख दीवों
घी सूं म्हैं पुरास्यां जी
चांदी रो थाळ मेल म्हारो दीवळों
रंग महल ले जास्यां जी
यहीं नहीं वार सुरंग म्हारा दीवळों
रंग महल जगवास्या जी

दीपकों के प्रकाश व पटाखों के छोड़ने से अमावस्या की काली रात भी जगमगा उठती है। इस दिन परिवार के सभी सदस्य मिलजुल कर भोजन करते हैं। भोजन में विविध पकवान मिठाई आदि होते हैं। दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है। फिर लोग 'रामा श्यामा' करने एक–दूसरे के घर जाते हैं। कार्तिक शुक्ला दूज को भाईदूज मनाई जाती है। बहिनें भाइयों के तिलक कर उन्हें मिठाई खिलाती हैं। भाई बहिन को नेग देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(8) तुलसी एकादशी– हिन्दू धर्मशास्त्रों में तुलसी के पौधे का बड़ा माहात्म्य है। कार्तिक शुक्ला एकादशी को रात्रि में शीतलाग्राम के साथ तुलसी का विधिवत् विवाह रचाया जाता है। इस अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं। यथा–

धन बाअ तुलछां, धन थारा नाम
धन बाअ तुळछां रो बन रोपोयो
सावणियें री तुळछां बायी
भादूड़े में दो पान आयी
आसु तुळछां लगन लिखायी
कानूंड़ा सूं ब्याव रचायो।

(9) होळी– उमंग उत्साह, राग–रंग एवं मस्ती का त्यौहार होली है। होली से महीने–भर पहले से ही ढोल चंग की मधुर आवाज सुनाई देने लग जाती है। ज्यों–ज्यों होली नजदीक आती है, त्यों–त्यों वातावरण में मादकता आती है। बसन्त की बयार, फूलों की बहार और रंगों की फुहार बच्चे, बूढ़े, जवान, सभी में नया उत्साह भर देती है। सामूहिक टोली बनाकर पुरूष रात्रि में ढोल चंग बजाते हुए फाग गाते हैं तो स्त्रियाँ लूरें गाती हैं। होली के दिन होलिका–दहन होता है। गुलाल, अबीर उछाले जाते है। दूसरे दिन सुबह धूलण्डी होती है। लोग एक दूसरे के लाल, गुलाबी, हरे नीले और काले रंग डालकर हल्ला–गुल्ला करते हैं। मस्ती में डूबे लोग एक–दूसरे को रंगों से कुरूप बनाकर हंसी–ठिठोली करते हैं। गीत गातें है। फाग का एक उदाहरण द्रव्यष्ठ हैं–

ऊंचा पोढ्या ठाकरसा
अर नीचे सूती ठकराणियां
ठाकरसा खेंखारौ करियो, जागौ ए राणियां
पीसौ बाजरों हां हां पीसौ बाजरौ
जाटणियां जोरावर हुयगी रे
पीसौ बाजरो।''

फाग खेलने की उमंग को चित्रित करने वाला एक गीत–

फागण आयो फागण मास म्हारे घर
फाग मची फाग मची
म्हारै हाथ गुलाल मारूजी रै पिचकारी जी पिचकारी जी
म्हैं भरी पसै गुलाल मारूजी रै मुख
लागी जी, मुख लागी जी।
मारूजी थणा हुशियार मारी
पिचकारी जी पिचकारी जी

8अ.5 बालक–बालिकाओं के गीत

बालकों का अपना अलग ही संसार है जिसमें छल, कपट, लोभ लालच, ऊंच–नीच, अमीर–गरीब, राजा रंक सजीव रहते हैं। बालक उनमें से ही विषयों का चयन करता है, उपमानों का चयन करता है। बालकों के गीतों में सरलता, सहजता एवं बालमनोविज्ञान का सर्वत्र निर्वाह हुआ है। बालकों के गीतों में किसी भी प्रकार का बनावटीपन अथवा कृतित्व का अलंकरण नहीं होता। इनके गीतों में सहज–सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। जैसे– एक बालिका अपनी सखियों के संग खेल रही है। खेल–खेल में रात हो गई। आकाश में चांद चढ़ आया। अतः भाई बहिन को समझाता हुआ कहता है कि–

चांद चढ़यां गिगनार
किरत्यां ढळ रहिया जी ढळ रहिया
अब बाई घरे पधार
माउजी मारैला जी मारैला
कोई बाबोजी दैवेला गाळ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बड़ा वीरा बरजैला जी बरजैला
मत दो म्हारी बाई नै गाळ
बाई म्हारी परदेसण जी परदेसण
आ आज अठे परभात
तड़कै उड़ जासी सी उड़ जासी
सावणिये रा दिनड़ा चार
जवाइड़ों ले ज्यासी जी ले ज्यासी।।

इसी प्रकार बाई तो मोती के बीच में 'लाल' है। कोई उसे लात कैसे मार सकता है–

दीजो ओ नैनी री धाय, नैनी ने बुलाय
एक दीजो लात री, आ पड़ी गुलाचां खाय
कींकर देऊं बाई नै लात री, म्हारे मोत्यां बिचली लाल
खांडियों खोपरों चिणां के री दाळ।।

बालक–बालिका खेल खेलते वक्त भी कई गीत गाते हैं। जैसे–

कान्या मान्या कुर्रर
जाइजो जोधपुर्रर
लाऊं कबूतर्र
उड़ाय देऊं फुर्रर

एक अन्य गीत इस प्रकार है–

अतनी–पतली पीपळियां रा पान
अपड़ो साथण इण रो कान।।
फूंदी लेते वक्त बालिकायें गाती हैं–
फूंदी रो फड़ाको, जिया बाई रो खाको।।
काको लायो काकड़ी, काकी मांगै बीज।।
काको ठोकी लात री, काकी गावै गीत।।

इसी तरह खेल का एक अन्य गीत–

म्हारी म्हारी छाळियां नै दइयो दूधो पाऊं।
म्हारियों रो आवै तो सोटे री धमाकऊं।।

सावण में काली घटाओं को उमड़ते–घुमड़ते देखकर बालक नाच उठते हैं। साथ ही गाते हैं–

मेह बाबो आजा, दूध रोटी खाजा।
मेह बाबो आजा, घीया बाटी खाजा।
आयो बाबो परदेसी।
अबे जमानौ कर देसी।।
ढाकणी में ढोकळो।
मेह बाबो मोकळो।।
ढूल्लो मरगियो ढुल्ली रोवै।
मेह आवै तो माथो धोवै।।

चौक च्यानणी खेलते वक्त कुछ मुखौटे पहनकर गणेश चतुर्थी के कुछ दिन पहले घर–घर जाते हैं और रास्ते में गीत गाते हैं–

चौक चानणी भादूड़ौ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करदे भाई लाडूड़ौ।
लाडूड़ै में घी घणौ।
लाडूड़ै में पान सुपारी।
गौरी पुत्र गणेश मनाऊं।
सालगिराह गणपति का गाऊं।
भादो सुदी चौथ,
जन्म लियो है गणपत दातार।

बालिकाओं के मनोरंजन का एक गीत है– 'राय राती झंबां'। इस गीत में तुकन्दी के साथ बालिकाओं के मन की बात प्रकट हुई है। उन्हे पीहर में रहना अच्छा लगता है, ससुराल में रहना उनको कठिन लगता है–

थाळकिये में खाजा, म्हारो बाप दिल्ली रो राजा
राय राती झंबो, पटियार राती झंबो।।
मटकी में ठण्डों पाणी, म्हारी माँ दिल्ली री राणी
राय राती झंबी, पटियार राती झंबो
म्हारे आँगण पड़ी राई, म्हारी माँ करी परायी
राय राती झंबो, पटियार राती झंबो।।
अ सासरिये रा धोरा मन्नै चढ़ती नै लागे दोरा
अ सासरिये रा धोरा मन्नै चढ़ती नै लागे सोरा
राय राती झंबो, पटियार राती झंबो।।

ससुराल मे सास के अत्याचार एवं प्रताड़ना से बालिका का मन दुखी रहता है। उसे अपनी उमंगों तथा भावनाओं पर ताला लगाना पड़ता है। एक ओर चंचल मन खेलने के लिये मचलता है तो दूसरी ओर ससुराल की मर्यादा उसे बांधने की कोशिश करती है। ऐसे में बालिका माँ से शिकायत नहीं करे तो क्या करें? वह पूछती है–

माँ म्हारी अ बोगी ऊपर लोटी।
म्हनै क्यूं करी जी मोटी।
कूंमटियौ कांटाळी कांटौ भागणौ।
मां म्हारी आंगणै पड़ी राई।
म्हानै क्यूं कीनी जी पराई।।

पकड़ा–पकड़ी खेलते समय प्रातः बालक–बालिकायें गाते हैं–

डाई डाई डचियौ, कुम्हारी रौ बचियौ।।

कुम्हारी गी पाणी नै, बचियों रोवै ढांणी में।
कुम्हारी बोबो दै नीं, बचियौ रोवतौ रैं नीं।।

होली व गणगौर पर बालिकाओं की टोळियां लूर गाती हैं। बहिन के रहते कोई उसके भाई को कैसे मार सकता है?

चांद आडी जलेरी, सूरज आडौ कूंडौ रे।
म्हारै बीरै रे गेडी बावै, किण रो मूंडौ रे।।
हाजर ऊभी रे हाँ–हाँ हाजर ऊभी रे।
ढाल नै तलवार लेय नै हाजर ऊभी रे।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8अ.6 पारिवारिक सम्बन्धों के गीत

परिवार सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। मनुष्य अपने परिवार में रहकर ही सुखी–जीवन व्यतीत कर सकता है। परिवार से कटकर रहने वाले को अकेलेपन की पीड़ा भोगनी पड़ती है। अतः परिवार मुनष्य के लिये आवश्यक है। व्यक्ति को परिवार में रहने से कुछ खट्टे–कुछ मीठे अनुभव होते हैं। ये अनुभव व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं। परिवार में रहने से दुःखों की रात भी शीघ्र कट जाती है और सुखों की उजियाली जीवन को उज्ज्वल बना देती है। माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नि, बेटा–बेटी बहुएं, नाती– पोते आदि परिवार के सदस्य होते हैं जो परस्पर मिलकर रहते हैं। पति–पत्नि परिवार की सुदृढ़ धुरी होते हैं। परिवार में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वह पीहर में बेटी, ननद और बहिन की भूमिका निभाती है तो ससुराल में पत्नी, भाभी और बहू की भूमिका को सफलतार्पूक निभाने का प्रयत्न करती है। इस कारण लोकगीतों में नारी का विराट् रूप चित्रित हुआ है।

लोकगीतों का सहज विकास हुआ है किन्तु इन गीतों में कहीं भी नैतिक उच्छृखंलता एवं दुराचार नहीं है। उनमें कर्त्तव्य तथा आदर्श का सदुपदेश है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि लोकगीतकार ने यथार्थ को अनदेखा कर दिया हो। पारिवारिक जीवन की सच्चाई का चित्रण भी उसने ईमानदारी से किया है। उसने एक ओर पारिवारिक जीवन के सकारात्मक पक्ष को उजागर किया है तो दूसरी ओर नकारात्मक पक्ष को भी उजागर किया है। कहा भी गया है जहाँ बर्तन अधिक होते हैं तो उनमें टकराहट भी होती है। परिवार के सदस्यों में कभी–कभी अनबन व कलह भी होती है–सास बहू की कहासुनी, नणद–भावज की अनबन और पति–पत्नी का मनमुटाव आदि पारिवारिक जीवन के सत्य हैं जिनका सजीव एवं मर्मस्पर्शी चित्रण भी इन गीतों में हुआ है। किन्तु जीवन का यह यथार्थ भी आदर्शोन्मुख रहा है। पारिवारिक सुख को चित्रित करने वाला एक गीत 'आंबो मोरियो' है। ससुराल के सभी सम्बन्धों के प्रति इसमें लोकगीतों की आत्मा का प्रकाश मिला जाता है नववधू अपने परिवार रूपी आभूषणों की उपमाओं में ससुराल के संबंधों को पूर्ण आत्म–समर्पण के साथ व्यक्त करती है–

म्हारै आंगण आंबौ मोरियो, पसवाड़ै जी पसरी गज बेल
सहेल्यां ए आंबौ मोरियौ
म्हारा सासूजी पूछै बहू थारै गहणां रो अरथ बताय
सहेल्यां आंबौ मोरिया।
सासूजी गहणां जी गहणां कांई करै
गहणां म्हारा देवर जेठ।
सासूजी गहणां जी म्हारौ सह परिवार
सहेल्यां ऐ आंबौ मोरियौ

इस प्रकार नारी अपने शिष्ट आचरण एवं व्यवहार से घर को सुखी और सम्पन्न बनाती है। धरती की तरह सहनशील, गंगा की तरह निर्मल एंव पवित्र राजस्थान की नारी त्याग की साकार मूर्ति है।

पति–पत्नी का संबंध कोमल मधुर एवं सूक्ष्म होता है। उनके मध्य जो प्रेम की निष्कम्प दीपशिखा जलती है, उसका उजाला भी लोकगीतों में दिखाई देता है। दाम्पत्य प्रेम की पूर्ण पराकाष्ठा 'हींडौ' गीत में है–

हींडौ रे बडलै री साख सूं रे
रेसम री तणियांह।
म्हैं नै तो बालम हींडसां जी
गाळ दे रे बांहड़ियांह
सावणियै रो हींडौ रे बांधण जाय।

पति–पत्नी में मान–मनावन भी होता है। पत्नी अपने पति से रूठ गई है तभी तो वह कहती है–

नहीं मानूं म्हारा स्याम थारी बातड़ली, नहीं मानूं जी।
अेक दिन बोल्यो ढोलो स्याळूड़ों मंगादू
दूजै दिन भरी अ न दामळड़ी, नहीं मानूं जी, नहीं मानूं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अेक दिन बोल्यो ढोलो पीयर खिणादूं
दूजै दिन भरीयन दामळड़ी, नहीं मानूं जी नहीं मानूं।
दिन की सांझळ, सांझ की दिनगी।
कदेय न बोल्यो ढोलो साचड़ली, नहीं मानूं जी नहीं मानूं।

पति के प्रेम की छत्रछाया में सुखमय जीवन जीने वाली पत्नी को जब पता चलता है कि उसका पति प्रवास में जाने वाला है तो वह अपने शारिरिक सौन्दर्य का काव्यमय चित्रण कर पति को लुभाती है ताकि वह रूक जाय। द्रव्यष्ट है–

है सोना नै सरीसी धण पीलरी, ओ राज
राज ढोला, राखोनी थांरे हिवड़े रे मांय
परभाते सिधावजो, आलिजा ओ, आज रेवौनी रात।
हीरा रै सरीसी थांरी धण चिलकणी, ओ राज।
राज ढोला राखोनी थांरे कंठा रे माय
पानां रे सरीसी थांरी धण राचणी, ओ राज
राज ढोला, राखोनी थांरे मुखड़े रे मायं

किन्तु पति को आखिर जान ही पड़ा, नौकरी जो ठहरी। अब तो प्रिय के वियोग में विरहिणी दिन रात झूरती है। कभी काग उड़ाती है तो कभी कुरझां को सन्देशा ले जाने का आग्रह करती है।

तूं छै ए कुरजां भायेली, तूं छै धरम री बैण
अेक संदेसो अे बाई म्हारो ले, उड़ो ए म्हारी राज
कुरजा ए म्हारो भंवर मिला दे नीं ए
बीं लसकरिये ने जाय कहिये, क्यूं परणो ना कॅवार
अखन कुंवारी–कुंवारी नै वर तो घणां छा जी

वह स्वयं भी पत्र लिखकर प्रेमोद्‌गारों को व्यक्त करती है। 'पीपळी' गीत में घेरघुमेर पीपळी विकसित यौवन के प्रती रूप में है–

बाय चाल्या छा भंवर जी ! पीपळीजी
हांजी ढोला ! हो गई घेर घुमेर।
बैठण की रूत चाल्या चाकरी जी
अ जी म्हारी सास सपूती रा पूत
मत न सिधारो पूरब री चाकरी जी
परण चाल्या छा भंवरजी ! गोरड़ीजी
हांजी ढोला ! हो गई जोध–जवान
विलसण री रूत चाल्या चाकरीजी
ए जी म्हारा लाल नणद रा ओ वीरै

वह कौए का भी प्रलोभन देती है कि–

उड़ उड़, रे म्हारा काळा रे कागला,
कद म्हारो पिवजी घर आवै।
खीर खांड रो थनै थाल परोसूं,
सोने चोंच मंढाऊ रै कागा,
जद म्हारा मारूजी घर आवै।
पगल्यां में तेरे बांध घूंघरा
गळे में हार पहराऊ रै कागा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार दाम्पत्य प्रेम रूपी सोना विरह की आँच में तपकर कुन्दन बन जाता है। नींबू, इण सखरिये री पाल, सावण आयो, इक थंभियो महल, कसूम्बो, ओळूं, हिचकी, पपीहा, सुबटियो, 'मरवण झोला खाय' आदि गीतों में दाम्पत्य प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सजीव चित्रण मिलता है।

पारिवारिक–संबंध के गीतों में भाई–बहिन के निश्छल पवित्र प्रेम का भी वर्णन मिलता हैं–

काळी काळी रे वीरा म्हारै काजळिया री रेख
काळा नै बादळ में चिमकै बीजळी
मोटोड़ी छांटा रौ बरसै मेह।
बरसै–बरसै रै मेहराणां बाबोसा रै देस
जठै नै जामण रो जायो हळ खड़ै
भीजै–भीजै रै वीरा घोळा रा जोत
वीरौसा री भीजै मैमद मैळियौ

भाई–बहिन के अनन्य प्रेम को उजागर करने वाला एक अन्य गीत–

बीरा रे अेक बड़लौ नै दूजी पींपळी
ज्यारां पान सवाया होय
माँ री जाई सूं कांई रूसणों
अेक वीरौ दूी बैनड़ी
ज्यारां हेत सवाया होय
जामण रे जाई सूं कांई रूसणौ।

लोकगीतों में पारिवारिक सम्बन्धों का नकारात्मक पक्ष भी उभर कर आया है। लाड़–प्यार में पली लड़की जब ससुराल आती है तो एकाएक नये वातावरण में स्वयं को ढाल नहीं पाती। ऐसे में सास, नणद आदि से खटपट भी हो जाती है। कोई सास ऐसी भी होती है जो घर का सारा काम करवाकर कर भी बहू से प्रसन्न नहीं रहती है। उसका अत्याचार उस समय चरम सीमा पर पहुंच जाता है जब वह धतूरे की सब्जी बहू को मारने के उद्देश्य से खरीदती है–

'तरकारी भरोसै सासू धतूरौ मोलायौ।' ऐसी सास के प्रति बहू विद्रोह नहीं करे तो क्या करे?

बाळूं झाळूं सासू थारी जीभड़ली
ऊपर राळूं सैंधों लूण रे चीबूड़ा।

सास के व्यवहार से तंग आकर वह आखिर कह देती है–

सासू गाळी मत काढो म्हानै
न्यारी कर दो म्हानै जूदी कर दो जी
देवर नहीं मांगू, जेठ नहीं मांगू
बाईसा रा वीरा नै मेरे साथ कर दोजी

लोकगीतों का धरातल मानवीय है। इस सन्दर्भ में कोमल कोठारी लिखते हैं– 'लोकगीत, मुख्यतया मानवीय सम्बन्धों को उदार से उदार, महान से महान, सुन्दर से सुन्दर और सहज से सहज बनाने का प्रयत्न करते हैं। लोकगीत, सामाजिक मान्यताओं को प्रश्नपाचक दृष्टि से नहीं देखते, अपितु मान्यता को, नियमों की कठोरता को, कानूनों की तेज और तीखी धार को सीधे सीधे समझ लेने के लिये बाध्य करते है।'

8अ.7 पेशेवर गायकों के गीत

राजस्थान में कुछ ऐसी जातियां हैं, जो लोकगीत गाकर अपना गुजर–बसर करती हैं। ये पेशेवर गायक विशिष्ट यजमान–जातियों के यहाँ अवसरानुकूल गीत गाकर बदले में नेग प्राप्त करते हैं। रावळ जाति चारणों के, घांघळ राजपूतों के वहाँही जाते हैं। अन्य पेशेवर गायक जातियों में ढाढ़ी, ढोली, आदि प्रमुख हैं। गीत और संगीत का सुन्दर संयाग मनमोहक होता है। मांड, सोरठ, मारू आदि रागों में प्रेम की विह्लता का मार्मिक चित्रण इन गीतों की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रमुख विशेषता है। रिड़मल, काछबियो, राणो, ढोला–मरवग, पणिहारी, निहालदे, मूमल, नागजी, बीजा–सोरठ आदि प्रेमाख्यानमूलक गीत हैं। इनमें विरह की व्याकुलता तथा मिलन की उत्कंठा है। निहालदे गीत द्रष्टव्य है–

सावण तो लागौ पिया, भादवो जी कांओ बरसण लागो,
बरसण लागो जी मेह, हो जी ढोला मेह
अब घर आय जा, गोरी रा बालमा हो जी
छप्पर पुराणा पिया पड़ गया रे, कोई तिड़कण लागा,
तिडकण लागा बोदा बांस, हो जी ढोला बंस
अब घर आयजा, बरसा रूत भली हो जी
बादळ में चमकै पिया, बीजळी रे कोई मेला में डरपै,
मेलां में डरपै घर री नार हो जी छोटी नार
अब घर आया जा, फूल गुलाब रा हो जी

''मूमल'' गीत में लोद्रवा की राजकुमारी मूमल के न्खशिख सौन्दर्य का चित्रण हुआ है–

काळी रे काळी काजळियै री रेखड़ी रे
हांजी रे, काळोड़ी कांठळ में चिमके बीजळी
म्हारी बरसांठै री मूमल, हालै नी आलीजै रै देस
सीसड़लो मूमल रा सुरूप नारेळ ज्यूं, हांजी रे केसड़ला
हतियांरी रा वासग नाग ज्यूं, म्हारी साचोड़ी मूमल
हालौ नी ए अमराणै रै देस।।

'पिणिहारी' भी राजस्थान का अत्यन्त लोकप्रिय गीत है। वर्षा ऋतु में इसे बहुत चाव से गाया जात है–

काळी कळायण ऊमड़ी ए पिणियारी जीये लो
ए मिरगानैणी जीया लो
मोटोड़ी छांटा रो बरसै मेह बालाजी
किणजी खुदाया नाड़ा–नाड़िया ए पिणियारी जीये लो
ए मिरगानैणी जीये लो
किणजी खुदाया रे तालाब बालाजी

'काछबियों राणो' गीत भी हृदयस्पर्शी है। इस गीत में ननद–भाभी का वार्तालाप है। काछबिया राणा की सगाई एक राजकुमारी से हो गई। एक दिन राजकुमारी अपनी भावज के साथ नदी किनारे गई। भाभी ने कछुआ दिखाते हुए नणद से कहा कि तुम्हारा होने वाला भरतार कुछए की ही तरह कुरूप है। बेचारी भोली नणद भावज के षड्यन्त्र को समझ न सकी। उसकी भावज अपने भाई के साथ विवाह करवाना चाहती थी। अतः सगाई टूट गई। काछबिया राणा का विवाह दूसरी जगह हा गया। जब बारात लौट रही थी तब उस राजकुमारी ने काछबिया राणा के सुन्दर व्यक्तित्व को देखा। उसे बहुत दुःख हुआ। अन्त में उसने आत्महत्या करली। इस गीत में यही प्रेम कथा चित्रित है–

''चांदा थारी निरमळ रात सैय्या म्हारी हो
चांदा थारी निरमळ रात नणदल नै भोजाई
सैलां सांच री जी म्हांरा राज फिर फिर निरखियों है बाग
दाँतण तो तोड़यो है काची केळ रो जी म्हरा राज
घस–घस धोया है पांव, रगड़–रगड़ घोई
एडियां अड़िया जी म्हारा राज
देखो भावज कांअ जिनावर जाय–भावज
म्हारी ए देखी–देखो भावज कांअ जिनावर
मोरां पर मंडिया है जिण रे मांडला जी म्हारा राज
ओ है, बाईजी, थारोड़ों भरतार जळ रो जिनावर
राणी काछबो–जल रा जीब म्हारा राज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8अ.8 ऐतिहासिक चरित्रप्रधान गीत

राजस्थान वीरों की रणभूमि तथा सतियों की जौहर भूमि है। यहाँ के वीर मातृभूमि की रक्षा के लिये हंसते–हंसते रणभूमि में शहीद हो गये। अंग्रेजों की सत्ता एवं उनके अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा उठाने वाले शूरवीरों में रतन राणा, आउवा ठाकुर, भरतपुर नरेश रणजीतसिंह, डूंगजी जवारजी आदि प्रमुख हैं। इन चरित्रों के आधार पर ऐतिहासिक लोकगीतों की रचा हुई। उमरकोट का सोढा राजपूत रतन राणा को एक अंग्रेज की हत्या के अपराध में फांसी की सजा हुई। मृत पति की स्मृति में राणी की करूण पुकार निम्नलिखित गीत में सुनाई देती है–

म्हारा रतन राणा अेकर तो अमराणौ घोड़ो फेर
अमराणें में बोलै सुवा मोर हो जी हो
म्हारा रतन–राणा अमराणै में बोले सूबा मोर
बागां में बोलै छे काळी कोयली रे

स्वतंत्रता की मशाल प्रज्वलित रखने वालों में आउवा ठाकुर का प्रमुख योगदान रहा है। 'झल्ले आउवो' गीत में अंग्रेजों व आउवा ठाकुर के बीच हुए युद्ध का वर्णन है–

वाणिया वाळी गोचरमांय, काळी लोग पड़ियाओं
राजाजी रै भेळै तो फिरंगी लड़िया ओ, काळी टोपी रो
हें ओ काळी टोपी रो, फिरंगी फैलाव कीधो ओ
काळी टोपी रो।
बा'रलो तोपां रा गोळां, घूडगढ़ में लागे ओ
मांयली तोपां रा गोळां, तंबू तोडै ओ
झल्लों आउलो।
हें ओ झल्ले आउवो, आउवो धरती रौ थांबौ ओ
झल्लो आउवो।

इसी तरह 'रोळो वापरियौ' गीत में, अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' की नीति को लक्ष्य बनाया गया है–

''वा वा रोळो वापरियो।''
मोड.की मगरी रो पाणी ढाळो ढाळे ढळियो रे
आबू थांरे पहाड़ा में अंग्रेज बड़िया रे
काळी टोपी रो हां हां काळी टोपी रो।
देस में अंग्रेज आयो कांई–कांई लायो रे
फूट नांखी भाया में बेगार लायो रे काळी टोपी रो।''

एक ओर अंग्रेजों का शोषण दूसरी और अकाल कें मार से पीड़ित जनता की सहायता करने के लिये डूंगजी को धाड़े मारने पड़े। डूंगजी–जवारजी के अन्य साथियों में लोटिया जाट व करणिया मीणा था। इन दोनों ने डूंगजी को पूरा सहयोग दिया। इनके चरित्र को उजागर करने वाला यह गीत राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं–

''सिवरूं देवी सारदा कोई तने भवानी ध्याऊं
जां मरदांरी छांवळी में च्यार खूंट में गाऊं।।''
डूंग न्हाररी कोटड़यां जुड़ी कचेड़ी आय
जाजम ऊर जाजम बिछ रही, खूब पड़ै रज्वाड़
लोट्यो जाट, करणियों मीणों, डूंगसिंघ सरदार
तीनू मिळ भेळा हुवै तो करै तीसरी बात
बोल्यो डाक डूंगसिंघ, तू सुण रे लोट्या जाट।
मिनखा निठगी मोठ–बाजरी, घोड़ा निठग्या घास।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8अ.9 विविध–गीत

लोकगीतों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे वर्गीकरण की सीमाओं में आबद्ध करना कठिन है। विषय–वैविध्य के कारण कई गीत वर्गीकरण की सीमारेखा में नहीं आ पाये हैं। अतः इन गीतों को इस वर्ग में रखा गया है। विशेष रूप से ग्रामीण जीवन एवं संस्कृति से सम्बन्धित गीत लिये गये हैं। राजस्थाना के नर–नारी कठोर परिश्रमी होते हैं। वे श्रम की थकान को गीत गाकर भुलाते हैं। सास के भय से बहू प्रातः जल्दी उठकर चक्की में अनाज पीसती है। चक्की चलाते वक्त उसे नींद आने लगती है–

रामजी सणण–सणण बोलै रात
घरटी री वैहा होयगी जी राम
रामजी पीसूं–पीसै बाजरौ जी राम
पाड़ौसण पीसै बाजरौ जी राम
रामजी ऊनाळै री ठाड़ी–ठाड़ी लैर
धरटी पे आवै नींदड़ी जी राम

कठोर परिश्रम से राजस्थानी नारी के हाथों में छाले पड़ गये है। अब वह पाला कैसे काटे? पति के सम्मुख अपनी विवशता प्रकट करती हुई गाती है–

म्हारै हथेळियां रे बीच छाला पड़ग्या म्हारा मारूजी
म्हैं पालौ कींकर बाढूंजी।।
डेरां रो काटियौ म्हैं खेता रो बाढियौ
ओ तौ बाड़ां रौ म्हासूं न काट्यो जावै म्हारा मारूजी
म्है पालौ कींकर बाढूंजी।।

राजस्थान में मद्य–पान अधिक प्रचलित है। इसलिये दारू तथा कलाली से संबंधित गीत भी मिलते है। 'दारू दाखां रो' गीत द्रष्टव्य है–

भर ला ओ सुघड़ कलाली दारूड़ों दाखां रो
पीवण वाळौ लाखां रो, भर ला ए सुघड़ कलाली
दारूड़ो दाखां रो।
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर
दारू पीओ साहिब, कोई सौ रूपिया रो फेर
दारूड़ो दाखां रो

राजस्थानी नारी को आभूषणों का विशेष शौकत है। उसे सोने, चांदी, हाथी दांत के आभूषण पहनने की ललक सदैव रहती है। वह अपने पति से झूंटणिया, टेवटिया घड़वाने का आग्रह करती है, किन्तु उसके पति का कहना है–

झूंटणिया–झूटणिया, गोरी कांई बिलखे, कांई बिलखे।
मेहड़े बिना धरती तरसे, मेहड़े बिना धरती सरसे।।
झूंटणियां साळूड़ों गोरी कांई बिलखै
मेहड़े बिना धरती तरसै।

राजस्थानी गीतों में राजस्थानी–व्यंजनों का भी वर्णन मिलता है। वर्षा के अभाव में साग–सब्जी की कमी रहती है। ऐसे में कैर, सांगरियाँ, फोगला, कूमटिया आदि सूखे साग अधिक बनते हैं। दूध, दहीं, चूरमा, लापसी, थूली, राबडी, खीचड़ों, बाजरी का सोगरा विशिष्ट खाद्य–पदार्थ बनाये जाते हैं। किसी में सोगरे के साथ प्याज मिर्च मसाले की चटणी चटखारे ले लेकर खाते हैं–

चटणी में इमरत घोळ लाई नार चटणी में
बाजरिया री रोटी खाणे चटणी म्हानै चौखी लागै,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तरसै तरसै दोनूं म्हारी जाड़। चटणी
खाता खाता म्हारौ मन नहीं धापै,
म्हारौ जीवड़ों हो रह्यौ निहाल। चटणी

गेहँ और 'बाजरी रो खिचड़ौ' भी स्वादिष्ट व्यंजन है। भगवान कृष्ण ने भी 'करमावाई रो खीचड़ौ' को बड़े चाल से खाया था। खिचड़ा बनाने की प्रकिया द्रष्टव्य हैं–

म्हारो मीटौ लागे खीचड़लो, म्हारों चोखौ लागे खीचड़लो
धुलक्यों–छांट्यो बाजरों, म्हैं दळी अ मूंगा क्री दाळ। म्हारो,
ऊखळ धाल्यो बाजरो, म्हैं छाल्लै घाली दाळ। म्हरो,
म्हैं नानू कट्यो बाजरो, म्हैं मीठी छांटी दाळ। म्हरो,
खदवद सीजै बाजरौ, कोई लथपथ सीजै दाळ।

8अ.10 सारांश

सारांश में कहा जा सकता है कि लोकगीतों में राजस्थानी जनजीवन, धर्म और दर्शन, भक्ति और नीति, कला और संस्कृति का जैसा जीवन्त और प्रभावशाली चित्रण मिलता है, वह निश्चय ही अनूठा तािा अविस्मरणीय है। इनका अकृत्रिम कलात्मक वैभव किसी काव्यशास्त्रीय व्याख्या की अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि इनका रचनाकार किसी एक वर्ग या सम्प्रदाय विशेष का नहीं है। सम्पूर्ण लोकसमाज ही इनका सिरजनहार है। **इन गीतों की दुनिया ही लोक है।** छंद, अलंकार, रस, शब्दशक्तियां या गुणदोष तो उन सिद्धियों के समान है जो 'भक्ति' रूपी राजरानीका हाथ जोड़कर अनुगमन करती हैं। लोकआस्था की जगमगाती इन मणियों की आभा का कौन मूल्यांकन कर सकता है? लोकमानस ही इनका रक्षक व संरक्षक होता है। वही कर्त्ता है, वही भर्ता है। वही रसस्त्रष्टा है और वही रसिक है। वह ही आस्वादक है। यहाँ किसी भाष्यकार व व्याख्याता की आवश्यकता नहीं है। यह धरोहर तो धरती पुत्रों की है। इसीलिए चिरयौवन है। रस की अखण्ड धारा है। राजस्थानी लोकगीत अमृत के लहराते हुए महासरोवर हैं।

8अ.11 अभ्यास प्रश्नावली

(1) लोक गीत किसे कहते हैं? लोक गीतों का महत्त्व समझाइए।

(2) राजस्थानी लोक गीतों का वर्गीकरण कीजिए।

(3) 'राजस्थानी लोक गीतों में संस्कृति का मनोहारी चित्रण है।' इस कथन की सारगर्भित व्याख्या कीजिए।

(4) 'राजस्थानी लोक गीतों में नारी भावना का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है।' उदाहरण देकर इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(5) राजस्थान के प्रमुख लोक गीतों का नामोल्लेख करते हुए उनका परिचय दीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–9

राजस्थानी लोकगाथा

संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 लोकगाथाओं का वैशिष्ट्य
9.3 लोकगाथाओं का तात्विक विवेचन
9.4 लोकगाथाओं का शिल्प सौन्दर्य
9.5 लोकगाथाओं का वर्गीकरण
9.6 प्रमुख लोकगाथाओं का कथासार
9.7 सारांश
9.8 अभ्यास प्रश्नावली

9.0 प्रस्तावना

शास्त्रीय ज्ञान के अभिमान से दूर, पांडित्य को चेतना से सर्वथा शून्य तथा परम्पराजीवी लोकसमाज की भावाभिव्यक्ति के प्रमुख साधनों में लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, एवं लोकनाट्य आदि महत्वपूर्ण है। इनमें भी लोकगाथा का अपना विशिष्ट स्थान है। लोकगाथाओं में राजस्थानी जनजीवन को समस्त भावनाएँ उद्दास वेग से प्रवाहित होती हैं। **किसी महान चरित्र की चारित्रिक लीलाओं को पद्यरूप में प्रस्तुत करना ही लोकगाथा है। दीर्घाकार कथा का गेय रूप ही लोकगाथा है।** लोक–गाथा के माध्यम से वृहद् आदर्शों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जाता है। वस्तुतः लोकगाथाएँ सास्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्ब हैं। इनमें हमारे जीवन के आदर्श, धार्मिक आस्था, सामाजिक अनुष्ठान लोकविश्वास, पर्व, मान्यताएँ, दर्शन लोकनीति आदि सन्निविष्ट रहते हैं। लोकगाथाएँ लोक की सम्पत्ति है। ये मौखिक परम्परा में जीवित रहती हैं। **कथा, गीत और अभिनय का अद्भुत त्रिवेणी संगम लोकगाथा है।** अंग्रेजी में इसे "बैलेड़" कहते है। ठंससमक शब्द की व्युत्पति बैलारे से हुई है जिसका अर्थ है "नाचना"। अर्थात ऐसी कथात्मक पद्यरचना जो संगीत और नृत्यमिश्रित हो, जिसमें वर्णन की प्रधानता हो तथा जो सरल, परम्परानुमोदित एवं अनलंकृत हो, उसे लोकगाथा कहते हैं।

9.1 उद्देश्य

इससे लोकगाथा का ज्ञान हो जायेगा।

9.2 लोकगाथाओं का वैशिष्ट्य

लोकगाथा श्रव्य–दृश्य विधा है। ये पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा में जीवित रहती है। इनमें जनजीवन की झांकी होती है। लोकगाथा का रचनाकार अज्ञात होता है। वह लोकगाथा की रचना कर समाज को सौप देता है। अहम चैतन्य से शून्य रचनाकार कोई ऐसा संकेत नहीं देता, इसीलिए इतिहास भी इस संदर्भ में मौन रहता है। यही नहीं इनका रचनाकार भी अज्ञात होता है। लोकगाथाओं की ऐतिहासिकता भी संदिग्ध होती है। उनमें ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं का निर्वाह संभव नही होता । लोकगाथाओं को गाते समय वाद्य यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। जैसे रावण–हत्था, सारंगी, तन्दुरा, खंजड़ी थाली, चंग आदि। लोकगाथा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लोकप्रचलित जनभाषा का प्रयोग होता है। तथा उसमें साम्प्रदायिक धर्मभावना नही होती। लोकगाथा के गान के समय अनेक देवी देवताओं का स्मरण किया जाता है। साथ ही पांचों पीरों व भैरूजी आदि का भी स्मरण किया जाता है। लोकगाथाओं में स्थानीय रंग भी दिखाई देता है। उसमें स्थान विशेष का रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, रीति–रिवाज आदि का वर्णन होता है। उदात्त भावना लोक गाथा की प्रमुख विशेषता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.3 लोकगाथाओं का तात्विक विवेचन

(1) मंगलाचरण– प्रत्येक लोकगाथा में मंगलाचरण का विधान होता है। सर्वप्रथम गणेशवन्दना होती है। तत्पश्चात अन्य सभी पौराणिक एवं लौकिक देवी–देवताओं की स्तुति की जाती है। कुछ लोकगाथाओं में हिन्दू देवी–देवताओं की स्तुति के साथ मुस्लिम पीर, पैगम्बरों का भी स्मरण किया जाता है। मंगलाचरण के अन्त में सद् आदर्शों एवं सदुद्देश्य को व्यक्त किया जाता है। देवजी बगड़ावत लोकगाथा का मंगलाचरण दृष्टव्य है:–

"पैली विनायक सिंवरे जो, च्यार भुजाधारी।
रिध सिध नारी, थारे मूसे री असवारी।।
विघ्न विनायक सिवरजों, पौरस नै अनागि रौ छड़मांन।
रिध सिध भोलानाथ नै सिंवरजो, पारवतो रो नाथ।।
गढ़ी मड़ी, कोटड़ी, पड़ले बड़ले रा सवार।
इतरी विलिया सिंवरियें पारवती रा पुत।।
सदा भवानी दायनी, सनमुख रवै गुणेस।
पांच देव रिछिया करै, बिरमा विसनु महेश।

(2) सर्वगुणसम्पन्न नायक का चरित्र:–लोकगाथा का नायक सर्वगुणसम्पन्न होता है। नायक जितना पराक्रमी, साहसी होता है, उतना ही दयालु उदार एवं विनम्र होता है। वह अपनी हिम्मत से अत्याचारियों का सामना करता हैं तो गरीबों की सहायता भी करता है। उसकी वीरता से शत्रु भी कॉपते है। 'निहालदे–सुलतान' में ऐसे शूरवीर के दस गुण बताये गये है–

सदा रहै काछ रौ दृढ़, जुद्ध सूं पीठ नीं मोड़े।
रण में रहे निसंक, सीस सत्रवांरा तोड़े।
बोले नही बड़ बोल, काठ नहीं मन्का।।
विपत देख न संचरै,गरव होय न धनका।।
सिरणगत री रिच्छा करै, दया धरम अर चातरी।
दस लच्छण रजपूत रा, नाम धरावै छातरी।

ऐसे शूरवीरों में पाबूजी, तेजाजी, गोगाजी, पृथ्वीराज, सुलतान बगड़ावत आदि के नाम लिये जा सकते है। लोकमारस ने इनकी उदात्त चारित्रिक विशेषताओं से प्रभावित होकर ही उन्हें गाथा का नायक पद प्रदान किया है।

(3) इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण–लोकगाथाओं में ऐतिहासिक तथ्य तो नाम–मात्र के पाये जाते है। उनमें कल्पना तत्व ही अधिक है। पाबूजी, गोगाजी, बगड़ावत ढोला मारू आदि लोकगाथाओं के कथानक ऐतिहासिक है। किन्तु इनमें भी इतिहास तत्व नाम मात्र का ही है। 'निहालदे सुलतान' की लोकगाथा यद्यपि काल्पनिक है। किन्तु उसमें प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश उभर कर आया है। इसी तरह जलाल बूवना नागजी नागवंती आदि गाथाएँ भी पूर्णतः काल्पनिक हैं। इतना ही नही गायकों ने भी अपनी कल्पना से ऐतिहासिक पात्रों को मनमाने ढ़ग से प्रस्तुत किया है जिससे ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगाना मुश्किल हो गया है। कहीं कहीं पर इतिहास केवल नामोल्लेख तक ही सीमित रह जाता है। लोकगाथा के नायकों के लिए इतिहास साध्य नही है। वह तो साधन है। उनका मुख्य लक्ष्य तो लोकमानस को रिझाना होता है।

(4) वीर–श्रृंगार एवं करूण रस का त्रिवेणी संगम–अधिकांश लोक गाथाएं वीर, श्रृंगार एवं करूण रस का त्रिवेणी संगम है। पाबूजी, बगड़ावत, गोगाजी, तेजाजी आदि लोकगाथाएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन लोकगाथाओं में नायक के शौर्य और पराक्रम के वर्णन के साथ साथ श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का भी चित्रण मिलता है। विरहप्रसंग तो अत्यंत ही स्वाभाविक हृदयस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक बन जाता है। कई लोकगाथाओं के दुखान्त होने से उसमें करूणा का समावेश स्वतः ही हो गया है। पाबूजी की लोकगाथा इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जब पाबूजी अर्द्ध विवाहित सोढ़ी को भांवरे के समय ही छोड़कर देवल चारणी की गायें लाने हेतु चल दिये तो सोढ़ी यह देख पुकार उठी–

'तीजोड़ा फेरां में जी पाबू किस विद चाल्या छोड़।
कोई आदी तो ब्याओड़ी म्हानै आदी कंवारी छोड़ दी।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पाबूजी वचनबद्ध थे सो चल दिये। जब सोढ़ी ने उनसे हाथ की कोई निशानी मांगी तो पाबूजी ने कहा–

'जीवांगा तो फेर मिळांगा, सोढ़ी थांसू आय।
मरजावां तो ला देला ओढ़ी म्हारा महमद मोळिया।"

पाबूजी यह कहकर चले गये। उन्हें युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई। उनका सेवक उनके चिह्न लेकर आ गया तो अर्द्धविवाहित सोढ़ी सती होने का उपक्रम करने लगी। वह अपनी सखियों भाई–भाभी, पिता, माता आदि से अन्तिम विदा लेते हुए कहने लगी–

"म्हानै थे घणा लाड लडाया, रूस जाती तो हाथ सूं गिरास दे दे जिमाता।
गोद में ले र खिलावता। थारी गोद की सोनचिड़ी तो उड़ री है।

और सोढ़ी पाबूजी के साथ सती हो गयी।

इसी तरह तेजाजी भी हीरा गूजरी की गायों की रक्षार्थ डाकुओं से लड़ने गये।मार्ग में आग के जलते ढेर में विपन्न सांप को बचाने के उद्देश्य से बाहर निकाला, जबकि सांप अपनी नागिन के साथ जलना चाहता था। अतः रूष्ट सांप ने तेजाजी हो डसना चाहा। तब तेजाजी ने उसे वचन दिया कि वे गायों को छोड़कर लौट आयेंगे। तेजाजी युद्ध में बुरी तरह क्षतविक्षत हो गये किन्तु वचनबद्ध तेजाजी सांप के पास आये तब सांप ने उनकी जीभ को डस लिया। तेजाजी की पत्नि भी अपने पति के साथ सती हो गयी।

लोकगाथा में वीर श्रृगांर और करूण रस तो प्रधान है ही अन्य रस भी अंग रूप से आये हैं।

(5) युद्धों का राजीव वर्णनः–वीरतामूलक लोकगाथाओं में युद्धों का जीवन चित्रण मिलता है। गाथानायक अपनी आन बान की रक्षा के लिये शत्रु से स्वयं युद्ध करता है। वह मैदान से पैर पीछे नही हटाता। शत्रु का डटकर मुकाबला करता है। जिसमें या तो विजय प्राप्त करता है या फिर वीरगति को प्राप्त कर स्वर्ग में जाता है। युद्ध के उन्मादी इन वीरों की धनुष की टंकार एवं तलवार की झंकार हमें लोकगाथाओं में सुनाई देती है। युद्ध की विभिषिका को व्यक्त करने वाली 'बगड़ावत' लोकगाथा का युद्ध वर्णन दृष्टय है–

दळ भाजै मांझी बावड़ै, भल पूंजा रजपूता का बेटा आय
धामधूम सेला की मचगी, तरवारा की उड़गी लाय
आभा में चमकै बिलळी, बादल में बहगा कतराई बाण
"तरवारां केसर चुवै अर भाला चुवै सिन्दुर
भारत करै बाघजी को सूरमो, साख भरै कसब को पूत
चढिया राज का धणी, घटा बोध घनघोर
अरड़ नाल बहै गोळा, बाघ लड़ै बदनोर
बाघ तणा भड़ आ भिड़या मांझा पड़िया दहल
सीस बधड़क्या उडै मीर छकंता पैल।"

(6) वचनपालन की आन– लोकगाथा लोकगाथाओं में दृढता से प्रण पालन की परम्परा का निर्वाह हुआ है। लोकगाथा के नायक प्राण देकर भी अपने वचन का पालन करते है। चाहें पाबूजी हो या तेजाजी या बगड़ावत सभी वचन के घनी हैं। जब पाबूजी अपने वचनों को पूरा करने के लिए चल पड़े तो उनकी अर्द्धविवाहित पत्नी ने कहा कि आप विवाह तो कर लीजिए। तब तक मेरे पिता की सेना गायों की रक्षार्थ चली जायेगी। तब पाबूजी ने कहा–

"म्हारे तो लगे जी सोढ़ी सुरावपण में दाग
कोई थारी तो फौजां पर म्हारी कूळ की मुछां ना चढ़ै।"

वचन तो पाबूजी ने स्वयं के जाने का दिया था अतः सेना के जाने से उनका वचन पूरा कैसे हो सकता है। सो पाबूजी ही गये और वचनपालन करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। इसी तरह तेजाजी ने सांप को दिये गये वचन का पालन किया। लहुलुहान तेजाजी वचन के अनुसार सांप के पास आये और सांप ने उनको डसा। इस प्रकार प्राणों का बलिदान देकर उन्होने वचन पालन किया।

(7) प्रेम की तीव्रता– राजस्थान में अनेक ऐसी लोकगाथाओ की सृष्टि हुई है जिनमें प्रेम की ज्योति प्रदीप्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। नायक–नायिका के हृदय से प्रस्फुटित सरल लिश्छल पावन प्रेम की किरणें जनमानस को भी प्रेम में सरोबार कर देती है। प्रेम चाहे उभयपक्षीय हो चाहे एकपक्षीय। प्रेम तो प्रेम है। प्रेम का निर्वाह बहुत कठिन है। लोकलाज, सामाजिक मर्यादाएं बन्धन आदि प्रेम मार्ग की बाधाएँ है। जिनके कारण प्रेमियों का परस्पर वियोग हो जाता है। कई प्रेमियों को तो अपने प्राणों का बलिदान भी देना पड़ जाता है, किन्तु उनके प्रेम में जरा सी भी कमी नही आती बल्कि वियोग की आग में तपकर उनका प्रेम कुन्दन बन जाता है। "ढ़ोला मारू" लोकगाथा की मारवणी तो गर्म भात खाने से भी डरती है। कहीं उसके हृदय में बसे प्रियतम जल न जाए–

सज्जण तोरई कारणई ताता भात न खाइ।
हिया भीतर प्रिय वसइ दाझवती डरपाई।।

मारवणी, मालवणी एवं ढोला तीनों ही प्रेम की आग में जलते है,किन्तु तीनों के मिलन से गाथा सुखान्त हो जाती है। किन्तु अधिकांश गाथाएँ दुखान्त है। इनमें जलाल–बूवना, सोरठ–बींझा, नागजी–नागवन्ती, जसमादे–ओडण, रामू चनणा आदि की प्रीत को बहुत महत्व दिया गया हैं। नागजी नागवन्ती प्रेमगाथा की नायिका नागवन्ती का कहना है कि प्रेम कभी पुराना नही होता। बालपन की प्रीत को तोड़ना असम्भव है–

नागजी तड़क तड़क मत तोड़ रे, बैरी कतवारी रे तार ज्यूं ओ नागजी।
नागजी ज्यूं तूटे जोड़ रे,बैरी प्रीत पुराणी ना पड़े ओ नागजी।।
नागजी नागर बेलड़ी रै बैरी पसरे पण फूले नहीं ओ नागजी।
नागजी बाळपणै री प्रीत बैरी बिछड़ै पण छूटे नही ओ नागजी।।

(8) गोरक्षा शरणगतवत्सलता एवं दानशीलता– राजस्थान में गाय को माता तुल्य मानकर आदर दिया जाता है। यहाँ के वीर जननी धरती और गाय की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व होम देते है। तेजाजी तथा पाबूजी गायों की रक्षा हेतु शत्रु से युद्ध करते हैं और गायें छुड़ा लेते हैं। इतना नही नही एक काणा केरड़ा (बछड़ा) को छुड़ाने के लिये दुबारा लुटेरों के पास जाते हैं। इस कार्य में पाबूजी वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं तो तेजाजी बुरी तरह क्षत विक्षत हो जाते हैं।

लोकगाथाओं के नायक शरणागत वत्सल होते हैं। शरणागत की रक्षा करना राजस्थानी संस्कृति की निजी पहचान है। शरणागत की रक्षाहेतु ये वीर अपना सिर कटा लेते हैं किन्तु शरणागत को शत्रु के हाथों में सौपकर उसे धोखा नही देते। लोकगाथा के नायक दयालु एवं दानशील होते हैं। ये धनसंचय की अपेक्षा दान को अधिक महत्व देते है। बगड़ावत जहाँ जाते है, वहाँ मोहरें की मोहरें बिखेर देते है। भोजा तो धौबा (अंजलि) भर भर के मोहरें लुटाता है। भोजा के घर जो भी जाता है, खाली हाथ वापस नही आता। डुंगजी–जवारजी भी लूट का धन गरीबों मे बांट देते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

चुग चुग हार्या बाळदी, चुग चुग छक्या गुंवाळ
चुग चुग दुनियाँ धापगी, वा जै बोलती जाय।
सात ऊंट दख्या रा भरिया, पोकरजी नै जाय।
पोकरजी रै घट वाँ, जाजम दई बिछाय।।
गरीब गुरवा बामणा नै, हेलो दियों पड़ाय।
रूपिया धापा बामणियाँ, मौरां धापा भाट।।

(9) नैतिकता एवं भक्ति का सदुपदेश–राजस्थान धर्मप्राण देश है। यहाँ धार्मिक भावना, सदाचरण एवं लोकहित को विशेष महत्व दिया जाता है। यहाँ सन्तोष, त्याग, बलिदान, तथा जनहित का सदुपदेश देने वाली अनेक लोकगाथाएँ मिलती है। पाबूजी, तेजाजी आदि की गाथाएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। ये दोनों त्याग के साकार रूप है। तभी तो वे अपने जीवन का बलिदान करने से भी नही हिचकिचाते।

लोकगाथाओं में भक्ति व तपस्या के प्रभाव को भी व्यक्त किया गया है। इनके आधार पर असम्भव कार्य भी संभव हो जाते है। भक्त सच्चे हृदय से नाम स्मरण करे तथा सद्गुरू की कृपा से आत्मज्ञान प्राप्त कर ले तो जन्ममरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। भरथरी को ऐसे ही समर्थ गुरू गोरखनाथ मिल जाते है जो राजा के बाण से मृत मृग को पुनर्जीवित कर देते है और भरथरी उसी समय उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लेता है। वह राजपाट सब छोड़कर उनकी शरण में चला जाता है। गोपीचन्द भी मां मैनादेवी की प्रेरणा से 12 वर्ष की उम्र में ही सन्यास ले

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेता है। 'गोपीचन्द' भरथरी की लोकगाथा में भाग्यवाद एवं कर्मफल को भी स्वीकार किया गया है। विधाता ने भाग्य में जो लिख दिया है, उसे कोई नही मिटा सकता–

(1) करमां लिखिया लेख भोग्या सरजी जी।

(2) राणाजी। करम में लिखिया जोग अंग तो लिखिया भगवा कपड़ा।

इसी तरह इस लोकगाथा में जीव हिंसा को भी बुरा बताया गया हैं। प्राणी को सताने से जो शाप मिलता है उससे वंश का नाश हो जाता है। तभी तो भरथरी गुरू गोरखनाथ से अनुनय विनय करता है कि–

गुरूजी म्हारा मिरग ने जीवन कर दो, चेलो बण जासूं
दुखिया रा आधार–सतगुरू चेलो बण जासू।

भरथरी को डर है कि यदि मृग जीवित नही हुआ तो हरिणियों का शाप लग जायेगा–

"मिरग रो लांगैला सराप, झुरती छोड़ चाल्या जी
लागेला राणी ने दुहाग राजा भरतरी जी
भोग्या छूटेला सराप राजा भरतरी जी।"

राजस्थानी लोकगाथाओं में अनेक लोकोपयोगी नैतिक सूक्तियाँ भी मिल जाती है जो जन जीवन को सही दिशा देती है। यथा–

"चुणियोड़ा देवल ढह पड़े, भळे ने पाछा होय।'
'उग्या नर वे आंथसी, जलग्या सों मर जाय।'
बड़ बुगलां सूं बीगड़े, बादरं सूं वनराय।
भौम सपूता आवड़ै,वंस कपूता जाय।द्ध
गॉव कुटाकर बीगड़।"

इस प्रकार सभी लोकगाथाओं में कोई महान उद्देश्य, जीवन दर्शन एवं सदुपदेश निहित रहता है। जिसे अपनाकर जन जीवन सुखी हो सके तथा समष्टि हित हो सके।

9.4 लोकगाथाओं का शिल्पसौन्दर्य

राजस्थान में लोकगाथाओं की समृद्ध परम्परा रही है। लोकगाथाओं के रचयिता यद्यपि निरक्षर थे, किन्तु वे स्वाभाविक प्रतिभा सम्पन्न थे। तभी तो उनके मानस में लोकगाथा की रक्षा हो सकी और वाणी से निस्सृत होकर जनमानस तक पहुँच सकी। इतना ही नही मौखिक सम्प्रसारण में गतिशील रहकर युगों युगों तक ये लोकगाथाएँ चलती रही है। इन लोकगाथाओं में बोलचाल की जनभाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल सहज भावानुकूल एवं प्रवाहमयी है। भाषा की कृत्रिमता एवं आडम्बर नही है। शास्त्रीय नियमों की जटिलता नही है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि भाषा में सहज सौन्दर्य का अभाव है। वास्तव में देखा जाए तो लोकगाथागों की भाषा में सहज सौन्दर्य निहित है। अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से लोकगाथा का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। विशेष रूप से उपमा, रूपक, भ्रान्ति सन्देह, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति आदि प्रमुख अलंकार इनमें सहज रूप से आये है। उपमा की लड़ियाँ पिरोई हुई है। मारवणी के रूपसौन्दर्य का चित्रण दृष्टव्य है–

सुन्दरि सोवन वर्ण तसु अहर अलता रंगि।
केसरी लंकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगी।।

मारवणी ढाढियों के हाथ ढोला को संदेश भेजती है वह यौवन को कभी आम्र कभी कमल, कभी हाथी से उपमा देती हुई कहती है–

ढाढ़ी एक संदेसडउ लग ढोलहि पहुंचाय
जोबण कमल विकासियउ, भ्रमर न बसई आय।।

यौवन की उपमा ऊफनते दुध से भी दी गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जोबन जोरे चढ़यो गूजरी, दुदां चढ़यो उफाण।

लोकगाथाओं में ध्वन्यात्मक एवं चित्रात्मक शब्दों को प्रयोग भी मिलता है। बेंड़ियों से जकड़े हुए क्रोधित डुंगजी की स्थिति दृष्टव्य है–

बड़बड़ चाबै आगळी, वौ कड़कड़ चावै जाड।
नैण जगै ज्यूं दीवळा, ज्यां री सवा हाथ री नाड़।।
इसी तरह वेग से दौड़ते हुए घोड़ों का चित्र'
धड़धड़ धड़धड़ करता घोड़ा आड़ावळा में जाय।

लोकगाथाओं में शास्त्रोक्त शब्द–शक्तियाँ' व्यंग्यार्थ एवं ध्वन्यार्थ के भी दर्शन होते है। लक्ष्यार्थ का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

लड़बा लागी बोलतां अर, प्याला करौ पुकार। अर्थात मदिरा के दौर चलने लगे।

व्यंग्यार्थ यह है कि डामा ने असंख्य वीरों को मौत की गोद मे सुला दिया है जिससे विधवाओं की संख्या बढ़ गयी है। इसी कारण तो कसीस (विधवाओं) के वस्त्र रंगने के काम में आने वाला पदार्थ महंगा हो गया है और चुड़ा (सौभाग्यवती स्त्रियों का आभूषण) सस्ता हो गया है।

लोकगाथाओं में लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे का भी सुन्दर प्रयोग हुआ हैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

(1) बोलां रास घव ज जुग में नां भरै।
(2) वचन बाप मरदां कै, कहीजै जुग में एक।
(3) घास–फूस मुंह में ले लीन्यूं मैं तेरी काळी गाय।
(4) बीड़ा उठाना।
(5) मूछां ना चढ़े।

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि लोकगाथाओं में कलात्मक सौन्दर्य की कमी नही है। देशज शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों आदि के प्रयोग से स्थानीयता का रंग भी उनमें झलकता है। लोकगाथाओं में एक ओर शास्त्रीय नियम भी देखे जा सकते हैं तो दूसरी ओर लोकमानस की सहजता सरलता एवं स्वाभाविकता के भी दर्शन होते है। इस प्रकार लोकगाथाओं में शास्त्रीय धारा एवं लोकधारा का गंगायमुनी संगम हुआ है।

9.5 लोकगाथाओं का वर्गीकरण

विषय–वस्तु की दृष्टि से लोकगाथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) शीर्षमूलक लोकगाथाएँ–इस वर्ग में हम उन लोकगाथाओं को रख सकते हैं जिनके वीर–शिरोमणि नायकों ने पीड़ितों की सहायता की है। जिनकी तलवार सदैव आतताइयों के विरूद्ध उठी है और जिन्होने प्रण–पालन एवं परोपकार करते हुए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये ऐसे वीरों में पाबूजी, तेजाजी, गोगाजी, बगड़ावत, गलालेंग, डूंगजी जवार जी आदि प्रमुख है। जिनके उदात्त, शौर्यमूलक चरित्र के आधार पर लोकगाथाओं की रचना हुई है।

(2) प्रेम प्रधान लोकगाथाएँ–इस वर्ग में वे लोकगाथाएँ आती है जिनके चरित्रनायक प्रेमवीर हैं। 'प्रेम को पंथ कराल महा–तलवार की धार पे धावनों है' ऐसे प्रेम के कठिन मार्ग पर चलने का साहस रखने वाले ये प्रेमवीर किसी की भी परवाह नही करते। मौत भी उन्हें मार्ग पर सकती। प्रेम में उन्मत नायक–नायिका अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं। किन्तु निश्छल उज्जवल प्रेम का त्याग कर जोना उन्हें स्वीकार नही। प्रेमगाथाओं में संयोग–वियोग, प्रेम मान–प्रसंग, सन्देशप्रेषण, दूतदूतीप्रसंग आदि का वर्णन मिलता है। विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति इन गाथाओं की प्रमुख विशेषता है। अनेक राग–रागिनियाँ में बन्धकर ये और भी द्रावक हो उठी है। काफी, सोरठ, मांड आदि करूणाजनक रागिनियों में आबद्ध ये लोकगाथाएँ लोकमानस को झकझोर देती हैं। जलालबुवना, सोरठबींझा, नागजी–नागवन्ती आदि लोकगाथाएं इसी श्रेणी की है। ढोला मारू रा दूहा सुखान्त प्रेमगाथा है।

(3) रोमांचकारी लोकगाथाएँ–राजस्थान में ऐसी लोकगाथाएँ भी मिलती है जिनमें अनेक रोमांचक प्रसंग भरे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पड़े हैं। निहालदे सुल्तान लोकगाथा इस श्रेणी की ही है। यद्यपि इस गाथा के नायक सुल्तान में वीरता का उत्कर्ष दिखाई देता है किन्तु अतिमानवीय तत्वो एवं रोमांचक प्रसंगो के कारण वे जनमानस को चकित कर देती हैं। जादू, परियों रूप–परिवर्तन, कार्यपरिवर्तन आकाशगमन आदि अलौकिक कार्यों का वर्णन हमें चमत्कृत कर देता है।

(4) पौराणिक लोकगाथाएँ–पौराणिक आख्यानों के आधार पर भी लोकगाथाओं की रचना हुई है। इन लोकगाथाओं में पुराण एवं महाभारत की कथावस्तु को लोकमानस की प्रवृत्ति के अनुसार ढालकर प्रस्तुत किया गया है। इन गाथाओं मे लोकादर्श प्रतिष्ठित हैं। ब्यावलों, आबारस–प्रसंग भीमों–भारत सैत, गैड़ों, द्रुपदाअवतार,स्यामकरण, घोड़ों काळा–गौरा रो भारत आदि पौराणिक गाथाएँ है।

(5) भक्ति और वैराग्यमूलक गाथाएँ–इस श्रेणी में रूपादे, भतृहरि गोपीचन्द आदि लोकगाथाएँ आती हैं। इन गाथाओं के नायक प्रारम्भ में वैभवपूर्ण जीवन यापन करते हुए दिखाई देते हैं किन्तु बाद में किसी प्रेरक प्रसंग व सतगुरू की कृपा से सांसारिक जीवन से उदासीन हो जाते है और अन्त में वैराग्य धारण कर लेते हैं। ये वीतरागी पुरूष गुरू–भक्त होते है और नाम–स्मरण से बड़ी से बड़ी बाधा को पार कर जाते हैं। आचरण की शुद्धता, मन की पवित्रता व लोकहितकारी भावना रखने वाले ये सच्चे भक्त जन जन के हृदय पर आसीन रहते हैं।

9.6 प्रमुख लोकगाथाओं का कथासार

पाबूजी री लोकगाथा– राजस्थान वीरों की रणभूमि तथा वीरांगनाओं की जोहर भूमि है। यहाँ के वीर अपनी आन बान शान व लोकहित के रक्षा के लिये मर मिटते हैं तो यहाँ की नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिये पति के साथ जलती चिता में चढ़कर सती हो जाती है। लोकमानस ऐसे शूरवीरों एवं वीरांगनाओं को अपने हृदय में उच्च स्थान देता है। लोकवाणी के रथ पर आरूढ़ होकर इन शूरवीरों का चरित्र युगों–युगों तक यशोभूमि पर भ्रमण करता रहता है।

राजस्थानी वीर– परम्परा की माला के सुमेरू रत्न रणबंका राठौड़ पाबूजी का जन्म संवत 1341 में मारवाड़ के कोलूगढ़ ग्रम में हुआ। कोलूगढ़ के राजा धांधल के बड़े पुत्र बूड़ोजी व छोटे पुत्र पाबूजी थे। बूड़ौजी के एक पुत्री 'केलमदे' थी। पाबूजी को अपनी भतीजी से बहुत स्नेह था। वे उसका विवाह योग्य वर से करवाना चाहते थे। संयोग से एक बार पाबूजी की भेंट गोगाजी चौहान से हो गई। दोनों ने अपने अपने चमत्कार दिखाये। पाबूजही मेढक बनकर पानी में पैठ गये तब गोगाजी ने सर्प का रूप धार कर उन्हें पानी से बाहर निकाल दिया। पाबूजी हार गये। पूर्व निर्धारित शर्त के अनुसार पाबूजी अपनी भतीजी केलमदे का विवाह गोगाजी से करवा दिया। दहेज में बहुत धन हीरे जवाहरात सोना चांदी हाथी घोड़े दिये गये। पाबूजी ने उन्हें ऊँट भी देने का वचन दिया जबकि उस समय राजस्थान में ऊँट का बहुत अभाव था। बहुत दिन बीत जाने पर भी जब केलमदे की ससुराल में ऊँट नही भेजे गये तो सास ननद आदि केलमदे को ताने मारने लगी। इन तानों से दुखी केलमदे ने एक दिन अपने काका पाबूजी को पत्र लिखा। वस्तुस्थिति को समझकर पाबूजी व्याकुल हो गये। वचन पूरा न करके के लिये बार बार अपने पर क्रोध आ रहा था। उन्होंने दरवार लगाया तथा ऊँटों को खोज करने के लिये बीड़ा डाला। सभा में उपस्थित हरिसिंह नामक वीर ने बीड़ा उठाया और साहस के साथ अपनी माँ तथा पत्नी से विदा लेने आया। मां ने इस कार्य को दुष्कर समझकर अपने पुत्र को रोकना चाहा था। माँ ने कहा कि तेरी बहिन सयानी हो गई है। उसके हाथ पीले कौन करेगा। तब हरिसिंह ने माँ को आश्वस्त करते हुए कहा–बूड़ोजी, पाबूजी, चांदा, डामा आदि इस कार्य को पूर्ण कर देंगे। यह कहकर वह आवश्यक सामग्री ले लंका की ओर चल पड़ा। समुद्र के किनारे पहुँचकर उसने अपने गुरू बालीनाथ का स्मरण किया। बालीनाथ के प्रभाव से समुद्र पर सेतु बन गया। हरिसिंह का घोड़ा सेतु पार करते हुए लंका में वहाँ पहुँच गया जहाँ जंगलों में ऊँटों के झुण्ड चर रहे थे। हरिसिंह ने वहां साधु का वेश धारण करके धूणी जगाई। ऊँटों के चरवाहे उसे साधु समझ कर दूध फल आदि चढावा देने लगे, किन्तु हरिसिंह ने उनका चढ़ावा नही लिया। वहाँ के पंडितों ने अपनी ज्योतिषविद्या से हरिसिंह का असली स्वरूप पहचान लिया तथा उन्हें बता दिया कि यह पाबूजी का सेवक हरिसिंह है और ऊँटों को चुराने आया है। असली भेद खुलने पर सभी लाठियां लेकर आये, किन्तु हरिसिंह ने उन्हें अपना चमत्कार दिखाकर हरा दिया। उसने जलते अंगारे अपनी झोली में रख दिये जिससे गॉव वाले उसको सिद्ध पुरूष समझ कर स्वागत सत्कार करने लगे। हरिसिंह ने एक ओर चमत्कार दिखाया। जब गांव वाले दूध से खप्पर भरने लगे तो उनका खप्पर खाली का खाली रह गया। कई हांडियाँ दूध डालने पर भी वह नहीं भरा। सभी आश्चर्यचकित रह गये। हरिसिंह उनसे केवल ऊँट की मींगनियाँ लेकर आ गया और पाबूजी को सारा वृतान्त सुना दिया।

पाबूजी केसर कालमी पर आरूढ़ हो दल बल सहित लंका जा पहुँचे। उन्होनें हरिसिंह के बताये हुए स्थान पर जाकर ऊंटो को घेर लिया। तब रावण स्वयं सेना सहित युद्ध करने आ पहुँचा। पाबूजी ने उसे हरा दिया। रावण भाग गया और वे ऊंट लेकर मारवाड़ आ गये तथा ऊंट लेकर भतीजी की ससुराल की ओर चल पड़े। मार्ग में सोढ़ी को शुष्क वन मिला जो पाबूजी के प्रवेश मात्र से हरा भरा हो गया। वही सोढों की पुत्री ने पाबूजी को देख लिया। वह उनके गुणश्रवण एवं दर्शन से मंत्रमुग्ध हो गई। उसने प्रण किया कि वह पाबूजी से ही शादी करेगी अन्यथा अखण्ड कुंवारी रहेगी। पाबूजी ने अपनी भतीजी के ससुराल वालों को ऊंट देकर वचन का पालन किया।

इधर सोढ़ों ने जोशी को बुलाकर राजकुमार सोढी के लिये योग्य वर तलाश करने को कहा। राजकुमार ने जोशी को अपने पास बुलाया। उसे उपहार देकर प्रसन्न किया तथा अपना दृढ़ निश्चय सुनाते हुए कहा कि वह पाबूजी से ही विवाह करेगी, अन्यथा कुंवारी ही रहेगी। इसलिये महाराज को समझा बुझाकर तुम स्वर्ण–नारियल कोलूगढ़ ले जाओ। पण्डित राजकुमारी के मन की बात समझ कर कोलूगढ़ में नारियल लेकर पहुँचा। उसने पाबूजी को नारियल व मोहरें भेंट कर तिलक निकाल कर बीड़ा मुँह में दिया। पूर्णिमा की तिथि का विवाह तय कर जोशी उपहार लेकर लौट आया। पाबूजी ने पीले चावल देकर देवी देवताओं और सगे सम्बन्धियों को विवाह के लिये आमन्त्रित किया। उन्होंने अपनी बहिन को भी बुलवा लिया किन्तु बहनोई जायल खीचीं को नहीं बुलाया। चांदा, डामा के समझाने पर भी पाबूजी नही माने और स्पष्ट कह दिया कि जिंदराज कालमी घोड़ी पर चढ़कर तोरण मारना चाहते थे अतः उन्होने चांदा को देवल चारणों के पास घोड़ी लाने हेतु भेजा। किन्तु उसने गोरक्ष घोड़ी को देने से इनकार कर दिया। पाबूजी की ओर से वचन दिया गया। पाबूजी दूल्हे बने घोड़ी पर सवार थे। सभी को नेग दिया गया किन्तु देवळ चारणी ने नेग नही लिया। वह खड़ी खड़ी आँसू बहा रही थी। तब स्वयं पाबूजी ने उससे रोने का कारण पूछा। इस पर देवल चारणी ने कहा कि हे पाबूजी, आप सोढ़ों के उमरकोट जा रहे हो, सभी सरदार आपके साथ जा रहे हैं। मेरी गायों की रक्षा का क्या प्रबन्ध किया है? आप चांदा डामा को ही यह कार्य सौप दें। पाबूजी देवल चारणी को विश्वास दिलाया कि बड़े भाई बूड़ोजी गढ़ में ही रहेगें। फिर भी यदि कोई संकट आये तो उमरकोट सन्देश भेज देना। मैं दौड़कर चला जाऊँगा। यदि भोजन करता होऊँगा तो चुल्लू तुम्हारे घर आकर करूंगा। ये राठौड़ के वचन हैं। तब चारणी ने नेग लेकर विदा किया और उमरकोट की ओर चल पड़ी। मार्ग में अपशकुन हुए। काले नाग ने रास्ता काटा किन्तु पाबूजी नाग को दाहिनी ओर कर चल पड़े। कुछ दूर बढने पर एक सिंहनी ने मार्ग रोका। शकुन जानकारी ने इसे अपशकुन मानते हुए पाबूजी से बारात वापस मोड़ लेने के लिये कहा। उन्होने विवाह के लिये पाबूजी की तलवार भेज देने को कहा. किन्तु पाबूजी ने उसे कायरता समझा। वे स्वयं पाणिग्रहण कर विवाह करना चाहते थे। तब डामा ने अपने साहस से सिंहनी को मार भगाया। बारात उमरकोट पहुँची। सोढ़े अगवानी करने आये। बारात को उचित स्थान पर ठहराया गया। केसरिया तम्बू में पाबूजी का डेरा था। डामा गढ़ में हरी डाली लेकर गया था। कलेवा में कढ़ाई को कढाई खाली कर दी। सोढों में खलबली मच गई। डामा ने जब यह कहा कि मै तो कम खाने वाला हूँ। बारात मे तो कई ऐसे है जो मुझसे भी अधिक खाते है। जिस कन्या के विवाह के शुरू में ही सोढों की हेठी होने लगी है ऐसी कन्या का वध का देना उचित है। इस तरह सोढ़े राठौड़ों के साथ सम्बन्ध करके पश्चाताप कर रहे थे। उन्होंने पाबूजी के सामने अश्वदौड का प्रस्ताव रखा। पाबूजी अपनी थकी हुई घोडी को दौडाना नही चाहते थे किन्तु सोढ़ों की चुनौती पर उन्होने अश्वदौड़ में घोडी को दौड़ाया। पाबूजी की घोड़ी ने सभी घोड़ों को हरा दिया। सोढ़ों ने पाबूजी को हेठा दिखाने के लिये गगनचुम्बी गढ़ के कंगूरे पर तोरण बांधा। पाबूजी को केसर घोड़ी ने अपने स्वामी को कहा कि हे पाबू यदि मेरी पीठ पर थाप मारे तो मै चांद सूरज पर स्थित तोरण को भी वांद दूँ। नृत्य करते करते केसर ने उछाल भरी। गढ़ के कंगूरे पर पाँव जमा दिये। पाबूजी ने तोरण वांदा। घोड़ी ने वापस आते हुए कुछ कंगूरे भी गिरा दिये।

पाबूजी की आरती उतारी गई। जोशी ने बेदी रचाई। नाई ने हीरे की चौकी बिछाई, पाबूजी लग्नगण्डप गे बैठे। सोढ़ी सहेलियों सहित मण्डप में बैठ गई।कन्यादान हुआ। पण्डित ने पाणिग्रहण कराया। कन्यादान के समय सोढ़ों ने खूब धन दिया। पिता (राजा) ने नौ मन स्वर्ण माँ ने सवा मन सोना दान में दिया। भाई भावज ने अन्न धन का दान दिया। काका ताऊ ने मोहरें दान में दी। भांवरे होने लगी। पहले फेरे में पाबू व सोढ़ी का मन एक हो गया। दूसरे फेरे में दोनों के प्राण एक हो गये। इतने में केसर घोड़ी हिनहिनाई। पाबूजी ने डामा को भेजा। डामा ने कहा '' हे घोड़ी, पाबूजी के दो फेरे बाकी है तुम विघ्न मत डालो। तब घोड़ी ने कहा कि" मैने जिन गायों का दूध पिया है" उन्ही गायों को जायल खीची घेरकर ले जा रहा है। "देवल चारणी ने सोढ़ों के दरवाजे पर आकर करूण पुकार मचाई है। जब डामा से पाबूजी को सारी बात मालूम हुई तो उन्होनें गठ बन्धन छोड़ दिया और उठकर चलने लगे। सोढ़ी ने पूछा "मैंने क्या अपराध किया है जो मुझे आधी कंवारी छोड़कर जा रहे हो।" पाबूजी ने कहा "तुम्हारा या

तुम्हारे घरवालों का कोई दोष नही है। मै खुद ही दोषी हूँ। मै मस्तक बेचकर आया हूँ। देवल चारणी के प्रति वचनबद्ध हूँ। इसलिये उसकी गायों की रक्षार्थ जा रहा हूँ।' तब सोढ़ी ने कहा "पिताजी की सेना गायों को छुड़ा कर ले आयेगी। आप विवाहविधि पूर्ण कर लीजिये।" इस पर पाबूजी ने कहा "वचन तो मैने दिये हैं। यदि मैं नही गया तो राठोड़ों पर कलंक लग जायेगा।" तब सोढ़ी ने उनसे कोई हाथ की निशानी मांगी। पाबूजी ने कहा "जीवित रहा तो मै स्वयं आऊंगा, अन्यथा दूत मेरे चिन्ह ले ही आयेगा।" यह कहकर पाबूजी चले गये। उनके मित्र चांदा और डामा भी गये।जायल खीचीं व पाबूजी में भयंकर युद्ध हुआ। खीचीं पाबू के आगे टिक नही सका। वह भागकर अपने मामा के पास भटनेर गया। मामा ने उसे पहले तो इस कुकृत्य के लिये धिक्कारा, परन्तु अपने भानजे द्वारा भड़काने पर वह क्रोध में आ गया। उसने डामा का मारने के लिये बीड़ा डलवाया। ज्ञानसिंह भाटी ने बीड़ा उठाया। वह मारने आ गया। पाबूजी ने उसे वापस भेजना चाहा किन्तु डामा ललकार सुन कर आ गया। उसने ज्ञानसिंह भाटी को मार डाला। भाटियों ने छल करके अचानक पाबूजी, चांदा तथा डामा को घेर लिया। परिस्थितिवश पाबूजी ने डामा चांदा को हटने की सलाह दी। किन्तु दोनों वीरों ने इन्कार कर दिया। तब पाबूजी केसर घोड़ी पर सवार हो युद्ध करने लगे। उनकी तलवार विद्युत की गति सी शत्रुसेना पर चल रही थी। घमासान युद्ध हुआ। डामा चांदा सहित पाबूजी वीरगति को प्राप्त हुए। बूड़ोजी भी इस युद्ध में मारे गये। उनकी गर्भवती पत्नी ने उदर चीरकर अपने शिशु को निकाला और पति के साथ सती हो गई। पाबूजी का दूत चिन्ह लेकर सोढ़ी के पास पहुँचा। सोढ़ी भी पाबूजी के साथ सती हो गई।बूड़ोजी के पुत्र का पालन ननिहाल में हुआ। इसलिये वह नानड़िया कहलाया। समय आने पर नानड़िया ने भाटी का सिर काटकर अपने पिता व काका का प्रतिशोध लिया।

तेजाजी की लोकगाथा– गोरक्षक तेजाजी का जन्म संवत 1840 के आस पास नागौर जिले के खरनाल ग्राम में जाट किसान के घर हुआ था। इनके पिता बखता, माता, लक्ष्मा, बहिन राधा तथा पत्नी का सुन्दर था।

बचपन से ही तेजाजी कठोर परिश्रमी, धुन के धनी, उदार एवं दयालु थे। इनका विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था। किन्तु गौना नही हुआ था। इसलिये इनकी पत्नी पीहर में ही रहती थी। बाल्यकाल में ही विवाह हो जाने के कारण तेजाजी को विवाह की बात याद नहीं रही। तेजाजी घर के छोटे मोटे कार्य करते थे। इनके पिता का देहान्त जल्दी हो गया। एक दिन माँ ने तेजाजी को बुलाकर कहा कि "अब तुम्हें भी खेत मे जाना चाहिये तथा खेती के कार्य में भाईयों की मदद करनी चाहिये।" तेजाजी ने दूसरे दिन ही हल जोता और खेत की भूमि को जोतना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन तेजाजी खेत में हल चला रहे थे। बहुत देर हो गई, लेकिन भाभी खाना लेकर नही आई। उन्हें बहुत तेज भूख लग रही थी। जब भाभी खाना लेकर आई तो तेजाजी से रहा नही गया। उन्होनें भाभी को कहा कि "तुमने इतनी देर क्यों लगा दी? पासवाले खेतों में काम करने वाले लोग तो कबके खाना खाकर विश्राम करने हेतु लेट गये।" प्रत्युत्तर में भाभी ने ताना मारा कि "मैं कौनसी पलंग पर लेटी रही? अकेले घर का सारा काम करके भी तुम्हें खाना देने आती हूँ और तुम्हारी पत्नी पीहर में मजे से रहती है। अपनी पत्नी को ही क्यों नही ले आते?" तेजाजी को भाभी की बात चुभ गई। उन्होंने खाना भी नही खाया और काम छोड़कर सीधे घर आये। माँ से ससुराल का पता पूछा और अपनी लीलड़ी घोड़ी पर सवार हो ससुराल के गाँव पनेर की ओर रवाना हुए। मार्ग में अपशकुन हुए पर तेजाजी ने उनकी परवाह नहीं की। भाभी के कटु वचन के कंकड़ ने उनके मन को तरंगायित कर दिया था। वे निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे थे। पनेर पहुँचकर एक पनघट के पास रूके और पनिहारिनों से कहा कि ''रेशम की डोर से खींच खींचकर मीठा जल पिलाओ।'' पनिहारिनों ने नवागन्तुक से जात–बिरादरी पूछी। तब तेजा ने अपना पूर्ण परिचय दिया और कहा कि पनेर में पटेल के यहाँ उसकी ससुराल है। तब उनमे से ऐ युवती ने जो तेजाजी की सलहज थी : तेजाजी को जल पिलाया। घोड़ी को भी जल पिलाया। तेजाजी शालीनता से हंसी–ठिठोली करते हुए पुनः घोड़ी पर सवार हो गये। ससुराल के पास आकर रूके। घोड़ी से उतर कर आवाज लगाई ''दरवाजा खोलो, पाहुने आये है।'' घोड़ी की टापों और तेजाजी की बुलन्द आवाज रो गायें बिदक गई उनकी सारा उरा राागय गायें दुह रही थी। इस तरह गाय के बिदक जाने से दूध का बर्तन गिर गया। अनजाने में सांस के मुँह से निकल गया –''नाग रो काटियोड़ो कुण है जिको म्हारी गायां भिड़काया दी।'' तेजाजी ऐसे कटु वचन सुनकर वापस लौट गये। इधर पनघट से तेजाजी की सलहज घर आई। उसने अपनी ननद को बताया कि 'तुम्हारे पति तेजाजी आये है।' तब सभी को पता चला कि अभी अभी जो पाहुने आये थे, वे उनके दामाद थे। सभी तेजाजी को मनाने गये किन्तु स्वाभिमानी तेजाजी नही माने। तेजाजी की पत्नी सुन्दर ने हीरा–गूजरी को भेजकर तेजाजी को रात ठहरने के लिये आग्रह किया। तेजाजी ससुराल नही रहना चाहते थे, अतः वे हीरा के घर पर ही रूके।

रात में धाड़ायती आये और हीरा गूजरी की गायों को घेरकर ले गये। हीरा–गूजरी ने तेजाजी को अपनी व्यथा सुनाई। तेजाजी उसी वक्त लीलड़ी घोड़ी पर सवार हो लूटेरों के पीछे चल दिये और उनका रास्ता रोक युद्ध

किया। तेजाजी ने अकेले सबको परास्त कर दिया और गायें वापस ले आये। इसी बीच मीणा ने एक बछड़े को रोक लिया। तेजाजी को इस बात का ध्यान नहीं रहा। तेजाजी ने हीरा गूजरी को सारी गाये सौप दी। उनमे 'कैरड़े' (बछड़े) को न देख हीरा दुखी हो गई। तेजाजी दुबारा कानै कैरड़े को लाने के लिये गये। मार्ग में आम के जलते ढेर में एक विपन्न सांप को देख दयालू तेजाजी ने उसे भाले की नोंक से बाहर निकाला किन्तु सांप प्रसन्न होने की बजाय क्रोधित होकर फुफकारने लगा। उसने तेजा को कहा कि "तुने मुझे बचाकर अपराध किया है। मै तो अपनी नागिन के साथ जल जाना चाहता था। अतः अब मै तुझे डसूंगा। "तेजाजी ने अनजाने में जो अपराध किया उसका दण्ड से भुगतने के लिये वे तैयार थे। उन्होने सांप से कहा कि "मै हीरा गूजरी का बछड़ा छुड़ाकर ले आऊँ और उसे सौपकर वचन पूरा कर लूँ। तब डस लेना। मै स्वयं तुम्हारे पास चला आउंगा। ये मेरा वचन है।" सांप ने तेजाजी को जाने दिया।

तेजाजी मीणों को पकड़ने चल दिये। थोड़ी ही दूर पर जाकर उन्होने मीणों का रास्ता रोक लिया। इस बार भी तेजा और मीणों में घमासान युद्ध हुआ। तेजाजी बुरी तरह धायल हो गये। मीणों को परास्त कर बछड़ा ले आये और गूजरी को सौंप कर चल दिये। गूजरी ने वीर पाहुने को रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वचनबद्ध तेजाजी एक पल भी नही रूके। वे सांप के पास चले आये। क्षत-विक्षत तन को देखकर सांप ने कहा कि "मैं घावयुक्त अंगो को नही डसता। तुम्हारा शरीर कहीं से भी घाव विहीन नही हैं।" तब तेजाजी ने जीभ की ओर संकेत करके कहा कि यह घाव विहीन है। तुम इसे डस लो। सांप ने तेजाजी की जीभ को डस लिया। तेजोमय तेजाजी का शरीर नीला पड़ गया। वे दिवंगत हो गये। पनेर के सभी निवासी रोने लगे। सुन्दरी करूण क्रन्दन करने लगी। पनेर में ही तेजाजी की चिता बनाई गई। सुन्दरी तेजाजी के सिर को गोद मे लेकर चिता पर बैठगई। किन्तु पनेर मे सुन्दरी के ससुराल का कोईगोत्री नही था। अतः चिता कौन प्रज्वलित करे ? सती सुन्दरी ने सूर्य से प्रार्थना की। तब स्वयं सूर्य ने उष्ण किरणों से चिता प्रज्वलित की। सती सुन्दरी पति तेजाजी के साथ बैकुण्ठ लोक चली गई।

बगड़ावत– एक समय की बात है। अजमेंर में बीसलदेव चौहान का राज्य था। राज्य में सुख शान्ति थी किन्तु एक बार एक बाघ कहीं से अजमेंर की पहाड़ियो में आ निकला। वह बड़ा खूंखार एवं नरभक्षी था। उसके कारण प्रजा बहुत संत्रस्त थी। वह नित्य पशुओं और मनुष्यों को मारकर खा जाता था। एक दिन हरिसिंह नामक एक युवक ने अपने बाहुबल से इस नरभक्षी बाघ का शिकार किया। जब वह बाघ का कटा सिर लेकर आ रहा था तो रास्ते मे घाट पर बाल विधवा लीला पर उसकी दृष्टि पड़ी । दृष्टिपात से ही उसे गर्भ रह गया। कुछ महीने पश्चात लीला की उदरवृद्वि की चर्चा होने लगी। बात राजा के कानों तक गई। राजा ने लीला से पूछा। तब लीला ने सिंहधारी पुरूष दर्शन की बात कही। राजा ने हरिसिंह को बुलाकर लीला को उसके सुपुर्द कर दिया। नौ माह पूर्ण होने पर लीला ने एक विचित्र पुत्र को जन्म दिया। उसका सिर बाघ जैसा तथा घड़ मनुष्य जैसी थी। हरिसिंह ने ऐसे पुत्र को अशुभ मानते हुए जंगल में छोड़ दिया। वह बालक सिंहनी का स्तनपान करने लगा। एक दिन राजा ने इस विचित्र बालक को देखा तो अपने साथ ले आया। उसने अपने विश्वासपात्र सेवक हरिसिंह को इसके पालनपोषण की जिम्मेदारी सोंप दी। राजा ने यह भी कहा कि "कि बालक के प्रतिदिन तीन अपराध क्षमा कर दूँगा।" विधाता की यही इच्छा समझकर हरिसिंह ने पालन-पोषण करना स्वीकार कर लिया। उसका नाम बाघला रखा गया। वह बहुत शरारती था।

बाघला जब युवा हो गया तो लोग उसे देखकर भयभीत हो जाते थे। एक दिन सावन के महीने में बहुत सी लड़कियां पेड़ पर टंगे झूले को उतारने का असफल प्रयत्न कर रही थी। तभी उधर से बाघला निकला। लड़कियो ने बाघला से अनुनय-विनय की। बाघला ने एक शर्त पर झूला उतारने की बात कही। बाघला ने कहा "यदि तुम सभी मेरे चारो ओर सात बार परिक्रमा लगाओ तो मैं झूला उतार दूंगा।" लड़कियों ने शर्त के अनुसार बाघला के परिक्रमा लगाई। संयोगवश एक लंगड़ा ब्राहमण वहाँ मौजूद था। उसने वेदमंत्र पढ़ दिये। फिर बाघला ने झूला उतार दिया। लडकियाँ झुला झुल कर घर चली गई। खेल ही खेल में बाघला से उनका विवाह हो गया। वे नादान लडकियाँ इस बात से अनभिज्ञ रही। जब वे बड़ी हो गई तो उनके माता पिता उनके लग्न के लिये मुहूर्त निकलवाने के लिए अनेक जगह गये किन्तु मुहूर्त ही नही निकला। लडकियों के माता पिता ने राजा को अपनी चिन्ता बताई। राजा ने कुछ सोचकर लडकियों को एक कमरे में बन्द कर दिया। भीतर लडकियाँ बाघला के चारों ओर परिक्रमा लगाने वाली घटना की चर्चा करने लगी। राजा ने यह सुनकर बाघला को बुलाया और उसे उन सभी तेरह लडकियों को ले जाने का आदेश दिया। बाघला ने 12 कन्याओं से विधिवत विवाह कर लिया। एक कन्या उस लंगड़े ब्राह्मण को दे दी गई जिसने उपवन में वेदमन्त्रों का उच्चारण किया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन बारह स्त्रियों से बाघला के 24 पुत्र उत्पन्न हुए। तेजा, भोजो, नेवों, बाहो, आलो, पल्लो, कान्तड़, गूदड़, हालू, टीको, हमीर, हिम्मत, तिलक, होलो, दोलो, रूपों, जोधू, जयरूप, सुजान, सांगड़, धनो राजू, खेतोड़ नरसिंह। ये बाघला के पुत्र ही बगड़ावत कहलाये। राजा ने इनको कई गाँव धन, दौलत, और पशु आदि दिये। इनके गाँव गोठ कहलाये थे। ये पशु चराते एवं मस्त जीवन तीते थे। इनका विवाह गूजर कन्याओं के साथ हुआ। भोज प्रतिदिन गाये चराने जाता था। गोचाराण के समय भोज देखते है कि एक सुनहरी सींग वाली गाय आकर भोज की गायों में सम्मिलित हो जाती है और सन्ध्या को जंगलों में अदृश्य हो जाती है। भोज ने एक दिन गाय का पीछा किय गया एक योगी के आश्रम में जाकर अपने ठाण हो गई। भोज ने योगी से चराई की मजदूरी माँगी। तब योगी ने भोज को कहा कि "मै स्नान करके वापस आ रहा हूँ। तब तक तू यही रहना और किसी वस्तु को मत छूना। "योगी के चले जाने के बाद भोज ने वहाँ पड़ा चाबियों का गुच्छा उठाया और जिज्ञासावश ओबरे खोले। पहले ओबरे में जयमंगला हाथी बंधा हुआ था। दूसरे में बूमली घोड़ी थी। तीसरे में बिजली खड्ग तथा चौथे में नरमुंड हँस रहे थे। धड़ अलग–अलग लड़ रहे थे। भोज ने नरमुण्डों से हँसने का कारण पूछा।उन्होने भोज को कहा कि तुम कुछ समय बाद हमारे समान बन जाओगे। फिर शीघ्र ही उसने ओबरे बन्द कर दिये। इतने में योगी वापस आ गया। उसने भोज को उबलते तेल के कड़ाह से चारों और तीन चक्कर लगाने को कहा। भोज योगी की मंशा समझ गया। उसने अपने बुद्धि चातुर्य से योगी को कहा कि "पहले आप मुझे परिक्रमा लगाकर बताईये कि किस तरह परिक्रमा लगानी है? "ज्योंहि योगी भोज की परीक्षा लेकर चले। त्योंहि योगी का शरीर स्वर्णमय हो गया। भोज ने देखा कि उसके सामने साक्षात खड़े हैं। योगी बनकर शिव ने ही परीक्षा ली थी। भोज के पराक्रम एवं बुद्धिचातुर्य से प्रसन्न शिव ने 'बारह बरस की माया व बारह बरस की काया' का वरदान दिया। जयमंगला हाथी, बूमली घोड़ी, बिजली खड्ग भी प्रदान किये। भोज सभी वस्तुएँ लेकर घर लौट आया।

अब बगड़ावत धनी बने गये। उन्होने मौज शौक में धन खर्च की योजना बनायी। अपने लिये सुन्दर अरबी घोड़े खरीदे। कीमती वस्त्र एवं आभूषण खरीदे। खाना पीना रागरंग में मस्त रहना तथा स्वर्ण मोहरों को लुटाना उनकी दिनचर्या थी। स्वर्ण भूषणों से सज्जित, अरबों अश्वों पर सवार ये सभी बगड़ावत भ्रमण करते हुए राजा की राण में पहुँचे। फिर राजा से नवलचा बाग के माली को 100 मोहरें देकर दरवाजे खोल देने के लिये कहा। मक्कार माली ने मोहरें ले ली किन्तु दरवाजा नही खोला। क्रोधित बगड़ावतों ने दरवाजे तोड़ दिये। उन्होनें बाग को तहस नहस कर दिया। यह सुनकर राणा ने अपने भाई नीमजी को बगड़ावतों से युद्ध करने भेजा। मार्ग में नीमजी ने एक सुअर को मारने हेतु तीर छोडा किन्तु लक्ष्य चुक गया। तभी नेवाजी ने बाण चलाया। सुअर मारा गया । नेवाजी की वीरता देख नीमजी ने मित्रता करना उचित समझा। उन्होनें पाग बदलकर नीमजी को भाई बना लिया। राणा भी इस मित्रता से प्रसन्न हुए और बगड़ावतों का खूब सत्कार किया। राणा के सद्‌व्यवहार और भाईचारे से प्रभावित बगड़ावतों ने भी राणा का सत्कार करने का निश्चय किया। नेवाजी को मदिराप्रबन्ध का कार्य सौपा गया। नेवाजी पातू कलाली के घर गये। कॉच के आंगन मे अश्व दौड़ाने से ऑगन टूट गया। विवाद बढ़ गया। औरतों पर हाथ न उठाने वाले नेवाजी वहाँ से चुपचाप खिसक लिये। सभी बगड़ावत पातू कलाली के घर गये। कलाली ने शर्त रखी कि "यदि बूमली घोडी बन्धक रख दी जाये तो शराब दे दूँगी।" भोज इस पर अपना गले का हार उतार कर दे दिया। पातू कलाली ने जौहरियों से मूल्यांकन करवाया। अूमल्य हार पाकर पातू समझ गई कि ये साधारण नही है। उसने कहा कि "यदि तूम सारी शराब पी जाओं तो वह मूल्य नही लेगी। किन्तु यदि सारी शराब न पी सके तो वह सर्वस्व ले लेगी। " भोज ने शर्त मान ली। सोखा पीर का स्मरण कर समस्त मदिरा पी गये। पातू कलाली हार गई ओर बगड़ावतों को उसने भाई बना लिया।

अब राणा के स्वागत सत्कार की तैयारियँ होने लगी। पातू मदिरा ले आयी । राजा अपने सरदारों के साथ बगड़ावतों की महफिल मे आये। सबने छक्कर शराब पी। मदिरा पानी की तरह धरती पर बहाई गई। धरती से रिसती मदिरा के छीटे जब शेषनाग के फन पर पड़े तो वह बगड़ावतों के उपद्रव से रूष्ट हो कर भगवान के पास गया। विष्णु ने शिव को बगड़ावतो की परीक्षा लेने हेतु भेजा। शिव घिनौने कोढ़ी का रूप धारण कर आये। नेवाजी ने उसको पहचान लिया। उन्होने शीघ्र ही भाइयों सहित मिलकर कोढ़ी (शिव) को गंगाजल से नहलाया तथा रक्त पीब मिश्रित जल को चरणामृत के समान पी गये। शिव बहुत प्रसन्न हुए। नेवाजी ने उनको गोठ चलने का आग्रह किया, किन्तु शिव अन्तर्धान हो गये।

अब विष्णु ने भोज की स्त्री को छलने की सोची। भोज की स्त्री जब दान करने के पश्चात नहाने चली गई तो विष्णु भिक्षुक बनकर उसके दरवाजे भिक्षा मांगने आये। दासियों ने अन्न धन देना चाहा। भिक्षुक (विष्णु) ने कहा कि "यदि तुम्हारी रानी स्वयं आकर दान नही देंगी तो मैं शाप देकर शीघ्र ही चला जाऊंगा। "दासियों ने स्नान करती

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

रानी को सारी बात सुनाई तो भोज की पत्नी साढूजी नग्नावस्था में ही भिक्षा लेकर दौड़ी आयी। भिक्षुक ने मुंह फेर लिया। तब रानी ने कहा "बेटी से क्या लज्जा?" भगवान ने उसकी सरलता, पवित्रता से प्रसन्न हो धर्म का स्मरण करने के लिये कहा– "धर्मस्मरण से रानी के केश इतने लम्बे और घने हो गये कि सम्पूर्ण तन ढक गया।" विष्णु ने रानी को वचन मांगने के लिये कहा। तब रानी ने कहा "मै आपको पुत्र रूप में पाना चाहती हूँ।" विष्णु ने कहा "मैं तुम्हारे गर्भ से तो जन्म नही लूँगा लेकिन तुम्हारे आँचल में ही आऊँगा तथा मैं देवनारायण के नाम से बगड़ावतों का वैर शोधन करूंगा। यह कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गये।

वैर शोधन में शिव और विष्णु को असमर्थ देखकर शेषनाग चामुण्डा के पास गये। चामुण्डा ने जैमती के रूप में ईडरकोट के राजा के यहाँ जन्म लिया। उसकी दासी ने राजा के खजांची की पुत्री हीरा के रूप में जन्म लिया। दोनों बड़ी हो गई। राजा ने ब्राह्मण और जैमती के लिये योग्य वर की तलाश कर उसे स्वर्ण नारियल व मोहरें दे सम्बन्ध तय करने के लिये भेजां। जैमती ने ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि "तुम यह टीका उसी व्यक्ति को देना जिसके पास बूमली घोड़ी व जयमंगला हाथी हो। "ब्राह्मण भटकते भटकते बगड़ावतों की 'गोठ' में पहुँचा। उसने भोज को टीका दिया किन्तु भोज ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि 'सम्बन्ध बराबर वालों में ही होना चाहिये। राजकुमारी जैमती ने का टीका राणा को देना उचित रहेगा।' यही सोचकर टीका लेकर भोज राणा को दे दिया। राणा के विवाह की तैयारी की सारी जिम्मेदारी बगड़ावतों ने ले ली। बारात ने प्रस्थान किया। आगे–आगे बगड़ावत अश्वों पर सवार होकर चल रहे थे। 140 ऊँटों पर लदे धन को मार्ग में न्यौछावर करते हुए बगड़ावतों की सवारी की सभी प्रशंसा कर रहे थे। बूमली घोड़ी पर सुसज्जित भोज ही दूल्हा लग रहा था। बारात ईडरकोट पहुँची। तोरण मारने का समय आया हाथी पर सवार वृद्ध राणा जैसे ही तोरण मारने आगे बढ़े तो चामुण्डा ने सिंहनी का रूप धारण कर हाथी को भयभीत कर दिया। हाथी पीछे भागने लगा। राणा गिर पड़े। बगड़ावतों ने राणा को तोरण मारने में असफल पाया। वे इसे अपना अपमान समझ बैठे। अपनी प्रतिष्ठा रखने हेतु भोज ने तोरण मारने का निश्चय किया। संकेत पाकर घोड़ी उछली और भोज ने कंगूरे पर लटकते हुए तोरण को मार दिया। राणा व उनके सरदार इस कृत्य से भड़क गये किन्तु बीच बचाव से मामला शान्त हो गया। बगड़ावतों को बाग में व राणा की बारात को नदी तट पर ठहराया गया। जैमती ने भोज की तलवार मँगवाकर उसके साथ फेरे ले लिये और लोक दिखावटी राणा से विवाह कर लिया। बारात विदा हुई। मार्ग में राणा ने सभी राजाओं और सरदारों को भोजन करवा कर विदा किया। रानी जैमती ने कहा "रथ को बगड़ावतों के पीछे मोड़ दो।" रथवान आनाकानी करने लगा तब जैमती ने सिंहनी रूप धारण कर उसे भयभीत कर दिया। हलचल मचने पर बगडावत जैमती के रथ की तरफ आये। जैमती ने हीरा के माध्यम से तेजा को कहा कि वह साथ चलना चाहती है। तेजा ने इन्कार कर दिया। तभी नेवाजी आ गये। नेवाजी ने परिस्थिति को समझते हुए कहा कि "अभी आप राणा के साथ चली जाओ। छः माह पश्चात हम आपको लेने आ जायेंगें। सूर्य चन्द्र साक्षी है। हम अपना वचन पूरा करेंगें। आश्वस्त होकर जैमती राणा के साथ चली गयी। नगर में प्रवेश करने से पहले उसने राणा से कहा कि "अनग से नवखण्डा महल तैयार करवाओ। तभी मैं नगर में प्रवेश करूँगी।" यह कहकर उसने बाग में डेरा लगवा दिया। राजा ने तीन माह में नवखण्डा महल तैयार करवा दिया। रानी ने आधी रात को एक ऐसी हुंकार भरी कि महल ढह गया। राजा ने पु:न महल बनवाया। तीन महीने में जब महल दुबारा बन गया तो जैमली उस महल के सबसे ऊपर वाले खण्ड में रहने लगी। राणा ने हीरा को सेज तैयार करने के लिये कहा। क्रोधित देवी ने राणा को कुत्ता व हीरा को बिल्ली बनाकर रात भर दोनों की लड़ाई करवाई।प्रातः काल पुनः मनुष्य बना दिया। थके हारे राणा की उदासी देख कर भाई नीमजी ने हालचाल पूछा। तब राणा ने कहा कि रानी तो सिंहनी है। नीमजी हैरत में पड़ गये। वे कालूमीर को लेकर महल में गये। कालूमीर को जैमती ने सिंहनी बनकर डरा दिया। जब नीमजी स्वयं महल में गये तो जैमती ने देवर का स्वागत किया और कहा कि 'राणा तो व्यर्थ ही डर गये। यहाँ कोई सिंहनी नही है। नीमजी को विश्वास हो गया'। उन्होंने भाई को समझाया कि रानी तो सूर्य की तरह पवित्र है।

जब बारह माह व्यतीत हो जाने पर भी बगड़ावत नही आये तो रानी जैमती ने हीरा को स्वर्ण चिड़ी बनाकर उसे भोजा के पास सन्देश देने भेजा। विचार विमर्श के पश्चात बगड़ावत जैमती को लेने राणा की राण में आ पहुँचे और एक उपवन ठहरे। बगड़ावतों को रानी ने सन्देश दिया कि 'मैं उपवन में आऊंगी वही मेरा इन्तजार करना।' रानी ने हीरा के माध्यम से राणा को सन्देश भिजवाया कि "वह बीमार है। यदि राणा बारह मन का सुअर और बारह मन के बाकळे देवी को चढ़ाये तो मुझे स्वास्थ्य लाभ होगा।" रागा तुरन्त सुअर का शिकार करने चले गये। रानी ने अपनी पसीने से एक सुअर बनाकर जंगल में छोड़ दिया। वह राणा को दौड़ाते हुए बहुत दूर ले गया। उधर रानी ने जादू की सीढी बनाई तथा रानी व हीरा नीचे उतर आई। अंधकार को चीरती हुई तथा सबकी नजर बचाती हुई दोनों

उपवन पहुँची। बगड़ावतों के साथ गोठ जाने से पहले रानी ने नेवाजी से स्वर्णमंजूषा मँगवाई। फिर सभी वहाँ से रवाना हो गये। मार्ग में आमासर की बावड़ी आई। रानी ने अपनी पायल उसमें पटक दी तथा बगड़ावतों से कहा कि "इसे पानी में तैरादे, तभी मैं साथ चलूँगी।" नेवाजी ने उसे पानी में तैरा दिया। फिर रानी सहित बगड़ावत गोठ पहुँचे। रानी जैमती व भोज की आरती उतारी गई। भव्य स्वागत किया गया।

उधर राणा के वापस रण से लौटने पर भाई नीमजी ने बगड़ावतों द्वारा रानी के अपहरण की सूचना दी। दुखी राणा ने बगड़ावत को पत्र लिखा। सांकेतिक ढंग से रानी जैमती को वापस भेजने की बात कही किन्तु बगड़ावत नही माने। राणा ने सेना सजाई तथा युद्ध के लिये प्रस्थान किया। राठौड़ों ने सरोवर पर डेरा डाल दिया। एक बार पुनः संधि का प्रस्ताव भेजा किन्तु बगड़ावत तैयार नही हुए। राणा ने बाघजी पर आक्रमण किया। बाघजी लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए। 24 बगड़ावतों ने एक साथ आक्रमण करने का निश्चय किया। यह देख रानी जैमती (चामुण्डा) ने सोचा कि "यदि ये सभी एक साथ होकर मुकाबला करेंगे तो काल भी इनको नही हरा सकेगा।" अतः उसने अपनी माया से एक–एक को युद्ध करने के लिये भेजा। सबसे छोटा भाई आला, भोज का पुत्र जसा, और महरवान युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये। फिर नेवाजी युद्धभूमि में उतरे। गुरू रूपनाथ के आशीर्वाद तथा उनके द्वारा अमृत जल के छिड़काव व पवित्र भस्म लगाने से नेवाजी के घाव शीघ्र ही भर जाते और वे दूसरे दिन फिर युद्ध करने रणभूमि में आ जाते। इस तरह छः महीने तक नेवाजी ने युद्ध किया। तब एक दिन रानी (देवी चामुण्डा) ने गुरू की धूणी से वे वस्तुएं गायब कर दीं। इतना ही नही, नेवाजी की पगड़ी में रखी संजीवनी बूँटी को भी चील बनकर झपट लिया। नेवाजी की पत्नी ने रक्षा हेतु नेवाजी के जीव को पायल में रखकर पायल घोड़े के पैर में बांध दी। जैमती रानी ने जब रहस्य जान लिया तो उसने राणा की सेना के साण और भाण नामर दोनों भाईयों को यह राज बता दिया। युद्धभूमि में दोनों ने नेवाजी पर व्यंग्य किया कि "पायल के बल पर लड़ने वाले वीर नहीं होते।" इस पर नेवाजी ने पायल उतार फेंकी और घमासान युद्ध किया। अपनी तलवार से नेवाजी ने दोनों भाईयों को मार डाला। तब देवी ने अपने चक्र से नेवाजी का सिर काट डाला। जुझारू वीर के सिर की जगह कमल खिल गया। वक्ष पर आंखें आ गई और धड़ छः माह तक लड़ता रहा। यह देख देवी ने उन पर नील के छींटे डाल दिये जिससे धड़ शान्त हो गया। नेतु ने उदर चीर कर शिशु को बाहर निकाला तथा गुरू रूपनाथ को बच्चा सौपकर स्वयं नेवाजी के पीछे सती हो गई। सती नेतु ने रानी को कोढ़िन होने का शाप दे दिया तथा कमल से देवनारायण के अवतार की घोषणा की। नेवाजी के पश्चात भोज युद्ध में गये। जैमती भी भोज के साथ युद्ध में गई। उसने भोज से कहा कि 'आप पीछे मुड़कर मत देखना। यदि ऐसा किया तो मै आपका मस्तक काट दूँगी। भोज ने राणा पर ज्यों ही तलवार उठाई तो जैमती ने कलाई आगे कर दी जिससे स्वर्ण चूड़ियाँ टूट गई। भोज ने शर्त भूलकर पीछे देखा तो रानी ने अपने चक्र से उनका मस्तक काट डाला। वह अपने वास्तविक रूप में मुंडमाल धारण कर वट वृक्ष पर जा बैठी। राणा ने साक्षात देवी को देखा तो चकित रह गया। बगड़ावतों में भगदड़ मच गई। तेजा भागने लगा। तभी पीछे से किसी ने बाण मार दिया। राणा विजयी हुआ।

भोज की पत्नी साढू अपने पति के साथ सती होना चाहती थी किन्तु देवी ने उसे यह कहकर रोका कि देवनारायण रुप में भगवान स्वयं अवतार लेंगे और बगड़ावतों का वैर शोधन करेंगे। यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई। नियत समय पर भगवान विष्णु कमल में से भ्रमर रूप धारण कर प्रकट हुए। फिर बालक बन साढू की गोद में खेलने लगे। भगवान के अवतरित होते ही गढ़ के कंगूरे झुक गये। अटारी हिलने लगी। पलंग डोलने लगा। राणा ने ब्राह्मणों से इसका कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि बगड़ावतों का वैर शोधन करने के लिये ही इस बालक का जन्म हुआ है। राणा ने ब्राह्मणों को साढू जी के घर भेजा ताकि वे वहाँ जाकर उस बालक को मार डाले। ब्राह्मणों ने साढू जी को जल लाने के बहाने बाहर भेजा और जैसे ही वे बच्चे के पास आये तो देखा कि सर्पो ने पालने को घेर रखा है। शेषनाग फन फैलाकर छाया किये हुए है। बावन भैरव पहरा दे रहे है। ब्राह्मण बालक के प्रभाव को समझ गये। उन्होंने साढू से क्षमायाचना माँगी तथा बालक को प्रणाम कर लौट आये। राणा को जब वस्तुस्थिति का पता चला तो वह भयभीत हो गया।

इधर साढू देवनारायण का पालन पोषण उज्जैन मे अपने पीहर रहकर करने लगी। एक दिन बगड़ावतों का भाट छोछू उज्जैन आया। देव नारायण को उससे बगड़ावतों की वंशपरम्परा का इतिहास मालूम हुआ। देवनारायण ने उज्जैन से गोठ की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में जयसिंह देव परमार की पुत्री पीपलदे से उनका विवाह हुआ। बहुत धन–दौलत दहेज में प्राप्त हुआ। देवनारायण ने पुनः गोठों को बसाया। नेवाजी का पुत्र भूणमल राणा की राण में पलकर बड़ा हुआ था। देवनारायण ने उसे लिवा लाने के लिये भाट को भेजा। भूणमल ने शर्त रखी कि यदि देवनारायण जयमंगला हाथी को पीलूदा के कुम्हारों से वापस ले लें तो मैं गोठ लौटूंगा। देवनारायण ने ऐसा ही

किया। भूणमल गोठ आ गया। दोनों भाईयों ने वीरों की समाधि व सतियों के देवल पर फूल चढ़ाये। उन्होनें राण के राणा से प्रतिशोध लेने का प्रण किया। देवनारायण ने सेना सजाई। घमासान युद्ध हुआ जिसमें राणा परास्त हुआ। दोनों भाई माता साढू के पास आये। देवनारायण ने बगड़ावतों के वैर शोधन के पश्चात माता से जाने की आज्ञा मांगी। पीपलदे की व्यथा को देख देवनारायण ने उसे वचन दिया कि "जब भी तुम गोबर की गूंहली देकर मुझे याद करोगी मैं उपस्थित हो जाऊंगा। गूंहली सूखने तक मैं तुम्हारे पास रहूँगा। यह कहकर देवनारायण अन्तर्धान हो गये। पीपलदे जब भी गूंहली देकर याद करती, देवनारायण जी आ जाते और गूंहली के सूखते ही चले जाते। जब सास को उसका पता चला तो उसने बहू को तेल की गूंहली देने के लिये कहा ताकि गूंहली जल्दी न सूखे। सास के कहे अनुसार बहू ने जब तेल की गूंहली दी तो देवनारायण जी ने कहा "अब मैं नही आऊँगा।" यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

9.7 सारांश

अस्तु लोक गाथाएँ समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

9.8 अभ्यास प्रश्न

(1) लोक गाथा से क्या तात्पर्य है?

(2) लोक कथा और लोक गाथा में क्या अन्तर है?

(3) राजस्थान की लोक गाथाओं का परिचय देते हुए किसी एक लोक गाथा के चरित्र नायक की विशेषताओं का उद्‌घाटन कीजिए।

(4) लोक गाथाओं की तात्विक विवेचना करते हुए उसके शिल्प सौन्दर्य की महत्ता को उद्‌घाटित कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10

राजस्थानी लोककथा

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 राजस्थानी लोककथा
10.3 शिल्प सौन्दर्य
10.4 वर्णनकला का वैशिष्ट्य
10.5 भाव सौन्दर्य
10.6 लोककथाओं का वर्गीकरण
10.7 सारांश
10.8 अभ्यास प्रश्नावली

10.0 प्रस्तावना

राजस्थान लोकसाहित्य का अक्षय कोश है। यहाँ लोक–साहित्य की विपुल सामग्री यत्र–तत्र मिलती है। लोकसाहित्य के विविध रूपों में लोकगाथा, लोकगीत, लोल्कथा, लोकनृत्य, लोकनाट्य और कहावतें आदि आते है। इनमें लोककथा का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है। लोककथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टि की उत्पति के साथ ही लोककथाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। अतः ये लोककथाएं जनजीवन से जुड़ी हैं। इनमें धरती की सौंधी महक है।

10.1 उद्देश्य

इससे राजस्थानी लोककथाओं एवं इनके महत्त्व को समझा जा सकेगा।

10.2 राजस्थानी लोककथा

लोककथाओं में समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। लोककथाओं के निर्मल दर्पण में हम समाज के आचार–विचार, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, वेशभूषा और उत्सव–त्यौहार आदि का प्रतिबिम्ब भली भांति देख सकते हैं। बाल्यावस्था में लोककथाएं मनोरंजन करती हैं, युवावस्था में मादकता की अनुभूति कराती हैं तथा वृद्धावस्था में अपसे अनुभूत तथ्यों एवं सत्य का बोध कराती हैं। इन लोककथाओं में पहाड़ी झरे का सा सहज प्रवाह है। यही कारण है कि लोककथाओं का सर्वत्र विस्तार हुआ है। इनका विकास मौखिक परम्परा में हुआ है। सरसता, सरलता एवं सहजता के गुणों से सम्पन्न ये लोककथाएं एक बार सुनने पर याद हो जाती हैं और इस तरह पीढ़ी पर पीढ़ी मौखिक परम्परा में जीवित रहती हैं।

(1) आधारभूत मनोवृत्तियाँ– लोककथाओं में मनुष्य की आधारभूत मनोवृत्तियों का प्रभावशाली एवं सुन्दर निरूपण हुआ है। उनमें श्रृंगार भावना (संयोग–वियाग) भय, विस्मय, हास्य, क्रोध, उत्साह निर्वेद, करूणा और वात्सल्य आदि विकारों का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। इन मनोवृत्तियों से ही जनजीवन संचालित होता है।

(2) सामाजिक परिवेश का चित्रण– लोककथाओं में सामाजिक परिवेश का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। पारिवारिक सम्बन्ध और रिश्ते–नाते आदि में आने वाले परिर्वन, जीवन के उतार–चढाव का हृदयग्राह्य चित्रण इन लोककथाओं में उपलब्ध होता है। यथा माँ की ममता, पत्नी का त्याग, बहिन का निश्छल प्रेम, भाभी की छींटाकशी, सौतेली माँ की क्रूरता, प्रजावत्सल राज, क्रुर, भयानक राक्षसों का संहार करने वाला साहसी राजकुमार, मंथरा सदृश दासियाँ और सौत आदि कितने ही पात्र लोककथाओं में मिल जाते हैं। इतना ही नहीं, अनेक पारलौकिक, दिव्य पात्र देवता, परी, अप्सरा यक्ष–यक्षिणी, गन्धर्व, किन्नर आदि भी लोककथाओं की विचित्र दुनियाँ में विचरण करते हुए दिखाई देते है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(3) आशा, भाग्य और कर्म की त्रिवेणी– लोककथाओं की सृष्टि में मानव के पुरूषार्थ के मूल में आशा, भाग्य और कर्मवादी तीन धारायें एक साथ प्रवाहित होती हैं। लोककथाओं के नायकों के जीवन मे नैराश्य नही है। उनमें पलायनवादी भावना नहीं है। वे सच्चे अर्थो मे उत्साही, आशावादी, उद्यमी, पुरूषार्थी एवं अथक परिश्रमी हैं। इसीलिये अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सघन वन, तपते रेगिस्तान, उत्तुंग पर्वतशिखर, उफनती नदियाँ, विशाल समुद्र एवं भयानक क्रूर अट्टाहास करने वाले राक्षसों की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करते हैं और उन्हं अपने आत्मबल से परास्त कर अपने लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं। लोककथाओं के कई पात्र भाग्यवादी भी दिखाई देते हैं।

(4) अलौकिक घटनाएं– लोककथाओं में अलौकिक घटनाओं का समावेश भी रहता है। यहां सब कुछ संभव है। अभिमंत्रित जल के छींटे से सजीव प्राणी पत्थर बन जता है तो पत्थर सजीव हो जाता है। उड़ने वाला घोड़ा हो या परी की जादुई छड़ी, तिलस्मी गुफा हो या चमत्कारी गोली, इन सबके चमत्कार से एक क्षण में दृश्यमान अदृश्य हो सकता है तो अदृश्य दृश्यमान हो जाता है। इन आलौकिक घटनाओं पर लोकमानस बिना किसी तर्क के सहज विश्वास कर लेता है क्योंकि लोककथाओं में तर्क की कोई गुजांइश नहीं होती।

(5) भरतवाक्यसम्मत सुखान्त– समस्त लोककथाएं सुखान्त होती हैं। लोककथा का नायक चाहे गरीब हो या अमीर, राजकुमार हो या किसान, साधारण हो या विशिष्ट, विविध कठिनाइयों और बाधाओं को पार करते हुआ अन्त में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। किसी राक्षस, जादूगर के आतंक से पीड़ित बन्दिनी राजकुमारी को अपने साहस, त्याग और पराक्रम से मुक्त कराकर राजकुमार अपनी उदारता का परिचय भी देता है। इस कार्य में किसी का आशीर्वाद, वरदान, दिव्य अस्त्र–शस्त्र भी सहायता करते हैं। स्वतंत्र राजकुमारी मुग्ध होकर उससे विवाह कर लेती है है तथा दोनों सुख से रहते हैं। लोककथा का कथक्कड़ भी 'हे रामजी!' जैसे इनके दिन फिरें, वैसे सबके ही फिरें। या 'हे भगवान! जैसे इन पर तुष्टमान हुए, वैसे सब पर होना।' यह कहकर कथा समाप्त करता है। इन भरतवाक्यों में लोकमंगल की भावना निहित रहती है और इस सुखान्तवादी दर्शन से श्रोतामण्डली भी मन में अपूर्व विश्वास के साथ अपने–अपने घरों की ओर प्रस्थान करती है।

10.3 शिल्पसौन्दर्य

लोककथाओं का शिल्पसौन्दर्य भी विचित्र होता है। लोककथाएं लघु एवं वृहद् दोनों रूपों में मिलती हैं। कई लोककथाएं इतनी छोटी होती हैं कि चन्द मिनटों में ही समाप्त हो जाती है तो कई लोककथाएं इतनी बडत्री होती है कि उन्हें पूरा करने में रात व्यतीत हो जाती है। अर्थात् छोटी, बड़ी और मध्यम कई तरह की लोककथाएं होती है। श्रोता इन लोककथाओं को बड़े चाव से सुनता है। यदि कथक्कड़ कथा कहने में कुशल हो तो श्रोता जिज्ञासावश एकाग्रचित होकर लोककथा सुनता है। यह कथक्कड़ पर निर्भर करता है कि वह श्रोताओं के ध्यान को कितना केन्द्रित रख पाता है। कथक्कड़ अपनी बात को विशेष ढंग से कहता है। उसे रोचक और श्रुति–प्रिय बनाने का प्रयास करता है कि ताकि श्रोता दत्तचित्त होकर उसे सुनें और समझें।

(1) कथक्कड़ और श्रोता का पारस्परिक संबंध– कथक्कड़ और श्रोता के बीच तालमेल होना आवश्यक है, तभी लोककथा को कहने और सुनने में आनंद आता है। यदि कथक्कड़ और श्रोता में तादात्म्य न हो तो सरस लोक–कथा भी नीरस लगने लगती है। अतः कथक्कड़ तादात्म्य बनाये रखने के लिये श्रोता के समक्ष अनिवार्य शर्त रखता है कि बीच–बीच में हुंकारा देकर अपनी सजगता का परिचय दे। 'फौज में नगाड़ो अर बात में हुंकारों' जैसी कहावत तो प्रसिद्ध है। संगीत में जो स्थान लय और ताल का होता है, वही स्थान लोककथाओं के वाचन में इन स्वीकृति–सूचक हुंकारों का होता है। कथक्कड़ की तरह हुंकारिया (हुंकारा देने वाला) भी निपुण हो तो कथा का आनन्द द्विगुणित हो जता है। हुकारिया हुंकारा देने के साथ–साथ यथावसर कुछ वाक्यांशों का प्रयोग भी करता है। जैसे ''पछै बातां छोड़ों, आगे कांई हुयो, उंमा रौ'' आदि आदि। कभी वह वाह–वाह सा, कहकर दाद देता है तो कभी कथक्कड़ के द्वारा कहे गये अधूरे वाक्य को पूरा कर अपनी जागरूकता का परिचय देता है।

(2) 'छोगों' में प्रारम्भ की मौलिकता– लोककथा कहने वाले कथक्कड़ अपनी कथा को आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये विभिन्न छोगों का प्रयोग करता है। कथा कहने पूर्व कुछ पद्यात्मक उक्तियों का लयपूर्ण उच्चारण करता है। इन्हीं पद्यात्मक पंक्तियों के लयपूर्ण उच्चारण को राजस्थानी में 'छोगे' कहते हैं। इन छोगों में कहीं–कहीं नैतिक उपदेश तथा सद्–असद् की प्रवृत्ति उजागर होती है तो कहीं कथा की विषयवस्तु सम्बन्धित बातें रहती हैं। श्रोता की जिज्ञासा जागृत करने हेतु भी प्रयत्न किया जाता है। नीचे कुछ छोगे उदाहरणार्थ दिये गये हैं–

(अ) कल्पनातीत क्रमसंवर्द्धक

बात भली दिन पाघरा पैंडे पाकी बोर।
घर भीड़ळ जिणै, लाडू मारे चोर।।
कोई नर सूता केई नर जागै, जागतोड़ा री पागड़िया ढोलियां रे पाळौ
सूतोड़ा री पगड़िया जागतड़ा लेय भागै, फोरा पतळा रौ डाव नीं लागै।
एक तिल वो ई कांणों, नित उठ कन्थ कढ़ावै घाणौ।
पाडोसण मांगै खळ रो डळौ, कठै री तेलण कठै रो पळौ।।

X X X

एक थो गिड़गिन्दौ राजा थौक थोक थोई नीं।
जिणनै बसाया तीन गांव, दो ऊजड़ बसै ई नीं।।
जिणमें रह्या तीन कुम्हार, दो ठोटी एक घड़नों जाणैं ई नी।
ज्यां घड़ी तीन हांडिया, दो फूटोड़ी एक चढ़ै ई नीं।
ज्यां में रांधिया तीन चावळ, दो कटकटा तो एक सीजै ई नीं।
ज्यां में निवंतिया ती बामण, दो इग्यारसिया एक जीमै ई नीं।
ज्यानैं दीनी तीन गायां, दो बांझड़ी एक ब्यावै ई नीं।
ज्यारै हुया तीन बाछियां, दो माठा एक हालै ई नीं।
ज्यारां बाटियां तीन रिपिया, दो खोटा एक चालै ई नीं।
ज्यानै परखियाँ तीन सोनार, दो नै रातिंदो एक नै द्वीसै ई नीं।
ज्यारै मैली तीन थाप, दो दळगी नै एक लागी ई नीं।

(आ) नैतिक उपदेशात्मक प्रधान

कुछ ऐसे छोगे भी कहे जाते हैं जो सामाजिक दृष्टि से अच्छाई–बुराई का बोध कराते हैं। सद्–असद् के सूचक होते हैं। यथा–

बात साची भली, पोथी बाची भली
देह साजी भली, बहू लाजी भली
लूवां बाजी भली, नौबत गाजी भली
गाय दूजी भली, गवर पूली भली
जोबन जोड़ी भली, कच्छी घोड़ी भली
मौड़ी भली, मंसा थोड़ी भली
अंब केरी भली, माळा फेरी भली
कांठळ काळी भली, धीणैं छाळी भली
घाव पाटी भली, भाख फाटी भली
बिरखा बूठी भली, नांणै नूठी भली
आई तूठी भली, विपदा खूटी भली
मैथी फाकी भली, भैंस पाडी भली
प्रीत गाढ़ी भली, भींत जाडी भली
बात साची भली, पोथी बांची भली

X X X

(इ) लोक आचार–विचार सम्मतः

भोजाई रौ बोल खोटौ, रिपियाँ रौ कौल खोटौ
बांणियै रो आसौ खोटौ, जेल रौ वासौ खोटौ
अकलियै रो लाटो खोटौ, बामण रो आटौ खोटौ
अवड़ बीचै छाळी खोटी, खेत बीचै बाळी खोटी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बाबोजी री चेली खोटी, घरवाळी तो बोळी खोटी
तिरिया बिन गेह भूंडौ, सियाळै रो मेह भूंडौ
परनारी सूं नेह भूंडौ, उगूणौ तो खेत भूंडौ
भगतण सूं हेत भूंडौ, उधारी बौपार भूंडौ
विधवा रा बणात भूंडौ, साधू वाळो हेत भूंडौ
मौसर री रीत भूंडी, दासी सूं प्रीत भूंडी
देवाळिया री साख भूंडी, आकड़े री राख भूंडी
डूंगर री चढ़ाई भूंडी, सांसी री लड़ाई भूंडी
खीचड़ै मे लोदौ भूंडौ, घरै हिलियौ खोदो भूंडौ
दाढ़ी बिना ठोढी भूंडी, धर में रांड मोड़ी भूंडी
काळी बोळी रात भूंडी, कूड़ी सोई बात भूंडी

इस प्रकार सद्–असद् का ज्ञान कराने वाले इन छोगों का भी महत्व है। कथक्कड़ उक्त छोगों का प्रयोग कर अपनी बात की सत्यता पर जोर देता है क्योंकि 'कूड़ी बात भूड़ी' होती है। अतः 'बात कैवूं साची' कहकर श्रोता के लिये बात को विश्वसनीय बना देता है।

(ई) जीवनअनुभवसिद्ध छोगे

इन छोगों में व्यक्ति के जीवन के अनुभवों का निचोड़ होता है। विविध परिस्थितियों से गुजरने वाले, घाट–पाट का पानी पीने वाले अनुभवसिद्ध व्यक्तियों के अनुभवों का बोध कराने की पूर्ण क्षमता इन छोगों में होती है। यथा–

बाप जैड़ा बेटा, रूंख जैड़ा टेटा
घड़ै जैड़ी ठीकरी, मायड़ जैड़ी डीकरी
झाड़ जैड़ा मूळ, धरती जैड़ी धूळ
रूई जैड़ो सूत, माइत जैड़ा पूत
भाखर जैड़ा भाटा, बिरखा जैड़ा लाटा
रूंखां जैड़ा छोडा माण्डी जैड़ा मोडा

(क) लोकप्रसिद्ध उक्तियां

इन छोगों में लोकप्रसिद्ध व्यक्तियों वस्तुओं स्थानें, पशुओं आदि का नामोल्लेख होता है जिससे श्रोता को इनकी जानकारी हो जाए। इस दृष्टि से निम्न छोगे द्रष्टव्य हैं–

प्रथम पिण्ड पांणी रौ, देवळ तौ आबू रौ
हवेलियां तो जेसाणे री, गढ तौ चितौड़ रौ
ताल तौ भोपाल रौ, मिन्दर तो मथुरा रा
नीर तौ गंगाजी रो, धीणौ तो भैंस रौ
भैंस तो नाळी री, बळद तो नागोरी
गाय तो सांचोरी, ऊंट नाचणै रे टोळै रा
उजास तो सूरज रौ, आदर तो माया रौ
कांकण तौ केदार रो, गदा तो भींव री
बाण तौ अरजण रो, जिलक तौ केसर रौ
चूड़ौ तो हस्ती दांत रौ, रूपों तो जावर रौ
मतौ तो पंचा रौ, ममता तौ मां री।।

(ख) कहावत मण्डित छोगे

इन छोगों श्रोता को लोकव्यवहार नीतिकथन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध होता है। इसमें कहावत की प्रधानता रहती है–

अेक राली अर जणा पचास, ओढण री करै सारा ई आस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधी रात रा लागी खांचातांणी, खाता खांण नीं पीता पांणी
अेक लरड़ी अर सातां री सीर, नित उठ पीव रंधावै खीर
छछवारियां नै छाछ छलावै, आडो फिर–फिर माडै लावै।

X X X

नवा में लियौ नारियौ, दसां में चारौ चारियौ
बीसां री बेची बाळी, तौ ई पाळी री पाळी
भाई रै मन भाई भायो, बिना बुलाया माडै आयौ
गैली रांड कळपै कांई, घी ढुलियौ तो ई मूंगा माई
कोरै ऊंखल बाजै घाई, फिर–फिर निवंता देवै नाई
खीच परुसै नै ठाकरे छीजै, नौ लीजै न तेरै दीजै।
देखली सीधै री सोय, लेणा अेक नैं देणा दोय।।

(ग) जनपदीय झांकी प्रधान छोगे

कभी कभी कथक्कड़ ऐसे लोकदोहों का प्रयोग करता है जिनमें जनयदीप झांकी दृष्टिगत होती है। किसी जनपद–विशेष की भौगोलिक स्थिति, वहाँ की प्रसिद्ध वस्तु, फल, फूल न अनाज, वस्‌ श्रृंगारप्रसाधन, अस्त्र–शस्त्र, घोड़े, ऊंट, बैल आदि का उल्लेख इन छोगों में होता है जिनमे वहाँ की संस्कृति की सतरंगी आभा झलकती है। उदाहरणार्थ–

साळ बखांणू सिंघरी, मूंग मंडोवर देस।
झीणो कपड़ो माळवै, मारू मुरधर देस।।
बोर मतीरा, बाजरी, खेलर काचर खांण।
धानर घीणा घौपटा, बरसाळै बीकांण।।
मौज सुरंगा माळिया, फूल बाग चहुँ फेर।
चीख अनोखी चौवटै, आंबा तो आंबेर।।
केहर लंकी गोरियाँ, सोढो भंवर धटा पहाड़।।
बड़ झुकियाँ लांबै सरां, आई धर अमरांण।
अहै थान इकलंक रा, पावसा घटा पहाड़।।
सरब चीज पाकै सदा, मोटी धर मेवाड़।।
घोडा कीजै काठ रा, पिंड कीजै पाखाण।
लोह तणा हहै लूंगड़ा, जद जोईजे जैसाण।।
आंबा चम्पा केवड़ा, दाड़म नींबू दाख।
महुवा राइण मोगरा, सो गूजर धर साख।।

इसी प्रकार कथक्कड़ कथा के प्रारम्भ में पद्यात्मक बिड़दाव (विरूदगान) का भी सस्वर लययुक्त उच्चारण करता है। इनमें कथा की महत्ता, कथा कहने का ढग, कथक्कड़ की बात कहने में कुशलता आदि को उजागर किया जाता है। 'बात' (कथा) कहने का अपना एक अलग ही ढंग होता है। कुशल कथक्कड़ अवसरानुकूल भाषा का प्रयोग करके, भावानुकूल स्वरों के आरोह–अवरोह तथा मुखाकृति द्वारा बात को बोधगम्य बनता है। यथावसर बीच–बीच में पद्यों का उच्चारण करता है। बात का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि बातों ही बातों में प्रीति, नीति, और रीति का पाठ लोगों को सिखाया जा सकता है। बात के महत्व को प्रतिपादित करने वाले कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं–

बात–बात सब अेक है बात–बात फेर।
उणीज लोह री कुस घड़ी, उणीज लोह समसेर।।
ज्यूं केळै रै पात में, पात पात में पात।
त्यूं चातर री बात में, बात–बात में बात।।
बात–बात सब अेक है बात–बात बैण।
वो इज काजळ ठीकरी, वो इज काजळ नैण।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सोठियो दूहो भलो, भली मरवण री बात।
जोबण छाई धण भली, तारां छाई रात।।
बात सुणो अर सांभळो, यां सूं लेबौ सीख।
सदाज आडी आवसी, यांरी जुग बाळी रीत।।
बात कह्यां सुख ऊपजै, मन निमळ हुय जाय।
ग्यांनी हिरदै राखले, मूरख सैं पिछताय।।
प्रीत रीत अर नीत में, बातड़ल्या परमांण।
सुण रे सुगणा सायबा, बातां रा फरमांण।।

कभी कभी कथक्कड़ कथा कहने से पूर्व के उद्देश्य को भी व्यकत कर देता है ताकि श्रोता को वर्ण्य विषय का पूर्वाभास हो जाए। इसी तहर कथा की समाप्ति पर कथक्कड़ कुछ ऐसी पद्यात्मक पंक्तियों का उच्चारण करता है जिनमें जीवन का अमर सन्देश व लोकमंगल की भावना प्रकट होती है। दुष्ट दुराचारी पात्रों की निन्दा तथा आदर्श चरित्रों की प्रशंसा करते हुए श्रोताओं को आदर्शमय जीवन अपनाने की वह प्रेरणा देता है कि ताकि श्रोता का जीवन सुखमय बन सके और श्रोता भी आनन्द और सन्तोष का अनुभव करते हुए घर की ओर प्रस्थान करें।

कुछ दोहे उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं–
चालणहारा चलि गया, वौलाऊ वळियाह।
सुदा स्नेही लाकड़ा, साथै परजळियाह।।
सुरां दातां पिंडता, तीनूं अे सुभाय।
जनमें सो मरसी खरा, अमर बात हर जाय।।
आया संग न वालही, मर मर गये जवान।
मेरी मेरी कर मुवे, हिन्दु मुसळमांन।।

10.4 वर्णनकला का वैशिष्ट्य

लोककथाओं में वर्णन की प्रधानता रहती है। वर्णन के आधिक्य से कई बार कथा में शिथिलता आ जाती है। किन्तु वर्णन की स्वाभाविकता और सजीवता श्रोता को ऊबने नहीं देती। वर्णन सरल एंव सरस होता है। कथक्कड़ अवसरानुकूल नगर की विशालता भव्यता, सम्पन्नता, रजसी, वैभव, प्राकृति सौन्दर्य, नखशिख सौन्दर्य का वर्णन अलंकृत शैली में करता है। नखसिख सौन्दर्य चित्रण में तो उपमाओं की झड़ी लगा देता है। सहृदय श्रोता उसके सरस वर्णन से मंत्रमुग्ध हो जाता है। कथक्कड़ के वर्णन से श्रोता के मानस पटल पर सजीव चित्र उभर आता है। रमणी के रूप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'केसर री क्यारी, प्रेम रा प्यारी, चन्दवदनी, मिरगानैणी, चतुर सुजाण, मन री पिदाण, हाथा री चतुर, काम री आतुर, इन्दर री अपछरा, सरोवर रो हंस, सरद रो कमल, बसंत री मंजर, भादवै री बादळी, बादळ री बीज, मेह रो ममोल्यौ, बानवो चंनण, सोळमो सोनो, रायकेल रो ग्रभ, राजहंस रो बच्चौ, लिखमी रो अवतार, परभात रो सूरज, पूनम रो चांद, सनेह री लहर, गुण रौ प्रवाह, रूप री निधान, आदि आदि।'

इसी तरह प्रकृतिचित्रण में भीषण आंधी, तूफान, मूसलाधार वर्षा, बसन्त, गर्मी आदि का सजीव वर्णन मिलता है यथा सावन ऋतु का वर्णन दृष्टव्य है– ' सावण रै लागतौ ई भादरवो आयौ। डेडरियाँरी डरडाट माची। बिरखा मंडरी छै। बीजळियाँ सळावा भरै छै। सैहरां सैहरां बीच चनकरी छै। जाणै कुलटा नायिका घर सूं नीसर अंग देखाय दूजै घर प्रवेश करै छै। मोरूड़ा 'में आओ में आओ' बोलरिया छै... बिजळिया खिंवण लागी–पळा... क झब, पळा... क झब, जेडै ता छांटा आई'ज–तड़ तड़ तड़तड़ तड़ातड़ अड़ड़ड़ड़ड़। पैंपरळां पैंपरळां पैंपरळा पाणी पड़न लागौ। इण भांत मूसळ धार में बाबौ मांडियौ स मांडियौ । भाखरां रा नाळा बोल रिया छै। नाड़ी नाडिया पाणी सूं छिल रिया छै। गाज बाज रै साथै घटा आइ सूं जाणै परदेसी इन्दर राजा घणै हरख आपरीधण जमीं सूं मिलण आयो छै।'

लोककथाआं में नायक–नायिकावर्णन, ऋतुवर्णन की ही तरह भोजवर्णन मृगयावर्णन, युद्धवर्णन तथा अस्त्र–शस्त्र आदि का भी सरस वर्णन मिलता है। युद्धवर्णन इतना सजीव होता है कि श्रोता या पाठक के समक्ष वह दृश्य उपस्थित हो जाता है। 'पाबूजी री बात' का एक उदाहरण–

'.............अर पहलड़ी लड़ाई मांहै चांदे खींची नूं तलवार बाही हैंती। तद पाबूजी तरवार आपड़ लीवी। कही मारौ मती। बाई रांड हुती। तद चांदे कही राज आय तरवार आपड़ीसू बुरी कीवी। अ छोड़ो छै। मारिया भला पण पाबूजी मारण दिया नहीं। तठै फौज आई। चांदे कही राज, जो मारियां हुवो होत तो पा करियो हुतो। हरामखोर आयो। तठै पाबूजी बुहा बढ़ेने लड़ाई कीवी। बडी रिठ बाजियो। तसूं पाबूजी काम आया।

'राजान राउत रो वात वणाव' में दुर्ग तथा फौज वर्णन के साथ तलवार–वर्णन भी द्रष्टव्य है–

'तरवारियां रा साज खुलै छै, सु किण भांत री तरवार थेट सिरोही री, सांत री, दाणांदर, मिआंन घातिआं बिआगुले बाढ़े झेरिआं–मिआँन सूं काढि नै घास नें नाखी हुअ तो पाणी रै भोळै जिनावर ठूंक मारै, छछोही बाल नागणी चिलकै जाणै काळी री जीभ हाळै, घणै मुखमल नै घणी सोनै रूपै मांहे गरकाब करी थकी, इण भांत री तरवार, घणै ककड़े गीनीअ सांबरमां लपेटी थकी तहनाळ, मुंहनाळ, कड़ी कुरसी समेत नकसी मंठि उआं रजानां रै हाथ री उआँ हीज बड़ा नैं पीपलांरी साखांसूं नागलीजै छै।'

10.5 भावसौन्दर्य

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा भावानुकूल, सरस, सशक्त एवं सहज ही बोधगम्य हो तो श्रोता या पाठक को रसानुभूति होती है। लोककथा की भाषा उक्त गुणों से युक्त होती है। लोककथाकार एवं कथक्कड़ सरल भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी वाक्यावली छोटी–छोटी होती है। बीच–बीच में तुकान्त गद्य एवं पद्य का प्रयोग करते हैं। कथा के पात्रों के अनुरूप भाषायी प्रयोग इनकी विशेषता होती है। शब्द–चयन में ये इतने पटु होते हैं कि श्रोता के समक्ष चित्र उपस्थित कर देते हैं। सरल से सरल भाषा में उत्तम से उत्तम एवं लोचभरे भाव भर देते हैं। लोककथाकारों की भाषा में शब्दाडम्बर एंव पांडित्यप्रदर्शन नहीं होता। मुहावरों एवं कहावतों का स्वाभाविक प्रयोग इनकी भाषा की प्रमुख विशेषता होती है। लोककथाओं की भाषा में पहाड़ी झरने का सा आबोध प्रवाह होता है जिसमें अवगाहन कर श्रोता आनन्दमग्न हो जाता है। भाषा प्रसाद, माधुर्य एवं ओज तीनों ही गुणों से मण्डित होती हैं।

10.6 लोककथाओं का वर्गीकरण

लोककथाओं का साहित्य अत्यन्त विस्तृत होने के कारण उसे विभाजन की सीमारेखा में रखना कठिन है फिर भी लोककथाओं के सुचित अध्ययन के लिये विषयवस्तु के आधार पर उनका वर्गीकरण अपेक्षित है। अतः नीचे लोककथाओं का मोटे तौर पर वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है–

(1) शौर्यप्रधान कथाएँ– राजस्थान वीरों की रणभूमि है। यहां अनेक ऐसे वीर योद्धा हुए हैं जिन्होंने अपनी आन–बान–शान के लिये अपना सर्वस्व होम दिया तथा प्रण–पालन करते हुए अपने जीवन का बलिदान कर दिया। वे मातृभूमि की रक्षा के लिये भूखे–प्यासे रहकर जंगलों में भटकते रहे किन्तु गुलामी स्वीकार नहीं की। ऐसे शूरवीरों के त्याग, बलिदान, शौर्य एवं पराक्रम से परिपूर्ण लोककथाओं में जनमानस की विशेष रूचि रही है। इन लोककथाओं में ऐतिहासिक वीरपुरूषों का जीवनचरित्र उजागर हुआ है। स्वदेशप्रेम, जातीय गौरव, नारी सम्मान, आत्मसम्मान की रक्षा के लिये बलिदान करने वाले इन वीरों की कथाओं से लोकमानस को निरन्तर सम्बल मिलता रहा है। इन लोककथाओं में 'जगदेव पंवार री बात' सूरजमल हाड़ा री वात, गंगेव निम्बावत की बात, राव अमरसिंघ जी री बात के नाम लिये जा सकते हैं। शौयप्रधान लोककथाओं में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ कल्पना तत्व भी अधिक पाया जाता है। इतिहास और कल्पना का नीर–क्षीर सम्मिश्रण होने के कारण यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि इनमें कहां तक इतिहास है और कहां तक कल्पना है। कथाकार कभी–कभी शौर्य का वर्णन करत समय भावावेश में इतना डूब जाता है कि वह ऐतिहासिक तत्वों की भी अनदेखी कर जाता है। जिससे कथाओं में विशेषकर युद्धवर्णन में अतिरंजना का समावेश हो जाता हैं।

(2) प्रेमप्रधान कथाएँ– राजस्थान में अनगिनत प्रेमप्रधान कथाएं भी मिलती हैं क्योंकि लोककथा का शूरवीर नायक प्रेम की अत्युच्च भूमि पर चढ़कर ही प्रेमिका को प्राप्त करता है। प्रेम के वशीभूत नायक सामाजिक मार्यादाओं को भी लांघ जाता है तो कहीं नायक–नायिका सामाजिक मर्यादा और बन्धन के कारण मिल नहीं पाते और अपने जीवन का बलिदान कर अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार कथा का दुःखान्त हो जाता है। इन कथाओं में प्रमुख रूप से 'ऊजली जेठवा री बात', मूमल महेन्द्र री बात, जसमा ओढण, जलाल–बूबना, बींझें सोरठ री बात, सैणी बींझानन्द, नागजी–नागमती, पन्ना–वीरमदे, आभळदे खींवजी, उमादे भटियाणी आदि उल्लेखनीय है। इन लोककथाओं की विशेषता है। नायक–नायिका के रूपसौन्दर्य एवं नखशिखा सौन्दर्यचित्रण के साथ प्रेम की महत्ता को भी प्रकट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किया गया है। प्रेमी हृदय की सरलता, विवशत, व्याकुलता एवं कसक इन लोककथाओं में माध्यम से व्यक्त हुई है। राजस्थाना की 'ढोला मरवण री वात' भी प्रसिद्ध है। यह सुखान्त लोककथा है। इसमें प्रेम का त्रिकोण है। ढोला, मारवणी और मालवणी तीनों प्रेम के आदर्शों का निर्वाह करते हैं।

(3) त्रियाचरित्र की कथाएँ– ऐसी अनेक लोककथाएं भी मिलती है जिनमें नारी के विविध रूपों एवं रहस्यपूर्ण चरित्र की व्यंजना हुइ है। वह कहीं आदर्श पत्नी, वात्सल्यमयी माँ, भ्रातृत्व भाव से विह्वल बहिन, प्रेम की पुजारिन, आदर्श प्रेमिका व सेवाभावी पुत्री के रूप में दिखाई देती है तो कहीं विलासिनी, धूर्त, चालाक, परपुरूषगामिनी, सौतिया डाह में षड़यंत्र रचने वाली कुलटा के रूप में सामने आई है। बहुत सी ऐसी नारियों का चरित्र भी उभर कर आया है जो अपनी बुद्धिमत्ता वाक्पटुता से परिवार के संकट को दूर करती हैं। फोफणंद चारण री वात, गुणवन्ती, मा रो बादळो, अब छाछ को सोच कहा करिहै आदि अनेक कथाएं नारी के चातुर्य को उजागर करती है।

(4) पौराणिक एवं लोकदेवी–देवताओं की कथाएँ– राजस्थान शौर्य, प्रेम व भक्ति का अद्भुत त्रिवेणी संगम है। यहां का लोकमानस जितना शौर्य व प्रेम में रमा है उतना ही भक्ति में भी रमा है। पौराणिक देवी देवता, विष्णु, लक्ष्मी, वरूण, अग्नि आदि की पूजा–उपासना के साथ–साथ विभिन्न लोक देवी–देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है। इस प्रदेश में स्थान–स्थान पर मन्दिर व थान हैं जहां भैंरूजी, क्षेत्रपाल जी, हनुमान जी, मावडियाजी आदि की पूजा होती है। इसके अलावा ऐसे लोकदेवता भी पूज जाते हैं जिन्होंने गोरक्षा एवं जनकल्याण करने में अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया। इनके द्वारा किये गये लोककल्याणकारी चमत्कारपूर्णकृत्य जगप्रसिद्ध हैं। जन–मानस ने इनकी चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने वाली कथाओं में अपनी रूचि दिखाई हैं। इन लोकदेवताओं के चरित्र के श्रवण एवं पठन से जनमानस को सदैव आध्यात्मिक ऊर्जा मिलती है। रामदेवजी, गोगाजी, तेजाजी, पाबूजी, हड़बू जी आदि की लोककथाएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

(5) व्रत त्यौहारों की कथाएँ– राजस्थाना धर्म–प्रधान प्रदेश है। यहां के लोग सात्विक जीवन जीते हैं। इसलिये वे व्रत–उपवास आदि को बहुत महत्व देते है। अत्मबल की दृष्टि से व्रत उपवासों का बहुत महत्व है, अतः यहां व्रत, त्यौहारों व अनुष्ठानों से सम्बन्धित अनेक कथाएं प्रचलित हैं। तीजमाता री वात आस माता री वात, सूरजदेवता री वात, चांद छठ री वात, मंगल गौरी री वात सोमप्रदोष री कहाणी, शरदपूर्णिमा री कहाणी, करवाचौथ री कहाणी, एकादशी माहत्म्य की कथा, नवरात्रिव्रत कथा, रवि आदि वार की कथाओं में अन्त में लोकमंगल की भावना प्रकट होती है। इन व्रतकथाओं के कहने का अलग–अलग समय होता है। यहां कार्तिक मास में प्रतिदिन कथाएं कहीं व सुनी जाती हैं।

(6) अलौकिक कृत्यों की चमत्कारिक कथाएँ– इन लोककथाओं में अनेक अलौकिक कृत्यों एवं चमत्कारों का वर्णन होता है। नायक अपने बल, साहस व किसी के वरदान से असम्भव कार्यो को भी सम्भव कर देता है। नायक की उदारत, सरलता एवं साहस से प्रभावित होर ऋषिमुनि साधु–सन्यासी या कोई तपस्वी वरदानस्वरूप कोई चमत्कारी वस्तु अंगूठी, छड़ी, कालीन, उड़नखटोला, तलवार या अन्य कोई वस्तु प्रदान करते हैं जिसकी सहायता से वह किसी दैत्य या जादुगर के जादुई जाल को काट फेंकता है। इतना ही नहीं, सघन वन, आग का दरिया, बड़े बड़े पहाड़ आदि मार्ग की डरावनी बाधाओं को भी पार कर जाता है। उसके इन कार्यो में परियां भी सहायता करती है। कामरूप प्रदेश की स्त्रियां अपने प्रिय पुरूष को मक्खी, मेंढक, तोता, घोड़ा, गधा आदि बनाकर अपने पास रख लेती हैं। कोई दैत्य राजकुमारी को बुलबुल बनाकर स्वर्ण पिंजर में कैद कर लेता है तो परोपकारी राजकुमार ही अपने अदम्य साहस व चमत्कार से उन्हें मुक्त कराता है। कभी–कभी राजकुमारी से विवाह करने को इच्छुक व्यक्ति को असम्म्व या दुष्कर कार्य सौंपे जाते है। जैसे– अमृत लाना, सर्पमणि लाना, शेरनी का दूध लाना, पारसमणि लाना, संजीवनी बूटी लाना आदि जिन्हें वह अपने बुद्धिचातुर्य, साहहस तथा किसी सिन्द्ध पुरूष की सहायता से पूरा करता है।

(7) नीति एवं त्यौहार सम्बन्धी कथाएँ– राजस्थान में लोक–व्यवहार एंव नीति संबंधी कथाओं का भी विपुल भण्डार है। नीतिकथाओं में उपदेश की प्रवृत्ति होती है किन्तु साथ में मनोरंजन भी जोता है। मुनष्य को जीवन में सद्प्रवृत्तियों को अपनाने व असद् प्रवृत्तियों का त्याग करने की प्रेरणा इन लोककथाओं के माध्यम से दी जाती है। लोक–व्यवहारिक बातों का बोध भी इन लोककथाओं से होता है। गाँवों के निरक्षर लोग नीति संबंधी बातों को ध्यान में रखते हुए अपने झगड़ों का निपटारा करते थे न्याय करते थे। इस प्रकार नीति कथाओं से भी समाज के लोगों को शिक्षा दी जाती थी। नीति संबंधी कथाओं का संग्रह 'पंचतंत्र' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। 'बेटा चार पण पांती तीन' आजकाल रा पंच, न्याय की परख आदि कथाएं भी महत्वूपर्ण हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(8) पशुपक्षियों की कथाएँ– मुनष्य और पशु–पक्षियों के संबंधों को लेकर भी अनके लोककथाएं मिलती हैं। इन कथाओं मे पशु–पक्षियो की आदतों, बोली, मानववत् व्यवहार आदि का निरूपण हुआ है। शक्तिशाली सिंह की मूर्खता, भेड़िये व लोमड़ी की चालाकी, कौए की मूर्खता, सियार का चातुर्य, चिड़िया का आतिथ्यसत्कार के लिये बलिदान, मैना तोता का वार्तालाप आदि इन लोककथाओं में देखने को मिलते हैं। ये पशु–पक्षी कई बार मुसीबत में फंसे मनुष्य की सहायता करते हुए भी दिखाई देते हैं। 'हंसी रो म्यानौ', कुण छोटो कुण मोटो, होड़ताड रौ रंग, अकल उजागर एक स्याळ री, स्याळ री अटकल, रंगियोड़ो स्याळ, आऊं आंबळिया गटकाऊं, बाई डावी फड़कावूं कै जीमणी, बाधी कुरज आदि प्रमुख हैं।

(9) राक्षस, भूत, प्रेत, चुड़ैल से संबंधित कथाएँ– राजस्थान में ऐसी अनेक लोककथाएं मिलती हैं जिनमें भयंकर राक्षसों की क्रूरता तथा भूत–प्रेतों का संत्रास आदि प्रकट होता है। दैत्य नरभक्षी होते हैं। दूसरों को कष्ट देना ही इनका मनोरंजन होता है। ये राजकुमारी को उड़ाकर कैद कर लेते हैं। अपने प्राण किसी अन्य जीव में डालकर सुरक्षित रख लेते हैं। फिर कथानायक ही दैत्य को मारकर जन–जन के कष्टों का निवारण करता है। इसी तरह अदुश्य भूतप्रेत भी मुनष्य को असह्य यातनाएं देते हैं। कुछ भूत दयालु भी होते है। वे मनुष्य की सहायता करते हैं। भूत–प्रेतों को ओझा मंत्रोच्चार से भगाता है। लोककथाओं में चुड़ैलों का भी अपना स्थान है। ये चुड़ैलें चूड़े की खनखनाहट से राहगीरों को डराती हैं। भोली भाली रूपवती नारी का रूप भी धारण कर लोगों को अपने जाल में फांसती हैं और फिर उनको खा जाती हैं। बच्चों का कलेजा तो इन डाइनों का प्रिय भोजन है। ये बच्चों को पुनर्जीवित कर रात में उन्हें कभी खेल खिलाती हैं तो कभी रूलाती हैं और भोर होने से पहले उसे पुनः मार देती हैं। ये ऊंटनी और बिल्ली का रूप भी धारण कर लेती हैं। यह अपने प्राण किसी सांप में या अन्यत्र रखती है। जब तक ये किसी अन्य नारी को डाइन नहीं बना देती तब तक मरती नहीं। राक्षस भूत–प्रेत, चुड़ैल डाइन से संबंधित कुछ कथाओं मं 'जाट अर भूत', 'खेड़ियें भूत', 'सातां नै गिटकायां जावूं', चुड़ैल रा चाळा', ठाकर रो भूत', 'डाकण रा चाळा' आदि प्रमुख हैं।

(10) नागदेवता की कथाएँ– नागपूजा का राजस्थान में विशेश महत्व है। लोकदेवता गोगाजी व केसरियां कंवर नागदेव के रूप में पूजे जाते हैं। अतः नाग से संबंधित भी कई कथाए प्रचलि हैं। जनमानस का यह मानना है कि नाग–नागिन अपना प्रतिशोध अवश्य लेते हैं। यदि इन्हें कोई सताये या जोड़े में से किसी एक को कोई मार दे तो मृत नाग की आँखों में मारने वाले का प्रतिबिम्ब उतर आता है। जिसकी सहायता से नागिन बदला लेती है। यदि सांपों को दूध पिलाकर उनके लिये फूल बिछाये जायँ तो वे सेवा से प्रसन्न होकर वरदान भी देते हैं। कहीं कोई नाग भ्रातृविहीन बहिन का भाई बनकर 'माहिरा' भरता है तो कहीं वह पुत्र बनकर किसी बूढी असहाय माता की बेटी के विवाहार्थ धन देता है। ये नाग इच्छाधारी होते हैं। कोई भी रूप धारण कर लेते हैं। पाताल में नागलोक बसा हुआ है। ये नाग नवयुवक रूप में किसी लड़की या राजकुमारी से सशर्त विवाह करते हैं तथा शर्त टूट जाने पर पुनः सर्प का रूप धारण कर अपने लोक में चले जाते हैं। इस प्रकार सुगरा (लोकहितकारी कृतज्ञ) और नुगरा (अनिष्टकारी कृतघ्न) दोनों तरह के सर्पो का वर्णन इन लोककथाओं मे मिलता है। 'कालिन्दर री सुगराई', 'नुगरो सांप', 'बांड्यो वीर', 'नागणो थारो वंस वधै', 'फूलकंवर, पीळौ साप, सीधौ हिसाब आदि कथाएं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(11) चोर, ठग तथा धाड़ायातियों की कथाएं– लोककथाओं में चोर ठग और धाड़ायातियों को भी पर्याप्त स्थान मिला है। चोरों के भी अपने नियम होते हैं जिनका वे सदैव पालन करते हैं। जैसे खपरिया चोर किसी घर में भूल से नमक खा लेता है तो उस घर में चोरी नहीं करता है वापस खाली हाथ चला आता है। यदि कोई नारी जाने अनाजने में उसे 'वीरा' कह दे तो उसे बहिन समझकर उसके घर से चोरी नहीं करता बल्कि अपने पास उस वक्त जो भी धन होता है वह छोड़ आता है। कई चोर सत्यवादी भी होते है तो कइ वाक्पटु। ऐसे चोरों को जनमानस ने अपनी कथाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। राजा भोज अर खापरियों चोर, सच बोलो चोर, म्यांनी चोर, खांतीलौ चोर, चोर री आखड़ी आदि लोककथाएं चोरों के विचित्र चरित्र को उजागर करती हैं। चोरों की भांति ही धाड़ायतियों की कथाएं भी मिलती हैं। अत्याचार, अन्याय, आर्थिक संकट से तंग आकर विवशता में कई लोग डाकू तो बन जाते थे किन्तु उनके ह्रदय की उदारता, दयालुता समाप्त नहीं होती थी। इसीलिये ये डाकू पूँजीपतियों को लूटकर गरीबों में धन की पोटली फेंककर उनकी गुप्त रूप से सहायता भी करते थे। अतः जनता की दृष्टि में ये आदणीय थे। डूंगजी जवारजी, चिमनजी धाड़वी, मेघजी चारण धाड़वी, धनपालसिंह बिड़दौ धाड़वी आदि से संबंधित लोककथाएं प्रसिद्ध हैं। कई धाड़ायती तो स्वतंत्रताप्रेमी थे। उन्होने अपनी वीरता से अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राचीन समय में ठगों का भी बाहुल्य था। इनका अपना अलग गांव व समाज था। ये नवागन्तुक को विश्वास में लेकर ठगते थे। वे अपनी सुन्दर कन्याओं और नारियों के माध्यम से राहगीरों को भ्रमित कर उनका सर्वस्व लूट लेते थे तथा उन्हें मार डालते थे। ठगों से संबंधित कथाओं में मिनखजमारों, ठगां रा गुड़ौ, जवारियौ ठग, एक लुगाई अर च्यार ठग, ठगां रौ ठरकौ, आदि प्रमुख हैं।

10.7 सारांश

सारांशः यह है कि राजस्थानी लोककथाओं में इस प्रदेश की समस्त विशेषताओं का सजीव अंकन हुआ है। इनमें हमारा जीवन–दर्शन अभिव्यक्त होता है। सामन्ती परिवेश तथा ग्रामीण जीवन, नारी समाज और धार्मिक आस्था का प्रभावशाली तथा यथार्थ चित्रण ही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

10.8 अभ्यास प्रश्नावली

(1) राजस्थानी लोक कथाओं की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

(2) राजस्थानी लोक कथाओं का वर्गीकरण कीजिए।

(3) राजस्थानी लोक कथाओं के शिल्प सौन्दर्य को उद्‌धारित कीजिए।

(4) 'राजस्थानी लोक कथाओं में मानवेतर प्राणियों व पदार्थों का चित्रण हुआ है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई—11

राजस्थानी लोकनाट्य

संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 राजस्थानी लोककथा
11.3 शिल्प सौन्दर्य
11.4 वर्णनकला का वैशिष्ट्य
11.5 भाव सौन्दर्य
11.6 लोककथाओं का वर्गीकरण
11.7 सारांश
11.8 अभ्यास प्रश्नावली

11.0 प्रस्तावना

राजस्थान की उर्वरा लोकभूमि में लोकनाट्यों की अभिनव सृष्टि है। राजधानी लोकसाहित्य की उत्कृष्ट एवं शाश्वत चेतना की यह अक्षय विधा है। लोकचेतना की अभिव्यक्ति इन लोकनाट्यों में सशक्त रूप से मुखरित हुई। वह लोक का प्राण है। दृश्य होने के कारण लोकनाट्य में सामाजिक भावनाओं की प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। लोकनाट्य हमारी जीवंत चेतना के मूर्तरूप है। लोकसंस्कृति के ये अभिनेय प्रकाशदीप है। समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना को चित्रित करने वाला यह विशाल केनवास है। आध्यात्मिक संजीवनी चेतना, सामाजिक जागरण, धार्मिक आस्था, नैतिक उत्थान, पौराणिक परिज्ञान, नैतिक मूल्यों का सहज व सरल प्रस्तुतीकरण लोकनाट्यों के माध्यम से सम्भाव होता है। यही कारण है कि लोकमानस ने समाज के विशिष्ट व असाधारण पात्रों की लोकनाट्यों के माध्यम से अवधारणा कर अपने को तुष्टिभूत किया है। लोकनाट्य के पात्रों में कभी देवी देवताओं ने प्रत्यक्ष रूप से तो कभी किन्हीं लौकिक पात्रों ने अपने असाधारण जनकल्याणकारी कार्यो से 'देवत्व' प्राप्त कर, तो कभी इतिहास के महान् अविस्मरणीय पात्रों ने सजीव होकर, प्रेमियों ने प्रेम की अच्युच्य भूमि पर प्रतिष्ठित होकर, भक्तों ने भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित कर और यहां तक कि साहसिक कार्यो से जनमन को रंजित करने वाले डाकूओं और लुटेरों तक ने राजस्थानी लोकनाट्यों के माध्यम से जन चेतना का संचार किया है।

11.1 उद्देश्य

इसमें राजस्थानी लोकनाट्य के स्वरूप को समझा जा सकेगा।

11.2 राजस्थानी लोकनाट्य का स्वरूप

लोकनाट्य मानव सभ्यता के उषाकाल से ही मानवसृष्टि के चिर सहचर रहे है। यह धर्म से स्पन्दित, संस्कृति से आलोकित, समाज कर्म से गतिशील एवं इतिहास व पुराण से ऊर्जस्वी बनते हैं। राजस्थानी लोकनाट्य लोकसम्प्रेषण, लोकानुरंजन, सामाजिक परिवर्तन एवं वैचारिक क्रांति का सशक्त माध्यम है। लोकनाट्य वह विधा है, जिसमें देवता हो या पीर, अवतारी हो या पैगम्बर, संत हो या सूफी ब्राह्मण हो या शुद्र, शहरी हो या ग्रामीण, सभी एक ही मूल भाव (मानवता) में संचारित होते हैं। इनमें जति सम्प्रदाय का भेद नहीं है। यदि है तो बस केवल एक मानव धर्म। मानवता की मंदाकिनी अहं चैतन्य से आक्रान्त होकर समाज की 'पाशविकता' से भले ही प्रदूषित हो जाय, साम्प्रदायिकता का कीच भले ही उसे कलुषित बना दे, प्रादेशिकता का कर्दन भले ही उसे गंदला दे, किन्तु लोक हृदय की सहज आस्था अकृत्रिम संस्कारों तथा सरल आचरणमंडित अनगढ़ रत्नों की आभा से प्रदीप्त, मानवता की यह पवन पावन धारा लोकनाट्यों के शाश्वत रूप से उज्जवल बनी हुई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजस्थानी लोकनाट्य राष्ट्रीय सम्प्रेषण की शाश्वत कड़ी है जो सर्वजन सुखाय व सर्वजन हिताय के साथ साथ समष्टिगत चेतना को ऊर्जा प्रदान करती है। राष्ट्रीय अखण्डता, साम्प्रदायिक एकता, जातीय तथा भाषायी एवं सामाजिक समानताएं आदि बातों के सम्प्रेषण के लिए लोकनाट्य विधा एक सशक्त माध्यम है।

लोकनाट्यों का संबंध मानव सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है। लोकमानस से ओतप्रोत लोकनाट्य प्रागैतिहासिक युग से जन्म लेकर काल के विशाल अवरोधों को चीरता हुआ आज तक लोक में प्रचलित है, जिस पर नाटक और उसका नाट्यशास्त्र रचा गया है।

लोकनाट्यों के मूल में मानव के वे प्रयत्न, कर्म या अनुष्ठान है जिसमें वह अपनी सत्ता, अस्तित्व अथवा अपनी अस्मिता को प्राप्त करना चाहता है। उसके ये प्रयत्न या अनुष्ठान उसके उस जीवन में से फूटे, जिसमें उसका प्रकृति से तथा उसके व्यापार से तादात्म्य था। अनुष्ठान जीवनगत कर्मकांड का वह पक्ष है, जिसमें मनुष्य की आदिम आस्था आज भी उसे मानने के लिये विवश करती है। उसके अमुक व्रत या अनुष्ठान करने से आत्मोपलब्धि यानि उसके जीवन में अस्तित्व के आवश्यक पदार्थ या तत्व उसे मिल सकेंगे और अवांछनीयता का निवारण हो सकेगा।

लोकनाट्य लोक मनोरंजन का ही साधन नहीं है। यह लोकगत अर्जितानुभूतियों में से मानव के मूल अध्यात्म की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। उसके द्वारा मानव के अति प्राकृत अस्तित्व की हूक और कूक नाट्य बन कर प्रगट होती है। यह अभिव्यक्ति अभिनेताओं को ही नहीं दर्शकों को भी अपना भागीदार बना लेती है। लोकनाट्य मात्र नाट्य नहीं है। यह समग्रतः अनुष्ठान है। यह नाट्य समग्रतः अनुष्ठानुरूप में तादात्म्य और आत्मादेश को सिद्ध करता है। फलतः यही प्रतीत होता है कि लोकनाट्य मानव की आदिम व्यवस्था में अनुकृतियों के बीज से उद्‌भूत हुआ और विविध भूमियों पर तब से आज तक निरन्तर प्रवाहित है।

लोकनाट्यों का सम्बन्ध मानव सभ्यता के साथ जुड़ा है। मानव सभ्यता कहां किन क्षणों में पैदा हुई और पनपी जैसे सवाल का यदि हमारे पास कोई जवाब है तो हम लोकनाट्य की पैदाइश की बात भी आसानी से कर सकते हैं। जो लोग इसे ब्रह्माजी की 'बगसीस', तीर्थंकरों का 'तोहफा', शिवजी की 'भस्मी' अथवा अन्य देवी देवताओं की फूल पत्ती मानते हैं, वे लोकनाट्यों की मूल आत्मा से स्वयं अपरिचित है। सच तो यह है कि लोकनाट्यों के मूल में अनुकरण और नकल की जबरदस्त प्रवृति रही है। जब जब इस प्रवृति ने तीव्रता और त्वरा धारण किया तब तब लोकनाट्यों का वेग बढ़ता गया।

लोकनाट्य लोकमानस की अनुकरणमूलक प्रवृतियों, कल्पनाओं तथा क्रियात्मक अभिव्यक्तियों के सहज रूप है। लोकनाट्यों का 'लोक' समाज के सभ्य, शिक्षित एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले वर्ग से सर्वथा भिन्न तथा सभ्यता की चकाचौंध, बाहरी आडम्बर एवं उपचारों से अनभिज्ञ एवं अपने रूढ़िगत अर्थो में पूर्णतया सभ्य, शिक्षित एवं सुसंस्कृत होता है।

11.3 उद्‌भव, विकास एवं परम्परा

लोकनाट्यों की सुदीर्घ प्राचीन परम्परा रही है। इन लोक नाट्यों का जन्म तो मानव जन्म के साथ ही हो गया था, लेकिन प्रारंभ में यह मूकनाट्य थे। उनके पात्र अंग भंगिमाओं द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करते थे। उस समय भाषा का रूप परिमार्जित नहीं था। उस समय हावभावों द्वारा ही पात्र अपनी अभिव्यक्ति करते थे। तत्पश्चात् धीरे धीरे मनुष्य ने प्रतीकों को आत्माभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी मनुष्य के मन में अपने युग के आदर्शो चरित्रों के प्रति श्रद्धा की भावना थी, लेकिन उसे अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम उसके पास नहीं था। यही कारण है कि उसने वृक्ष की छालों, पशुओं के चमड़ों, दीवारों तथा कपड़ों पर विविध रंगों से अपने युग प्रवर्तक पुरूषों की घटनाओं को चित्रित करने की परम्परा कायम की। आज भी अपने पूर्वजों एवं युग पुरूषों की स्मृति में उनके जीवनसंबंधी चित्र टांकने की परम्परा है। बाद में इन्हीं चित्रों को संगठित कर विशिष्ट व्यावसायिक वर्ग द्वारा उन्हें एक ही विशद चित्र में समाहित कर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाने लगा। धीरे धीरे इन चित्रों को बांस या लड़की पर लपेट कर एक गांव से दूसरे गांव तक ले जाया जाने लगा। यही प्रक्रिया बाद में 'पड़ें' कहलाई।

राजस्थान में 'पाबूजी' एवं 'देवनारायण' की पड़ें आज भी असंख्य जनता के हृदय में महत्वपूर्ण स्थान रखती है तथा जनता उन्हें बड़े आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखती है और गौरव का अनुभव करती है। ये पड़ें 'भीलवाड़ा' और शाहपुरा के विशिष्ट जोशी छीपों द्वारा बनाई जाती है जो आज 'चित्र शैली' में भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चित्रपट के रूप में यह नाट्यस्वरूप हजारों वर्षो तक जनता का मनोरंजन करता रहा। लेकिन ये चित्रपट गतिमान होकर पात्र रूप में अभिनय करने मे असमर्थ थे। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए इन रंग बिरंगे चित्रों के विभिन्न अंग प्रत्यंगों पर बांस की खप्पचियां बांध कर उन्हें गतिमान किया जाने लगा। यद्यपि चित्रपटप्रणाली में भी परिचालक गण गाते, नाचते तथा दीपक दिखलाते हुए नजर आते थे, परंतु उनके चित्र गतिमान नहीं थे। वे स्थित रूप में दर्शकों की आंखों के आगे से गुजरते थे इसलिये परिचालक से दर्शकों का संबंध नहीं जुडता था। चित्रों की कटी हुई आकृतियों में स्वयं चित्र भी गतिमान होते थे और साथ साथ उसके परिचालक भी। लेकिन ये परिचालक चित्रों से बड़े होने के कारण दर्शकों की नजरों में चित्रों कि अपेक्षा अधिक गतिशील होते थे, जो बड़ा ही बनावटी एवं अस्वाभाविक लगता था। अतः छिपकर उन्हें परिचालित करने की परम्परा प्रारंभ हुई, जिसके परिणामस्वरूप छाया पुतलियों का जन्म हुआ।

लोकनाट्यों को अधिक प्रभावोत्पादक एवं मनोरंजनकारी बनाने हेतु 10 फुट ऊंचा एवं 15 फुट चौड़ा एक सफेद पर्दा लिया गया। उसे बांसों या लकड़ी को चौखटे पर तान कर उसके पीछे इस आदमकद रंगीन चर्मपुतलियों को छड़ियों की सहायता से पर्दे के सामने सार्थक रूप में नाना प्रकार से गतिमान दिखलाया जाता था। पुतलियों का यह छायारूप प्रत्यक्ष की अपेक्षा दर्शकों को अधिक आकृष्ट करता था।

छायापुतलियां चपटी होती थी, इसलिये किसी पात्र के स्थलू शरीर का भान इनसे नहीं होता था। चपटी आकृतियों को वेशभूषा भी नहीं पहनाई जा सकती थी तथा इनको घुमाने फिराने में भी बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती थी। अतः मूर्तिमान काष्ठपुतलियों की परम्परा राजस्थान प्रदेश में प्रारंभ हुई। काष्ट पुतलियाँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। इनसे दर्शकों को मानवीय पात्रों का अभाव नहीं खटका।

काष्ट पुतलियों के सम्पूर्ण विकास के बाद ही मानवीय नाट्य का प्रादुर्भाव हुआ। इस समय तक मानव मूलक नाट्य पर जो सामाजिक और धार्मिक प्रतिबंध थे, वे कमजोर पड़ने लगे व मानवीय पात्र नाना प्रकार की वेशभूषाओं से सुसज्जित होकर रंगमंच पर आने लगे। नाट्य विकास की पांचवीं सीढ़ी सम्पूर्ण मानवीय नाट्य है। जिसमें अभिनेता अपने में किसी के चरित्र विशेष का आरोप करता है। इसमें अभिनेता, मुखविन्यास तथा वेश विन्यास के अलावा किन्हीं विशेष बाह्य साधनों का सहारा नहीं लेता।

लोकनाट्यों के जितने विविध रूप हमें राजस्थान में देखने को मिलते है उतने संभवतः किसी भी प्रदेश में देखने को नहीं मिलेंगे। राजस्थान के लोकनाट्य खेल, ख्याल, तमाशा, स्वांग, रम्मत, रामत, नौटंकी, झामटड़ा आदि नामो से प्रसिद्ध है। इसके अलावा टूटिया तथा सवारिया के रूप मे भी यहा के लोकनाट्य लोकजीवन का खास मनोरंजन करते रहते है। ऐसे लोकनाट्यों में न्हाण, गौर, डाकी, ढोलामारू आदि के नाम लिये जा सकते है।

लोकनाट्य के वर्गीकरण के आधारबिन्दु– लोकनाट्यों को विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। किसी ने नाट्य तत्व को अपने वर्गीकरण का आधार बनाया है तो किसी ने रंगशैली अथवा गायन की को दृष्टि में रखकर लोकनाट्यों का वर्गीकरण किया है। यथा डा. सत्येन्द्र को नाट्यत्व के अनुसार लोकनाट्यों का वर्गीकरण किया है। पदमश्री देवीलाल सामर ने काव्य और कथोपकथन की दृष्टि से राजस्थानी लोकनाट्यों का वर्गीकरण किया है। डा.कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकनाट्यों के प्रहसनात्मक तथा नृत्यानाट्यात्मक दो भेद बताए हैं। डा. श्याम परमार ने लोकनाट्यों को दो वर्गो में (प्रथम श्रेणी में सामाजिक लघु प्रहसन तथा द्वितीय श्रेणी में अभिनय व गीतिनाट्य) विभक्त किया है।

11.4 लोकनाट्यों का वर्गीकरण

भाषा एवं बोली के आधार पर राजस्थान के लोकनाट्यों का वर्गीकरण संभव नहीं है क्योंकि यहां के अनेक लोकनाट्य यथा स्वांग एवं सवारियों में केवल मूक अभिनय ही होता है। इस प्रकार किये गए वर्गीकरण में स्वांग, सवारियां तथा गवरी में मूक लोकनाट्यों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। अतः यह वर्गीकरण अपूर्ण एवं एकांगी ही रह जाएगा। लोक की समष्टिगत चेतना भाषा एवं बोली के आधार पर वर्गीकृत नहीं की जा सकती।

भौगोलिक स्थिति के अनुसार भी राजस्थान के लोकनाट्यों का वर्गीकरण सामयिक रूप से नहीं किया जा सकता है क्योंकि यहां के लोकनाट्यों में सर्वत्र व्याप्त विषयवस्तु के विस्तार पर भौगोलिक स्थिति के अनुसार कोई अन्तर दृष्टिगत नहीं होता। अनेकानेक लोकनाट्यों का उद्‌भव प्रदेश के बाहर ही हुआ है लेकिन भौगोलिकता, लोकमानस की ग्रहणशीलता में बाधक नहीं बनी है। यहां के लोकनाट्य लोकजीवन में पूर्णतः संगुम्फित हो जाते है।

रंगमंचीय आधार पर राजस्थानी लोकनाट्यों का वर्गीकरण अत्यन्त कठिन है। क्योंकि एक ही लोकनाट्य एक से अधिक प्रकार के रंगमंच पर अभिनीत किया जा सकता है। इसलिए समग्र लोकनाट्य के वर्गीकरण में अनेकानेक लोकनाट्यों का वर्गीकरण पिष्टपोषित भी हो सकता है।

नाट्यतत्वों के आधार पर राजस्थानी लोकनाट्यों का वर्गीकरण संभव नहीं है। प्रत्येक लोकनाट्य में सभी नाट्यतत्व अपने पूर्ण उत्कर्ष के साथ उपलब्ध होते है। अतः यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि अमुक नाट्य नृत्यप्रधान, कथोपकथनप्रधान, अभिनयप्रधान, वाद्यप्रधान है अथवा संगीतप्रधान है। उपर्युक्त कारणों से ही डा.सत्येंद्र का निम्नोक्त वर्गीकरण यथा–1. नृत्यप्रधान 2. नाट्यप्रधान 3. संगीतप्रधान 4. नाट्यवार्ता प्रधान, राजस्थानी लोकनाट्यों के लिए समीचीन हीं नहीं लगता।

नाट्यतत्व – कथोपकथन एवं काव्य की दृष्टि से देवीलाल सामर ने राजस्थानी लोक नाट्यों का वर्गीकरण किया है। लेकिन इस वर्गीकरण में राजस्थान की सभी लोकनाट्य विधाएं सम्मिलित नहीं की जा सकी है, विशेषतः स्वांगों को इस वर्गीकरण में सम्मिलित नहीं किया जा सका है।

पर्वो एवं उत्सवों के आधार पर राजस्थानी लोकनाट्यों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। अनेक लोकनाट्य किसी पर्व अथवा ऋतु विशेष पर अभिनीत नहीं होते। साथ ही बहुत ही कम पर्वो व विशिष्ट समारोहों पर लोकनाट्यों का प्रदर्शन होता है। इन लोकनाट्यों में मात्र धार्मिक नाट्यों की ही गणना की जा सकेगी। शेषनाट्यों की ही गणना नहीं की जा सकेगी, अतः शेषनाट्यों का वर्गीकरण अधूरा ही रहेगा।

उद्देश्य के आधार पर राजस्थानी लोकनाट्यों का वर्गीकरण ग्राह्य नहीं है। चूंकि यहां के अनेक लोकनाट्य किसी जाति विशेष के होते हुए भी उनको सामुदायिक रूप से ही आयोजित किया जाता है।

रंगशैली के आधार पर – इस वर्गीकरण में लोकनाट्य की रंगत और प्रदर्शनशैली को आधार माना जाता है। लेकिन राजस्थानी लोकनाट्यों में मंच प्रदर्शन, नाच तथा गायकी में बहुत ही कम अन्तर होता है। इस आधार पर ख्यालों का वर्गीकरण अवश्य संभव है, लेकिन स्वांग लोकनाट्य को इस आधार के अनुसार किसी वर्ग में नहीं रखा जा सकता।

शिल्प प्रक्रिया – लोकनाट्यों के स्वरूप, स्वभाव आशय धर्म एवं विशेषताओं में शिल्प प्रक्रिया के कारण भिन्न भिन्न विशेष प्रकृतियां उत्पन्न हो गई है। अतः सहज में उनके वर्ग बनाए जा सकते है। शिल्प प्रक्रिया के आधार पर वर्गीकरण की वैज्ञानिकता समझी जा सकती।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि लोकनाट्यों के वर्गीकरण हेतु शिल्प प्रक्रिया का आधार ही सर्वाधिक उपयुक्त एवं वैज्ञानिक हो सकता है। राजस्थान लोकनाट्यों का विविधमुखी एवं विविध प्रयोजनमय होना ही उसके वर्गीकरण के लिए एक कसौटी उत्पन्न कर देता है। शिल्प के दृष्टिकोण से वर्गीकरण की वैज्ञानिकता स्वयंसिद्ध है क्योंकि इसमें अध्ययन और विश्लेषण की असीमित संभावनाएं विद्यमान रहती है। मोटे तौर पर राजस्थानी लोकनाट्यों को चार रूपें मे वर्गीकृत किया जा सकता है – 1. लीलाएं 2. स्वांग 3. ख्याल 4. प्रकीर्ण।

लीलाएं – धार्मिक एवं पौराणिक आख्यानों में आए, लोक जीवन में प्रतिष्ठित अवतारों के चरित्र के अभिनय एवं गुणगान को 'लीला' कहते हैं। राजस्थान में लीलाओं का बहुत प्रचलन है तथा लीलाओं के यहां अनेक रूप प्रचलित है। यथा रामलीला, रासलीला, समया, गवरी, सनकादिकों की लीलाएं, गरासियों की गौर लीला, रावलों की रम्मत और रासधारी आदि।

रासलीला में मुख्यतः कृष्ण जीवन की विविध लीलाएं प्रदर्शित की जाती है। राजस्थान में इस लीला का विकास दो रूपो में हुआ है– मंदिरों में तथा लोकजीवन में। मंदिरों में गीति नाट्य के रूप में इसे सर्वप्रथम वल्लभाचार्य ने प्रचारित किया तथा लोकजीवन में रासलीला का प्रारंभ सर्वप्रथम कुमावतों ने किया।

रासलीला में कलातत्व की प्रधानता होती है। इसमें नृत्य एवं संगीतपक्ष की प्रबलता होती है। आसन पर बैठने का अधिकार इसमें केवल स्वरूप धारण करने वालो को ही होता है। रासलीला के लिये शामियाना तानकर मंच की अच्छी व्यवस्था की जाती है। रासलीला के प्रवर्तक 'हित हरिवंश जी' माने जाते है।

रामलीला के विविध रूप राजस्थान में देखने को मिलते है। बिसाऊ, पाटूंदा तथा भरतपुर की रामलीलाएं प्रसिद्ध है। बीसाऊ में लगभग सौ वर्षो पूर्व सर्वप्रथम गूगामेंडी पर जमाना श्यामण ने यहां की रामलीला का सूत्रपात किया था। पाटूंदा की रामलीला हाडौती बोली में प्रदर्शित की जाती है। फुलेरा की रामलीला में राम विवाह की भव्य

सारी निकाली जाती है। जयपुर में रामलीला की अनेक मण्डलियां है। ये सभी लीलाएं गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस को आधार मानकर प्रदर्शित की जाती है।

समया – यह 'समय' का अपभ्रंश रूप है। इस नाट्यशैली में रामजीवन के महत्वपूर्ण 'समयों का अभिनय' प्रस्तुत किया जाता है। इसमें नृत्य, गीत एवं वाद्यों का प्रचुर प्रयोग होता है। संवादों में सभी रसों का प्रयोग किया जाता है। दृश्य विधान साधारण एवं सरल होता है। इसमें अभिनय का कोई निश्चित समय नहीं होता।

सनकादिकों की लीलाएं – कृष्णा राधा के युगलस्वरूप एवं रास आदि लीलाओं का उत्सव घोसुंडा में आश्विन शुक्ला त्रयोदशी से पूर्णिमा तक किया जाता है। इन दिनों यहां बड़ा भारी मेला रहता है। अवतारों के मुंह पर मुखौटे धारण किये जाते है। अन्तिम दिन पूर्णिमा को रासलीला खेली जाती है। बंसी में सनकादिकों की लीलाएं कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को प्रदर्शित की जाती है। इनमें गणेश, ब्रह्मा, कालिका, गौरा काला, हिरण्यकश्यप, नृसिंह अवतार आदि की झांकियां निकाली जाती हे। लीलाओं के ये आयोजन ग्राम्य जीवन मे सरलता एवं सजीवता उत्पन्न करते हैं।

गरासियों की गौर – वैशाखशुक्ला चतुर्दशी को आदिवासी गरासिये भरव्यारे नामक विशाल चौक में गणगौर का आयोजन करते है जो 'भटव्योर की गणगौर' नाम से प्रसिद्ध है। लकडी के बने गौर और ईसर को गरासिया औरतें सिर पर उठाकर नाचती है। इनके बीच में एक पुरूष मुखौटा लगा हाथ में अपनी मूंछों परताव देता हुआ दूसरे हाथ से तलवार घुमाता है। गौर को रिझाने हेतु अनेक झांकियां तथा खेल तमाशें प्रदर्शित किये जाते है। यथा हाथी की सवारी, बोहरा बुढ़िया का खेल कच्छी घोड़ी के प्रदर्शन आदि।

रावळां की रम्मत – रावल जाति के लोग जो कि चारणों के याचक होते हैं, अपने यजमानों को रिझाने हेतु नाना प्रकार के स्वांग धारण कर उनका मनोरंजन करते है। यह स्वांग ही रम्मतों के रूप में जाने जाते है। प्रारंभ में ये केवल देवी की सेवा पूजा ही करते थे। इन रम्मतों में रावल जाति का समस्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरातल व्यंग्य एवं विनोद की सराणियों में डूबता उतरता दृष्टिगत होता है, इन रम्मतों में हर प्रकार का स्वरूप, स्वांग तथा तमाशा देखने को मिलता है।

11.5 रम्मतों का विकास

प्रारंभ में बीकानेर में वीरपूजा की भावना से प्रेरित गीतों की प्रधानता थी, जिसे समूहरूप में गाते थे। इनमें टेर भी होती थी। इस प्रकार इन चरित्रनायकों की स्तुति से कालांतर में रम्मतों का विकास हुआ होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। गीतों की प्रमुखता के बाद स्वांग बने होंगे। बाद में ऐतिहासिक चरित्र से भी रम्मतों का विकास हुआ होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। गीतों की प्रमुखता के बाद स्वांग बने होंगें। बाद में ऐतिहासिक चरित्र भी रम्मतों के विषय बना लिये गए होंगे। बीकानेर की रम्मतें अब नृत्य एवं अभिनयप्रधान अधिक देखी जाती है।

रम्मतों में सभी जाति वाले भाग ले सकते हैं। इनके आयोजक मुख्य रूप से पुष्करणा ब्राह्मण होते है। रम्मतप्रदर्शन के एक दिन पहले रात्रि को बभौली के रूप में रम्मत की छीकी निकाली जाती है। रम्मतों में सारंग सोरठ, देश, मांड तथा खमाज राग की प्रधानता दृष्टिगत होती है। वाद्यों में नगाड़ा, हारमोनियम सारंगी, मजीरा, ढोलक, झांझ तथा खड़ताल आदि का प्रयोग किया जाता है। तालों में दीपचंदी, दादरा और तीनताल बजते हैं। रम्मतों का रंगमंच अत्यन्त साधारण होता है। तख्ते रखकर उस पर दरी बिछा दी जाती है। कहीं कहीं धरती पर रेत में ही प्रदर्शन किया जाता है।

बीकानेर में सभी मोहल्लो की रम्मते अपने अपने चौक एवं गुवाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। जैसे आचार्यो का चौक, मूंदड़ों का चौक, व्यासों का चौक, हर्षो का चौक आदि। सभी मोहल्लों की रम्मतों की अलग अलग विशेषताएं है। कहीं लावणियों की प्रधानता तो कहीं चौमासों की। कई रम्मत स्वांगप्रधान है तो कोई नौटंकी प्रधान।

जैसलमेरी रम्मतों के लिए तख्तों का मंच बनाया जाता है। उस पर बहुत ही सुन्दर ढंग से बांस बल्लियां लगाकर छतरीनुमा महल तैनात किया जाता है। लोक रंगमंच की एक विशेषता होती है कि यह मंच अभिनेताओं के प्रदर्शन के लिए नहीं होता। प्रदर्शन तो रंगभूमि से उतरकर जमीन पर किया जाता है। मंच सिर्फ अभिनेताओं के बैठने के लिए ही होता है।

जैसलमेर में रम्मतें प्रायः सेवग एवं ब्राह्मण लोग करते हैं। इन रम्मतों को होली के बाद करना अच्छा शकुन माना जाता है। पात्रों की पोशाकें बहुत सुंदर होती है। इनकी गायकी में पीलू, खमाच, तथा भैरवी आदि रागों का अधिक प्रयोग किया जाता है। जैसलमेर में भृर्तहरि, सती सावित्री, पूरणमल भगत आदि की रम्मतें बड़ी लोकप्रिय रही है। इन रम्मतों में कवित, शेर तथा दोहा छंद प्रयुक्त किये जाते है।

रासधारी – इसके मूल में रासलीला प्रधान रही है। राजस्थान में हाड़ौती एवं मेवाती क्षेत्र पर ब्रज की रासलीला का प्रभाव पड़ा। फलतः राजस्थान में भी इनके दल तैयार हो गए। कृष्ण जीवन से संबंधित लीलाएं यथा कालीदहनलीला, ऊखलबंधनलीला, माटीखावनलीला, गोवर्द्धनलाल, पनघटलीला आदि के साथ ही लोकप्रियसिद्ध धार्मिक और पौराणिक आख्यानों से सम्बन्धित अन्य लीलाएं भी प्रारम्भ कर दी गई। यथा–भक्त प्रहलादलीला, राजा हरिश्चन्द्रलीला, ध्रुवलीला, रामदेवलीला, शामी महाराज की लीला आदि। इन प्रदर्शनों से कूमावत जाति के लोग सर्वाधिक प्रभावित हुए। सर्वप्रथम गोडवाड में रासधारी लीला का प्रारंभ हुआ। रासधारी को मेवाड के बरोड़िया निवासी मोतीलाल ब्राह्मण ने ख्यात के रूप में प्रदर्शित हुआ है। उनके द्वारा रचित रामलीला, चंद्रावळ लीला, हरिशचंद्र लीला आदि ख्याल बड़े प्रसिद्ध है।

गवरी – यह भीलों का मेरूनाट्य है। इसका मुख्य आधार शिव भस्मासुर की कथा है। राखी के बाद इसका प्रदर्शन सवा महिने तक चलता है। गांव का कोई चौराहा अथवा खुला स्थाई इसका रंगमंच होता है जहां दिनभर इसका अभिनय चलता है।

अन्य लीलाएं – अन्य लीलाओं में 'कानूगूजरी' एवं 'नृसिंह लीला उल्लेख्य' है। 'कानगूजरी' में गूजर लोग अपनी मुखसज्जा एवं स्वरूपधारणा विचित्र ढंग से करते हैं। वह रूप आदमी का है अथवा औरत का यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। यह स्वरूपिया रावणहत्थे के सहारे राधाकृष्ण के अति आकर्षक गीत गाता है। यह खेल भीलों में भी प्रचलित रहा है। कानगूजरी में एक कान्हा बनता है व एक गूजरी बनती है। दोनों ही माखन चोरी की लीला प्रदर्शित करते हैं।

नृसिंह चतुर्दशी को राजस्थान में अनेक स्थानों पर नृसिंह लीला की झांकियां प्रदर्शित की जाती है। इन झांकियों का मुख्य उद्देश्य असत्य पर सत्य की विजय दिखाना होता है।

11.6 स्वांगों के रूप और प्रकार

स्वरूप धारण करने को स्वांग कहते है। इसे मूल का अनुकरण भी कह सकते हैं। धोखा देने के लिए जो ढोंग या आडम्बर के रूप में वेश परिवर्तन किया जाता है, वह भी स्वांग ही कहलाता है। राजस्थान में कई प्रकार के स्वांग देखने को मिलते है यथा–

(क) विवाहोत्सवों पर प्रदर्शित किये जाने वाले स्वांग

(अ) ख्याल झामटड़े – ये स्वांग विवाहोत्सवों पर स्त्रियों द्वारा प्रदर्शित किये जाते है। विवाह के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों पर महिलाओं द्वारा बड़े सुन्दर एवं रोचक गीत गाए जाते हैं। लग्न के दिन ज्यों ज्यों नजदीक आते हैं, गीतों की महफिल ख्याल, तमाशों तथा विभिन्न स्वांग प्रहसनों के रूप में परिणित होती देखी जाती हैं। ये प्रहसन कई रूपों में होते हैं। ये रात्रि को दस बजे से प्रारंभ होकर बारह एक बजे तक चलते है। इन झामटड़ों के नाम है– घूघरी बांटना, तेजडोरा भैंस, भंगज, माताजी पूजना, टीपणों, महादेव पार्वती, सास–बहू आदि।

इन ख्याल झामटड़ों की साधारण वेशभूषा भी अपना वैशिष्ट्य लिये होती है। स्त्रियों का घाघरा ही पीछे की ओर खसोल लेने से धोती बन जाती है और साड़ी साफे का रूप ले लेती है। इनमें अश्लील तत्वों की प्रधानता रहती है।

(आ) टूंटिया–टूंटकी – विवाह में जब दूल्हे की बारात लड़की वालों के यहां चली जाती है, तब पीछे से वरपक्ष की स्त्रिया वरवधू की नकल रूप में जो स्वांग प्रदर्शित करती है उसे टूंटिया–टूंटकी अथवा खोड़्या निकालना कहते हैं। एक औरत दूल्हा तथा दूसरी दुल्हन बनती है तथा उनका नकली विवाह करवाया जाता है। इनका उद्देश्य वास्तविक वर वधू की आधि व्याधि को टालना होता है।

(इ) चीरा स्वांग –विवाहोत्सवों पर वेश्याएं पुरूष का वेशधारण कर नृत्य की विशेष कलाएं प्रस्तुत करती है। इस समय वे चीरा नामक विशेष बंधेज की पगड़ी पहनती है। जोधपुर, सुजानगढ़, रामगढ़ तथा चुरू में यह विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है। इसमें नृत्य के साथ तबले तथा सारंगी का संगम दर्शनीय है।

(ख) होली पर प्रदर्शित किये जाने वाले स्वांग – होली के चार पांच दिन पहले से लेकर चार पांच दिन बाद तक स्वांगों का प्रदर्शन चलता रहता है। इनमें निम्न स्वांग प्रसिद्ध है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(अ) उदयपुर के स्वांग – धूलड़ी के दिन उदयपुर के नाना प्रकार के स्वांगों की परम्परा थी। इस दिन तोलिये की ओर से डाकी की सवारी निकाली जाती थी जिसमे किसी मनचले व्यक्ति को उल्टी खाट पर बिठाकर मिट्टी आदि के लेप द्वारा उसे विकृत बना दिया जाता था। तत्पश्चात् उसकी सवारी नगर में निकाली जाती थी।

(1) जमराबीज को रात्रि के नौ बजे तीज के चौक में होली धड़े पर मीणां औरतें रीछ तथा शेर का स्वांग भरती थी। अपने हाथों में मूसल लिये वे भीड़ पर उछल पड़ती थी। इन्हें 'मीणियों के स्वांग' कहते है।

(2) पंचमी को सायंकाल पांच बजे बुद्ध भगतण के दरवाजे से ढोला मारू की सवारी निकाली जाती थी। यह आयोजन सांडीवाळ मुसलमान करते थे। यह सवारी ऊंटों पर निकाली जाती थी। इसमें एक ढोला तथा मारूणियां बनती थी। ढोला राजकुमार की पोशाक धारण करता था, मारूणियों के हाथों में रंगभरी बोतलें रहती थी। यह सवारी महलों से राणाजीको मुजरा करने जाती थी।

(अ) शेखावाटी की गींदड़ – प्रहलाद की अग्निरक्षा की खुशी में गीदड़ नचाई जाती है। इसके लिए एक विशेष प्रकार का सुसज्जित मण्डप बनाया जाता है जिसे गीदड़ स्थल कहते है। यह स्थल बांसों से बनाया जाता है। गींदड़ के स्वांगों में राधा कृष्ण परी, भूत, सेठ, जाट देवर, भोजाई आदि के स्वांग प्रमुख हैं। इनके साथ नगाड़े बजाए जाते हैं। पांवों में घुंघरू तथा हाथों मे बेंत लिये मण्डप के चारों ओर गोलाकार रूप में नर्तकों की गैरमण्डली व्यवस्थित होती जाती हैं। शनैः शनैः नृत्य में तेजी आती है। होली के दिनों में सारा शेखावाटी गींदडमय लगता है। इसमें सौ, दो सौ तथा तीन सौ तक व्यक्ति भाग लेते हैं। राजस्थान में गींदड के प्रमुख स्थल लक्ष्मणगढ़, नवलगढ़, फतेहपुर, रामगढ़, सीकर, चुरू तथा रतनगढ़ आदि है।

(इ) बसी का जमराबीज का स्वांग – बसी में जमरे खांडने के बाद बारूद की भूंगलियों से होली थड़े पर जमराबीज का स्वांग प्रदर्शित किया जाता है। इसमें भाग लेने वाले सभी कलाकार 'गेरिये' कहलाते हैं। इसमें दो दल पहला 'खेड़ा' तथा दूसरा 'सेर' बन जाते हैं। इसका कारण है बसी का आधा भाग सेर कहलाता है। एक दल 'लक्ष्मीनाथ' तथा दूसरा दल 'खोड्या देव' की जय बोलता हुआ एक दूसरे पर टूट पड़ता है। सभी के हाथों में बारूद की भूंगलियां रहती हैं। बारूद की ये जलती हुई भूंगलिया एक दूसरे पर पिचकारी की भांति छोड़ी जाती हैं। बारूद का असर शरीर पर न हो इसके लिए प्रत्येक शरीर को थप्पड़ से ढककर उस पर चिकनी काली मिट्टी लगा लेते हैं। आदिवासी इसे देखने से विशेष रूचि लेते हैं।

(ई) सांगोद का न्हाण – किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर दस बारह दिन बाद उसका शोक भंग करने की क्रिया होती है, जिसे न्हाण का नाम दिया गया है। होलिका की मृत्यु के दस बार दिन बाद उसका शोक दूर करने का 'न्हाण' के रूप में इसका आयोजन होता है। कोटा रियासत में 'न्हाण' का आयोजन सर्वप्रथम हुआ था। यहां दो प्रकार के न्हाण प्रदर्शित किये जाते है। बाजार का न्हाण तथा खाड़े का न्हाण। चैत्र कृष्णा तृतीया चतुर्थी को बाजार तथा सप्तमी को खाड़े के न्हाण की सवारी निकाली जाती है। इन सवारियों में मुगल संस्कृति की झलक देखते को मिलती है। इनमें बादशाह की पालकियां सजाई जाती है, जिन्हें आदमी कंधे पर उठाए चलते है। न्हाण में 'चाचा बोहरा' का स्वागत मुख्य माना जाता है।

(उ) ब्यावर की बादशाह की सवारी – ब्यावर में होली के दूसरे दिन बादशाह की सवारी निकाली जाती है। उसमें दो बादशाह बनाए जाते है। दोनों के लिए दो पालकियां सजाई जाती हैं। उनके आगे बीरबल नाचता हुआ चलता है। जनता इन पर गुलाल की रंगवर्षा करती है। इसमें अलग अलग मोहल्लों की 'गेरे' अपने स्वांग प्रदर्शित करती है।

(ऊ) मारवाड़ी डंडियों के स्वांग – होली पर जोधपुर (मारवाड़) में डांडिया गेर खेली जाती है। उसमें उत्तम कोटि के स्वांग प्रदर्शित किये जाते है। पुरूष पात्र ही स्त्री का रूप धारण करते हैं तथा स्त्री पुरूष साथ जोड़े बना बनाकर गोलाकार रूप में डंडे बजाते हुए नृत्य करते हैं। इन स्वांगों में कोई सेठ सेठानी बनता है तो कोई राजा रानी। कोई ढोला मारू का स्वांग अथवा अन्यान्य स्वरूप धारण करते हैं। इसमें प्रमुख वाद्य नौपत होता है। 'किड़ी री किड़ी धूम' का घोष सम्पूर्ण वातवरण को नृत्य–संगीतमय बना देता है।

(ग) बालकों द्वारा विभिन्न पर्वो पर प्रदर्शित स्वांग

(अ) चौक च्यानणी – गणेश चतुर्दशी को बालकों द्वारा खुले चौक चानणी रातों में स्वांग प्रदर्शित किये जाते हैं। इसी कारण नाम चौक च्यानणी रखा गया है। इस दिन बालकवृंद अपने मुखारविन्द पर विभिन्न प्रकार के मुखौटे लगाकर स्वांग एवं झांकियां निकालते हैं। यह चतुर्थी चट्टा (डंडा) नृत्य के भी प्रसिद्ध रही है। इसी कारण इसे

चतड़ा चौक भी कहते हैं। इस दिन बच्चे गीत गाकर सनूह में नृत्य करते हैं। नगाड़े की चाल पर बच्चे चकरियां भरते हैं। शेखावाटी की चौक च्यानिणियां अधिक प्रसिद्ध है।

(आ) अक्षय तृतीया एवं 'रामासामा' के दिन प्रदर्शित स्वांग – अक्षय तृतीया (आखा तीज) के अवसर पर नन्हीं नन्हीं बालिकाएं वर वधू का स्वांग भरती है। इस समय ये बालिकाएं वरवधू के प्रायः सभी उपकरणों का प्रयोग करती है। इस प्रकार के स्वांग के माध्यम से सांसारिकता बोध का आनंद उठाने का प्रयास किया जाता है। दीपावली तथा होली के दूसरे दिन 'रामासामा' के दिन 12 से 16 वर्ष के बालक स्त्रियों के कपड़े पहनकर घूंघट निकालकर बड़ी बूढ़ी औरतों के पांव छूने जाते हैं जिसे 'पगैलागणां' कहते है। वृद्धाएं उन्हें अखण्ड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देती है। साथ ही 'पगैलगाई' के रूपए भी देती हैं। यह बालकों के मनोरंजन का उत्तम साधन है।

भांड – भडैती – जिन स्वांगों के प्रदर्शन व्यावसायिक होते हैं, वे भांडभडैती के रूप में माने जाते हैं। इन स्वांगों के अन्तर्गत बहुरूपियों की स्वांग झांकियां, कच्छी घोड़ियों के प्रदर्शन तथा भवाइयों की कलाबाजियाँ आदि आते हैं।

11.7 ख्यालों की परम्परा तथा उनके रूप

राजस्थान में ख्याल 200–250 वर्षों से प्रचलित हुए प्रतीत होते हैं। श्री अगरचंद नाहटा के अनुसार ख्यालों की पूर्व परम्परा मध्यकाल में खेले जाने वाले रास, चर्चरी, फागु आदि से हुई है। वे लिखते हैं कि 'जनसाधारण में जो मध्यकाल में चर्चरी, फागु आदि आयोजित किये जाते थे, वे पीछे से रमत, रामत, खेल, ख्याल के नये रूप में प्रगट हुए।'

ऐसा कहा जाता है कि 18 वीं सदी के प्रारंभ में आगरे के इर्द गिर्द एक नई कविता शैली प्रचलित हो चली थी जिसका नाम आगे चलकर ख्याल पड़ा।

सत्रहवीं शताब्दी में आगरे के निकट ख्यालों की एक लोकधर्मी परम्परा शुरू हुई जिसका क्षेत्र केवल काव्य रचना तथा किसी ऐतिहासिक तथा पौराणिक व्यक्ति से संबंधित काव्य रचना की प्रतियोगिता तक ही सीमित था। यही परम्परा प्रथम बार 18 वीं शताब्दी में राजस्थान में रंगमंचीय ख्यालों के रूप में परिवर्तित हुई जो आज अनेक रूपों में राजस्थान के जनजीवन को आल्हादित कर रही है। यह 'ख्याल' सर्वप्रथम कल्पना और विचारों से उत्पन्न कवित्वरचना का ही दूसरा नाम था। परंतु जब से यह रंगमंच पर खेल तमाशे का रूप धारण करने लगा, यह खेल या ख्याल कहलाया।

राजस्थान में अनेक प्रकार के ख्याल प्रचलित है जिनका सामान्य परिचय इस प्रकार है–

शेखावाटी ख्याल – इन ख्यालों की गायकी अत्यंत प्रसिद्ध रही है। फतहपुर निवासी प्रहलादीराम झालीराम पुरोहित ने लगभग 100 वर्ष पूर्व इन ख्यालों की प्रतिष्ठा की। इन ख्यालों का रंगमंच बिलकुल सादा अर्थात् साधारण तख्ते पर बिछायत कर चंदोवा तान दिया जाता है। वाद्यों के रूप में ढोलक, सारंगी, हारमोनियम व नगाड़ों का प्रयोग किया जाता है। साजिंदों के साथ टेरिये भी गाने लगे है। ख्याल की समाप्ति पर भैरूं की स्तुति की जाती है।

जयपुरी ख्याल – इन ख्यालों का प्रारंभ यहां के नरेश प्रतापसिंह (1835–1860) के समय में हुआ। प्रसिद्ध ख्यालकर्ता बंशीधर भट्ट ने अनेक ख्यालों की रचनाएं की, जिनमें 'गोपीचंद भरथरी एवं हीर रांझा' विशेष प्रसिद्ध हुए है। ये ख्याल वर्ष में केवल दो बार अभिनीत किये जाते है। होली व धुलंडी के दूसरे दिन तथा चैत्र कृष्णा अमावस्या को होने वाले मंचित जयपुर ख्यालों में राग रागिनियों की प्रधानता पाई जाती है। इनके लिए भी विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। जमीन पर ही बिछायत कर ऊपर शामियाना तान दिया जाता है।

कुचामणी ख्याल – इन ख्यालों के प्रवर्तक लच्छीरामजी थे। ख्याल में संदेशा लाने व ले जाने के लिए हलकारा होता है। कुचामणी ख्यालों का मंच त्रिदिश होता है। मंच सज्जा अत्यंत साधारण होती है। धरती पर बिछायत कर खेल प्रारंभ कर दिया जाता है। पात्र मंच पर आते ही अपना परिचय देता है तथा नृत्यमय अदायगी प्रस्तुत करता है। इन ख्यालों में मजाकिया पात्रों की बहुलता होती है। ढोलक, नगाडै, हारमोनियम, मंजीरे तथा सारंगी का ख्यालों में प्रयोग किया जाता है। इन ख्यालों की धुनें अत्यंत विलम्बित अर्थात् ठंडी होती है। इसी कारण इन ख्यालों को रोवणी धुन के ख्याल भी कहते है। कुचामणी ख्यालों में लोकगीतों की लोकप्रिय धुनों का बहुत सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है।

किशनगढ़ी ख्याल – किशनगढ़ी ख्यालों का कलापक्ष विशिष्ट होता है। इनमें गेय पक्ष की प्रधानता होने के कारण नृत्य पक्ष दुर्बल दृष्टिगत होता है। किशनगढ़ी धुनें बड़ी धीरे धीरे गाई जाती है, जिनमें एक एक शब्द स्पष्ट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उच्चरित होता है। इन ख्यालों के स्वर ऊंचे न होकर मध्यम होते है। इसी कारण गले को अधिक चीखना नहीं पड़ता। इन ख्यालो में रागों की विविधता के कारण एक ही राग की बार बार पुनरावृति नहीं होती। इनकी रंगतो में दर्शनीयता का विशेष प्रभाव होता है। इनमें रंगमंच को सजाया जाता है, मण्डप अच्छे ढंग से बनाए जाते हैं तथा पात्रों की वेशभूषा भी आकर्षक एवं चटकीली होती है।

मेवाड़ी ख्याल – यह ख्याल बड़े सरस स्वाभाविक एवं विशेष रूप से कोमल होते हैं। इन ख्यालों की वेशभूषा अत्यंत चित्ताकर्षक होती है। आंटेदार मेवाड़ी पगड़ियों पर चमचमाते सिरपेच एवं ओजस्विता के प्रतीक तुर्रा कलंगी, कीनारीदार लम्बा झग्गा, उस पर कमरबंध घेर घुमेरदार घाघरे, बाजूबंद, तिमणियों, कंदोरा तथा रखड़ी आदि अत्यंत सुन्दर आभूषणों से दर्शक तन्मय हो जाते हैं। इनमें स्त्री पात्रों का अभिनय पुरूष ही करते हैं। लेकिन उस पुरूष का सुन्दर एवं नृत्य में प्रवीण होना जरूरी होता है। इन ख्यालो में पूर्वाभ्यास की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि प्रायः सभी ग्रामवासियों को इन पदों का ज्ञान एवं स्मरण रहता है। इनकी अभिनय मुद्राओं से वे पूर्णरूपेण अवगत रहते हैं। मेवाड़ी ख्यालों के पद सारंगी एवं तबलों पर गांव के भाट बुलंद आवाज में गाते हैं जिसके अनुकरण पर अभिनेता नाट्य की भाव मुद्राएं प्रस्तुत करते हैं। इन ख्यालों के लिए किसी भी प्रकार के रंगमंच बनाने की आवश्यकता नहीं होती।

चिड़ावी ख्याल – इन ख्यालों में शास्त्रीयता का पुट बड़े सहज रूप सें दृष्टिगत होता है। इनमें कथा मुख्य नहीं होती वरन् पात्रों के वार्तालाप अधिक महत्व रखते है। इनमें रागों का वैशिष्ट्य मिलता है। इनमें सोरठ, देशजोगियां, कालिंगड़ा, भैरवी, विहाग तथा खमाज आदि रागों को लोकरागों के अनुरूप डालकर प्रयुक्त किया जाता है। दोहों का प्रयोग भी विशिष्ट तालों में किया जाता है। इन ख्यालों में गायकी एवं नृत्य की प्रधानता होती है, फलस्वरूप अन्य किसी प्रकार की कलात्मकता अथवा सजावट पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। गायक एवं वादक आपस में बड़े जोश में आकर प्रतिस्पर्द्धा (होड़) करते हैं।

अलीबक्षी ख्याल – मंडावर निवासी अलीबक्ष ने अपनी अलग ख्यालमंडली बनाई उसका एक कारण था। मंडावर में हाथरस की नौटंकी के मंच पर एक बार अलीबक्ष बैठ गए तो एक कलाकार ने उन पर व्यंग्य करते हुए कहा कि 'यह मंच तो सिर्फ ब्राह्मणों के बैठने के लिए ही है।' यदि आपको भी मंच पर बैठने का गुमान हो तो अपनी अलग नौटंकी खड़ी कर लीजिये।'' यह बात उनके ह्रदय को बेध गयी और उन्होंने संत गरीबदास से आशीर्वाद प्राप्त कर ख्याल रचना प्रारंभ कर दी। उसी आधार पर अपनी मण्डली बनाकर अलीबक्ष ने अपने रचे ख्यालों को प्रदर्शित करना प्रारंभ कर दिया। अलीबक्ष के लिखे दस ख्याल मिलते हैं – नल का बगदाप, अलपर का सिफतनामा, गुलबकावल फसावों आजाद, निहालदे, चंद्रावत महाराज, शिवदानसिंह का बारहमासा, नल का छड़ाव, कृष्णलीला तथा पद्मावत। इन ख्यालों के अलावा अलीबक्ष ने सैकड़ों भक्तिपरक भजन भी लिखे।

इन ख्यालों को अभिनीत करने हेतु अत्यंत साधारण रंगमंच बनाया जाता है। प्रायः तख्त बिछाकर ऊपर चंदोवा डाल दिया जाता है। उसके चारों ओर दर्शकगण बैठ जाते है। इन ख्यालों में भेंट, दोहा, सेंधु, ठमरी तथा झांझकों का प्रयुक्त किया जाता है। वाद्यों में ढोलक, नगाड़े, सारंगी, तबला, हारमोनियम आदि प्रमुख रूप से प्रयुक्त होते हैं। ख्यालों का प्रारंभ ईश स्तुति से किया जाता है। अलीबक्ष ठुमरियां लिखने में सिद्धहस्त थे। उनकी कृष्ण विषयक ठुमरियां अत्यंत प्रसिद्ध है।

माच के ख्याल – राजस्थान में माच के ख्याल अत्यंत लोकप्रिय रहे है। 'माच', मंच का अपभ्रंश रूप है। प्रायः मंदिर के सानिध्य में इन ख्यालों का आयोजन किया जाता है। इनके लिये मंच की बड़ी सुन्दर सजावट की जाती है। केले के स्तम्भों, वन्दनवारों एवं पुष्पों से मंच का सौंदर्य वर्द्धित किया जाता है। यह मंच तख्तों में निर्मित होता है तथा उसके ऊपर चांदनी तानी जाती है। मंच के तीन ओर दर्शकों के बैठने की व्यवस्था होती है।

अधिकांशतः ये माच वीर, प्रेम एवं भक्तिपरक विषयों से सम्बद्ध होते हैं। यथा–कामरेन का राजा हमीर पनफूला, आभलदे, खेमजी, मुनारानी, सदावृक्ष सारंगा, ढोलामरवण, हीर–रांझा, मोरध्वज, प्रहलाद, रामायण, धनुषयज्ञ और नागलीला आदि लोकप्रिय माच रहे हैं। माच के ख्यालों में अभिनय के समय पात्रों के पीछे पीछे हाथ में लंबी लंबी बहिया लिये हुए व्यक्ति चलते हैं। इन्हें प्रेरक कहते हैं। वे प्रेरक उन पात्रों को उनके हिस्से का अंश पढ़कर सुनाते हैं जिसे पात्रगण साज के अनुसार अभिनीत करते हुए आगे बढते है। इनमें संगीतात्मक संवादों की प्रधानता होती है एवं दोहों एवं चौबोलों का प्रयोग किया जाता है। अभिनय के समाप्त हो जाने पर उन माचों के अभिनेताओं का बड़े ठाठ बाट से जुलूस निकाला जाता है। इनका अभिनय रात्रि में देर से प्रांरभ होता है तथा प्रहर दिन चढ़े तक चलता रहता है।

कड़ा ख्याल – ख्यालों की वीरतापरक शैली को कड़ा ख्याल कहते है। इसमें एक व्यक्ति पहले किसी लोककथा को गाता है और उसके अनुकरणकर्ता का पूरा समह उसकी पुनरावृति करता है। इसकी ट्रेक पकड़ने के लिए जिन नगाड़ों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें बड़े जोर से कड़कड़ाहट करते हुए बजाना पड़ता हैं इसीलिये इन ख्यालोंका नाम 'कड़ा' ख्याल पड़ा। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'पृथ्वीराज का कड़ा ख्याल' है।

फलौदी के ख्याल – फलौदी में ख्यालों को रम्मते कहते हैं। फलोदी में हीर रांझा और भक्त पूरणमल की रम्मतें अथवा ख्याल विशेष रूप से प्रचलित हैं। इन ख्यालो में विशेषकरण से ढोलक का प्रयोग किया जाता है। तथा साथ ही नगाड़े भी बजते हैं। इन रम्मतों का अभिनय पुष्करणा समाज विशष रूप से करते हैं। यहा कुछ व्यावसायिक रम्मते करने वाले हैं। साथ ही शौकियां रम्मत करने का भी चलन है। इसमें मंच की रचना भी की जाती है।

अलवर के ख्याल – अलवर में लोकनाट्यों को रम्मत एवं ख्याल दोनों ही नामों से पुकारा जाता है। इन ख्यालों में अलवर के लोगों की बहुत अधिक रूचि है। इसी कारण अलवर क्षेत्र विशेष के ख्याल अलग से प्रचलित हो गए। ये लोग बहुत ऊंची आवाज में बड़े जोश से गाते है। यहां पूरणमल के ख्याल ने विशेष ख्याति अर्जित की है। अलवर में ख्यालों के कलाकारों की अच्छी संख्या प्राप्त है। उनमें थारिया (मुसलमान) तथा मानिया (जोगी) विशेष प्रसिद्व है। ख्याल के खिलाड़ी नारायण गूजर, सीलूनाथ, रंगीलाल, हरीराम आदि।

झालावाड़ के ख्याल – 'माच' के ख्यालों की विशेष्ता यह है कि यह मंदिर के सानिध्य में होते है तथा मंदिर पर चढ़कर सूत्रधार स्तुतिपरक छंद गाते है, जिसे अभिनेता मंच पर खड़े होकर दोहराते है। डा.कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह ने इन ख्यालों का परिचय इस प्रकार दिया है, ''झालावाड़ में देखा कि एक व्यक्ति कदाचित् सूत्रधार मंदिर के ऊपर खड़ा होकर, दोहों में गणेशादि देवताओं की वंदना करता है, जिसमें मंच पर खड़े होकर सभी अभिनेता दोहराते हैं।'' इसका प्रारंभ रात्रि में देर से होता है तथा प्रहर दिन चढ़े तक यह चलता रहता है। इसके संवाद संगीतात्मक होते हैं तथा दोहां तथा चोबोलों का इनमें प्रयोग होता है। इनमें मोरध्वज, भक्त प्रहलाद, राजा हमीर तथा ढोलामारू आदि लोकनाट्य लोकप्रिय रहे है। इन ख्यालों में प्रेम मार्ग के त्याग, कष्ट एवं त्याग की अत्यंत स्वाभाविक एवं हृदयग्राही अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है।

कोटा के ख्याल – कोटा के ख्यालों की अपनी विशिष्ट एवं मौलिक शैली है। यहां कथा गाता हुआ एक आदमी जो प्रमुख अभिनेता होता है, दर्शकों की मण्डली के बीच में किसी पुरानी राजस्थानी गाथा का संक्षेप में वर्णन करता हुआ नाटकीय स्थल पर जाता है और अभिनय करता है। इसके कथोपथन भी संगीतप्रधान अथवा कविता में होते हैं। नाटकीय मण्डली के दो तीन अभिनेता दर्शकों के मध्य बैठे होते हैं। वे मुख्य अभिनेता की टेक की पुनरावृत्ति, ताल, लय एवं स्वर में करते है। अभिनेताओं के पांवों में घुंघरू बंधे रहते हैं। जमीन पर ही ये लोग अभिनय करते हैं। इनकी भाषा ठेठ राजस्थानी होती है। इनमें ढोलक तथा मंजीरे का प्रयोग किया जाता है। कोटा के ख्यालों में गोपीचंद भरथरी, ढोला–मारवण, मोरध्वज, प्रहलाद चरित्र, ध्रुवलीला तथा हीर रांझा आदि के ख्याल अधिक लोकप्रिय है।

तुर्रा कलंगी के ख्याल – इन ख्यालों की उत्पति काव्यसर्जना से हुई है। प्रारंभ में इन ख्यालों में काव्य प्रतियोगिता की ही प्रधानता थी। बाद में लोकनाट्य का रूप बना। तुखनगीर एवं शाहअली नामक संतों द्वारा इन ख्यालों का बीजारोपण माना जाता है। तुखनगीर गुंसाई थे तथा शाहअली फकीर थे, जो दिल्ली तथा पूना की ओर के थे। एक बार उनकी काव्य प्रतियोगिता में राजा भी शामिल हुआ। उसने तुखनगीर को तुर्रा दिया तथा शाह अली को कलंगी दी। तुर्रावालों का निशान भगवां होता था और कलंगी वालों का हरा। कलंगी के समर्थक मुसलमान लोग हुए तथा तुर्रा के हिन्दू लोग हुए। इनमें आमने सामने बैठकर लावणीबाजियां हुआ करती थी। उनके विषय शिव तथा शक्ति रहे। तुर्रा वाले शिव के समर्थक थे तथा कलंगी वाले शक्ति के। ये ख्याल काव्यप्रधान होने से इनमें अनुप्रासों, दग्धाक्षरों की टाल, काव्य सौन्दर्य अर्थात् कलापक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। अनेक प्रकार के छंद इनमें प्रयुक्त हुए है, जो 24 , 20 तथा 12 मात्राओं के है। इनकी लावणियों के नाम इस प्रकार है – जकड़ी, सिंहाविलोचन, लंगड़ी, सनई वशीकरण, छोटी कड़ी आदि अनेक छंद उर्दू, फारसी तथा हिन्दी में हैं। इन्हीं लावणियों ने बाद में माच का रूप ले लिया। इनमें चंग तथा डफली का प्रयोग किया जाता है।

तुर्रा कलंगी के ख्यालों के लिए जमीन से लगभग पांच फीट ऊंचा नीचा मंच बनाया जाता है, जिसे फूल, पत्तों तथा रंगीन वस्त्रादि से अत्यंत अभिनव रूप से सुसज्जित किया जाता है। मंच पर दोनों ओर दो ऊंचे झरोखे बनाए जाते है जिनमें नीचे उतरने के लिए बांस की सीढ़ियां लगा दी जाती है। एक झरोखे से पुरूष पात्र गीत गाते हुए तथा अभिनय करते हुए नीचे मंच पर उतरते हैं तथा दूसरे झरोखे से स्त्री पात्र। मंच के ऊपर ख्याल लेखक तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रमुख गायक बैठ जाते हैं। मुख्य मंच के बाई और साजिंदों के बैठने हेतु एक छोटा मंच और बनाया जाता है। जनता मंचों को बनाने व सजाने में बहुत रूचि लेती है।

पात्र झरोखे से उतरकर मुख्य रंगमंच पर जाते हैं तथा एक दूसरे से संवाद करते हुए नृत्य मुद्राओं में अपनी अपनी जगह पलटते हैं। नृत्यों की भावभंगिमाएं बड़ी सरल एवं साधारण होती है। इनमें साज, गाने वालों के साथ गीत समाप्त होने के बाद बजते हैं। इनमे 15 प्रकार की धुनें काम मे ली जाती है। रागों में प्रायः कालिंगड़ा, सोरठ, वागेश्वरी आदि का समयानुसार प्रयोग होता है। ये ख्याल रात्रि में नौ बजे से प्रारंभ होकर सुबह नौ बजे तक चलते हैं। वाद्यों में शहनाई, सारंगी तथा हारमोनियम बजता है। तालों में कहरवा, दादरा तथा तीनताल आदि प्रयुक्त होती है। इन ख्यालों ने साधारण एवं अशिक्षित जनता में सुरूचिपूर्ण साहित्य, कला एवं संगीत का प्रचार बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

राजस्थान में तुर्रा कलंगी के ख्यालों की परम्परा लगभग 200 वर्षो से प्रचलित है। सर्वप्रथम चित्तौड़ तथा घोसुंडा के आसपास इनके प्रदर्शन आयोजित किए गए थे। आज भी इन स्थानों पर तुर्रा कलंगी के अखाड़े है।

इन ख्यालों के प्रदर्शन जहां भी करने होते हैं, वहां एक मास पहले खम्बा गाढ़कर उस पर अपने अखाड़े की झंडी लगा दी जाती है। इस खंभे पर एक कागज भी चिपकाया जाता है। उस पर प्रदर्शित होने वाले ख्याल का नाम, प्रदर्शन की तिथि, ख्याल का दल तथा उस्ताद प्रमुख कलाकारों से संबंधित समस्त सूचनाएं लावणियों के रूप में उल्लेखित होती है।

नौटंकी ख्याल – इन ख्यालों अथवा लोकनाट्यों के विषय में अनेकानेक मत प्रचलित है। लोक में एक किंवदंती है कि पंजाब के बादशाह की एक अत्यंत रूपमती शाहजादी थी जो केवल नौटंकीभर आहार ही ग्रहण करती थी। वह फूलों से प्रतिदिन तुलती थी। नौ टकाभर आहार ग्रहण करने के कारण यह शहजादी लोकजीवन में ''नौटंकी'' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। एक बार एक पंजाबी युवक ने अपनी भाभी का यह ताना सुनकर कि, ''बड़े हुक्म व हाजरी चाहने वाले बनते हो तो नौटंकी ब्याह कर क्यों नहीं ले आते।'' वह नौटंकी को प्राप्त करने हेतु जनाना वेश में नौटंकी के महल में चला गया। नौटंकी ने अपने ही समान भाव एवं रूपरंग वाली को देखकर उसे अपनी सहेली बनाकर महल में रख लिया। रात्रि में नौटंकी में जब कामभावना व्याप्त हुई तो उसने अपनी सहेली से कहा कि ''यदि इस समय कोई पुरूष होता तो कितना अच्छा रहता?'' उस समय युवक अपना जनाना वेश त्यागकर असली रूप में आ गया। उस रात्रि को दोनों एक ही सेज पर सोये। सुबह मालिन ने जब नौटंकी को फूलों से तोला तो उसका वजन बढ़ा हुआ पाया। बादशाह को इस बात का पता चला तो वह आग बबूला हो गया। उसने अपनी पुत्री को वजन बढ़ने का कारण पूछा। नौटंकी ने अपने पिता को सत्य बात कह सुनाई। बादशाह ने युवक को सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया। नौटंकी भी पुरूष वेश धारणकर वध स्थल पर पहुंच गई। जल्लादों को ज्यों ही हुक्म मिला, नौटंकी मर्दाना वेश उतारकर असली रूप में आ गई। वह अपने पिता से कहने लगी कि 'या तो आप इस युवक को क्षमा कर दीजिए अन्यथा मुझे भी फांसी दे दीजिए।' पिता ने पुत्रीस्नेह के वशीभूत होकर उस युवक को क्षमा कर दिया तथा तत्काल ही उसके साथ नौटंकी की शादी कर दी। इन लोकनाट्यों में नौ प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। इसलिये भी इनका नाम 'नौटंकी' पड़ा। कई विद्वानों का विचार है कि इन लोकनाट्यों में नौ प्रकार के नक्काड़ों का प्रयोग किया जाता था, इसी कारण यह नौटंकी अथवा इन्हें आज भी नक्काई बाजी के ख्याल कहते है।

पंजाब की नौटंकी की यह प्रेमाख्यानक कथा इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि इस कथा का आधार लेकर कई ख्याल प्रभावित हुए। राजस्थान में नौटंकी की ख्यालों का प्रचलन सर्वप्रथम भरतपुर तथा डींग में भुर्रिलाल ने किया। उसके समकालीन मुरलीधर हरनारायण का भी इस समय नौटंकी का शौकिया दल था। इन दोनों ने लिखे नौटंकी, लक्ष्मण शक्ति, रूक्मिणी–मंगल, ढोलामारू, लवकुशकाण्ड तथा राहगीर नामक ख्याल बहुत प्रसिद्ध हुए।

नौटंकी की ख्यालों को पेशेवर बनाने का श्रेय नत्थाराम को है। उन्होंने अपनी स्वयं की नौटंकी मण्डली प्रारंभ की। नत्थाराम ने लगभग 35 ख्यालों की रचना की और इन्हीं ख्यालों ने नौटंकी को इतना अधिक लोकप्रिय बनाया। भरतपुर में सबसे अधिक नौटंकियां है। इसके अलावा, कामा, धौलपुर, बसेड़ी, बांसी, पहाड़पुर, रूपवास, मोरेसा, राजेड़ी तथा आकोश आदि स्थानों में नौटंकी ख्यालों के प्रमुख अखाड़े है। इधर प्रत्येक बारात में नौटंकी ले जाने की प्रथा सी पड गई थी। जिस बारात में इसका आयोजन नहीं होता था, उसे हेय तथा नामर्द बारात कह कर खिल्ली उड़ाई जाती थी। नौटंकी में दोहा, बेहरे, शिकस्त, लावणी सदी, लावणी लुंगड़ी, कड़ा दोबोला, चोबोला, कव्वाली, गजल,

दादरा तथा ठुमरी आदि राग रागिनियां गाई जाती है। वाद्यों में ढोलक, नक्काड़ा ढफली, सारंगी तथा चिंकारा आदि का प्रयोग किया जाता है।

बीकानेरी रम्मते– बीकानेर एवं जैसलमेर में ख्यालों अथवा लोकनाट्यों को 'रम्मत' अथवा रामत कहते है। ख्याल अथवा लोकनाट्य प्रदर्शित करने वालों को रामतिया या रमतिया कहते है। इन्हीं शब्दों का आगे चलकर रम्मत अथवा रामत के रूप में विकास हुआ। इनका आयोजन होली के आसपास फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से लेकर चतुर्दशी तक किया जाता है। इन दिनों बीकानेर के सभी प्रमुख मोहल्लों में रम्मतों को लेकर आपसी प्रतिस्पर्धा चलती है।

प्रारंभ में बीकानेर में वीरपूजा की भावना से प्रेरित गीतों की प्रधानता थी। उसे समूह रूप में गाते थे व उनमें टेर भी होती थी। इस प्रकार इन चरित्रनायकों की स्तुति का कालान्तर में रम्मतों के रूप में विकास हुआ होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। गीतों की प्रमुखता के बाद स्वांग बने होंगे, बाद में ऐतिहासिक चरित्र भी रम्मतों के विषय बना लिये होंगे। बीकानेर के ख्याल अब नृत्य एवं अभिनयप्रधान होते जा रहे हैं।

बीकानेर में रम्मत के प्रसिद्ध अखाडों के नाम इस प्रकार है – आचार्यो का चौक, मूंदड़ों का चौक, व्यासों का चौक, हर्षो का चौक, कल्लों की गुवाड़, दर्जियों की गुवाड़ आदि। इनमें आचार्यो के चौक की रम्मत 'ख्याल' के नाम से प्रदर्शित की जाती है तथा अन्य सभी रम्मतें अपने अपने चौक एवं गुवाड़ के नाम से प्रचलित है। सभी मोहल्लों की रम्मतों की अलग अलग विशेषताएं है। कहीं लावणियों की प्रधानता है तो कहीं चौमासों की। कोई रम्मत स्वांग प्रधान है तो कोई नौटंकी प्रधान। इस दृष्टि से आचार्यो के चौक की अमरसिंह राठौड़ की रम्मत, बारह गुवाड़ की हिड़ाउमेरी की रम्मत, व्यासों के चौक की लावणी तथा चौमासाप्रधान रम्मत आदि प्रसिद्ध हैं।

रम्मतों में सभी जाति वाले भाग ले सकते है। रम्मत प्रदर्शन के एक दिन पहले रात्रि को बनौली के रूप में रम्मत की छीकी निकाली जाती है। रम्मतों में सारंग, सोरठ, देश, मांड तथा खमाज राग की प्रधानता दृष्टिगत होती है। वाद्यों में नगाड़ा, हारमोनियम, सारंगी, मंजीरे, ढोलक, झांझर तथा खड़ताल आदि का प्रयोग किया जाता है। तालों में दीपचंदी, दादरा और तीनताल बजते हैं। रम्मतों का रंगमंच अत्यंत साधारण होता है। तख्ते रखकर उस पर दरी बिछा दी जाती है। कहीं कहीं धरती पर रेत में ही प्रदर्शन किया जाता है अथवा कहीं पात्रों के बैठने हेतु बैंच तथा कुर्सियां रख दी जाती है। प्रारंभ मे सभी पात्र एक साथ मंच पर आकर गणेशवंदना करते हैं। तत्पश्चात् प्रसंग से संबंधित पात्र आकर अपना ख्याल प्रदर्शित करते है।

जैसलमेरी रम्मतें – जैसलमेरी रम्मतों के लिए तख्तों का मंच बनाया जाता है तथा उस पर बहुत ही सुन्दर ढंग से बांस की बल्लियां लगाकर छतरीनुमा महल तैनात किया जाता है। इस रंगमंचकी एक विशषता यह है कि यह मंच अभिनेताओं के प्रदर्शन के लिए नहीं होता। प्रदर्शन तो उस रंगभूमि से उतरकर पास की जमीन पर किया जाता है। मंच सिर्फ अभिनेताओं के बैठने के लिये ही होता है।

जैसलमेर के ख्याल रचयिता अपने को तेजकवि के शिष्य मानते हैं। तेजकवि के समय से ही यहां की रम्मतों का स्वर्णकाल था। इन रम्मतों का अधिकतर सेवग अथवा ब्राह्मण करते है। होली के बाद रम्मत करना अच्छा शकुन माना जाता है। पात्रों की पोशाकें बहुत सुन्दर होती है। इन रम्मतों में पीलू, खमावज तथा भैरवी आदि रागों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इनमें कहरवें की ताल का सर्वाधिक प्रयोग होता है। जैसलमेर में भृर्तहरि, सती सावित्री, पूरणमल आदि की रम्मतें बड़ी लोकप्रिय रही है। इन रम्मतों में कवित, शेर तथा दोहा छंद को खूब प्रंश्रय दिया गया है।

कठपुतलियां के ख्याल अथवा लोकनाट्य – कठपुतली के लोकनाट्य में अभिनय, गीत तथा नृत्य की त्रिवेणी का अनूठा संगम देखने को मिलता है। कठपुतली लोकनाट्यों को कई विद्वान नाटकों का जन्मदाता मानते है।

कठपुतलियों की धड़ काठ की बनी होती है। इसके नीचे का भाग कपड़े का बनाया जाता है। इन पुतलियों के चेहरे गोल तथा चपटे, आंखें लंबी एवं मोटी, कान उभरे हुए, नथूने फूले हुए होंठ लटके हुए तथा खुले होते है। राजाओं की पुतलियां लंबे झग्गे पहने रहती है। उन पर कोर गोटे लगे रहते है। इन झग्गों के नीचे सादा साधारण कपड़ै का पोतिया पहना जाता है। राजा की पुतली के एक हाथ में ढाल तथा दूसरा में तलवार रहती है। ये पुतलियां लम्बाई में 14 से 16 इचं तक की होती है। इसके अलावा राजदरबारी अथवा दूसरी पुतलियों की लम्बाई राजा की पुतली से कम अर्थात् 8 से 10 इंच तक की होती है। सूत्रधार पुतलियों के सिर पर डोरा बांधे रहता है। कठपुतलियों के नाट्य में एक छोटा सा पर्दा भी रहता है, जिसके सामने पुतलियां रहती है। यह खेल रात्रि के समय होता है। इसमें बिजली की जरूरत नहीं होती, लालटेन से भी काम चल जाता है। सूत्रधार पुतलियों से बंधी डोरियों को अपनी

अंगुलियों से बांधे रहता है और वहीं पुतलियों को नचाता है। कथोपथन सूत्रधार तथा उसकी स्त्री प्रस्तुत करते है। सूत्रधार यह प्रकार के चू चू की आवाज करने वाले बाजे द्वारा जवाब देता है। कठपुतली नाट्य में एक डुगडुगी वाला होता है जो खेल के प्रारंभ से अंत तक दरबार के एक ओर दरीखाने में बैठा रहता है। हालांकि खेल से उसका कोई संबंध नहीं जुड़ा रहता फिर भी यह खेल का महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है।

राजस्थानी कठपुतलियों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ साथ लोकप्रचलित कथाएं भी दृष्टिगत होती है। नागौर के राजा अमरसिंह राठौड़ का कथानक कठपुतलियों में अत्यंत लोकप्रिय रहा है। कठपुतलियों के खेल में बहुरूपियों में व्यंग्यविनोद की सुन्दर छटा देखने को मिलती है, जो दर्शकों को लोटपोट कर देती है।

कठपुतलियों के नट गांव गांव में जाकर अपना खेल प्रदर्शित करते हैं। विवाह–शादियों के उत्सवों पर इन नटों को मनोरंजनार्थ आमंत्रित भी किया जाता है।

राजस्थान में कुचामण, परबतसर, नावां एवं डीडवणा में इन कठपुतली वालों के घर है वे भाट कहलाते है तथा इनके जजमान भांभी जाति के परिवार है। कठपुतलियों के खेल में ढोलक का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

सम्पूर्ण भारत में कठपुतली कला की सात शैलियां प्रचलित है। इनमें बंगाल की छड़ी विधि की पुतलियां, उड़ीसा की सूत्र संचालित कठपुतलियां, उत्तरप्रदेश की गुलाबो शैली की अंगुलियों की पुतलियां विशेष है। इन शैलियों में सबसे अधिक प्रचार राजस्थान की सूत्र संचालित पुतलियां, दक्षिण भारत की बम्बोलोटम शैली की पुतलियां तथा आंध की छाया पुतलियों का हुआ है। लेकिन इन सभी शैलियों में राजस्थान की सूत्र संचालित पुतलियों का अपना निराला वैशिष्ट्य है, इनकी राजस्थान में अत्यंत समृद्ध परम्परा भी रही है।

डोडिया ख्याल – ये ख्याल हाड़ौती की ओर प्रचलित है। इनकी अपनी मौलिक डोडिया रंगत रही है। बूंदी में डोडिया ख्यालों के प्रसिद्ध अखाड़े हैं। इनमें दोजड़ी, डाइजोड़ी तथा चौजोड़ी दोहों का प्रयोग किया जाता है। पाटूंदा, तलवास, बडौदिया, सीलोट, गुडा, नैनवा, पाटन तथा कापरेण आदि स्थानों पर भी डोडिया ख्यालों के अखाड़े है। डोडिया रंगत अपने में निराली है। उसकी छड़ी प्रभावोत्पादक होती है

डोडिया खयालों के लेखकों में मगनलाल, कन्हयौलाल जोशी, मांगीलाल तथा गोपीलाल आदि प्रसिद्ध है।

हाथरसी ख्याल – हाथरस प्रदेश के हरनारायण तथा हथाराम ने ख्यालों की रचना कर उन्हें राजस्थान प्रदेश में प्रचारित किया। राजस्थान में ये ख्याल नौटंकी के नाम से भी प्रसिद्ध रहे है। इन ख्यालों की विशेषता सरल गायकी तथा सीदे सादे एवं सुन्दर नृत्यों में है। इनमें पहले बोल बोलते हैं, फिर ताल लगाई जाती है। हाथरसी ख्यालों की रचना गद्य तथा पद्य दोनों रूपों में समान रूप से हुई है। ये ख्याल भरतपुर, धौलपुर तथा डींग में अधिक प्रचलित है। हाथरसी ख्यालों की प्रमुख मण्डलियां श्रीमाधोपुर, जाखलु, अचरोल, रोजड़ी, हरणोदा तथा सामौद चौमू में है।

गंधर्वो के ख्याल – गंधर्व जाति द्वारा अभिनीत होने के कारण इन ख्यालों का नाम गंधर्वो के ख्याल पड़ गया। जौनियों की जहां बस्ती होती हैं, वहीं ये लोग अपनी मण्डली के साथ जाते हैं और मांदेर ही में रूकते हैं। ये लोग नियम के अटल तथा सात्विक वृत्ति वाले होते हैं।

गंधर्वो के सभी ख्याल धर्मपरक होते हैं। इन ख्यालों के लिय तख्तों का मंच बनाया जाता है जो तीन ओर खुला रखा जाता है। उसके ऊपर कपड़े का चंदोवा तान दिया जाता है। ख्याल के प्रारंभ में सभी अभिनेता मंच पर उपस्थित होकर स्तुतिवंदन करते है। मंच के एक वोर वादक बैठ जाते हैं। वे ढोलक, हारमोनियम तथा नगाड़े आदि वाद्यों का प्रयोग करते हैं। वादकों के पास ही पोथी लेकर प्रेरक को बिछा दिया जाता है। अभिनेता गायकी के रूप में तीन बार संच पर चक्कर लगाकर फिर बोल सुनाता है। तत्पश्चात् वाद्य उस बोल की संगत करते हैं तथा अंत में पात्र पुनः उन बोलों की पुनरावृति करते है। ये लोग प्रमुख रूप से श्रीपाल, मैनासुन्दरी, सुरसुन्दरी, चन्दनबाला, सोमासती, अंजना, सत्यवान सविंत्री तथा राजा हरिशचंद्र आदि ख्यालों का ही प्रदर्शन करते है। गंधर्वो के ख्याल करने वालां की जयपुर, अलवर तथा भरतपुर में अच्छी बस्तियां है।

झाड़शाही ख्याल – ढूंढाड़ी बोली को झाड़शाही के नाम से भी जाना जाता है। झाड़शाही रंगत के ख्यालों में पहले टेर कही जाती है। तत्पश्चात् दोहा कहा जाता है जो कि तीन पंक्तियों का होता है। दोहे के बाद फिर टेर दोहराई जाती है। उदाहरणार्थ –

ए जी खुदा की कुदरत पे कुरबान,

जिन्होंने रचा जमीं आसमान। टेर ।
ए जी अजमल सा पापी तुमने एक क्षण अन्दर तारा,
ए जी खलील को आगे से बचाया खूदा तू अपरम्पार।
मीरांबाई, सदन कसाई का तुम कारज साराजी।।

अभिनयप्रधान ख्याल – इन ख्यालों में पात्रों एवं अभिनय की प्रधानता होती है। भिन्न भिन्न पात्र मंच पर उतर कर तरह तरह के अभिनय प्रस्तुत करते है। अभिनयप्रधान ख्यालों में संवादों का प्राधान्य देखा जाता है। इन ख्यालों में कथोपकथन प्रमुख होता है। ये ख्याल नौटंकी ख्यालों से मेल खाते हुए होते हैं। अभिनयप्रधान ख्यालों के अंतर्गत हम तेजाजी, डूंगजी, जवारजी, भरथरी तथा गोपीचंद के ख्यालों को ले सकते हैं।

नागौरी ख्याल – यह नागौर की ओर प्रचलित है। इसी कारण नागौर रंगत, नागौरी चाल तथा नागौरी रंगत को ख्याल भी कहते है। जिस प्रकार तुर्रा कलंगी के ख्यालों में विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार नागौरी ख्यालों में भी छंदों की विविधता देखने को मिलती है। मुख्यरूप से इनमे दूहा, कवित, गजल, झूलणा तथा पवाड़ा आदि छंदों का प्रयोग किया जाता है। इन ख्यालों गें रूप सौन्दर्य का बड़ा ही सजीव, आकर्षक एवं अनूठा चित्र देखने को मिलता है। गजलों के अंतर्गत नारी सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण इन ख्यालों की विशषता है।

कथावाचनी ख्याल – जिन ख्यालों में कथावाचल स्वयं ही अनेक पात्रों की वचनरचना, भावभंगिमा तथा विविध प्रकार की मुद्राओं का प्रदर्शन करता है, वे कथावाचनी ख्याल कहलाते हैं। 'महाभारत' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। वैसे तो महाभारत की कथा बहुत लम्बी है, अतः अलग अलग टुकड़ों में इसका वाचन होता है तथा ये टुकड़े 'छोया' कहलाते है। कथावाचन शैली में देवनारायण, रामदेव, रतन–रेबारी तथा ढोला मरवण आदि ख्यालों का पाठ भी बड़े सुन्दर ढंग से किया जाता है।

चौबोला ख्याल – चौबोला में गायकी चार प्रकार की होती है। इसी कारण इसका नाम चौबोला पड़ा। शेखावाटी में चौबोला की तीन गायकी अथवा रंगते मिलती है। जोगिया रंगत के ख्याल, खड़ी रंगत के तथा देश सोरठ रंगत के ख्याल। इन ख्यालों में लावणी, दूहे, चौबोले, दुबोले, छप्पय, कवित तथा झूलणा आदि छंदों का प्रायः प्रयोग किया जाता है।

चौबोला ख्यालों के मंच के लिए प्रायः तख्ते डाल दिए जाते हैं। कहीं कहीं पर चंदोवा भी तान दिया जाता है। ये ख्याल शीतकाल के प्रारंभ में अथवा विवाहोत्सवों पर खेले जाते हैं। चौबोला ख्यालप्रदर्शक एक दिन खेल करते है तथा दूसरे दिन आराम करते है। इन ख्यालों के अभिनेता कलकत्ता तथा बम्बई तक ख्याल करने जाते हैं। बीकानेर की ओर इनका विशष प्रचार रहा है। ये ख्याल संवाद एवं वार्ताप्रधान होते हैं। इन ख्यालों में ढोलक तथा ठोल नक्काड़ों का सुष्ठु संयोजन होता है। इनमें गोपीचंद हरिशचंद्र, पूरणमल, भरथरी पिंगला, भक्त प्रहलाद, ध्रुव चरित्र तथा लैला मजनूं आदि ख्यालों की प्रधानता रही है।

प्रकीर्ण – उपर्युक्त सभी लोकनाट्यों के अलावा हम स्त्रियों द्वारा निकाल जाने वाली बोलियों तथा 'जसनाथी सिद्धों के अग्निनृत्य' को भी लोकनाटयों के अन्तर्गत ले सकते है।

राजस्थान के गांवों में देखा गया है कि 'जवाई' के ससुराल आने पर आस पड़ौस की स्त्रियां इकट्ठी होती है तथा 'गीत' गाकर अपने जंवाई के 'लाड कोड' करती है। इस अवसर पर स्त्रियां विभिन्न प्रकार की बोलियां निकालती है। उन बोलियों में बाप की बोली, दादा की बोलो, धोबी धोबिन की बोली, जाट जाटनी की बोली, भूआ की बोली तथा मेणा मेणी की बोली अत्यधिक प्रसिद्ध है। ऐसा करते समय ये स्त्रियां कभी कभी कागज या कूटे से बने मुखौटे भी धारण करती है। अनेक बार बोली निकालने वाली स्त्रियां पात्र के अनुरूप वेशभू ाा भी धारण करती है।

पुरूषों की बोली निकालने वाली स्त्रियां अपने स्वर को ऊंचा एवं भारी करके पुरूषों की तरह ही बोली निकालती है। इन बोलियों के मूल में मनोरंजन की भावना का प्राधान्य रहा है। स्त्रियां की इन बोलियों के द्वारा उनके जातीय स्वभाव, उनके रहन सहन के ढंग तथा आचार विचार आदि के संबंध में पूरी जानकारी मिल जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जसनाथी सिद्धों की अग्निनृत्य – वास्तव में यह आनुष्ठानिक नृत्य है। इनमें नाट्य का रूप भी मिलता है। लोक मे किंवदंती प्रचलित है कि जलती हुई अंगीठी पर बैठ जाने पर भी सिद्धाचार्य जसनाथजी का कुछ नहीं बिगड़ा। इसी भावना से प्रभावित हो उनके शिष्यों ने भी अग्निनृत्य प्रारंभ कर दिया। इसी प्रकार स्तम्म सिद्ध के बारे में किंवदंती प्रचलित है कि एक बार औरंगजेब ने सिद्ध रूस्तम को धोखे से अग्निकुण्ड में गिरा दिया, लेकिन वह अपनी तपस्या के बल से कुण्ड में से सुरक्षित निकल आए। इन घटनाओं की नकल जसनाथी सम्प्रदाय के अनुयायी अग्निनृत्य द्वारा करते है। विशेष ताल व लय के साथ यह नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में सात फुट लम्बा, चार फुट चौड़ा तथा तीन फुट ऊंचा अंगारों का ढेर लगाया जाता है। नर्तक ऊंचे स्वर में ओंकार की ध्वनि करते हुए इन अंगारे पर नृत्य करते हैं। नृत्य के समय पास में निरन्तर नगाड़े बजते रहते हैं। इस नृत्यमय लोकनाट्य का बीकानेर क्षेत्र में विशेष प्रचलन है।

सारांशतः लोकनाट्य राजस्थानी साहित्य की बहुमूल्य संपत्ति है। राजस्थान का नाट्य साहित्य विशेष सरस और अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। इन लोकनाट्यों में जनजीवन की दीर्घकालीन परम्परा सुरक्षित है। लोकनाटक, लोकरंगमंच पर लोककलाकारों द्वारा लोकमानस की आस्थाओं की कलात्मक अभिव्यंजना का सुन्दर निदर्शन है। लोकानुरंजन का आडम्बरहीन, अकृत्रिम, शास्त्रीय नियमावली की जकड़ से मुक्त सनातन मनोरंजन साधन लोकमंच ही है।

11.8 राजस्थानी लोकनाट्यों का शिल्पविधान

लोकनाट्यों की अनेक शैलियां दृष्टिगत होती है। यथा–लीला शैली, स्वांग शैली, कीर्तनिया शैली, भांड शैली, विदेशिया शैली और भवाई शैली आदि। नृत्य तथा संगीत का विधान प्रत्येक शैली में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। कथावस्तु, नेता तथा रस सभी नाटकों में लगभग समान रूप से पाए जाते है। अन्य तत्वों में स्थानीय अभिरूचि एवं स्थानीय संगीतपद्धति में अंतर होने के कारण शैली में अन्तर आ जाता है। संगीत तथा नृत्य में शास्त्रीय–अशास्त्रीय आदि सभी पद्धतियों का आश्रम लिया जाता है।

राजस्थानी लोकनाट्यों का अपना विशिष्ट शिल्पविधान है। रंगमंच व्यवस्था, प्रेक्षागृह, अभिनय लोकानुरंजन की दृष्टि से अनेक परम्पराएं ऐसी कायम हुई है कि वे ही धीरे धीरे इनका तंत्र बन गई है। ये परम्पराएं जनता की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और इन नाटकों को लोकनाटकों के गुणों से गिरने नहीं देती।

11.9 राजस्थानी लोकनाट्यों में संगीत एवं नृत्य की विशिष्टता

राजस्थानी ख्याल गीति नृत्यों के लिए प्रसिद्ध है। गीत नृत्यों की अनुपम बहार जितनी राजस्थानी ख्यालों में मिलती है, उतनी और किसी शैली में नहीं मिलती। राजस्थानी लोकनाट्य प्रायः पद्यात्मक होते हैं। इनके गीत संवाद प्रश्नोतर के रूप में चलते हैं। इन गीतों में स्वर तथा तालें भी विद्यमान होती है। लेकिन गाते समय ऐसा लगता है जैसे केवल शब्दोच्चार ही हो रहा है। ये गीत विशद्ध लोकशैली में गाए जाते हैं। राजस्थान के गवरी नाट्य में प्रत्येक प्रसंग के बाद सभी कलाकारों की एक अद्वितीय गम्मत होती है जिसे हम सम्पूर्ण नाटक की टेक या स्थायी शैली कह सकते है। यह गम्मत ही समस्त गवरी नाट्य का प्राण है। राजस्थान की रासधारियां तथा भवाई नाट्य में यह टेक ढोलककी अद्वितीय चाल पर चलती है। उस समय का उप्योग करने हेतु अभिनेता समस्त प्रेक्षास्थली में घूमकर नृत्य दिखलाते हुए पुनः मूल रंग स्थल पर आ जाते है। लोकनाटक, लोकनृत्य एवं संगीत पर आधृत है। लोकजीवन में स्वर संगीत एवं शब्द संगीत के द्वारा श्रोताओं को आनन्दित करने वाले लोक कवियों का बाहुल्य रहा है। स्वर एवं शब्द सौन्दर्य द्वारा आनंदोपलब्धि कराने का उदाहरण दष्टव्य है–

आज करूं रणवंश उजागर, हाथ उठाय के पेज सुनाऊ।
ढढ्ढ के ढढ्ढ समट्टन कट्टि, झपट्टि के लुत्थ पे लुत्थ बिछाऊं।
देकर हंक निशंक बढ़ूं, न डरूं रण मारहिं मार मचाऊं।
ताज समेत हनूं शिर शाह को, तो राजपूत को पूत कहाऊं।

धौलपुर तथा भरतपुर में पिछले पचास वर्षो से रामलीला की एक विशिष्ट प्रणाली का विकास हुआ है। उसमें तुलसीकृत रामायण की चौपाइयों को अक्षुण्णा रखते हुए बीच की कड़ियों को विशिष्ट गीतों से जोड़ा गया है। इन

गीतों लोकगायकी का बहुत ही स्वस्थ स्वरूप परिलक्षित होता है। इस विशिष्ट प्रणाली पर नौटंकियों और राजस्थानी ख्यालों की गायकी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इस रामलीलाल में लावणी के रूप मे कालिगड़ा तथा भैरवी की धुनो की प्रधानता है।

राजस्थान के हीर रांझा, ढोलामारू और मूमल महेन्द्र आदि नौटंकी तथा शहजादा केसर गुलाब आदि प्रेमाख्यानक लोकनाट्य तो ऐसे लगते है मानों इनकी रचना सिर्फ गाने के लिये ही की गई है।

नीमचनिवासी नंदराम कृत 'केसर गुलाब का ख्याल' में गीतितत्व द्रष्टव्य है–

एक अनोखी सुन्दरीस, मारे सपना मांही आयी।
जीव मेरा बसमें नहींस, मैं जाऊं देखण बाई।।
केसर कुंवरी नाम हैंस, नहीं ऐसी चतुरा लुगाई।।

इन ख्यालों की गेय–धुनें परम्परागत होती है। जिनकी मर्यादा में इस शैली विशष के सभी नाट्य खेले जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.10 राग रागिनियां एवं छंद विधान

राजस्थानी ख्यालों में विविध छन्दो, रंगतों एवं तर्जो का प्रयोग किया गया है। इन ख्यालों में प्रायः निम्न रंगते दृष्टिगत होती है। रंगत छोटी चलन, रंगत इकहरी, रंगत मारवाड़ी, रंगत खड़ी की अपनी स्वतंत्र विशिष्टता है। इनमें छंदशास्त्र के नियमों का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया गया है। इन छंदों में कुछ छंत ऐसे प्राप्त होते है, जिनका नाम शास्त्रीय छन्दों के अनुसार होते हुए भी वे उनसे भिन्न है। ख्यालों में प्रयुक्त छन्द एवं उनके लक्षण निम्न प्रकार है :–

प्रमुख छन्द

(1) तिलाणी (रंगत) – इसके सम्भाव्य रूप निम्नलिखित है –

1. टेर के अतिरिक्त प्रत्येक चरण में 16 तथा 12 मात्राओं पर यति मिलती है।
2. टेर का लोप 16 व 12 यति तथा कुल मात्राएं 28 होती है।
3. टेर के अतिरिक्त तीन चरणों वाली तिलाणी।
4. टेर एवं चरण में भिन्न तुकान्तता।
5. मात्रा के बंधन से रहित तीनों तुकांत चरणों वाली तिलाणी।
6. प्रथम चरण में 16 व 16 मात्राओं प यति। इस प्रकार 32 मात्राएं होती है।
7. टेर के लिए पुनरावर्तन में टेर पद का अगला अंश प्रयोग मे आता है।

(2) लावणी

1. टेर के दो पूर्ण चरण 22 मात्राओं के होते है।
2. प्रत्येक चरण में 22 मात्राएं होती है तथा 13 व 9 पर यति होती है।
3. टेर के अतिरिक्त 4 चरण होते है।
4. चारों चरणों में तुक मिलती है।
5. टेर की पुनरावृति करने से पहले 22 मात्राओं का एक पूर्ण चरण होता है।
6. टेर से लेकर पूर्ण छन्द की समाप्ति तक कुल 7 चरण होते हैं लेकिन टेर की एक पंक्ति की पुनरावृति होती है।

(3) कवित्त – छन्दशास्त्र की दृष्टि से कवित एक वर्णिक छन्द है। इसमें 31 मात्राएं होती है और 16 व 15 पर यति होती हैं। इसके कई भेद होते हैं। राजस्थानी ख्यालों में प्रयुक्त कवित छन्द में 31 से लेकर 36 वर्ण तक मिल जाते हैं तथा यति प्रायः 17, 18 वर्णो के बाद पाई जाती है।

(4) झेला – इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम पंक्ति टेर की पंक्ति होती है। इसमें हर चौथे चरण के पश्चात् आवृति होती है। इस छन्द के चार चरणों मे प्रथम में 17, द्वितीय में 15, तृतीय में 14 तथा चतुर्थ में 13 वर्ण मिलते हैं।

(5) शेर– इसके प्रत्येक चरण में कम से कम 16 व अधिक से अधिक 20 वर्ण मिलते हैं। इसमें तीन चरणों के पश्चात् टेर का प्रयोग होता है। कभी कभी केवल चार चरण ही मिलते हैं, टेर का अभाव होता है।

(6) गज़ल – प्रत्येक चरण में 29 से लेकर 33 तक वर्णन मिलते हैं। टेर की पुनरावृति प्रायः प्रत्येक चरण के पश्चात् होता है।

(7) दोहा– 14 से लेकर 30 तक मात्राएं एक चरण में पाई जाती है तथा प्रायः 14 व 12 पर यति होती है।

राजस्थानी लोकनाट्यों में भिन्न भिन्न राग रागनियों एवं छंदो का प्रयोग किया जाता है।

माच के संगीतात्मक संवादों में नौटंकी की भांति दोहों एवं चौबोलों का प्रयोग होता है।

तुर्राकलंगी के ख्यालों को 'लावणी बाजी' के ख्याल भी कहते हैं। वे कई प्रकारकी धुनों एवं लावणियों में गाए जाते हैं। इनमें हरियाणा, रसिया, झाड़शाही, लावनी, छोटी बड़ी, लावणी कड़ी, लावणी रौदता, लावणी खेंच, मांड घूमर, मारवाड़ी, सोरठ, विहाग, लावड़ी डेडकड़ी, कालिंगडा, आसावरी, सोहनी, ठुमरी, गजल, कव्वाली, दादरा, सिंघाविलोचन आदि मुख्य है। झेलों में दोन का झेला, तिलोन का झेला, खड़ी तथा सनद का झेला प्रमुख है। ये ख्याल कमलबंद, क्षेत्रबंद, चित्रबंद, नागफांस, तालुबंद, जंजीरेबंद, रंगत, नजाकत, तीसहर्फी तथा कक्का बत्तीसी आदि में गाए जाते हैं। छंदों में हिन्दी, उर्दू, अरबी तथा फारसी के छंद प्रयुक्त किये जाते हैं।

कुचामणी ख्याल दोहा, कवित, शेर, सोरठा तथा छप्पय में लिखे होते है। इनकी धुन सजीव किन्तु ठंडी, टेरें मंजी हुई तथा रंगतों का जमाव अधिक होता है। ठंडी धुनों के कारण ये ख्याल रोवणी धुनों के ख्याल भी कहलाते हैं। इनके दोहों में चंद्रायणी के स्थान पर तिल्लाणी चलती है। कुचामणी ख्यालों में निम्न रागें प्रयुक्त होती है – सोरठ, सारंग, विमास, मालकोस, कल्याण, भोपाली, टोड़ी, ललित, कालिगड़ा, परब, सोहनी, नागलहर, सोरठ गिरनारी, मांड, प्रभारी, खमायची, सोरठ, देश आदि। कुचामणी ख्यालों में लावणी, भैरवी, किलावणी, तिलाणी, हलकानी, चंद्रमण, झैला, तिलाणा, चलत, चंद्रायणी, दुबोला नाम लहरी तथा आरसी आदि रंगतों की बहुलता दृष्टिगत होती है।

शेखावटी ख्याल अपनी उच्चस्तरीय संगीतात्मक गायकी के लिए बड़े प्रसिद्ध रहे है। ये ख्याल मांड, चंद्रावती, धूमनी, काफी, बरवा, जैजैवंती, परब, भैरवी, कालिंगड़ा, आसावरी, खड़ी टोड़ी, खड़ी भैरवी, जानकी, सिंधु, सोरठ, ठुमरी, बरवा, कलाली, कहरवा तथा धानी आदि की बहुलता लिये होते हैं। चौबोला के साथ इनमें ताल लगाई जाती है।

चिड़ावी ख्यालों में भी गायकी एवं नृत्य अदायगी की प्रमुखता होती है। इनमें शास्त्रीय रागों की रंगतों का वैशिष्ट्य देखने को मिलता है। इनमें सोरठ, देश – जोगिया, कालिंगड़ा, भैरवी, काफी, विहाग तथा खमाज आदि रागें लोकरागों के अनुकूल ढलती हुई सहज बंदिशों में प्रयुक्त होती है। इन ख्यालों में प्रयुक्त दोहे भी विशिष्ट तालों में ही गाये जाते है। गायक एवं वादक की जो होड़ लगती हैं, वह देखने योग्य होती है। शेखावाटी ख्यालों का नृत्य बड़ा क्लिष्ट, कठिन एवं पेचीदा होता है।

नौटंकी ख्यालों में दोहा, बेहरेतबील, बेहरेशिकस्त, लावणीसादी, लावणी लंगड़ी, लावणी कड़ा, दबोला, चौबोला, कव्वाली, गजर, दादरा तथा ठुमरी छन्दों की प्रमुखता रहती है।

बीकानेरी रम्मतों में तीज, पुत्रजन्म, विरह, थड़ला, गवरजा तथा रूठने मनाने के गीत गाए जाते हैं। मासियों में दस मासियां, बारहमासियां, अठारह मासियां, बीस मासियां तथा चौबीस मासियां, विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। रागों में भारंग, सोरठ, देश, मांड तथा खमाच की प्रधानता दृष्टिगत होती है।

जयपुरी ख्याल में देशी, कालिंगड़ा, विहाग, मालकोस, चलत कालिंगड़ा, सोहनी, सिंधकाफी, काफी सोरठ, भैरवी आदि रागें पाई जाती है।

नागौरी ख्याल में छंदों की विविधता देखने को मिलती है। दूहा, कविता, गजल, झूलणा तथा पंवाड़ा आदि छंतों का इस ख्याल में प्रयोग किया जाता है। नागौरी ख्यालों की रंगते अत्यन्त सजीव एवं सरल होती है।

अलीबक्षी ख्याल भेंट, दोहा, सेंधु, ठुमरी तथा मांझ नें लिखे मिलते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैसलमेरी ख्यालों में कवित, शेर, तथा दोहा छंद का बाहुल्य दृष्टिगत होता है।

कन्हैया के दांगलिक ख्याल में, दोहा, चौपाई तथा सवैया छंद और गाड़ी कहाणी रागिनियों की प्रधानता रहती है। डोडिया ख्याल दोजड़ी, ढाई जड़ी तथा चौजड़ी दोहों में रचे जाते है।

11.11 वाद्य यंत्र

राजस्थानी लोकनाट्यों में प्राचीनकाल में वाद्यों में रूप में ढोलक, नगाड़ा, तुर्री आदि का ही प्रयोग किया जाता था। कालान्तर में आधुनिकता के साथ लोकनाट्यों में भी हारमोनियम, तबला, सितार, सारंगी आदि का प्रयोग होने लगा है। विभिन्न राजस्थानी लोकनाट्यों में वाद्यों का प्रयोग इस प्रकार होता है–

राजस्थान में **शेखावाटी स्थलों** में पहले ढोलक तथा सारंगी का प्रयोग होता था। बाद में आधुनिक प्रभाव एवं जनता को आकर्षित करने हेतु इन ख्यालों में हारमोनियम तथा नगाड़ों को भी प्रयोग किया जाने लगा।

कुचामणी ख्यालों में नगाड़े, ढोलक, मंजीरे, हारमोनियम तथा सारंगी का प्रयोग किया जाता है।

माच के ख्यालों में सारंगी, तबला तथा ढोलक का प्रयोग किया जाता है।

तुर्राकलंगी के ख्यालों में शहनाई, नगाड़े तथा सांरगी का प्रयोग किया जाता है।

नौटकी ख्यालों के लिये कहा जाता है कि प्रारंभ में इन ख्यालों में नौ प्रकार के वाद्य बजाए जाते थे। इसी कारण इसका नाम नौटंकी पड़ा। कई लोगों का कहना है कि इनमें नौ नगाड़ों का प्रयोग किया जाता था। इसलियये इन्हें 'नगाड़ेबाजी' के ख्याल भी कहते है। इनमें नगाड़ों के साथ साथ ढोलक, ढपली, सारंगी तथा चिंकारा भी बजाया जाता है।

अलीबक्षी ख्यालों में ढोलक, नगाड़े, सारंगी तथा हारमोनियम का प्रयोग किया जाता है।

बीकानेरी रम्मतों में, ढोलक, नगाड़े, झांझ तथा खड़ताल का प्रयोग किया जाता है।

कन्हैया के दांगलिक ख्याल में प्रत्येक दल अपने अपने नगाड़े, ढप, चिमटे, झांझ, तथा झंडा लिये आते हैं।

'हेला' नामक दांगलिक ख्याल में ढपली, चंग, चिमटा, नाद तथा तुरई का प्रयोग किया जाता है।

'ढप्पली' दांगलिक ख्याल के साथ ढोल, नगाड़े तथा शहनाई चलते हैं।

गंधर्वो के ख्याल में हारमोनियम तथा नगाड़ों का प्रयोग किया जाता है।

चौबोला ख्यालों के साथ ढोलक तथा झील नगाडे बजाये जाते हैं।

बिसाऊ की रामलीला में ढोल, झांझ, भेर तथा उरबी बजाई जाती है।

पाटुंदा की रामलीला के साथ चिकारा, कमामचा, सारंगी, ढोलक तथा मंजीरे बजाये जाते है।

वेशभूषा– राजस्थानी लोकनाट्यों के अभिनेताओ की वेशभूषा प्रायः प्रतीकात्मक होती है। इसके लिये किन्हीं विशिष्ट वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। वेशभूषा की प्रतीकात्मकता से तात्पर्य है– यदि राजा की भूमिका अदा करनी है तो उसके लिये मखमल या जरी के कपडों की आवश्यकता नहीं वरन् साधारण वस्त्रों पर ही मुकुट अथवा कलंगी लगा लेने मात्र से वह व्यक्ति राजा बन जायेगा। लोकनाट्यों में स्त्रियों का अभिनय पुरूष पात्रों द्वारा ही किया जाता है। अपनी दैनिक वेशभूषा पर एक चादर लपेटकर घूंघट निकाल लेने मात्र से ही इन नाटकों में पुरूष स्त्री पात्र बन जाता है। यदि किसी पात्र को सिपाही या चौकीदार का अभिनय करना होता है तो कंधे पर लाठी कम्बल ओढकर मुंह ढंक कर बैठ जाता है तथा संवाद गाने लगता है। देवी पात्र के अभिनयार्थ किसी के भी सिर पर मुकुट बांध देने से वह व्यक्ति देवी बन जाता है।

राजस्थान के कुछ लोकनाट्य ऐसे हैं जिनमें विशेष वेशभूषा की आवश्यकता होती है। यथा–

मेवाडी लोकनाट्य में वेशभूषा की रंगीनियां तथा कलात्मकता देखने को मिलती है उसके पात्र मेवाडी आंटेदार पगडियों पर चमचमाते हुए सिरपेच तथा तुर्राकलंगी धारण करते हैं। कोर–किनारियों से सुसज्जित लम्बा झग्गा पहनते हैं तथा उस पर कमरबंध लगाते हैं। स्त्रियों की वेशभूषा में घेरवाला घाघरा, लहरदार साडियां तथा उन पर बडे सुन्दर एवं लवण्यपूर्ण आभूषण सुशोभित रहते है। बाजूबंद, तिमणियां, कन्दोरा, सांकली, ताज, झेला तथा रखडी आदि झिलमिलाते आभूषण इन ख्यालों के आकर्षणकेन्द्र बन जाते है।

माच के ख्यालों में जरी की पोशाकें तथा सौ–सौ तोले सोने का जेवर सामान्य समझा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रामलीला तथा रासलीला के अभिनेताओं के लिये पोशाकें बनाई जाती हैं। बिसाऊ की रामलीला में राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के लिय प्रतिवर्ष नई पोशाकें सिलवाई जाती है। अन्य पात्रो में हनुमानजी की लाल, सुग्रीव की हरी, अंगद की पीली, दधिमुख की सफेद तथा जामवंत की कत्थई रंग की पोशाके होती है। पौशाकों के रंग के जैसे उनके चेहरे भी होते है।

राजस्थानी लोकनाट्य पूर्णरूपेण अनौपचारिक होते हैं। इनके लिये किन्हीं विशिष्ट प्रकार के पोशाकार की आवश्यकता नहीं होती। अधिकतर तो पात्र अपने घर से ही पौशाक पहिनकर आते हैं तथा दर्शकों में बैठ जाते हैं। अनेक पात्र दर्शकों में बैठकर ही अपनी पोशाक बदल लेते हैं।

भाषा– राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है। इसकी 6 बोलयां है। मारवाडी राजस्थान प्रदेश की साहित्यिक भाषा है। राजस्थानी भाषा के विविध शैलीगत रूप होने का कारण है। भिन्न–भिन्न प्रदेशों की जनता का उच्चारण एवं भौगोलिक परिवेश व्याकरणिक दृष्टि से इनमें कोई विशेष तात्विक अन्तर नहीं है। राजस्थानी लोकनाट्यों की भाषा राजस्थानी है लेकिन उच्चारणगत भेदों के कारणही विभिन्न लोकनाट्यों की भाषा में अन्तर मिलता है। यथा–शेखावटी अंचल (चिडावा शैली) में रचे गये ख्यालों की भाषा पर शेखावटी का प्रभाव है। कोटा–बून्दी में रचे गये ख्यालों की भाषा पर हडौती का प्रभाव हैं। जैसलमेर, बीकानेर और मारवाड में रचे गये लोकनाट्यों की भाषा शुद्ध मारवाडी है। भरतपुर, अलवर, धौलपुर, करौली प्रदेशों में रचे गये ख्यालों की भाषा मेवाती है और अस पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव है।

राजस्थानी लोकनाट्यों की भाषा पर उर्दू–फारसी का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है। शायद ही कोई ऐसा ख्याल हो जिसमे उर्दू फारसी के शब्दो का प्रयोग न निलता हो। यद्यपि उर्दू फारसी के ये शब्द विकृत होकर लोकनाट्यों में आये हैं।

।। कवित्त–जवाब शाहजादा को अकेला कहता है।।

लाइला इललिल मुहमन्द रशुलिल्ला,
पाकजात परवर दिगार, बेडा कर पार, मेरा तेरा हूं ध्यानम्।
फजर जंवर ईस्या असर मघरिफ नमाज पढूं,
करूं मे कबूल तीस रोजा रमजानम्।
अल्ल हयेर करी हकताला तखत दिया रूसनाई।
हाय जिगर जलता है मेरा क्या करूं पाक इलाई।

लोकनाट्यों में यत्र–तत्र अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। वे शब्द बहुत ही लोक–प्रचलित हो गये है। यथा– कन्ट्रोल, कम्पनी, इण्डिया, सर्कल, टेम, ड्यूटी इत्यादि।

उर्दू, फारसी का यह प्रभाव लोकनाट्यों की भाषा तक ही सीमित नहीं है वरन् छंदों और राग–रागिनियों तक व्याप्त है। यथा–शेर, गजल, कव्वाली आदि छंदो का नोकनाट्यों में प्रयोग हुआ है।

कुछ राजस्थानी लोकनाट्यों पर खड़ी बोली का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। गे ख्याल 70–80 नर्ष पूर्व के है। और यह वह समय था जब राजस्थान में खडी बोली का प्रचार–प्रसार प्रारम्भ हो गया था। यहां के लेखक भी खडी बोली की ओर आकृष्ट हुए थे।

खडी बोली मे लिखे वाक्य व्याकरणसम्मत नहीं है। क्रियाआं के प्रयोग की दृष्टि से अधिकांशतः राजस्थानी क्रियाएं ही प्रयुक्त की गई है–

ख्यालों में स्थान–स्थान पर लोकप्रचलित कहावतें भी प्रयुक्त होती है। यथा–

गरजे सो बरसे ना पहला या सुनने में आई।

आस भली आंसगों खोटा (पृथ्वीराज)
दूध पूत नाहिं छिपे छिपाया क्यूं कलपे मन मांय।। (पूरनमल)
गुड दीनां मर ज्याय विष क्यां दीजिये (अमरसिंह)
दगा किसी का सगा नहीं (अमरसिंह)
तेली से खल आज उतरगी। महारा अर्थ की रही न राणी।।
(ख्याल विक्रम नागवंती को)
सोने सूरज उगियास रे कांई मिलीया डूंग जवार (ख्याल डूंगजी जवार जी का)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कुवा फुटा फिर संदे सरे समदर बंधे न पाज।। (ख्याल अमरसिंह)

लोकनाट्यों में प्रयुक्त उपमाएं भी साहित्यिक उपमाओं से भिन्न एवं दैनिक लोकजीवन से संबंधित है। साहित्यकार नेत्रों की उपमा खंजन पक्षी के नेत्रों से देता है। जबकि लोकनाट्यकार कहता है–

नैन उसी का बिदाम जैसा, होट बना है दाख।।
नैन तुमारा लागनार या खांडी की सी धार।।
मखमल की तरह से पेट है, अंगूर की रंग छाती।।

ख्याल रचयिता बंधनविहीन हो कर अपनी रचना का निर्माण करता है अतः वह इच्छानुसार निस्संकोच हो तक अपशब्द (गालियां) भी लिख देता है। इतना सब कुछ होते हुए भी राजस्थानी लोकनाट्यों में लोकपरिवेश सर्वत्र सुरक्षित है। शैरिफ महोदय के विचारानुसार लोकनाट्यों की भाषा स्पष्ट तथा उपयुक्त है। उनके गीत स्वाभाविक, नाटकीय, करूणा, हास्य, प्रेम एवं त्रसाद तत्व से परिपूर्ण है। वे लिखते है–

The meter is rough and ready, but the language itself is musical and expensive. It is a language which calls a spade in the sense that there is one word for each material object, each action or each sentiment described, and that work is the right one. The songs are natural and dramatic and abound pathos, humor, in romance and tragedy.

प्रतीक–विधान– राजस्थानी लोकनाट्यों के विधान एवं विन्यास में प्रतीकों का अद्वितीय स्थान है। उनमें रंगमंच के निर्माण, दृश्यों के मंचन, पात्रों के अभिनय में अनेक प्रकार के प्रतीकों का सफल प्रयोग देखने को मिलता है। गवक्षों व अट्टालिकाओं का निर्माण भी कुछ ऐसे प्रतीक–उपकरणों के द्वारा किया जाता है, जो अन्तःपुर और राजप्रसादों का अर्थ देते हैं। नदी, पहाड़, जंगल, युद्धस्थल तथा श्मशान आदि के दृश्य भी कुछ विशेष वस्तुओं, क्रियाओं और हावभावों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।

11.12 सारांश

लोकनाट्यों की शैल्पिक विशेषताओं के संबंध में डॉ. दशरथ ओझा लिखते हैं–लोकनाट्यों के कथानकों में इतना आकर्षण है, उनके गीतों में इतनी प्रभविष्णुता और सरसता है, उनके कथोपकथन मे इतना व्यंग्य है कि जनता मुग्ध हो जाती है। लोकनाट्यों में नाटकीय तत्वों के साथ कविता है, संगीत के साथ सूक्ष्म भावों की कोमलता है तथा रससिद्धि के साथ चरित्र का विकास है। उनमें अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण है और बाह्य संघर्ष का प्रदर्शन। सभी रसों से आप्लावित अनके भावों और भावनाओं से परिपूर्ण लोकनाट्यों के मनोहारी दृश्यों की छटा स्पृहणीय रही है।'

अस्तु, इस समस्त सर्वेक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि राजस्थानी लोकनाट्यों का शिल्पविधान समस्त लोकसाहित्य की बहुमूल्य उपलब्धि है तथा इन राजस्थानी लोकनाट्यों का लोकसाहित्य में अद्वितीय स्थान है।

11.13 अभ्यास प्रश्नावली

(1) लोक नाटक किसे कहते हैं?

(2) राजस्थान के प्रमुख लोक नाटकों का परिचय दीजिए।

(3) लोकनाट्कों के शिल्प विधान पर पकाश डालिए।

(4) राजस्थान के लोकनाटकों में लोक संस्कृति की भव्य प्रस्तुति होती है। इस कथन की सारगर्भित व्याख्या कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4

इकाई–12

लोक देवी देवता एवं लोकोत्सव

संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 लोक देवता

12.3 लोक देवियाँ

12.4 लोकोत्सव

12.5 अन्य मेलों का विवरण

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास प्रश्नावली

12.0 प्रस्तावना

राजस्थान धर्मप्राण प्रदेश है। यहां के निवासी कण कण में ईश्वरीय अंश की कल्पना कर पूजा उपासना करते हैं। यही कारण है कि यहां गांव गांव, ढाणी ढाणी में देवरे, मंदिर तथा अनगिनत 'थान' विद्यमान हैं जिनमें पौराणिक देवी देवताओं तथा लोक देवी देवताओं की पूजा की जाती है। लोकदेवताओं से तात्पर्य उन महापुरुषों से है, जिन्होंनं अपने अलौकिक चमत्कारों से लोकहितकारी कार्य किये। साहस, वीरता, निडरता, उदारता, त्याग, संयम आदि गुणों से विभूषित तथा आध्यात्मिक सिद्धियों से सम्पन्न इन महापुरूषों ने जनहित के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। इसलिए ये जन जन की आस्था के केन्द्र बन गए। इनमें अलौकिक अंश की कल्पना कर इन्हें लोकदेवता के रूप में पूजा गया। इनमें रामदेवजी, गोगाजी, पाबू, तेजाजी, देवनारायणजी, हड़बूजी, पनराजजी, देवबाबा, बाबा तल्लीनाथजी, कल्लाजी आदि अनेक लोकदेवता प्रमुख हैं। इन सभी लोकदेवताओं ने अपने उदास जीवन आदर्शों का निर्वाह करते हुए जनता के भौतिक कष्टों का निवारण किया। अपनी आध्यात्मिक सिद्धियों का उपयोग जन कल्याण के लिए किया जिनसे इनके चमत्कार व 'परचा' के आगे सभी नत मस्तक हो गए। आज भी आधि व्याधि से पीड़ित लोग लोकदेवताओं के थान पर जाते हैं। मनौती मनाते हैं और 'बोलवा' कामना) पूर्ण होने पर श्रद्धानुसार प्रसाद चढ़ाकर अपनी आस्था प्रकट करते हैं। यहां लोकदेवताओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके जीवनादर्शों का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है जिसके लिए उन्होंने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।

12.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से लोकदेवी–देवताओं के मान में वृद्धि होगी।

12.2 लोक देवता

(1) गोगाजी – लोकदेवता गोगाजी चौहान का जन्म चुरू जिले के ददरेवा में राजा झंवर के यहां हुआ था। इनकी माता का नाम बाछळ था। बाछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा करती थी। एक दिन बाछळ की बहिन काछळ गुरु गोरखनाथ की सेवा करने चली गई। गुरु ने उसे ही बाछळ समझकर उसके दो पुत्र होने का वरदान दे दिया। बाद में जब पता चला कि बाछळ ने प्रतिदिन सेवा की है और यह काछळ तो उसकी बहिन है, तब गुरु ने बाछळ को एक महावीर पुत्र होने का वरदान दिया। समय आने पर काछळ के दो पुत्र अरजन सरजन हुए। उसके पश्चात् बाछळ के पुत्र गोगाजी का जन्म हुआ। विवाह के पूर्व केलमदे को सांप ने डंस लिया किंतु गोगाजी के नाम से तांती बांधने तथा गोगाजी के स्मरण से सांप का जहर उतर गया। केलमदे ठीक हो गई तथा गोगाजी से उसका विवाह हो गया। गोगाजी अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इनके मौसे भाई अरजन सरजन इनके द्वेषभाव रखते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिणामस्वरूप गोगाजी और इनके बीच युद्ध भी हुआ। गोगाजी ने दोनों भाईयों को मार दिया। तब क्रोधित माता बाछळ ने गोगाजी को देश से निष्कासित कर दिया। गोगाजी गुरु गोरखनाथ के पास चले गए। गुरु की आज्ञा से वे रात में अपनी रानी से मिलने आते। एक दिन माता बाछळ को पता चल गया। उसने अपनु पुत्र को ताना मारा। गोगाजी अपने नीले घोड़े सहित धरती में समा गए। वह स्थान गोगामेड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। यहां हर वर्ष गोगानवमी को विशाल मेला भरता है।

(2) पाबूजी – गोरक्षक लोकदेवता पाबूजी का जन्म जोधपुर जिले की फलौदी तहसील के 'कौळू' ठिकाने में हुआ। वीर पाबूजी बचपन से ही निडर, साहसी एवं शरणागतवत्सल थे। एक शक्तिशाली शासक 'आनाबाघेला' के भय से भागते सात थोरी जाति के भाइयों को किसी ने आश्रय नहीं दिया। तब राठौड़ पाबू ने इन्हें शरण दी और इनको मित्र मान लिया। भील सरदार चांदा व डामा तो इनके परम मित्र थे। इस प्रकार ऊंचनीच का भेदभाव न मानते हुए सामाजिक समानता को महत्व देने वाले पाबू राठौड़ से उनका बहनोई जायल खींच बहुत द्वेष रखता था। पाबूजी ने अपने विवाह के समय बहन को बुला लिया किन्तु बहनोई को नहीं बुलाया। इसलिए वह और अधिक जल भुन गया। दूल्हे बने पाबूजी देवल चारणी की 'केसर घोड़ी' पर सवार हो गए। बारात प्रस्थान के समय पाबूजी ने देवल चारणी को वचन दिया कि संकट आने पर वे केसर घोड़ी पर बैठकर तुरंत दौड़े आएंगे। बारात अमरकोट सोढा राणा के यहां पहुंची। केसर घोड़ी ने अपने करतब दिखाए। उसने किले के कंगूरे पर टंगे तोरण को वांदने में पाबूजी को सहयोग दिया। ठाठ–बाठ से पाबूजी व बारात का स्वागत किया गया। उधर मौका देख जायल खींची देवल चारणी की गायों को ले भागा। पता चलने पर पाबूजी चंवरी में से ही गठबंधन छुड़ाकर उठ गए। तीसरा फेरा भी पूरा नहीं किया और अपनी अर्द्धविवाहिता को छोड़कर गायें की रक्षार्थ चल पड़े। गायों को तो छुड़ा लिया गया किन्तु युद्ध में वे वीरगति को प्राप्त हो गए। उनकी अर्द्धविवाहिता सोढी में भी पाबूजी के साथ मरण स्वीकार किया। इस प्रकार साहसी पराक्रमी, पाबूजी ने सामाजिक समानता एवं गोरक्षण में अपने जीवन का बलिदान कर दिया। नज न ने उन्हें लोकदेवता के रूप में पूजकर अपनी आस्था प्रकट की।

(3) बाबा रामदेव – रूणीचा के तंवरवंशीय ठाकुर अजमाल व उनकी पत्नी मैणादे ने द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की आराधना की जिससे उनके दो पुत्र वीरमदे व रामदेव हुए। इसी कारण इन दोनों को क्रमशः बलराम व कृष्ण का अवतार माना गया। दोनों भाईयों ने गुरु बालकनाथ से शिक्षा प्राप्त की। रामदेव ने धर्म, दर्शन, इतिहास आदि विषयों के अध्ययन के साथ साथ अस्त्र शस्त्र, योग साधना आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया। समाज में व्याप्त छूताछूत, ऊंचनीच को मिटाने के लिए उन्होंने समाज में अछूत समझे जाने वाले लोगों को मित्र बनाया। इनके मौसेरे भाई हड़बूजी ने भी रामदेवजी के इस पुनीत कार्य में अपना सहयोग दिया। रामदेवजी ने स्पष्ट कहा – 'हरिजन म्हारे हार हियेरा, मोत्यां मूंगा कहावे म्हारा लाला'। इस प्रकार अछूतों को गले लगाकर उनमें आत्मविश्वास पैदा किया। रामदेवजी ने अछूत मेघवाल जाति की डाली बाई को अपनी धर्म बहिन बनाया। उसने बाद में रामदेवजी के पूर्व ही समाधि ग्रहण की। रामदेवजी ने जन्म से ही अपने परचे देने आरंभ कर दिये। जब इनकी माता इन्हें दूध पिला रही थी तो रसोई में आग पर रखा हुआ दूध उफने लगा। रामदेवजी ने अपने चमत्कार से उसे रोक दिया। इसी तरह एक दिन बालकनाथ के आश्रम में गेंद ढूंढते हुए रामदेवजी पहुंचे तो भैरव राक्षस के भय से गुरु ने रामदेवजी को गुदड़ी में छिपा लिया। तभी राक्षस आ पहुंचा। गूदड़ी को हिलती देख उसने एक छोर पड़कर खींचा किंतु वह द्रोपदी के चीर की तरह बढती गई। डरकर भैरव वहां से भागा। रामदेवजी ने पीछा किया और उसे पाताल भेज दिया। रामदेवजी ने लक्खी बनजारे को भी परचा दिया और उसे सदैव सत्य बोलने की प्रेरणा दी। सारथिया सुथार को जीवनदान दिया। अपने भानजे सुगनाबाई के कंवर को भी जीवित किया। इनकी बहिन सुगनाबाई का विवाह पुंगलगढ़ के परिहार राव विजयसिंह से हुआ था। रामदेवजी का अछूतों के बीच उठना बैठना परिहार विजयसिंह को अच्छा नहीं लगता था। रामदेवजी का विवाह सोढ़ा पुत्री नेतलदे से तय हुआ। रामदेव ने रतना राइका को बहिन की ससुराल में न्यौता देने भेजा किन्तु वहां उसे बंदी बना लिया गया। तब रामदेवजी और हड़बूजी ने उन पर चढ़ाई कर दी। परिहार हार गया। बहनोई होने के कारण रामदेव जी ने उसे जीवनदान दे दिया तथा उसे सामाजिक समानता का सबक सिखाया। विवाह के बाद भी उनका 'जम्मा जागरण' अभियान चलता रहा। उसके अनुसार वे गांव गांव जाते, अछूतों का आतिथ्य सत्कार स्वीकार करते हुए व रात्रि में भजन कीर्तन द्वारा हिन्दू समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास करते। अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा होते देख बाबा रामदेव ने रूणीचा के रामसागर पर समाधि ले ली। उस स्थल पर रामदेवजी का मंदिर बनाया गया। हर वर्ष भाद्रपद शुक्ला द्वितीय से एकादशी तक यहां मेला भरता है, जिसमें देश के कोने कोने से करोड़ों श्रद्धालु भक्त रामदेवजी के दर्शनार्थ यहां आते हैं और पूजा अर्चना कर बाबा से मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना करते हैं।

(4) तेजाजी – वीरवर तेजाजी गोरक्षक थे। वे पराक्रमी और योद्धा होने के साथ साथ उच्च कोटि के साधक भी थे। अपनी साधना से अपनी साधना से प्राप्त सिद्धियों द्वारा उन्होंने जन कल्याण का कार्य किया। इन्होंने ही सांप का जहर उतारने में गोमूत्र व राख का प्रयोग किया। वचनबद्ध तेजाजी सांप के पास गए तो सांप ने उन्हें डंस लिया। किंतु उनकी वचनबद्धता से प्रसन्न होकर सांप ने यह वरदान दिया कि लोग सर्प के देवता के रूप में तुम्हारी पूजा करेंगे तथा सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति तुम्हारे नाम की तांती बांधने से उसका जहर उतर जाएगा। तभी से गांव गांव में तेजाजी लोकदेवता के रुप में पूजे जाते है। तेजी के चबूतरे पर भोपे सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति का जहर तेजाजी की कृपा से ही उतारते हैं। भाद्रपद की शुक्ला दशमी को तेजाजी के 'थान' पर मेला लगता है।

लोकदेवता तेजाजी का जन्म नागौर जिले के खरनाल्यां गांव में धोळया जाट के यहां हुआ था। बचपन में ही इनका विवाह पनेर के पटेल की लड़की पेमल से कर दिया गया किंतु अल्पायु के कारण इनका गौना नहीं हुआ। तेजाजी जब युवा हुए तो एक दिन भाभी के कटूवचन सुनकर अपनी पत्नी को लाने हेतु पनेर की ओर चल पड़े। मार्ग में अपशकुन हुए। तेजाजी ने उनकी परवाह नहीं की। ससुराल पहुंचने पर सास ने भी बिना सोचे समझे यह कह दिया कि 'कुण नाग रो काटियोड़ो आयो है जिका म्हारी गायां भिड़काय दी'। ऐसे कटू वचनों को सुनकर तेजाजी बाहर से ही रवाना हो गए। पत्नी के आग्रह पर हीरा के घर ठहरे। रात में मीणा लोग हीरा की गायें ले गए तो तेजाजी ने उनका पीछा किया और युद्ध करके गायें छुडा लाए। लेकिन एक बछड़ा कम होने की वजह से उन्हें दुबारा जाना पड़ा। मार्ग में आग मे जलते सांप को देखकर दयालु तेजाजी ने उसे भाले से बाहर निकाला। लेकिन सांप ने कहा कि 'मैं तूम्हें डंसूगा। तुमने मुझे बचाकर अपराध किया है। मै अपनी नागिन के साथ जल रहा था। नज न तो जल गई और मैं बच गया।' तेजाजी को अपनी गलती पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने सर्प को वचन दिया नज न गुजरी को उसका बछड़ा सौंपकर स्वयं उसके पास आ जाएंगे। तेजाजी ने वही किया। वे हीरा गूजरी को बछड़ा सौंपकर वापस सांप के पास लौट आए। सांप ने घायल तेजा को कहा कि तुम्हारा शरीर क्षत–विक्षत है, अतः कहां डसूं? तब तेजाजी ने जीभ निकाली और सांप ने उन्हें डंस लिया। तेजाजी का तेजस्वी शरीर निर्जीव हो गया। उनकी पत्नी उनके साथ सती हो गयी। तभी से तेजाजी की मूर्ति घोड़े पर बैठे हुए हाथ में भाला लिये हुए तथा सांप द्वारा काटते हुए की बनाई जाती हैं।

(5) हड़बूजी – हड़बूजी नागौर परगने के भूंडेल गांव के निवासी मेहराज सांखला के पुत्र थे। पिता के निधन के पश्चात् वे फलौदी परगने के चाखू गांव के पास हरभमजाळ में आकर रहने लगे। यहीं वे रामदेवजी के सम्पर्क में आए। हड़बूजी योद्धा होने के साथ साथ योगी एवं शकुनी थे। भविष्य की बातों का उन्हें पहले ही पता लग जाता था। हड़बूजी ने राव जोधा की सहायता की जिसके कारण जोधा ने भेंटस्वरूप इन्हें बेंगटी गांव दिया। बाबा रामदेव के ये मौसेर भाई एवं बालसखा थे। समाज सुधार के कार्यो में हड़बूजी ने बाबा रामदेव को आजीवन सहयोग दिया। पांचो पीर में हड़बूजी का नाम भी आता है। स्वयं बाबा रामदेव ने उनको अपना प्रतिरूप कहा है :–

"हड़बूजी सांखला हरदम हाजिर, गांव बेंगटी मांही।"
दूजी देह म्हारी हो जाणों, हां मौसी जाया भाई।।

सामाजिक समानता, आतिथ्य सत्कार तथा समाज सुधार के लिए पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा रखने के कारण हड़बूजी भी लोकदेवता के रूप में पूजे गए। कहा जाता है कि बाबा रामदेव ने जब समाधि ली, तब हड़बूजी कहीं बाहर गए हुए थे। वापस लौटने पर जब उन्हें पता चला नज न रूणिचा की ओर चल दिये। गांव की ओरण में एक पेड़ के नीचे रामदेव जी को खड़े देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उनको लगा कि रामदेवजी की समाधि का समाचार झूठा है। रामदेवजी स्वयं उनसे गले मिले। कुछ समय पश्चात् रामदेवजी ने हड़बूजी को एक 'रतन कटोरा' व एक सोहन चिटिया देकर कहा कि 'यह घर में दे देना। तुम घर चलो, मैं बाद में आऊंगा।' हड़बूजी दोनों वस्तुएं लेकर रामदेवजी के घर गए। उन्होंने घरवालों से कहा कि 'मैं रामदेव जी से अभी अभी मिलकर आ रहा हूं। उन्होंने स्वयं ये वस्तुएं मुझे दी है।' ये देखकर सभी ओरण की ओर दौड़े किंतु रामदेवजी तब तक अंतर्ध्यान हो चुके थे। सभी आश्चर्यचकित हो गए क्योंकि रतन कटोरा व सोहन चिटिया तो रामदेवजी की समाधि के समय साथ रखे गए थे। अब हड़बूजी समझ गए कि रामदेवजी ने अपनी प्रिय वस्तुएं मुझें सौंपकर अपनी स्नेहदृष्टि मुझ पर डाली है। अतः मुझे उनके कार्यो को आगे बढ़ाना है। हड़बूजी ने जीवनभर यही प्रयास किया।

(6) देवनारायणजी – देवजी का जन्म वि.स. 1300 के लगभग आसींद नामक गांव में हुआ था। ये नागवंशीय गुर्जर थे। इनके पिता सवाई भोज व माता साढू थी। देवजी के दादा बाघराव (बगड़ावत) थे। बाघराव (बाधा) के पिता हरिराव थे जिन्होंने नरभक्षी सिंह को मारा था। जब वे सिंह को मारकर उसका कटा सिर लेकर आ रहे थे तब खेवड़ी की लीला पर उनकी दृष्टि पड़ी। हरिराव ने उससे विवाह कर लिया। उससे बाधा पुत्र का जन्म हुआ। बाघजी के 12

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रानियां व 24 पुत्र थे। ये सभी बगड़ावत कहलाए। इनमें सवाई भोज बहुत प्रसिद्ध हुआ। तेजा सबसे बड़ा था। अन्यु पुत्रों मे नेवा बुद्धिमान था। बगड़ावतों को क्षेत्र गोठा था। ये बहुत वैभवशाली थे। चारों तरफ इनकी प्रसिद्धि फैल गई। राण के राजा से इनकी मित्रता थी किंतु दैवदुर्योग से राजकुमारी जयमती (जैमती) को लेकर राणा और बगड़ावतों में ठन गई। राजकुमारी जैमती के पिता राण के राणा से अपनी बेटा का विवाह करना चाहते थे किंतु जैमती ने राणा की बारात में आए सवाई भोज की तलवार मंगवाकर उससे चुपचाप विवाह कर लिया। अब बगड़ावत रानी जैमती को गोठा ले आए। राणा ने क्रोधित होकर गोठा पर आक्रमण क्र दिया। लड़ाई में सभी बगड़ावत मारे गए। जैमती सती हो गई किन्तु गर्भवती साढू को गुरु रूपनाथ ने रोक दिया। वह जंगलों में चली गई। माघ शुक्ल सप्तमी (भानु सप्तमी) को देवजी का जन्म हुआ। साढू उसे लेकर अपने पीहर रहने लगी। नेवा के पुत्र मानसिंह को गुरु रूपनाथ ने पाला महरावत के पुत्र भूणा को राण का राणा अपने साथ ले गया और खाण्डेराव नाम से उसका पालन किया। तेजा का पुत्र मदनसिंह व भोज का पदमा रानी से उत्पन्न महेन्द्रु भी बच गए। देवजी जब युवा हुए तो छोछू भाट की प्रेरणा से गोठा आ गए। मार्ग में उन्होंने धार के राजा की पुत्री पीपळदे से विवाह किया। फिर गोठ में आकर पुनः गोठ को बसाया। उन्होंने अपने भाइयों (मदनसिंह, महेन्द्रु, मानसिंह और भूणा) को अपने साथ लिया तथा राण के राणा के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। राजा के एक एक साथियों को पछाड़ते हुए उन्होंने राणा को मार डाला। अपने पिता की घोड़ी हाथी, नगाड़े, सभी वापस प्राप्त कर लिये। उन्होंने गोठ में अपने अग्रज महेन्द्रु का राजतिलक कर समाधि ले ली। लोकमान्यता है कि देवजी ने पीपळदे का वचन दिया था कि जब भी वह गोबर की गुंहली कर उनका आह्वान करेगी तो वे प्रकट हो जाएंगे और गुंहली के सूखते ही चले जाएंगे। पीपळदे ऐसा ही करती थी। एक दिन सास को राजपुरोहित से पता चल गया। पीपळदे को बताया कि गोबर की गुंहली में तेल डाल देना, जिससे गोबर सूखेगा नहीं और देवजी तुम्हारे ही पास रहेंगे। पीपळदे के ऐसा करने पर देवजी को सारी बात मालूम हो गई। उस दिन के बाद कभी भी न आने का कहकर वे हमेशा के लिये चले गए। जाते वक्त पुरोहित से नाराज होकर कहा कि अब मेरी पूजा गुर्जर ही करेंगे, ब्राह्मण नहीं तथा नीम की पत्तियों से ही मेरी पूजा होगी। अजमेर, टोंक, चित्तौड़, भीलवाड़ा के अधिकांश गांवों में देवनारायणजी के देवरे बने हुए है। जहां पर शुक्रवार की रात को जागरण तथा शनिवार को पूजा होती है। भाद्रपद शुक्ल पक्ष की छठ व सप्तमी को इन सभी स्थानों पर मेले लगते है। लोग यहां मनौती मांगने लगे है तथा मनोकामना पूर्ण होने पर श्रद्धानुसार प्रसाद चढ़ाते है।

(7) वीर फताजी – वीर फताजी का जन्म साथू गांव के गज्जारणी परिवार में हुआ। बचपन से ही फताजी साहसी एवं निडर थे। एक बार कुख्यात लुटेरों का एक गिरोह गांव साथू लूटने आ पहुंचा। तब अकेले फताजी आगे बढ़े। उन्होंने अपनी चमचमाती तलवार से अनेक लुटेरों को मार डाला। अन्य लूटेरे डरकर नौ दो ग्यारह हो गए। कुछ समय बाद लुटेरे पुनः संगठित होकर आए और उन्होंने गांव पर हमला कर दिया। फताजी फिर अपनी तलवार लेकर मैदान मे आ डटे। घमासान लड़ाई हुई। पराक्रमी फताजी के आगे वे टिक नहीं सके किन्तु तभी एक लुटेरा झाड़ी में छिप गया और उसने पीछे से फताजी पर वार करके उनका मस्तक काट डाला। कहा जाता है कि मस्तक कट जाने के बाद भी फताजी का धड़ लड़ता रहा और आधा किलोमीटर दूर जाकर गिरा। इस प्रकार वीर फताजी नज न के पूजनीय बन गए। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल नवमी को विशाल मेला भरता है। जो भी फताजी के मंदिर में मनौती मांगने आता है, उसकी मनोकामना पूर्ण होती है।

(8) वीर बिग्गाजी – जाखड़ समाज के कुलदेवता वीर बिग्गाजी भी ऐसे ही महापुरूषों की श्रेणी में आते है। जिन्होंने गौरक्षा में अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था। वीर बिग्गाजी का जन्म जांगल (बीकानेर) के एक जाट परिवार में हुआ। उनके पिता राव महन व माता सुलतानी थी। बिग्गाजी को बचपन से ही गायों से स्नेह था। वे उनकी देखभाल करते थे। बिग्गाजी एक बार अने साले की शादी में ससुराल गए। तब वहां के एक परिवार की गायों को लुटेरे चुरा ले गए। बिग्गाजी तुरंत अपने घोड़े पर सवार हो लुटेरों के पीछे दौड़े और उन्हें पकड़ लिया। लड़ाई करके सारी गाय नज न आए किंतु एक बछड़ा रह जाने की वजह से उन्हें दुबारा जाना पड़ा। वे लुटेरों से दुबारा भी बड़ी बहादुरी से लड़े। किंतु पीछे से किसी ने वार कर दिया और वे वीरगति को प्राप्त हो गए।

(9) पनराजजी – पनराज जी का जन्म जैसलमेर जिले के नग्गा गांव में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ। इनका बचपन भी गायों के बीच बीता। इसलिए इनका गायों से विशेष प्रेम होना स्वाभाविक था। जब वे गो माता पर अत्याचार देखते तो उनका खून खोल उठता। एक बार कुछ लुटेरे गायों का मांस प्राप्त करने हेतु जैसलमेर के काठौड़ी गांव के ब्राह्मण की गायें चुरा कर ले भागे। पनराजजी ने यह सुना तो काटो तो खून नहीं। वे अपनी तलवार ले घोड़े पर सवार हो तुरंत लुटेरों को पीछे भागे। जमकर उनसे लड़ाई की और अंत में सभी गाये छुड़ा ले आए। बाद में पता चला कि एक बैल कम है। तब वे वापस गए। फिर संघर्ष हुआ। पनराजजी ने अनेक लुटेरों को मार

गिराया। अंत में एक लुटेरे ने उनका सिर काट डाला। सिर कट जाने के बाद भी उनका धड़ लड़ता रहा। फिर शांत हो गया। कहते है कि उनके घोड़े ने भी वही अपने प्राग त्याग दिये। आज भी जुझारू पनराजजी की स्मृति में जैसलमेर के पनराजसर गांव में भाद्रपद सुदी दशमी व माघ सुदी दशमी को मेला लगता है। गौरक्षक पनराजजी भी लोकदेवता के रूप में पूजे गए।

(10) वीर कल्लाजी – वीर कल्लाजी राठौड़ मेड़ता के निवासी थे। ये मेड़ता के राव जयमल के छोटे भाई आससिंह के पुत्र थे। मीराबाई इनकी बुआ थी। इनका बचपन मेड़ता में ही बीता। इन्होंने अस्त्र शस्त्र एवं औषधि विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। योगाभ्यास भी किया। अकबर ने जब मेड़ता पर हमला किया तो राय जयमल, आससिंह एवं कल्लाजी ने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया। फिर वे सभी चित्तौड़ पहुंच गए। महाराणा उदयसिंह ने इन वीरों की जागीरें प्रदान की। वीर कल्लाजी ने कुशल राजनीतिज्ञ की तरह भीलों को अनुकूल बनाया तथा मेवाड़ की सुदृढ़ मोर्चाबंदी की। इतना ही नहीं, अपनी सिद्धियों एवं औषधि ज्ञान द्वारा उन्होंने कई लोगों का ईलाज भी किया जिससे ये बहुत लोकप्रिय हो गए। इनका विवाह शिवगढ़ के पास कृष्णदास की पुत्री कृष्णा से होना तय हुआ। जब तोरण मारने का समय आया तभी चित्तौड़ से संदेशा आ गया कि मुगल बादशाह अकबर ने मेवाड़ पर हमला कर दिया है। संदेशा पाकर शीघ्र ही कल्ला जी अपने साथियों को लेकर चित्तौड़ पहुंचे और मुगल सेना का सामना किया। चित्तौड़ की क्षत्राणियों ने जौहर किया। राव जयमल ने केसरिया बाना पहनकर किले के फाटक खोल दिये और वे सिंह की तरह मुगलों पर टूट पड़े। सेनापति राठौड़ जयमल के पैरों में गोली लगी। वे उठ नहीं सकते थे कि किन्तू उनके मन में युद्ध करने की तीव्र ईच्छा थी। उनकी व्याकुलता देखकर कल्लाजी राठौड़ ने उनको दोनों हाथो में तलवार पकड़ा दी तथा उन्हें अपने कंधे पर बिठा लिया। स्वयं ने दोनों हाथों में तलवार ले ली और घूम घूम कर युद्ध करने लगे। चारों तलवारें एक साथ चलने गी। लाशों के ढेर लग गए। दूर से यह दृश्य देखकर अकबर घबरा गया। एक मनुष्य के दो सिर और चार हाथ देखकर उसने सोचा कि क्या यह कोई देव है।? काफी समय तक युद्ध करने के बाद जयमल और कल्ला बुरी तरह थक गए। कल्ला ने उन्हें नीचे उतारा। तभी एक शत्रु सैनिक ने पीछे से वार कर कल्ला का मस्तक काट डाला। उनका धड़ मुगलों से युद्ध करता रहा। कहा जाता है कि उनका धड़ युद्धभूमि को चीरता हुआ शिवगढ़ की ओर अपना वचन न्भिाने के लिए बढ़ गया। कृष्णा को स्वप्न में कल्लाजी का धड़ आता हुआ दिखाई दिया। उसने उठकर किले के बाहर कबंध से सात फेरे लिये और उसी के साथ सती हो गई। कल्लाजी युद्धभूमि में चतुर्भुज रूप में दिखाई दिये थे। अतः वे लोकदेव के रूप में पूजे गए। उनकी पूजा नाग रूप में भी की जाती है। ऐसी मान्यता है नज न शेषनाग के अवतार थे। उनके मंदिरों के पुजारी सर्पदंश से पीड़ित लोगों का उपचार करते हैं। सामलिया (डूंगरपुर जिले का) क्षेत्र में कल्लाजी की काले पत्थर की मूर्ति स्थापित है। यहां प्रतिदिन मूर्ति पर केसर तथा अफीम चढ़ाई जाती है। यहां का पुजारी कल्ला जी (काली कल्याण) का आह्वान पर किसी व्यक्ति के शरीर की कष्टकारक गांठ को तलवार से निकाल देता है। तलवार से गांठ को निकालने के पश्चात् भी खून नहीं निकलता, यह आश्चर्यजनक बात है।

(11) संत जाम्भोजी – धर्मरक्षक लोकदेवता संत जम्भेश्वर का जन्म नागौर जिले के पीपासर गांव में ठाकुर लोहट पंवार के पूजाघर में कृष्ण जन्माष्टमी की अर्द्धरात्रि में हुआ था। उनकी माता हंसादेवी तो उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार ही मानती थी। बाल्यकाल में ही जाम्भोजी योग साधना करने लगे। उन्होंने गीता, वेद, उपनिषद, पुराण आदि का गहन अध्ययन किया। जाम्भोजी ने अपने उपदेशों से हिंदूओं में आत्मविश्वास जगाया। अपने चमत्कारी कार्यो से नागौर के सूबेदार मैमदखां को झुकाया। एक बार दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी ने जब उनके दो शिष्यों को कैद में डाल दिया तथा उन्हें पांच दिन तक गौ मांस ही दिया। किन्तु उन दोनों मुस्लिम शिष्यों ने गौ मांस को छुआ तक नहीं। सिकन्दर लोदी जब उन्हें देखने जेल पहुंचा तो वह आश्चर्यचकित रह गया। वहां एक गाय खड़ी थी हासिम दूध निकाल रहा था तथा कासिम हवन कर रहा था। सिकन्दर लोदी को जाम्भोजी ने गौवध न करने की सलाह दी। जाम्भोजी ने हिन्दुओं के धर्मान्तरण को रोका। अपने चमत्कारों से हिन्दुओं में आत्मविश्वास जगाया। समाज में धर्म की प्रतिष्ठा के लिए 29 नियम बनाए। इन नियमों का निर्वाह करने वाले विश्नोई (विष्णु का अनुयायी) कहलाएं। जाम्भोजी ने पशुवध व बृक्ष की कटाई पर रोक लगाई, जिससे पर्यावरण की सुरक्षा हुई। उनका कहना था कि 'सिर साटै रूंख रहे, तो भी सस्तों जाणं।' आज भी विश्नोई ओरण में खेजड़ी तक को नहीं काटने देते तथा पशुवध नहीं करने देते। वे इनकी सुरक्षा के लिए मरने मारने पर तैयार हो जाते है। पीपासर, जाम्भा, जांगळू में भादवा की अमावस तथा चैत्र की अमावस को मेला लगता है। जागळू में बीस क्विंटल घी प्रसाद में चढाया जाता है।

(12) संत जसनाथ जी – जसनाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत जसनाथजी का जन्म बीकानेर जिले के कातरियासर ग्राम में हुआ था। ऐसी मान्यता है कि कातरियासर के जागीरदार हमीर जाट को स्वप्न में यह दिखाई

दिया कि एक बालक गांव की उत्तर दिशा में तालाब के किनारे बैठा है। प्रातः वह वहां गया तो उसने देखा कि सचमुच एक तेजस्वी बालक वहां बैठा था। वे नज न आये और उसका पालनपोषण करने लगे। जब वे एक वर्ष के थे तो किसी कार्यवश माता को बाहर जाना था, उसने बच्चों को खंभे से बांध दिया ताकि वह आंगन में अंगीठी के पास न जा सके। वह स्वयं चली गई। नज न वापस लौटी तो उसने देखा कि बच्चा अंगीठी में बैठा हुआ है और जलते हुए अंगारे अपने सिर पर डाल रहा है। मां जब व्याकुल हो कर रोने लगी तो बच्चा बाहर आकर मां की गोद में बैठ गया। उसे कुछ भी नहीं हुआ। ऐसे कई अलौकिक चमत्कारों के कारण वे लोगों के श्रद्धेय बन गए। उन्होंने गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हुए वेद, पुराण, उपनिषद का अध्ययन किया। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर गुरु गोरखनाथ के संदेशों को लोगों तक पहुंचाया। पशुवध का निषेध करते हुए सात्विक पूजा पर बल दिया। उन्होंने 36 धार्मिक नियम बनाए। इनकी अनुपालना करने वो 'जसनाथी' कहलाए।

(13) हरिपुरूषजी – हरिपुरूषजी का जन्म नागौर जिले के कापडोद गांव में हुआ। इन्होंने अपने परिवार का पालन करने के लिए डकैती करनी आरंभ की। डीडवाना एवं कोलिया के मध्य ये लूटपाट करते थे। एक दिन एक महात्मा की प्रेरणा से डकैती छोड़कर पश्चिमी के पहाड़ी प्रदेश की सबसे ऊंची पहाड़ी 'तीखी डूंगरी' पर जाकर वे तपस्या करने लगे। 12 वर्ष तक कठोर तपस्या करके सिद्धियां प्राप्त की तथा हरिपुरूष के नाम से विख्यात हो गए। तपस्या के दौरान डीडवाना के गाढ़ाजी विहाणी हमेशा इनके लिए भोजन पानी लेकर डूंगरी पर आते थे। एक दिन ऊपर चढ़ते बक्त ठोकर लगने से पानी का घड़ा गिर कर फूट गया। गाढ़ाजी भोजन लेकर पहुंचे। उन्होंने सारी बात हरिपुरूष जी को बताई। तब सिद्धपुरूष हरिपुरूष जी ने कहा, ''पानी का घड़ा सही सलामत है तुम जाकर उठा लाओ।'' गुरु आज्ञा से गाढ़जी वहां आये जहां घड़ा फूटा था। उन्होंने देखा कि घड़ा यथास्थान भरा पड़ा था। उनका यह चमत्कार देख वे बहुत प्रभावित हुए। संतानलीन गाढ़जी को गुरुकृपा से पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने बावन बीघे का खेत गुरु को भेंट किया। हरिपुरूष ने अनेक लोक कल्याणकारी कार्य किये। नागौर की भूत बावड़ी में रहने वाले भूतों का भी उद्धार किया। अजमेर पहुंचने पर एक मुस्लिम सूबेदार ने उन्हें मारने हेतु मदोन्मत हाथी छोड़ा किंतु सामने आते ही हरिपुरूष को मारने की बजाय उनके चरणों में गिर पड़ा। यह चमत्कार देख लोगों ने उस स्थान पर पत्थर का हाथी बनवाकर स्थापित करवा दिया। आज भी वह स्थान 'हाथी भाटा' के नाम से प्रसिद्ध है। वे अजमेर से जोबनेर और खेतड़ी होते हुए सिघाणे गांव में पहुंचे। वहां धार्मिक वृत्ति वाले शाहजी के मृत पुत्र को पुनः जीवित कर दिया। इस प्रकार भौतिक कष्टों का निवारण करते हुए वे वापस डीडवाना लौट आए। वहां उन्होंने समाधि ले ली। वह स्थान गाढ़ा बास तथा समाधि गाढ़ा धाम के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी डीडवाना में फाल्गुन शुक्ला षष्टमी को इस स्थान पर विशाल मेला भरता है। दूर दूर से श्रद्धालू यहां आकर मनौती मांगते है। ऐसी भी मान्यता है कि उनकी समाधि पर एक रात लेटने से असाध्य से असाध्य रोग ठीक हो जाते है।

(14) संत मावजी – डूंगरपुर जिले के साबला गांव में लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व औदिच्य ब्राह्मण डाडम ऋषि के घर एक होनहाल बालक का जन्म हुआ। अल्पायु में ही अनेक चमत्कार दिखाने के कारण वह सिद्ध माना जाने लगा। एक बार बालक को मां ने पशुओं को चराने हेतु भेजा। बालक अपने ही खेत में पशुओं को चराने लग गया। तभी किसी ने जाकर उसकी मां को शिकायत कर दी कि तुम्हारा बालक तुम्हारे ही खेत में पशु चरा रहा है। मां दौड़ी दौड़ी आई। उसने देखा, वहां फसल ज्यों की त्यों खड़ी है और बालक तथा पशु वहां नहीं है। उसके चमत्कारी खबर सुनकर डूंगरपुर के महारावल ने उस बालक को अपने पास बुला लिया। बालक ने महरावल को गेप सागर पर चलकर दिखाया तथा यह भविष्यवाणी की कि थोड़े दिनों में गेप सागर पर बालक व पशु चलेंगे। उसकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। मावजी ने अनेक भविष्यवाणियां की। वे सत्यसिद्ध हो रही है। मावजी की स्मृति में प्रतिवर्ष बेणेश्वर में मेला भरता है तथा लाखों श्रद्धालू उनके दर्शनार्थ आते हैं।

(15) संत पीपा – दर्जी समाज के कुलदेवता संत पीपा का जन्म गागरोन के राजा खींची चौहान कड़ावा राव के यहां चैत्र की पूर्णिमा को हुआ था। इनका नाम प्रतापसिंह था। उन्होंने युवावस्था में गागरोन गढ़ की बागडोर संभाल ली तथा साथ ही प्रजा का हित करने लगे। एक कुशल राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ, साहसी योद्धा तथा श्रेष्ठ गृहस्थी के रूप में उनकी प्रसिद्धि हो गई। प्रतापसिंह ने अपना राजकाज अपने भतीजे को सौंप दिया तथा स्वयं रामानंद के शिष्य बनकर संन्यास धारण कर लिया। तब से वे संत पीपाजी कहलाए।

पीपाजी ने समाज में व्याप्त बुराईयों, विसंगतियों, छूआछूत, ऊंचनीच के भेदभाव को मिटाकर सामाजिक समानता, धर्मसुधार एवं अहिंसा का सदुपदेश दिया। खाली समय में वे वस्त्रों की सिलाई करते थे। इसलिए सिलाई का व्यवसाय करने वाले दर्जी इन्हें अवतारी पुरूष मानकर इनके अनुयायी बन गए। पीपाजी का चैत्र शुक्ला नवमी वि.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स. 1441 को देहांत हो गया। आज भी गागरोन, जोधपुर, समदड़ी और जोधपुर के मसूरिया क्षेत्र में उनके नाम पर बड़ा भारी मेला लगता है।

पीपाजी के अलावा मालासी, बाबा तल्लीनाथजी जी, सांगरिया बावजी, विनोता बावजी, भवरास्या बावजी, मांगलिया बावजी, घातोड़ जी, लीमड़ियाजी बावजी, खेतरनाल, भदेसरिया भैरू, भरकां भैरू, नाकौड़ा भैरू, मोरिड़या भैरू, ढेड़ा बावजी, बड़ालिया बावजी, लिमड़ावाला बावजी, वेणियां बावजी, सगसाजौ बावजी, ताकाजी बावजी, खाण्डाजी बावजी, गोसुण्डा रैबारी बावजी, रम्टिया बावजी आदि अनगिनत लोकदेवता हुए है जिन्होंने नज न के भौतिक कष्टों तथा तापों का निवारण कर समाज में धर्मभावना को बढ़ावा दिया तथा समाज सुधार कर लोगों में सामाजिक चेतना जागृत की। आदर्शो के तेजोपुंज इन लोकदेवताओं ने मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा दी। इसलिये नज न ने इनके प्रति अपनी आस्था प्रकट की।

12.3 लोकदेवियां

लोकदेवताओं के समान ही राजस्थान में अनेक लोकदेवियां की भी पूजा प्रचलित हैं। करणीमाता, आईमाता, केलादेवी, जीण माता, शीतलामाता, बड़ली माता, भदाणा माता, घेवरमाता, बेदला माता, नाराणी माता, नीमच माता, सन्तोषी माता, हिचकी माता, ऊंठाला माता, भंवरमाता, वरेकण माता, हुल्लामाता, आवरी माता, मरमी माता, झांतरा माता, इंडाणी माता, धूणी माता, कालका माता, आसापुरी माता, अधरदेवी, नागणेची माता, हिंगळाज माता, सोण माता, जेला माता, सकराय माता, आवड़ माता, छींक माता, हंगेर माता, केलवा माता, मोहरा माता, आमज माता, फूला माता, चमावली माता, चौथमाता, ओसिया माता, लटियाळ माता, ऊंटादेवी माता और मालण माता आदि अनेक देवियां अपने अपने अंचल विशेष में पूजी जाती है। जनमानस में लोकदेवियों के प्रति बहुत श्रद्धा है। ऐसी मान्यता है कि यदि कोई सच्चे मन से लोकदेवी की आराधना करे तो उसकी मनोकामना पूर्ण होती हैं। आधिव्याधि का निवारण होता है। असाध्य रोग भी ठीक हो जाता है। नीचे कुछ प्रमुख लोकदेवियों का वर्णन किया गया है–

(1) करणीमाता – बीकानेर के पास देशनोक में करणीमाता का मंदिर बना हुआ है, जहां लाखों श्रद्धालु माता के दर्शन कर अपनी मनौती मांगते है। करणीमाता का जन्म जोधपुर के लुवाप नामक गांव में किनिया शाखा के चारण मेहा के यहां हुआ था। इनकी माता देवल थी। गायों का पालन पोषण करना इनका प्रमुख कार्य था। इनका विवाह साठी निवासी देपाजी बीठू के साथ हुआ। जिन्होंने गोपालन व गोरक्षा में ही अपना जीवन व्यतीत किया। एक बार राव कान्हा ने गायों पर आक्रमण कर दिया, तब करणी माता ने क्रोध में आकर उसका वध कर दिया। उन्होंने डरपोक चारणों को शाप देकर उन्हें चूहे बना दिये। इसी कारण माता मंदिर में चूहों की भरमार हैं। सफेद चूहा देवी का प्रतीक है। कहा जाता है कि देवी जब प्रसन्न होगी तभी इन चूहों का उद्धार होगा। यहां आश्चर्य की बात यह है कि एक साथ इतने चूहे होने पर भी यहां कभी प्लेग नहीं फैला। बल्कि प्लेस ग्रस्त व्यक्ति भी यहां आकर स्वस्थ होकर जाता है।

(2) जीण माता – जीण का जन्म धांधू में चौहान राजपूत कुल में हुआ। इनका एक भाई हर्ष था। दोनो भाई बहिनों में बहुत प्रेम था। जीण के माता पिता का देहांत इनकी बाल्यावस्था में ही हो गया। भाई हर्ष ने जीण को बहुत स्नेह दिया। युवा हो जाने पर भाई का विवाह हो गया। एक दिन जीण व उसकी भाभी में कुछ कहासुनी हो गई। जीण रूष्ट हो घर छोड़कर चली गई। हर्ष ने जाकर जीण को बहुत समझाया किन्तू वह वापस घर नहीं लौटी। तब हर्ष भी बहिन के साथ रहने लगा। दोनों भाई बहिन पहाड़ पर तपस्या करने लगे। इस प्रकार भाई बहिन के पवित्र प्रेम ने जनमानस को प्रभावित किया।

(3) जिलाणी माता – अलवर जिले के बहरोड़ कस्बे की एक प्राचीन बावड़ी के पास जिलाणी माता का मंदिर है। यह माता हिन्दुओं की रक्षक के रूप में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार बहरोड़ कस्बे के संतोरियां गौत्र के हिन्दुओं पर यहां के मुस्लिम सूबेदार ने इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए दबाव डाला, किंतु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। तब उन हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये गए। आगरा की जेल में उन्हें कैद कर लिया गया तथा उन्हें मौत की सजा सुनाई। तब जेल के अधिकारी द्रवीभूत हो गए। एक रात उन्होंने सभी को रिहा कर दिया तथा स्वयं भी उनके साथ हो लिये। ये सभी लोग पटियाला की ओर चल दिये। सूबेदार को जब पता चला तो उसने पीछे सेना दौड़ाई। ऐसे संकट में वे सभी घने जंगल में घुस गए। वहां इन्हें एक गूजरी जिलाणी मिली। उसने सभी लोगों को खण्डहरों में छिपा दिया। सेना वहां पहुंची, लेकिन सघन अंधकार व वर्षा के कारण उसे कुछ भी नहीं सूझा और वह निराश होकर लौट गयी। इस प्रकार साधारण सी गूजरी जिलाणी ने उनकी रक्षा की। उन्हें मुसलमान होने से बचाया जिससे वह लोगों में पूजनीया हो गई।

(4) बड़ली माता – लोकदेवी बड़ली माता की भी बहुत महिमा है। यहां धोक देने से बच्चों की बीमारी ठीक हो जाती है। पक्षाघात, सिरदर्द, अंगों का कंपन जैसे कई बीमारियां माता की शरण में आने से ठीक हो जाती है। बड़ली माता की बोलवा कर लोग बीमार व्यक्ति के तांतें बांधते है और ठीक हो जाने पर श्रद्धालु उसे लोहे का त्रिशूल चढ़ाते हैं। बड़ली माता मंदिर का मंदिर चित्तौड़ जिले में छीपों के आकोला में बेडच के ढाबे में है।

(5) शीतला माता – शीतला माता के मंदिर तो सभी जगह विद्यमान है। इस माता की आराधना करने से चेचक नहीं होती। यह माता दूसरों के खण्डेपन को स्वयं वहन कर उसे अखण्ड रूप प्रदान करती है। इसीलिए लोग मेहंदी, कुंकुम और चूरमा चढ़ाकर उसकी पूजा करते है। वे शीतल सप्तमी को पहले दिन का बनाया हुआ ठंडा भोजन करते है ताकि माता को ठण्डक मिले। शीतला माता का प्रसिद्ध मंदिर चाकसू में है। जोधपुरवासी अष्टमी को शीतला माता का प्रसाद ग्रहण करते है।

(6) भदाणा माता – कोटा से 5 किलोमीटर की दूरी पर भदाणा माता मंदिर है। इस के थान पर भोपे मूठ की झपट में आए व्यक्ति को बचाते हैं। भोपे को माता का भाव आता है तो उसे साड़ी ओढ़ाई जाती हैं। फिर वह मूठ से ग्रस्त व्यक्ति की कुहनियों एवं घुटनों को चूस चूसकर उनसे उड़द और मूंग बाहर निकाल कर फेंकता है। फिर देवी के सम्मुख भैंरू के बोतल चढ़ाई जाती है। ठीक होने पर श्रद्धालु सवामणी का प्रसाद चढ़ाता है।

(7) घेवर माता – राजसमंद की पाल पर घेवरमाता का मंदिर बना हुआ है। यहां अनेक लोग दर्शनार्थ आते है। ऐसा माना जाता है कि जब राजसमंद की पाल बनाई जाने लगी तो वह बार बार टूट जाती थी। तब किसी ज्योतिषी ने इसका उपाय बताया कि यदि पतिव्रता स्त्री जिसके बाएं गाल पर आंख के नीचे तिल हो, के हाथ से पाल पर पत्थर रखवाया जाय तो पाल नहीं टूटेगी। खोज करने पर मालवे में घेवर बाई मिली जो पतिव्रता थी तथा उसके बाएं गाल तिल था। उसने पाल पर पत्थर रखा। अपने हाथों में होम की ज्वाला प्रज्जवलित करके वह बिना पति के ही अकेली सती हो गई।

(8) कैला देवी – करौली के पास जंगल में कैलामाता का मंदिर है। कहा जाता है कि यहां साधु संतों को राक्षस सताते थे। तब राक्षसों से छुटकारा दिलाने हेतु योगिराज केदारगिरी ने कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर मां भगवती स्वयं प्रकट हुई तथा दानवों का संहार किया। उस स्थान पर आज भी माता के चरण चिन्ह अंकित है, जहां माता प्रकट हुई थी।

(9) आई माता – बिलाड़ा में आईमाता का मंदिर है। आईमाता यों तो सिरवी जाति के क्षत्रिय लोगों की कुलदेवी हैं। किन्तू यहा सभी जातियों के लोग दर्शनार्थ आते हैं तथा देवी से मनौती मांगते है। इस मंदिर में एक आश्चर्य देखने में आता है–यहां की दीपक ज्योति से केसर टपकती है।

राजस्थान में और भी अनेक लोकदेवियां है जो जन जन के भौतिक कष्टों का निवारण करती है तथा लोगों की मनोकामनाएं पूर्ण करती है। इन देवियों के प्रति लोगों में अपार श्रद्धा है। श्रद्धालु भक्तजन इनके दर्शन कर कृतकृत्य होते है तथा पुष्प प्रसाद चढ़ाकर धोक देते हैं।

12.4 लोकोत्सव

सभ्यता के आदिकाल से ही उत्सव, त्यौहार और मेले आदि मनाए जाते रहे है। सभ्यता के विकास के साथ साथ इन उत्सवों और मेलों में भी वृद्धि हुई है। उनका मनाने का समय और क्रम भी नियत किया गया तथा मनाने का विधि विधान भी बनाया गया है। ये उत्सव, मेले किसी भी देश की संस्कृति के परिचायक है। इनके साथ सामाजिक परम्पराएं जुड़ी रहती है। ये त्यौहार और मेले सांसारिक–उलझनों में फंसे मनुष्यों को कुछ समय के लिए शारीरिक एवं मानसिक विराम तथा आनद प्रदान करते है। उनका मनोरंजन करते है और उन्हें सामाजिक सुख का एहसास कराते हैं। इन मेलों और त्यौहारों से जीवन में आशा एवं उत्साह का संचार होता है तथा जीवन में सरसता आती है। अतः जो जाति जितने उत्साह से अपने उत्सव व त्यौहार मनाती है, वह उतनी ही प्राणवान एवं सशक्त बनाती है। इन उत्सव, त्यौहारों व मेलों का धार्मिक दृष्टि से भी महत्व है। कई उत्सव, मेले उन स्वनामधन्य प्रातः स्मरणीय महापुरूषों की पावन स्मृति में मनाए जाते हैं, जिन्होंने मानवीय आदर्शो का पालन करते हुए जनकल्याण के निमित स्वयं को न्यौछावर कर दिया था। उन्होंने लोगों के भौतिक कष्टों का निवारण किया तथा गोरक्षा एवं मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। राजस्थान में ऐसे बहुत से महापुरूष हुए है। जैसे गोगाजी, पाबूजी, रामदेवजी, मल्लीनाथजी, जाम्भोजी, पीपाजी, तेजाजी आदि। उनके साथ साथ पीर पैगम्बरों, सती साध्वियों लोकदेवियों आदि के नाम पर भी मेले भरते है। इन मेलों में भक्ति रस की सरिता प्रवाहित होती है, जिसमें गोते लगाकर जन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मन आनंदमग्न हो जाता है। इसके अलावा इन मेलों में छोटी बड़ी हर वस्तु मिलती है। स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बूढ़े सभी के उपयोग की वस्तुएं मिलती है। सौन्दर्य प्रसाधन, कृषि से संबंधित वस्तुएं तथा घरेलू वस्तुओं के अलावा पशुओं का क्रय विक्रय भी इन मेलों में होता है।

राजस्थान के मेलों देश के कोने कोने से लोग आते है। कुछ लोग व्यापार के उद्देश्य से कई लोग लोकदेवताओं एवं आदर्श महापुरूषों के दर्शनों का लाभ उठाने हेतु आते है जिससे राजस्थानवासियों के साथ उनका मेलजोल बढ़ता है। भाईचारा, धार्मिक सहिष्णुता, भक्तिभाव श्रद्धा विश्वास, दान–पुण्य, परोपकार, सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता के एक साथ दर्शन इन मेलों में होते है। राजस्थान की इंद्रधनुषी संस्कृति की पहिचान कराने वाले कुछ प्रमुख उत्सव, त्यौहार व मेलों की झलक दृष्टव्य है–

(1) गणगौर – राजस्थान का एक प्रमुख उत्सव गणगौर है। 'गण' का अर्थ तथा शिव, 'गौर' गौरी या पार्वती है। अतः 'गणगौर' पर्व में शिव व पार्वती की आराधना कर कुंवारी कन्याएं अपने लिये उपयुक्त वर तथा नारियां अपने अखण्ड सुहाग की कामना करती है। होली के दूसरे दिन चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से लेकर चैत्र शुक्ला तृतीया तक यह उत्सव चलता है। ईसर व गवर की मिट्टी की मूर्तियों को प्रतिष्ठित कर बालिकाएं एवं स्त्रियां पूजा करती है। होलिका दहन के दूसरे दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को जवारे (गेहूं के दाने) बोये जाते है और रोज सींचे जाते है। गवर ईसर की पूजा कर भोग लगाकर गीत गाए जाते है। चैत्र कृष्णपक्ष की अष्टमी से घुड़ला उत्सव होता है, जिसमें कुम्हारिन के घर से छेदों वाली मटकी ली जाती है। उसमें दीपक जलाया जाता है। मटकी (घुड़ला) के कच्चा सूत बांधा जाता है। फिर बालिका उसे सिर पर उठाकर चलती है। अन्य स्त्रियां गीत गाती हुई चलती है। घुड़ले के पीछे एक ऐतिहासिक घटना है। एक बार अजमेर का सूबेदार मल्लूखां लूटपाट करते हुए कोसाणा गांव तक पहुंच गया। वहां उसके सेनापति व सैनिकों ने गणगौर की पूजा करने वाली स्त्रियों और बालिकाओं का अपहरण कर लिया। जोधपुर के राव सातल ने उन्हें छुड़ाने के लिए आक्रमण किया तथा घूड़ले खां तो तीरों से बांध दिया। वे तीजणियों को तो छुड़ा लाये किन्तु वे स्वयं बुरी तरह घायल हो गए। चैत्र शुक्ला तीज को उनकी मृत्यु हो गई। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को लोटियां लाई जाती है। बालिकाएं व स्त्रियां वस्त्राभूषणों से सजधज कर छोटे छोटे कलश और लोटे आदि लेकर तालाब पर जाती है। उनमें पानी भरती है। कुंकुम, दूर्वा, नीम की पतियां व फूलों से सजाकर सिर पर रखती है तथा गीत गाती हुई आती है और गवर ईसर के सम्मुख लोटियां रखती है। तीज के दिन गणगौर की विशेष पूजा की जाती हैं संध्या को गणगौर की सवारी बड़े ठाठबाठ से निकाली जाती हैं। फिर मिट्टी की गणगौर को जल में विसर्जित कर दिया जाता है।

(2) रामनवमी – चैत्र शुक्ला नवमी को श्रीराम का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। श्रीराम को शाही ठाठ बाठ से सवारी निकाली जाती है। घर में लापसी, चावल, चने की कड़ी एवं अन्य मिष्ठान्न बनाकर भोग लगाया जाता है। इसी दिन चैत्र की नवरात्रि का समापन होता है अतः नवरात्रि के नौ व्रत करने वाले नौ कुंवारी बालिकाओं को नवदुर्गा मानकर भोजन कराते है।

(3) धींगा गवर – धींगा गणगौर की पूजा विधवाएं तथा सुहागिनें दोनों ही करती है। चैत्र शुक्ला तीज से पूजा आरंभ की जाती है। दीवार पर धींगा गवर का चित्र बनाया जाता है। पास में गणेशजी का चित्र भी होता है। वैशाखा कृष्ण तीज को विशेष पूजा की जाती है। रात्रि में औरतें नाचती गाती हुई अन्य स्थानों पर प्रतिष्ठित धींगा गवर के दर्शनार्थ जाती है। कुछ औरतें स्वांग भी धारण कर चलती है। फिर ब्रह्म मुहूर्त वेला में धींगागवर का जल में विसर्जन कर दिया जाता है। जोधपुर में यह मेला विशेष हर्षोल्लास से मनाया जाता है। रात्रि में औरतें बेंत लेकर चलती है तथा सड़क के आजू बाजू बैठे हुए पुरुष रिश्तेदारों पर बेंत से हल्का सा प्रहार करती है। यदि कोई पुरुष फिकरे कसने की कोशिश में यदि बेंत से पिट जाता है तो इसे शुभ शकुन मानते हैं। इसलिए यह 'बेंतमार धींगागवर' के मेले के रूप में प्रसिद्ध है।

(4) अक्षय तृतीया – राजस्थान में वैशाख शुक्ला तीज को अक्षय तृतीया (आखातीज) का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन साबूत अन्न (गेहूं, बाजरा) का खीचड़ा, गुड की गलवाणी व बड़ी का साग बनाया जाता है। इस दिन बिना मुहूर्त के विवाह होते हैं। छोटी छोटी बालिकाएं झुण्ड बनाकर अपने में से ही एक बालिका का दूल्हा व दूसरी को दुल्हन बनाकर घर घर जाती है, गीत गाती है। तब उन्हें उन्हें वहां से गेहूं, गुड और रूपये आदि दिये जाते है। उन्हें वे आपस में बांट लेती है। उनके बदले वे बाजार से खाने की वस्तुएं ले आती है। इस दिन छोटी जातियों में बालविवाह भी बहुत होते है।

(5) गुरुपूर्णिमा – आषाढ शुक्ला पूर्णिमा राजस्थान में गुरु पूर्णिमा के रूप में विख्यात है। इस दिन सभी अपने अपने गुरु की पूजा और अर्चना कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

(6) रक्षाबंधन – श्रावण मास की शुक्ला पूर्णिमा को रक्षा बंधन का त्यौहार मनाया जाता है। यह दिन भाई बहिन के पावन प्रेम के रूप में मनाया जाता हैं। इस दिन कुंवारी कन्याएं दीवारों पर रिखेसर (रक्षा करने वाले देव) के रूप में भाई बहिन का चित्र बनाती है। मीठी सेवइयों का भोग लगाती हैं तथा कच्चे सूत की राखी उनकी कलाइयों पर चिपकाकर बांधती है। सभी बहिनें सजधज क़र भाई के राखी बांधते है, आरती उतारती है और उन्हें मिठाई खिलाती है। भाई भी बहिन को बड़े प्रेम से नेग देता है। बहिन से राखी बंधवाकर भाई बहिन के निष्छल सरल प्रेम का सम्मान करता है और उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व लेता है।

(7) काजळी तीज – भाद्रपद की कृष्ण तीज काजळी तीज के रूप में मनाई जाती हैं। इसे बड़ी तीज भी कहा जाता हैं। इस दिन बालिकाएं व सुहागिनें व्रत करती हैं। संध्या को नीमड़ी की विधिवत् पूजा कर बालिकाएं अनुकूल सून्दर वर की कामना कती है। सुहागिनें पति की दीर्घायु की कामना करती है। वे तीजमाता की कथा सुनती है। मंदिरों में देवी के दर्शन करती हैं। वे झूला झूलती है तथा चंद्रमा के दर्शन कर सत्तू (चने का आटा, घी शक्कर, से बना हुआ भोजन पदार्थ) खाती है।

(8) ऊब छठ – यह त्यौहार भाद्रपद की कृष्ण छठ को मनाया जाता है। इस दिन भी औरतें व बालिकाएं व्रत करती है। सूर्यास्त के समय नहा धोकर खड़े रहने का संकल्प करती है। जब तक चांद के दर्शन नहीं होते, तब तक वे खड़ी (ऊबी) रहती है। इसलिये इसे ऊब छठ कहलाती है। सघन घटाओं के झरोखों से झांककर जब चंद्रमा दर्शन देता है तो उसकी पूजा और अर्चना कर नीचे बैठती है फिर सत्तू या भोजन करती हैं।

(9) नागपंचमी – ऊब छठ के पहले दिन भाद्रपद कृष्ण की पंचमी को नागपूजा की जाती है। घरों में दीवार पर काजल व कुंकुंम से नाग की आकृति बनाकर पूजा अर्चना की जाती है तथा दूध या खीर का भोग लगाया जाता है। नागपूजा करने से सर्प दंश का भय नहीं रहता है।

(10) जन्माष्टमी – भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी मनाई जाती है। इस दिन सवेरे से रात में 12 बजे तक उपवास किया जाता है। 12 बजे रात्रि में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है। बालगोपाल को भोग लगाकर थाली, घंटे घड़ियाल आदि बजाए जाते हैं। आरती उतारी जाती है। फिर व्रत करने वाले, गोंदगिरी, अजवाइन आदि से बने व्यंजन व दूध, दही, घी, शहद और तुलसी पत्र का पंचामृत लेते है। दूसरे दिन नवमी को पारायण किया जाता है।

(11) गोगानवमी – भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की नवमी गोगानवमी के रूप में मनाई जाती है। यह लोकदेवता गोगाजी की स्मृति में मनाई जाती है। नाग के रूप में गोगाजी की पूजा की जाती है। गोगाजी के स्थान खेजड़ी के नीचे कच्चे चबूतरे पर होते है। गांव गांव खेजड़ी, गांव गांव गोगो' की कहावत यही सिद्ध करती है। सभी जगह गोगाजी पूजनीय है। गोगाजी को चूरमा, भात और सैवेया की खीर आदि का भोग लगाया जाता है।

(12) बाबा रामदेव की बीज – भाद्रपक्ष शुक्ल पक्ष की दूज बाबा रामदेव की बीज (रामदेवजी की जन्मतिथि) के रूप में मनाई जाती है। इस दिन रूणिचा में बड़ा भारी मेला लगता है। दूर दूर से लाखों श्रद्धालू यहां बाबा के दर्शनार्थ आते है। विशेषकर हिन्दू मुसलमान दोनों ही बड़ी आस्था यहां आते है। रात भर भजन कीर्तन चलता है। यह मेला एकादशी तक चलता है। रामदेवजी हिन्दू मुस्लिम एकता व सामाजिक समानता के प्रतीक है।

(13) गणेश चतुर्थी – भाद्रपद की शुक्ल चतुर्थी गणेश चतुर्थी के रूप में मनाई जाती है इस दिन गणेश जी का जन्म हुआ अतः स्थान स्थान पर गणेशजी की प्रतिमा स्थापित करके पूजा की जाती है तथा मादक (मैदा से बना लड्डू) का भोग लगाया जाता है। पिछले दो तीन दशकों से महाराष्ट्र की तरह राजस्थान में भव्य रूप से मनायी जाती है।

(14) नवरात्रि – आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक नवदुर्गा की पूजा का विधान है। इसे नवरात्रि कहा जाता है। नौ दिन तक व्रत करके दुर्गा की पूजा की जाती है। लापसी और चावल का भोग लगाया जाता है। अष्टमी को दुर्गा के मंदिर में हवन किया जाता है। दुर्गाष्टमी व नवमी को नौ कुमारी कन्याओं (2 से 10 वर्ष की अवस्था वाली) को नवदुर्गा के रूप में मानते हुए उन्हें भोजन कराया जाता है। 'जगत्जननी मां दुर्गा की भक्ति एवं आत्मशुद्धि की दृष्टि से नवरात्रि' का बहुत महत्व है। जोधपुर दुर्ग में स्थित चामुण्डा माता के दर्शनार्थ लाखों लोग आते हैं। नौ दिन तक गढ के दरवाजे खुले रहते हैं और तथा श्रद्धालु आकर देवी को प्रसाद और नारियल चढ़ाते हैं और अपनी मनौती मांगते हैं।

(15) दशहरा या विजयदशमी – नवरात्रि के समाप्त होते ही दूसरे दिन अर्थात आश्विन शुक्ला दशमी को दशहरा का उत्सव होता है। इस दिन राम ने रावण का वध किया था। इसी दिन असत् पर सत् की विजय हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उसी की स्मृति में विजयदशमी मनाई जाती है। ठाठ बाठ से राम की सवारी निकाली जाती है। बाजे–गाजे के साथ व्यायामशाला के लडके अपने करतब दिखाते हुए आगे चलते हैं। कोई तलवारबाजी दिखाता है, कोई लाठी और कोई मोगरी घुमाता है। काठ के बने बन्दर भी हाथ के शस्त्र हिलाते हुए देखे जा सकते हैं। राम, लक्ष्मण, हनुमान एवं विभीषण बने लड़के रथ में बैठकर चलते है। साथ ही शाही घोडे भी होते हैं। राम की तस्वीर रथ में विराजित होती है जिसमें जंवारे रखे जाते हैं। लोग राम का दर्शन करते हैं। फिर दक्षिण दिशा की तरफ राम की सवारी आगे बढ़ती है। सूर्यास्त के समय चबूतरे पर रावण, कुभकर्ण, मेघनाद के बारूद के बने पुतलों पर राम बना लडका तीर छोडता है। अग्निबाण से पुतले जलने लगते हैं। रावण को मारकर सवारी बड़े हर्षोल्लास से वापिस लौटती है।

(16) शरदपूर्णिमा – अश्विन पूर्णिमा शरदपूर्णिमा कहलाती है। इस दिन चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं सहित उदित होता है। अतः शरद् की उज्ज्वल धवल ज्योत्स्ना में खीर, फल, चपड़ा (शक्कर की चासनी से बनाया हुआ पदार्थ रूप में खाते है। ऐसी मान्यता है कि चन्द्रमा की सोलहवीं कला जो सदैव शिव मे मस्तिष्क पर रहती है; शरदपूर्णिमा को वह चन्द्रमा की अन्य कलाओं के साथ आ जाती है। तब उससे जो अमृत बरसता है, वह इन खाद्य पदार्थों को भी अमृतय बना देता है। जिनको खाने से दीर्घायु होती है। लोकमान्यता है कि शरद चांदनी में यदि 108 बार सुई में धागा पिरोया जाय तो आंखों की ज्योति में भी वृद्धि होती है।

(17) दीपावली – दीपावली का त्यौहार कार्तिक अमावस्या को दीप जलाकर लक्ष्मीपूजन करके मनाया जाता है। वैसे नवरात्रि के पश्चात् घरों की सफाई, आरम्भ कर दी जाती हैं। लिपाइ–पुताई और रंग–रोगन आदि से घरों को चमकाया जाता है। नये वस्त्र बनवाये जाते हैं तथा बच्चे पटाखें छोडना आरम्भ कर देते है। दीपावली के दो दिन पहले धनतेरस आती है। धन्वतरि के प्रकट होने की स्मृति में धनतेरस मनाई जाती है। इस दिन सन्ध्या को दीपक जलाकर मुख्य द्वार के दोनों तरफ रखे जाते हैं। मन्दिर व तुलसी के थाले के पास भी दीये रखे जाते हैं। धनतेरस की सुबह कुमारी कन्याएं सजधज कर थाली एवं पूजा का सामान लेकर उस स्थान पर जाती हैं जहां मिट्टी के ढेर होते है। वहां बैठकर वे पहले थाली में कुंकुम का स्वतिक बनाती हैं वे फिर मिट्टी को थाली में रखती है। वे जल, दुर्गा, अबीर, कुंकुंम से लक्ष्मीरूप में मिट्टी की पूजा करती है। दीपक जला कर थाली में रखती हैं और थाली सिर पर उठाकर वापस आती है। थाली को अपने पूजाग्रह में रख देती हैं। उस दिन बाजार में खरीददारी बहुत होती है। चांदी के बर्तन और सिक्के आदि खरीदना शुभ माना जाता है।

दूसरे दिन रूप चौदस की ब्रह्मवेला में बालिकाएं व नारियां पाट बिछाकर उसके नीचे जलता हुआ दीप रखती है फिर पाट पर बैठकर स्नान करती है। ऐसा मान्यता है कि इस तरह स्नान करने से रूप निखरता है। इस दिन शाम को दीपक जलाये जाते हैं। दूसरे दिन कार्तिक अमावस्या को बहुत चहल–पहल रहती है। घर में तरह–तरह के पकवान बनाये जाते है। आंगन में रंगोली मांडी जाती है। दूर–दूर से टिमटिमाते नन्हें नन्हें दीपक ऐसे दिखाई देते है। जैसे धरती पर तारों भरा गगन ही उतर आया हो। इसी समय पटाखें भी छोडे जाते है। रोशनी में सारा शहर जगमगा उठता है। अंधकार दूर हो जाता है। ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश में अज्ञान के अंधकार का नामोनिशान नहीं रहत। लोगो का ह्रदय प्रेमभाव से भर जाता है। लोग परस्पर प्रेम से शुभकामनाएं देते है। शुभमुहूर्त में विधिवत् लक्ष्मी का पूजन होता है। दूसरे दिन सुबह प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा होती है। श्रीकृष्ण ने इन्द्र के अहंकार को चूर कर व्रज में गोवर्धनपूजा इसी दिन आरम्भ करवाई थी इसी दिन 'रामश्यामा' (आपस में गले लगकर शुभकामना प्रकट करना) होता है। लोग अपने रिश्तेदारों के यहां मिलने जाते है।

(18) भाईदूज – कार्तिक शुक्ला द्वितीया भाईदूज के रूप में मनाई जाती है। इस यमद्वितीया भी कहते हैं। इस दिन बहिन भाई को तिलक कर उसकी आरती करती है, मिठाई खिलाती है तथा भाई उसे नेग देता है।

(19) देवोत्थान एकादशी – कार्तिक शुक्ला एकादशी देवात्थान एकादशी के रूप में मनाई जाती है। इस दिन तुलसी का सालिग्राम के साथ विधिवत् विवाह किया जाता है।

(20) शिवरात्रि – माघ कृष्णा त्रयोदशी को शिवरात्रि का उत्सव आता है। इस दिन भगवान शिव शंकर ने हलाहल पान किया था। उसी की स्मृति के रूप में शिवरात्रि मनाई जाती है। इस दिन शिव मन्दिरों में विशेष पूजा–अर्चना व फूलमण्डली की जाती है। रात्रि में जागरण होता है। 'शिव–ब्यावलों' का वाचन किया जाता है। सभी लोग इस दिन व्रत करते हैं तथा भगवान शिव को बेर, गाजर व मोगरी (सोगरी) चढ़ाते हैं।

(21) मकर संक्रान्ति – 14 जनवरी को मकर संक्रान्ति का उत्सव होता है। ज्योतिष के अनुसार मकर से सूर्य उत्तरायण हो जाता है जिससे दिन बड़े और राते छोटी होने लगती हैं। इस दिन लोग तिल व गुड खाते हैं तथा तिलदान करते है। इस उत्सव पर मीठे गुलगुले व दाल के पकौडे बनाये जाते हैं कुछ गुलगुले व बडे सिर पर सात बार वार कर कुत्तों को खिला देते हैं या चारों दिशाओं में फेंक देते हैं। इसके पीछे यह मान्यता है कि इससे अनिष्ट

का अन्त होता है। फिर सभी लोग गुलगुले व बडे खाते है। एक दूसरे को खिलाते है। इस दिन कई स्थानों पर पतंगें उडाई जाती है तथा पतंगों की होड लगती है। इस दिन 13 वस्तुएं दान मे देने का रिवाज भी हैं। इसे 'तेरूंदा' देना कहा जाता है।

(22) बसन्त पंचमी – बसन्त पंचमी माघ शुक्ला को आती है। इस दिन से मौसम में परिवर्तन आने लगता है। बासन्ती हवा चलने लगती है। गुलाबी ठण्ड रहती है। कड़ाके की ठण्ड कम हो जाती है। कहा जाता है– 'बसन्त पंचमी रा बाजा बाजियां, सांप बिच्छू जागिया।' अर्थात् सर्दी कम हो जने से जीव–जन्तु अपने बिलों से बाहर निकलने लगते है। होली के ढोल इस दिन से बनजे लगते है। बसंत पंचमी को पीले वस्त्र पहने जाते हैं। तथा विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है।

(23) होली – हिन्दुओं का एक प्रमुख त्यौहार होली है। प्रेम, मस्ती एवं रंगों का त्यौहार होली सभी लोग मनाते हैं। बसन्त पंचमी से ही ढोल, चंग की गूंज सुनाई देने लग जाती है। होली के दिन तो सुबह से ही ढोल, चंग और नगाडे बजने लगते हैं। लडकों का झुण्ड मैदान में एक दूसरे के तिलक कर ढोल बजाता है। उस दिन घरों में व्यंजन बनाये जाते हैं। छोटे बच्चे गुलाल उडाते और रंग डालते है। बहिनें अपने भाई के सिर पर फूलों की माला 'वार' (घुमाती) कर प्रहलाद को पहनाती है। मैदान में लकडियां और उपले आदि इकट्ठे कर रखे जाते हैं तथा उनके बीचों बीच पेड की लकडी प्रहलाद के रूप में रखी जाती है। जब होलिकादहन किया जाता है तो प्रहलाद को बाहर निकाल दिया जाता है। इसका कारण यह है कि जब भक्त प्रहलाद उसकी बुआ होलिका गोद में लेकर बैठ गई तब होलिका तो जल गई और भगवान की कृपा से प्रहलाद बच गये। उसी की स्मृति में होलिका दहन किया जाता है। दहन के समय नगाड़े बजते हैं। पुरूष व लडके टोलियां बनाकर ढोल चंग बजाते हुए गली मुहल्लों में जाते है और फाग गाते है। इन्हें होली के 'गेरिये' कहा जाता है। रात भर इनका यही क्रम चलता है। दूसरे दिन सुबह धूलण्डी होती है जिसमें परस्पर लोग रंग डालते हैं। लोग एक दूसरे के चेहरे को रंगों से विकृत कर देते है। दोपहर एक दो बजे तक रंगों का दौर चलता है। फिर सभी नहाकर, साफ–सुथरे कपडे पहन कर 'रामा–श्यामा' करने (मुबारकबाद) देने जाते हैं और स्वागत–सत्कार करते हैं।

(24) शीतलाष्टमी – चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी को शीतलाष्टमी मनाई जाती है। इस दिन शीतला माता की पूजा की जाती है। शीतलामाता स्वयं दूसरे के खण्डेपन को वहन कर लोगों को स्वस्थ व अखण्ड रखती है। शीतलामाता की कृपा से चेचक रोग नहीं निकलती। इसलिये लोग बडी श्रद्धा से माता की पूजा करते हैं। पहले दिन के बनागे हुए ठण्डा भोजन का माता के भोग लगाते हैं। मेंहदी, कुंकुम, दूर्वा आदि से माता की पूजाअर्नना की जाती है ताकि माता को ठण्डक प्राप्त हो। उन्हें गर्मी से जलन नहीं हो। 'ठण्डा झोला' देने से माता प्रसन्न होती है तथा लोगों को चेचक से बचाती है। इसलिए उस दिन घरों में चूल्हा नहीं चलाया जाता। शीतलामाता के मन्दिर में श्रद्धालु दर्शन करने जाते है। श्रद्धानुसार पुष्प और प्रसाद चढाकर माता को नमन करते हैं। चाकसू में शीतलामाता का प्रसिद्ध मन्दिर है। जोधपुर में कागा की पहाडी पर भी माता का मन्दिर है जहां मेल भरता है।

12.5 अन्य मेलों का विवरण

इन प्रमुख लोक–उत्सवों के अलावा महापुरूषों की जयन्तियां तथा व्रत और उपवास के अवसरों पर भी उत्सव मनाये जाते है। इनमें महावीर जयन्ती, नृसिंह जयन्ती, हनुमान जयन्ती, बुद्ध जयन्ती आदि प्रमुख है। व्रत के उत्सवों में अमावस्या व्रत, वट सावित्री व्रत, निर्जला एकादशी, देवझूलनी एकादशी, सावणी तीज, पवित्रा तीज, चतुर्दशी, ऋषि पंचमी, अनन्त चतुर्दशी, गोपाष्टमी और आंवला एकादशी आदि उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में कुछ मेले स्थान विशेष में ही होते हैं। अधिकतर ये मेरे किसी महापुरूष की स्मृति में उसी के स्थान पर आयोजित किये जाते हैं। किन्तु दूर–दूर से श्रद्धालु यहां आते हैं। यहां व्यापारी व्यापार करने भी आते हैं। इनमें कुछ प्रमुख मेलों का वर्णन किया जा रहा है–

(1) पुष्कर का मेला – अजमेर से साल मील दूर स्थित पुष्कर हिन्दुओं का तीर्थस्थल है। पुष्कर झील 52 घाटों से घिरी हुई है। इस पवित्र स्थान पर लोग स्नान कर कृतकृत्य होते है। यहां अनेक मन्दिर हैं जिनमें ब्रह्माजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहां बहुत बडा मेला लगता है। उस अवसर पर एक बडा पशु–मेला भी लगता है जिसमें पशुओं का क्रय–विक्रय होता हैं। यह मेला सात दिन तक चलता है।

(2) रामदेवरा का मेला – पोकरण से 13 किलोमीटर दूर स्थित रूणीचा में बाबा रामदेव का मेला भरता है। भाद्रपद शुक्ला दूज से शुक्ला एकादशी तक यह मेला रहता है। दलितों और अछूतों के उद्धारक रामदेव जी के दर्शन करने लाखों श्रद्धालु आते हैं तथा वे रामदेवजी के मन्दिर में कपडे व काठ के बने हुए घोडे भेंटस्वरुप चढाते हैं। यहां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यापारी अपनी दुकाने लगातें हैं तथा रामदेव जी की तस्वीरें, छोटे–छोटे बिल्ले, अंगूठिया, मालाएं आदि के साथ–साथ अन्य कई उपयोगी वस्तुएं बेचते हैं। यहां हमें कहीं पर भवाई नृत्य तो कहीं तेराताली तो कहीं कालबेलिया नृत्य और कहीं नट–नटी के करतब देखने को मिलते है। विभिन्न जातियों के लोगों का अद्‌भुत समन्वय यहां दृष्टव्य है। राष्ट्रीय एकता, विविधता में एकता , सामजिक समानता, प्रेम तथा भाईचारा के एक साथ दर्शन इस मेले में होते है।

(3) तेजाजी का पशु मेला – तेजाजी का मेला भाद्रपद की कृष्णा दशमी से भाद्रपद की शुक्ला एकादशी तक नागौर जिले के परबतसर गांव में भरता है। यह मेला गोरक्षक तेजाजी की स्मृति में आयोजित किया जाता है। इसकी सारी व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती है। इस मेले में अनेक श्रद्धालु आते हैं। तेजाजी के मन्दिर (खारिया तालाब के पास स्थित) में दर्शक श्रद्धालु नारियल, प्रसाद तथा पुष्प चढातें है। तेजाजी के भक्त तेजाजी का यशोगान करते है। इस मेले में लाखों पशुओं का क्रय–विक्रय होता है।

(4) तिलवाडा का मेला – राव मल्लीनाथ की स्मृति में तिलवाडा में चैत्र कृष्ण पक्ष की एकादशी से चैत्र शुक्ला एकादशी तक यह मेला लगता है। धीर, वीर, साहसी एवं सिद्धपुरूष मल्लीनाथ ने मुगलों के 13 दलों से बडी बहादुरी से मुकाबला किया और उन्हें भगा दिया। इस प्रसंग की एक कहावत भी प्रचलित है। 'तेरह तुंगा भांगियां माले सलखाणी।' इसलिये बाडमेर क्षेत्र क एक भाग का नाम मालणी पड़ा। मालाणी के ही तिलवाडा ग्राम के पास लूनी नदी की तलहटी में राव मल्लीनाथ ने जीवित समाधि ली थी। उसी के याद में भक्तों द्वारा यहां मेला आयोजित किया गया। अब तो यहां राजस्थान का प्रमुख पशुमेला भी लगता है। इस विराट पशु मेले में पशुओं का क्रय–विक्रय होता है।

(5) नाकौड़ा का मेला – बालोतरा से 10 किलोमीटर दूर नाकोडा नामक स्थान पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी को यह मेला आयोजित होता है। इस दिन पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणदिवस के रूप में मनाया जाता है। पार्श्वनाथ मन्दिर के अधिष्ठाता दवे श्री नाकौडा भैरव हैं अतः इस दिन हजारों की संख्या में श्रद्धालु आति है। जैनियों का यह प्रमुख तीर्थस्थल है। अतः देश के कोने–कोने से जैन समाज के लोग यहां आते है।

(6) सीताबाड़ी का मेला – कोटा जिले की शाहबाद तहसील में स्थित केलवाडा के निकट सीताबाडी का मेला भरता है। वैशाख शुक्ला पूर्णिमा से लेकर ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की अमावस तक मेले का आयोजन होता है। ऐसी मान्यता है कि राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीताजी का यहां पर वन में छोड गये थे। जब सीताजी को प्यास लगी तो लक्ष्मण जी ने चारों तरफ देखा किन्तु कहीं पानी नजर नहीं आया। तब धरती में बाण मारा जिससे पानी की धारा फूट निकली। जब वे पानी लेकर आये तो सीता सो चुकी थी। लक्ष्मण ने पास्र में पानी रख दिया। फिर उन्हें सोया हुआ छोड कर वे अयोध्या लौट आये क्योंकि देवी सी अपनी भाभी को जागृतावस्था में छोड जाना उनके लिये मुश्किल था। जब सीता जागी और उसे वास्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तब वह यहीं कुटिया बनाकर रहने लगी। तब से यह स्थान सीताबाड़ी कहलाने लगा।

(7) मंडोर का वीरपुरी का मेला – जोधपुर से 5 मील उत्तर में स्थित मंडोर में हर वर्ष श्रवण मास के अन्तिम सोमावर को वीरपुरी का मेला लगता है। इसमें सभी जाति के लोग आते हैं। नागद्रि नामक छोटी सी नदी के किनारे बसा मण्डोर मांडव्य ऋषि की साधनास्थली रहा है। प्राचीन मारवाड की राजधानी मंडोर में नाग, प्रतिहार, परमार, चौहान एवं राठौडों आदि का राज्य रहा। इस ऐतिहासिल स्थल पर वीरवीथिका, देवताओं की साल, तथा तैंतीस करोड देवताओं का देवालय बना हुआ है। तैंतीस करोड देवताओं के देवालय मे 16 बड़ी–बड़ी मूर्तियां है जो एक ही चट्टान को काटकर बनाई गई हैं। इनमें 7 देवताओं की है व नौ जालंधरनाथ, गंसाई, राव मल्लीनाथ, पाबूजी, हडबूजी, रामदेवजी, जांभोजी, मेहाजी और गोगाजी की हैं।

(8) नागपंचमी का मेला – वीरपुरी के अलावा मंडोर में नामपंचमी का मेला भी लगता है। प्रतिवर्ष भाद्रपद की कृष्णा पंचमी को यहां विशाल मेला आयोजित होता है। इस दिन लोग नारियल, मिश्री और प्रसाद चढ़ाकर नागदेवता की पूजा करते है। नागाद्रि तथा नागकुण्ड में स्नान करते हैं। अधिकमास में जोधपुर नगर की भौगिशैल परिक्रमा दी जाती है जिसमें जोधपुर व मंडोर के आस–पास के क्षेत्र, प्रमुख तीर्थस्थलों–रातानाडा गणेशजी, बिछडिया विनायक जी, चौपासनी का मन्दिर, बडली के भैंरूजी, बैजनाथ महादेव, बैरीगंगा, मण्डोर और पुनः रातानाडा गणेश जी के दर्शन किये जाते है।

(8) अजमेर शरीफ का उर्स – यह मुसलमानों का महान् पर्व है। रज्जब माह के प्रथम दिन से छठे दिन तक अजमेर में ख्वाजा मोहनुद्दीन चिश्ती की याद में उर्स का मेला आयोजित होता है। इसमें भारत तथा अन्य देशों से अनेक यात्री आते है तथा पीर की दरगाह पर नजराना और चादर चढाते है। रज्जब के प्रथम दिन दरगाह को गुलाबमिश्रित जल से धोया जाता है। छठे रज्जब को ख्वाजा साहब ने प्राण त्यागे थे। अतः इस दिन विशेष आयोजन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होता है। बडे–बडे देगों में पुलाव पकते हैं। फिर सबको लंगर बांटा जाता है। यहां कव्वालियों का आयोजन भी होता है। स्थान–स्थान से कव्वाल आते है तथा रात–रात तक कव्वालियां गाते है। नवे दिन समस्त कार्यक्रम बडे के गुसल के साथ समाप्त होता है। सूफी सन्त ख्वाजा मोइनुदीन चिश्ती त्याग एवं धर्मनिरपेक्षता की प्रतिमूर्ति थें इन्होने सूफी सम्प्रदाय का प्रसार किया।

मुसलमानों के अन्य महान पर्वो में ईदुलजुहा, बकराईद, ईदुलफितर बारावफात, मुहर्रम आदि प्रमुख है। 'इदुलजुहां' जिल्कार की दसवीं तारीख को अब्राहम के प्रिय पुत्र इस्माइल की कुर्बानी की स्मृति में मनाया जाता है। इस दिन बकरे की कुर्बानी देकर उसका मांस परस्पर बांटा जाता है। इसी तरह रमजान की समाप्ति के दिन 'इदुलफितर' मनाया जाता है। रमजान माह में मुसलमान रोजा रखते हैं तथा ईद के दिन मीठी सेवैया बनाई जाती है। इस दिन लोग परस्पर प्रेम से मिलते हैं।' बारावफात मुहम्मद साहब के जन्मदिन की स्मृति में मनाया जाता है। मुहर्रम मुसलमानों का शोकदिवस हैं। मुहम्मद साहब के नाती इमाम हुसैन के बलिदान की स्मृति में इस दिन शोक व्यक्त किया जाता है और ताजिये निकाले जाते हैं। कत्ल की रात को सभी मुसलमान छाती पीट–पीट कर रोते हैं। ताजिये को बाद मे जलाशय में दफना दिया जाता है। फिर गरीबों में खैरात बांटी जाती है।

राजस्थान में ईसाइयों की संख्या भी बहुत है। उनके जगह–जगह पर गिरजाघर बने हुए है। ये ईसाई भी अपने त्यौहारों एवं पर्व मनाने में स्वतंत्र है। इनके प्रमुख पर्वो में एक जनवरी, गडफ्राइडे, क्रिसमिस–डे आदि प्रमुख हैं। क्रिसमिस–डे हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इस दिन ये क्रिसमिस ट्री को सजाते हैं। घरों में रोशनी करते हैं तथा गिरजाघरां में जाकर प्रार्थना करते है।

12.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी अपने–अपने त्यौहार मनाते है तथा एक दूसरे के त्यौहारों में शामिल होकर सद्‌भावना का परिचय देता है। इस प्रकार राजस्थान में लोकपर्वो, उत्सवों त्यौहारों की इतनी संख्या हो जाती है कि कोई मास बिना त्यौहार के नहीं जाता। इन त्यौहारो से जीवन की नीरसता दूर होती रहती है तथा जीवन में सरसता का संचार होता हैं।

12.7 अभ्यास प्रश्नावली

(1) लोक देवी देवताओं से क्या तात्पर्य हैं?

(2) राजस्थान के प्रमुख लोक देवताओं का परिचय दीजिए।

(3) राजस्थान के प्रमुख लोक देवियों का परिचय दीजिए।

(4) राजस्थान के प्रमुख लोकोत्सवों का परिचय दीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–13

लोककला, लोकसंगीत, वाद्य लोक नृत्य एवं लोकविश्वास

संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 लोक देवता
13.3 लोक देवियाँ
13.4 लोकोत्सव
13.5 अन्य मेलों का विवरण
13.6 सारांश
13.7 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.0 प्रस्तावना

सौन्दर्य को दृश्य के रूप में प्रकट कर देना ही कला है। कला मनुष्य की सौन्दर्यकल्पना को साकार करती है। मनुष्य के मन में जो कुछ होता है, वही सौन्दर्यगुण के साथ कला रूप में व्यक्त होता है।

13.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से लोककला, लोकसंगीत के सम्यक् ज्ञान में वृद्धि होगी।

13.2 लोक का महत्त्व

दृश्य या अदृश्य, स्थूल या सूक्ष्म, वस्तु या भाव से संबंधित जब सौन्दर्यनुभूति साकार होती है तो उसकी अभिव्यंजना को कला कहते हैं और जब शास्त्रीय चेतना से शून्य, पांडत्यप्रदर्शन से सर्वथा दूर रहने वाला लोक–समाज का कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त करता है तो वह लोककला कहलाती है। लोककला के माध्यम से लोक संस्कृति का स्वरूप उजागर होता है। उससे लोक की सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक वृत्ति का पता चलता है। अतः लोककला का भी अपना महत्व है।

13.2.1 आँगन व भित्ति मांडणा

लोककला में 'मांडणा' की परम्परा बहुत प्राचीन है राजस्थान के जन–जीवन में मांडणों का विशेष महत्व है। घर, आँगन, द्वारा, शरीर के अंग, वस्त्र, अस्त्र–शस्त्र आदि सभी वस्तुओं को 'मांडणों' से सजाया जाता है। 'माण्डणे' मांगलिक माने जाते हैं, चाहे विवाह हो या जन्मोत्सव, अनुष्ठान या त्यौहार, व्रतउपवास हो या देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा। सभी शुभ अवसरों पर 'माण्डणा' मांडे जाते हैं। यहाँ कहावत भी प्रचलित है कि लड़का चाहें कुंवारा रह जाय, परन्तु आंगन कभी कुंवारा नहीं रहना चाहिए। इसलिये आंगन की लीपापोती करने के बाद उसे खाली नहीं रहने दिया जाता है। आंगन को 'माण्डणा' विहीन रखना अपशकुन समझा जाता है। अतः और कुछ नही तो स्वस्तिक ही मांड दिया जाता है। उत्सव या किसी मांगलिक अवसर पर तो नारियां बहुत रूचि से आँगन में सफेद खड़िया गेरू, पांडू के तरह–तरह के 'मांडणे' माण्डती हैं। जैसे सावण के त्यौहारों पर चौपड़, सात फूल, फूलडी, पाँच फूल आदि माण्ड देती हैं। दीपावली के अवसर पर 'लिछमी जी रा पगल्या' कलश, नारियल, सूरजसाकिया, सोबह दीया चौक, हीर, खुर, नोळी, बान्धरमल, चौकचक्कर फूलियों, कंवलों आदि पर माण्डणे मांडने का विधान हैं। रंगों के त्यौहार होली के अवसर पर तो स्त्रियां चंग, बाजोट, खांडा, चौपड़, चौक, चटाई, बिन्दुचौक, बीजणी, पंखी, घेरा, पगल्या–गाडूला, गेंद–दड़ी और चौखूंटा आदि माण्डणे माण्डकर हृदय के हर्षोल्लास को व्यक्त करती हैं। गणगौर के उत्सव पर गौर का बेसणा तथा चैत्र की नवरात्रि में पथवारी आदि माण्डे जाते हैं।

विवाह के माण्डणों में रथ, दोवड़े, पगल्या, बाजोट, चौक, कळशकुंड, कुंवल्ये, घेवर आदि माण्डे जाते हैं। यदि कोई तीर्थयात्रा पूर्ण कर सकुशल घर लौटता है तो उस खुशी में 'पुष्कर पेड़ी' तथा 'पथवारी' माण्डी जाती हैं।

मांगलिक अवसरों पर आंगन के माण्डणों के साथ–साथ घर के मुख्य द्वार, शयनकक्ष, अतिथिकक्ष इत्यादि को भी माण्डणों से सुसज्जित किया जाता है। इनको सफेद, लाल, नीले, पीले, हरे, रंगों से विशेष आकर्षक बनाया जाता है। माण्डणों में स्वस्तिकमण्डन भी मांगलिक माना गया है। यह गणपति का प्रतीकात्मक है। चार युग, चार वर्ण, चार आश्रम स्वस्तिक के ही प्रती है। स्वस्तिक को विष्णु का सुदर्शन चक्र माना गया है। इसी तरह षट्कोण लक्ष्मी का प्रतीक माना गया है। श्रीचक्र विश्वरचना का प्रतीक है। सर्वतोभद्र या बावड़ी जलाशय रूप में मांगलिक है। यह देवताओं के वासमन्दिर का भी प्रतीक माना गया है। त्रिभुज और त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतीक है। यह तीन गुण– सत्व, रज एवं तमोगुण का भी प्रतीक है। ज्ञान, इच्छा, क्रिया त्रिशक्ति का प्रतीक है। इसी तरह चतुष्कोण चारों दिशाओं का प्रतीक रूप हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि ये 'माण्डणे' मात्र चित्र ही नहीं है बल्कि समग्र मानव चेतना के ज्योतिरूप हैं। इनमें हमारे सांस्कृतिक आदर्श निहित है। लोकमंगल की भावना विद्यमान है। सुख सम्पदा, अरोग्य–सुहाग, धन–धान्य प्रदान करने वाले ये माण्डले ज्ञान का प्रतीक रूप हैं।

13.2.2 शरीर के अंगों पर अंकित माण्डणा (गोदने)

शरीर के अवयवों का सुसज्जित करने की दृष्टि से गुदना गुदवाने की परम्परा का विकास हुआ। उच्च वर्ग के लोग अस्थाई माण्डणे के रूप में गोरोचन, कुंकुंम, चन्दन के द्वारा मुख को सजाने लगे। हाथ पर केबल अपना या प्रियजन का नाम या फिर कोई बेलबूंटी गुदवाना पर्याप्त निम्न वर्ग, आदिवासी लोगों में गोदने गुदवाने का अधिक चाव रहा है। इनके पास पर्याप्त धन व आभूषण न होने के कारण वे ललाट में चांद, तिलक, आड़ गुदवाती हैं। वे आंखों के तीर के समान पैनी बनाने हेतु नीचे की पलक के साथ 'साट्या' गुदवाती हैं। वे गर्दन पर कण्ठमाल, भुजाओं पर बाजूबन्द, कृष्ण, गणेश, सूरज, हनुमान, रामदेवजी का पगल्या, शिव, त्रिशुल, विभिन्न पुश–पक्षी की आकृतियां भी गुदवाती हैं।

अंगों के मण्डणों में महावर व मेंहदी का भी विशेष महत्व रहा है। सौभाग्यवती नारियां हाथों व पांवों में मेंहदी व महावर लगाती हैं। कुमारी बालिकायें केवल हाथों में मेंहदी लगाती हैं। विभिन्न पर्वो, उत्सवों त्यौहारों एवं व्रतउपवास के समय स्त्रियां व बालिकायें तूलिका से हाथों में मेंहदी के बारीक माण्डणे माण्डती हैं। गणगौर के उत्सव पर चून्दड़ी, फेंड गूणा के मांडणे; तीज पर लहरियां, घेवर; दीवाली पर पानगलीचा, तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर फूलपत्तियाँ, सूर्य , कलश, मोर, बेल और बूंटे मांडती है। होली पर चौपड़, चार बींजणी आदि मांडती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां पैरो पर भी मेंहदी या महावर लगाती है। सोजत व मालवा की मेंहदी मारवाड़ में बहुत प्रसिद्ध हैं।

13.2.3 वस्त्र पर अंकित माण्डणे

राजस्थान में वस्त्रों पर भी माण्डणे बनाये जाते हैं। यहां वस्त्रों पर कढाई करके या बंधेज और छपाई से वस्त्रों पर माण्डणे बनाने की कला बहुत प्रसिद्ध है। बन्धेज की चुन्दडी तो विश्वप्रसिद्ध है। बन्धेज में वस्त्रों को धागे से बांधकर, रंग में डूबोकर चुन्दड़ी, पोमचा लहरियां, आदि आकृतियों के माण्डणे बनाये जाते हैं। इनके अलावा, फागणिया, पीला, पतंगभांत, पंचरंगा, डिब्बा भांत आदि ओढणी भी रंगाई छपाई जाती है। कढाई में कलावत व रेशम के धागे से सुन्दर–सुन्दर बेलबूटे, फूलपतियां बनाई जाती हैं तथा उन्हें सलमा सितारों से सजाया जाता है। गोटे किनारी से भी वस्त्र पर फूल आदि बनाकर उन्हें सजाया जाता हैं।

13.2.4 बर्तनों पर अंकित माण्डणे

राजस्थान में विभिन्न बर्तनों पर भी माण्डणे बनाये जाते है उनमें स्थायी रंगों का प्रयोग किया जाता है। चांदी व धातु के बर्तनों पर नक्काशी की जाती है। मिट्टी के बर्तनों पर भी माण्डणे माण्डे जाते है। मिट्टी की मटकी, लोटा, गिलास, हांडी, ढाकणी को लाल रंग से रग कर खड़िया मिट्टी या चूने से माण्डले माण्डे जाते हैं।

13.2.5 अस्त्र–शस्त्र पर अंकित माण्डणे

राजस्थान के राजा, सामन्त, सेनापति अपने अस्त्र–शस्त्रों पर माण्डणे बनवाते थे। इनकी तलवार, ढाल, कटार पर सुन्दर नक्काशी होती थी। तलवार की मूठ पर प्रायः दहाडते सिंह की मुखाकृति या सांप की मुखकृति बनायी जाती थी। धीरे–धीरे अस्त्र–शस्त्रों का उपयोग न होने के कारण माण्डणों की परम्परा लुप्त हो रही ह।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि राजस्थान में लोककलाओं का भी विलक्षण भण्डार प्राप्त होता है। इन लोककलाओ मे राजस्थानी जनमानस की विविध भावानुभूतियों का सुन्दर अंकन हुआ है। इन कलाओं में लोकअभिरूचियों की सक्षम के दर्शन किये जा सकते है। विवाहादि अवसर पर घर की दीवारों पर 'भले पधारो' तथा 'स्वागतम्' के साथ ' श्री गणेश', 'लक्ष्मी जी', बारात के साथ हाथी, घोड़े व ऊंट का चित्रांकन करना अथवा मेंहदी मांडणा या गोदने की कला आदि में राजस्थानी जनमानस की मनोभावनाओं का दिग्दर्शन होता है। इसमें व्यावसायिकता की गध नहीं है। यहां सब कुछ लोक के लिए ही समर्पित है।

13.3 लोकसंगीत (वाद्य एवं नृत्य)

मध्यकाल में राजस्थान के राजपूत नरेशों ने शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोकसंगीत को भी महत्व दिया था जिससे लोकसंगीत के प्रति सामाजिक रूझान का विकास हुआ। लोकसंगीत में सरलता एवं सहजता के गुण होने के कारण वह जनसाधारण में अधिक प्रचलित हुआ। आम आदमी ने शस्त्रीय संगीत की बजाय लोकसंगीत के द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करना उचित समझा। लोकगीतों, लोकभजनों एवं भक्ति के पदों में लोकसंगीत की छटा दृष्टव्य है। मारवाड़ की 'मांड गायकी' तो विश्व प्रसिद्ध रही हैं।

राजस्थान के लोकसंगीत में अनेक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। जैसे ढोलक, नगाड़ा, चंग, तम्बूरा, मोरचंग, नड़ अलगोजा, कमायचा, मजीरा, चीपियां, पूंगी, मुरला, रावणहत्था और सारंगी आदि। गायक जातियां ढोली, ढाढी और लंगा आदि इन वाद्यों को बजाते भी थे तथा इनका निर्माण भी करते थे। कुछ प्रमुख लोकवाद्यों की बनावट, उसको बजाने के तरीका, बजाने का अवसर तथा जाति–विशेष के वाद्य का उल्लेख नीचे किया गया है–

(1) रावणहत्था– यह दो तार वाला धनुषनुमा वाद्य यंत्र है। इसका एक तार घोडे की पूंछ के बाल से तथा एक लोहे के तारों को बांटकर बनाया जाता है। इसमें केवल एक घोडी ही होती है। मुख्य तार घोडी के ऊपर से तथा तरबों के तार घोडी के बीच में से निकलतें है। इसके निर्माण में नारियलखोल तथा बांस की लकडी प्रयोग में लाई जाती है। इसे कमान से बजाया जाता है। पश्चिम राजस्थान में कथावाचक भील इसे बजाते हैं। 'पाबूजी री पड़' बाँचते वक्त भोपे इसका विशेष प्रयोग करते हैं।

(2) मोरचंग– लोहे से बने इस वाद्य यंत्र के एक किनारे पर लोहे का जीभनुमा यंत्र लगा रहता है। इसे बायें हाथ में रखकर होठों में दबाया जाता है तथा फूंक देते हुए दायें हाथ की अंगूली से खींचकर इसे बजाया जाता है। इसे गडरिये अधिक बजाते हैं। लंगा भी सारंगी के साथ साथ इसे बजाते हैं। इसकी ध्वनि बडी प्रिय लगती है।

(3) नगाड़े– राजस्थान में नगाड़े बजाने का प्रचलन बहुत है। उत्सव, विवाह तथ मांगलिक अवसरों पर नगाड़े बजना शुभ माना जाता है। ये दो कटोरेनुमा वाद्य यंत्र हैं। बड़ा ताम्बे का व छोटा लोहे का होता है। बडे कटोरे पर भैंस की खाल व छोटे कटोरे पर ऊंट की खाल मढ़ी हुई होती है। दो छड़ियों से इसे बजाया जाता है।

(4) कमायचा– राजस्थान में लंगा इसका प्रयोग अधिक करते हैं। यह भी तारों वाला यंत्र है जो कमान से बजाया जाता है। इसके तूंबे पर चमड़े की पतीली झिल्ली मढी हुई होती है। इसमें नौ तार होते है जिनमें तीन तार बंटी हुई तांत के व 6 तार लोहे के होते हैं।

(5) पूंगी– राजस्थान के जोगी सपेरे पूंगी बजाते हैं। इसमें लकड़ी की फांकों की दो नलियां होती हैं जिनमें एक पती लगी रहती है। इसके नीचे का हिस्सा तूम्बे से जुड़ा होता है। एक खोखले बांस में लगभग 7–8 छिद्र होते हैं जिन पर अंगुलियां रखकर विभिन्न स्वर उत्पन्न किये जते है। एक खोखला बांस मूल ध्वनि उत्पन्न करता है। इसे फूंक मारकर अंगुलियों को आवश्कयतानुसार रखते और हटाते हुए ध्वनि उत्पन्न की जाती है।

(6) चंग चंग गोलाकार होता है। इस वाद्ययंत्र को रीग पर अंगुलियों के बीच एक पतली लकड़ी बजाने के लिये लगाई जाती है। तथा दूसरे हाथ की हथेली व अंगुलियों से इसे बजाया जाता है। होली के अवसर पर गेरिये चंग बजाते है।

(7) नड़– नड़ एक विशेष प्रकार के बांस से बनाई जाती है। इस खोखले बांस में तीन छेद होते हैं। इसे फूंद देकर बजाया जाता है। इसमें श्वास रोकने व छोड़ने की विशिष्ट प्रक्रिया से ही ध्वनि उत्पन्न होती है। यह चरवाहों का प्रिय वाद्य है। करणा भील इसका कुशल वादक था।

(8) अलगोजा– अलगोजा एक ऐसा वाद्य है जिसमें दो बांसुरी होती है। दोनों में 6–6 छेद होते हैं। इसे भी फूंक देकर बजाया जाता है। चरवाहे तथा अलवर जिले के मेव इसे रूचि से बजाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(9) मंजीरे– इसमें प्यालेनुमा गोल धातु की दो प्लेटें होती हैं जिनके बीच सूत का मोटा धागा लगा होता है जो दोनों प्लेटों के बीच में से निकलता है। बजाने वाला दोनों प्लेटों को आपस में टकराकर उनसे ध्वनि उत्पन्न करता है। भजनकीर्तन में इसे बजाया जाता है। इसकी ध्वनि बहुत कर्णप्रिय होती है।

(10) चिमटा– जोगी और सन्यासी, चिमटा बजाते हैं। लोहे के लचकदार चिमटे के फलों पर घंटियां लगी रहती हैं। एक फल को दूसरे फल से टकराते हुए इसे बजाया जाता है।

(11) खड़ताल– यह लकड़ी की चौड़ी चपटी आकार की होती है जिसमें पीतल की गोल गोल पतली प्लेटें लगी हुई होती है। दो खड़तालों को एक ही हाथ में पकड़कर बजाया जाता है। एक को अंगूठा में तथा दूसरी को उंगुलियों में डालकर परस्पर टकराने से बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है। भजन–कीर्तन में इसे बड़े चाव से बजाया जाता है। कभी कभी दोनों हाथों में दो–दो खड़तालें लेकर उन्हें बजाने वाला व्यक्ति इतना तन्मय हो जाता है कि नाच उठता है।

(12) मादळ– यह नटों के ढोलक से मिलता–जुलता एक ऐसा वाद्ययंत्र है जिसे हाथों के प्रहार से बजाया जाता है। इसमें झिल्ली को गजरा लगाकर रस्सियों द्वारा कसा जाता है।

(13) भपंग– मेव, जोगियों व फकीरों का प्रमुख वाद्ययंत्र भपंग है। तूंबी से बने इस वाद्य यंत्र में पतले चमड़े का एक तार लगा होता है। तूंबी नीचे मढी हुई होती है। तूंबी को बगल में दबाकर तथा तांत को हाथ में पकड़कर लकड़ी के गुटखे से इसे बजाया जाता है।

(14) बरगू– इस वाद्य यंत्र को अधिकांशतः सरगरा जाति के लोग बजाते हैं। यह वाद्ययंत्र पीतल का बना होता है। इसकी आकृति बहुत कुछ अंग्रेजी के ~ वर्ण से मिलती है। इसे फूंक मारकर बजाया जाता है।

(15) पाबूजी के माटे– ये मिट्टी के दो बड़े आकार के मटके होते हैं। इनके मुंह पर चमड़े की झिल्ली तसमों से बंधी होती है। ये हाथ से बजाये जाते हैं। दो व्यक्ति इन्हें एक साथ बजाते हैं। इन्हें विशेष कर थोरी व नायक जाति के लोग बजाते हैं।

(16) दुकाळी– यह वाद्य यंत्र लगभग 8 इंच की खोखली बेलनाकार लकड़ी के एक किनारे पर खाल मढ़कर तथा दूसरे को खुला रखकर बनाया जाता है। खाल के मध्य से एक तार लगा हुआ होता हैं। यह हाथ से बजाई जाती है। इसे भील जाति के लोग अधिक बजाते हैं।

(17) सारंगी– सारंगी भी राजस्थान के लंगा, जोगी आदि बजाते हैं। यह तारों का बिना परदों का लोकवाद्य है। सारंगी के कई रूप हैं। जैसे गुजराती सारंगी, धानी सारंगी, सिन्धी सारंगी, जोगिया सारंगी आदि। सभी में 2 स्टील के तार व 2 बंटी हुई तांतों के तार होते हैं। इस प्रकार कुल चार तार होते हैं। गुजराती सारंगी में नौ तरबे, धानी सारंगी में 14 तरबे, सिन्धी सारंगी में सत्रह तथा जोगियों सारंगी में 11 तरबें होती हैं। गुजराती सारंगी नाखून से बजाई जाती है जबकि सिन्धी सारंगी, जोगियों सारंगी व धानी सारंगी कमान द्वारा बजाई जाती है। जोगिया सारंगी व धानी सारंगी जोगी बजाते हैं।

(18) खंजड़ी– इसे कालबेलियां व जोगी जाति के लोग गाते एवं नृत्य करते समय बजाते है। यह लकड़ी की बनी होती है। इस पर बकरी की खाल मढी होती है। इसे एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ की हथेली व अंगुलियों से बजाया जाता है।

इसके आलवा नागफणी, सुरमण्डल, मशक, सुरनाई, मुरला, एकतारा, जन्तर, सुरिन्दा, डेरूं, चिकारा, मुरला, घुरालियौ और थाली आदि कई लोकवाद्य हैं जिनको राजस्थान के लोकसंगीतज्ञ बजाते हैं। ये लोकवाद्य संगीत में मधुरता लाते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये महंगे नहीं होते तथा बजाने में भी किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

13.4 लोकनृत्य

राजस्थान कला और संस्कृति की रंगस्थली है। राजस्थान के लोकनृत्य सरस, भावभीने एवं मनोहरी चेतना के वाहक हैं। ऋतुपरिवर्तन हो या कोई त्यौहार, पर्वोत्सव हो या फिर घर में ही कोई मांगलिक अवसर हो, यहां के नर नारी खुशी में झूम उठते हैं। जब उनका मन–मयूर थिरकने लगता है तो वे भक्तिरस में डूबकर तन्मय होकर नृत्य करने लगते हैं। इस प्रकार नृत्य राजस्थानी जन–जीवन का प्रमुख अंग है। स्त्री–पुरूष, कुमारी, बालिकाएं, पेशेवर जातियों के लोग सभी नृत्य करते हैं। यहां के प्रमुख नृत्यों में भंवाई नृत्य, घूमर–नृत्य, उड़िया नृत्य, तेरहतारी नृत्य,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डांडिया नृत्य, कालबेलिया–नृत्य, ढोल नृतय, गणगौर नृत्य आदि है। जिनमें स्थानीय रंग की छटा भी दृष्टव्य होती है। भवाई नृत्य, कालबेलियों का नृत्य व तेरहताली के नृत्यों ने तो विदेशों में भी धूम मचा दी है।

(1) गवरी नृत्य– लोकसंस्कृति की प्रतीक 'गवरी' नृत्यनाटिका निराली ही है। यह भीलों का लोकनृत्य है। इस नृत्य का प्रमुख विषय मोहिनीस्वरूप भगवान विष्णु द्वारा भस्मापुर का अंत कर शिवशंकर को बचाने से संबंधित है। भस्मानुसार को ताण्डव नृत्य सिखाते हुए भगवान शंकर ने बड़ी चतुराई से भस्म का कड़ा उसी के हाथ से उसके सिर पर घुमा दिया तथा उस पापी का अन्त कर दिया। तब भगवान शिव ने प्रसन्न होकर भीलों के साथ नृत्य किया। यही नृत्य 'गवरी' के रूप में विख्यात हुआ।

गवरी का आयोजन रक्षा–बन्धन के दूसरे दिन भाद्रपद की प्रतिपदा से होता है जो लगभग डेढ़ माह तक चलता है। भोपा खेड़ा देवी से आज्ञा लेता है। वह पात्र मन्दिर में धोक देकर नौ लाख देवी देवता, चौसठ योगिनी, एवं बावन भैंरू का स्मरण करता है। इसके पात्र व्रतसंयम रखते हैं। राई, बुढिया भोपें नंगे पांव रहते हैं, जमीन पर सोते हैं। वे शराब, मांस, हरी, सब्जी का सेवन नहीं करते हैं। रात भर देवी की अराधना करते हैं। इस नृत्य की वेशभूषा बहुत ही आकर्षक होती है। पात्र धरती पर गोलाकार घूमते हुए नृत्य एवं अभिनय करते हैं। गवरी में पुरूष पात्र होते हैं।

(2) गेर नृत्य– राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में होली के अवसर पर पूरे मास 'गेर नृत्य' चलता रहता है। इस नृत्य में पुरूष लडकियों के डंके के साथ नाचते है। ताल के साथ थिरकता अंग–प्रत्यंग होली की मादकता एवं उल्लास का एहसास कराता है। कभी–कभी एक ओर स्त्रियों का दल तथा उसके सामने दूसरी ओर पुरूषदल नृत्य करते हुए पास आते हैं। फिर पीछे हटते हैं। इस तरह नृत्य चलता रहता है। अब तो यह नृत्य विभिन्न जाति के लोग भी करते हैं। होली के अवसर पर वे गेर बनाकर नाचते हैं। इसमें एक पुरूष स्त्री के कपड़े पहनकर तथा लम्बा घूंघट निकालकर नाचता है तथा उसके साथ अन्य पुरुष भी नाचते हैं।

(3) भवाई नृत्य–भंवाई नृत्य भी राजस्थान का लोकप्रसिद्ध नृत्य है। इस नृत्य में उच्च स्तर की भावभंगिमा तथा पदसंचालन की वक्रचाल देखते ही बनती है। भंवाई नर्तक अपने सिर पर अनेक मटके (5 से 11 तक) रखकर नृत्य करता है। वह अपने शरीर का ऐसा सन्तुलन रखता है कि एक भी मटका नृत्य करते वक्त हिलता तक नहीं। भवाई नृत्य करने वाले ऐसे ऐसे करतब दिखाते है कि दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाता है। जैसे सिर पर मटके रखकर तथा नीचे जमीन पर पडी थाली पर खडे होकर ताल के साथ पैरों से थाली सरकाते हुए नृत्य करना तथा कांच की गिलास पर खड़े होकर गिलास सरकाते हुए नृत्य करना आदि। भाले को ऊपर फंक कर नृत्य कर चक्कर लगाना तथा पुनः समय पर आकर गिरने से पहले भाले को पकड़ना आदि रोमांचक करतब देखने योग्य होते हैं।

(4) डांडिया नृत्य– राजस्थान में विशेष रूप से मारवाड़ (जोधपुर) में होली के पश्चात् गणगौर के दिनों में स्थान–स्थान पर डांडिया नृत्य होता है। यह प्रायः रात्रि में होता है। इसके लिये विशेष रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। खुले मैदान में गोलाकार आकृति में पुरुष खड़े हो जाते हैं। वे दोनों हाथों में डांडिया ले लेते हैं। फिर ताल के साथ आपस में डांडिया टकराते हैं। अपने आजू–बाजू खड़े व्यक्तियों से डांडियां नृत्य करने वाले स्वांग भी धारण कराते है। जैसे सेठ–सेठानी, राजा–रानी, बादशाह–बेगम, राधा–कृष्ण, साधु–संत आदि। इस नृत्य के साथ लोकगीत भी गाया जाता है।

(5) गरबा नृत्य– गरबा गुजरात का ये भक्तिपूर्ण प्रसिद्ध नृत्य है जिसे नवरात्रि में दुर्गा की आराधना में महिलायें तन्मय होकर नृत्य करती हैं। गुजरात से जुडे होने के कारण राजस्थान में भी इसका प्रचलन है। डूंगरपुर, बांसवाड़ा में तो यह नृत्य बहुत प्रसिद्ध हैं। गरबा तीन रूपों में किया जाता है। प्रथम रूप तो वह है जिसमें शक्ति की अराधना में स्त्रियां मिट्टी के घड़े में छिद्र कर उसमें दीपक प्रज्ज्वलित कर तथा उसे सिर पर रखकर गर्भगृह के आसपास प्रदक्षिणा करती हैं या फिर धीरे–धीरे गोलाकार में घूमती हुई नृत्य करती है। यह नृत्य ताली व चुटकी से भी किया जाता है।

गरबा का दूसरा रूप रास नृत्य है। इसमें राधा–कृष्ण और गोप–गोपियों के प्रणय भावों का प्रस्तुतीकरण होता है।

तीसरे रूप में लोक–जीवन का सौन्दर्य प्रकट होता है। इसमें पणिहारी, नववधू की भावुकता तथा गृहकार्य में रत स्त्रियों का चित्रण होता है। गरबा लेते समाय दुर्गा की भक्ति से संबंधित गीत गाये जाते हैं।

(6) घूमर नृत्य– राजस्थान का एक लोकप्रिय नृत्य घूमर है जिसे स्त्रियां होली के पश्चात् गणगौर के दिनों में करती हैं। घूमर नृत्य भी गोलाकार घूमते हुए किया जात है। इन नृत्य में स्त्रियों की भाव–भंगिम के साथ–साथ

लहराते, बलखाते घेर–घुमेर लहंगे की छटा दृष्टव्य है। रिद्म की तीव्रता से तेज गाति से गोल घूमने पर फूला–फूला लहंगा बहुत ही आकर्षक लगता है। घूमर नृत्य करते समय पार्श्व में घूमर नामक लोकगीत गाया जाता है। घूमर नृत्य विवाह जैसे शुभ अवसर भी गृहिणियों द्वारा किया जाता है।

(7) विविध नृत्य– राजस्थान में पेशेवर जातियों द्वारा अनेक ऐसे लोकनृत्य किये जाते हैं जिन्हें देखकर लोग दांतों तले अंगुली दबाते हैं। इन पेशेवर जातियों में ढोली, भंवई, मांड, पातर, वेश्या व नट आदि आते है। इन पेशेवर जातियों के अपने अलग–अलग नृत्य होते हैं जो उनकी पहचान कराते हैं। शारीरिक कलाबाजियों की दृष्टि से नट–नटी का नृत्य में मोर की सी चाल, गर्दन की लचक, हाथों की कलाबाजी से मोरपंखों का कम्पन नृत्य में मोर को जीवन्त बना देता है। नटनी दो बांसों के छोरो पर बांधे हुए रस्से पर भी नृत्य करती है। वह ताल के साथ शरीर का सन्तुलन बनाये रखते हए सिर पर 5–7 घड़े रखकर एक छोर से दूसरे छोर तक चलती है। कभी रस्सी के एक छोर पर थाली रखकर तथा उसे पैरों के अगूंठों से पकडकर घुटनों के बल आंगे बढती है तथा साथ–साथ थाली को भी अंगूठों से पकड़ें हुए धीरे–धीरे आगे सरकती हुई दूसरे छोर तक पहुंच जाती है। नट लोग शरीर को जैसे चाहते हैं, वैसा मरोड़ सकते हैं। शरीर की लचक व सन्तुलन बनाये रखने में ये अपना सानी नहीं रखते।

कालबेलिया जाति की नारियां **'सपेरा नृत्य'** के लिये प्रसिद्ध हैं पुरूष पूंगी बजाता है तथा स्त्रियां काले गोटे लगे हए कपड़े पहन कर बड़ा घूंघट निकालकर नृत्य करती हैं। इनकी वेशभूषा भी बडी आकर्षक होती है। भुजाओं पर बंधी लम्बी डोरियां नृत्य के समय लहराती है। काले लिबास में नागिन की तरह बलखाती लहराती इनकी देह की लचक लोगों के समक्ष नागिन का दृश्य प्रस्तुत कर देती है। इनके शरीर में गजब की स्फूर्ति एवं सन्तुलन होता है। वे तीव्र गति से शरीर को जैसे चाहे मोड देती है। नृत्य करते हुए अपने शरीर को इतना पीछे झुका लेती हैं कि जमीन पर पड़े रूमाल को दांतों से पकड कर उठा लेती हैं। इनके नृत्य देश में ही नहीं, विदेशों मं भी बड़े चाव से देखे जाते हैं। वहां के लोग इनके नृत्य देखकर मंत्रमुग्ध हो जाते है।

राजस्थान के लोकनृत्यों में **'कच्छी नृत्य'**, जालोर का **'ढोल–झालर नृत्य'**, डीडवाने का **'तेरह ताली नृत्य'**, चित्तौड़ का **'तुर्रा कलंगी नृत्य'**, आदि प्रसिद्ध है। कच्छी घोडी नृत्य के अन्तर्गत ढोल–थाली बजती है। नर्तक वीरोचित वेशभूषा धारण कर, तलवार हाथ में लेकर काठ व कपड़े से बनी सुन्दर घोड़ी पर सवार होता है। इस घोड़ी की पीठ भतीर से खोखली होती है। नतर्क पैरों में घुंघरू बांधकर घोड़ी की पीठ के भीतर इस तरह खड़ा हो जाता है कि उसके शरीर का ऊपरी भाग बाहर दिखाई देता है तो अधो भाग घोडे के भीतर ढका रहता है। पैर जमीन पर टिक होने से नृतक ढोल ओर थाली की आवाज के साथ इस तरह नृत्य करता हुआ घूमता है मानों घोड़ी ठुमक–ठुमक कर नृत्य करती हुई घूम रही हो और घोडी पर सवार वीर तलवार चला रहा हो।

राजस्थान में तेरह नृत्य भी प्रसिद्ध है। राजस्थानी वेशभूषा में सजी नारी अपने दाहिने पैर पर धात की प्लेटनुमा 8 मंजीरें क्रम से बांधती है। वह एक–एक मंजीरा दोनों बाजू पर बांधती है। तथा दोनों हाथों में पकड़े रहती है। फिर बड़ी कुशलता से हाथों के मंजीरों को पैर के मंजीरों से टकराती है ध्वनि उत्पन्न करती है जो बहुत ही कर्णप्रिय होती है। इसी तरह बाजू पर बंधे मंजीरों से भी हाथ के मंजीरे टकराती है। इस क्रम में हाथों की स्फूर्ति व कला प्रशंसनीय है।

राजस्थान में लोकनृत्य में राजस्थानी संस्कृति झलकती है। अतः लोकनृत्यों के विदेशों में प्रदर्शन से राजस्थानी संस्कृति क प्रचार हुआ है। इस कला को जीवित रखने के लिये राजस्थान की अनेक संस्थाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कला–केन्द्र और अकादमी जैसी संस्थाएं इन नृत्यों के प्रदर्शन की व्यवस्था कर लोक–कलाकारों को प्रोत्साहन देती है।

13.5 लोकविश्वास और मान्यताएँ

प्रत्येक समाज की अपनी मान्यताएं तथा आचार–विचार होते है, जो उनकी संस्कृति को उजागर करते है। राजस्थानी समाज की भी अपनी मान्यताएं एवं आचार–विचार हैं जिनके आधार पर उसकी अपनी विशेष पहचान बनी हुई है। इन मान्यताओं में शकुन–अपशकुन, पितृपूजा जादू–टोने, झाड–फूंक, लोक–विश्वास आदि आते है। पांडित्य की चेतना से शून्य, अहंकार से रहित, सहज विश्वासी लोकसमाज में ये मान्यताएं व विश्वास आज भी प्रचलित है। तार्किकता से दूर यह लोकसमाज वैज्ञानिक युग में भी अपनी मान्यताओं एवं विश्वासों पर कायम है। विज्ञान की बढती हुई तेज आंधी भी इनके विश्वासों को खण्डित नहीं कर सकी क्योंकि इनकी जड़ें लोकमानस में गहराई से पैठी हुई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(अ) शकुन– राजस्थान का शकुन–शास्त्र बड़ा ही दिलचस्प है। उसमें पशु–पक्षी, वनस्पति,–प्रकृति तथा मानव के अंग–प्रत्यंगों के कम्पन आदि का सूक्ष्म अध्ययन कर फलाफल ज्ञात किया जाता है। अकाल, सुकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारियां, प्राकृतिक, प्रकोप, कार्यसिद्धि, लाभ, हानि, सफलता–असफलता, अच्छे–बुरे आदि परिणाम शकुन के द्वारा निकाले जाते है। जैसे अक्षय तृतीया पर हवा के रूख से सुकाल व दुकाल का अनुमान लगाया जाता ह। यदि उस दिन चारघड़ी दिन चढ़ने के पूर्व दक्षिण पवन चले तो फसलों को हानि तथा टिड्डी दल की आशंका रहती है। उतर की हवा शुभ तथा ईसन हवा भी अशुभ मानी जाती है। मध्यान्ह में थाली भरकर सूर्य प्रतिबिम्ब को देखकर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं। जिस दिशा में सूर्य लाल दिखे तो उस दिशा विग्रह होता है। यदि सूर्य नीला पीला दिखे तो धरती पर बीमारियां फैलती है। धवल दिखाई दे तो अनाज अधिक पैदा होता है तथा प्रथा सुखी रहती है। सूर्य सांला–सा दिखाई दे तो दुर्भिक्ष पड़ता है। दीपवली पर कवाड़िया के शकुन लिये जाते है। यदि कवाड़िया कमल के फूल, वृक्ष पर दिखई पड़े तो शुभ माना जाता है। यदि वह राख, काष्ठ, चमड़ा तथा सूखे तिनकों पर ऊपर दिखई दे तो अशुभ माना जाता है।

घर से प्रस्थान करते समय शकुन व शुभ मूहुर्त्त देखा जाता है। यदि घर से निकलते ही आटा, दूध, घी खाली धड़ा, विधवा स्त्री सामने आ जाए तो अशुभ मानते हुए यात्रा स्थगित कर दी जाती है और वापस घर आकर कुछ समय व्यतीत दसके पश्चात् बाहर जाते हैं। इसके विपरीत दही, पानी से भरा कलश, सुहागिन, नारियल, पुत्रवती, कुंवारी कन्या और हरिजन सामने आ जाये तो अच्छे शकुन माने जाते हैं।

कागमाळा के अनुसार भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं। यदि कौआ वृक्ष के ऊपर शिखा पर घोंसला बनाये तो सुकाल, अधबिच डाली पर बनाये तो वर्षा की कमी से फसल सूखे छोटी खेजड़ी पर बनाये तो महामारी और सूखे वृक्ष यह सूने घर पर बनाये तो राज्य में विग्रह होता है।

गांव के लिये प्रस्थान करते समय यदि बांयी तरफ उल्लू बोते तो सुखकारी एवं आनन्दवर्द्धक होता है। यदि दांयी तरफ बोले तो भयकारक एवं दुखदायी होता है। इसी तरह गांव में प्रवेश करते ही दांयी तरफ उल्लू बोले तो शुभ होता है। घर के ऊपर बोले तो कष्टदायक होता हैं।

इसी तरह कुत्ता के शकुन के सन्दर्भ में यह कहा गया है–

स्वान कान फड़कर कर, अथवा बैठो खाट।
ऐसो देख न चालिये, आगै करै उचाट।।
कूकर डावो सूर करे, बोले वारों बार।
सुकन विचारों पंथिया, सीने राज दवार।।

गाय के शकुन प्रायः शुभ माने जाते हैं, किन्तु सांड के शकुन के विषय में यह माना गया है कि बैल बांये पांव अथवा बांये सींग से जमीन खोदता हुआ दिखाई पड़े तो बहुत लाभकारी होता है तथा दायें पांव या दायें सींग से जमीन खोदता दिखे तो अशुभ होता है।

घर से बाहर निकलते वक्त यदि बिल्ली रास्ता काट जाये तो विग्रह होता है। इसे अशुभ माना जाता है। यदि प्रस्थान के वक्त बायीं तरफ से छींक हो तो शुभ है। पीठ पीछे की छींक कार्यसिद्धि का संकेत करती है। सन्मुख छींक अशुभ होती है। दो बार छींक हो तो अशुभ मानी जाती है।

शरीर के अंगों के फुरकने (कम्पन) के आधार पर भी शकुन ज्ञात किये जाते हैं। पुरूष की दांयी आंख की फुरकन शुभ व स्त्री की बांयी आंख की फुरकन शुभ मानी जाती है। इसके विपरीत यदि पुरूष यदि पुरूष की बायी आंख फुरके तो अशुभ तथा स्त्री की दांयी आंख फुरके तो अशुभ होती है। स्त्री की बांयी हथेली खुजलाये तो पैसा आता है व दांयी खुजलाते तो पैसा खर्च होता है। यदि पगतली में खाज आये तो यात्रा योग होता है।

राजस्थान में 'सरोदा' (स्वरोदय) के द्वारा भी शकुन ज्ञात करने की परम्परा रही है। यद्यपि इसे हर कोई जान नहीं सकता। इसका ज्ञान सीमित लोगों को ही है। इसके अन्तर्गत नासिका से निकलने वाले श्वांस को सूर्य व चन्द्र दो सुरों में बांटकर शकुन लिये जाते हैं। दायां श्वांस सूर्य व बायां चन्द्रमा होता है। चन्द्र स्वर में यात्रादान मंत्र–साधना, अध्ययन–अध्यापन, देवमन्दिर के दर्शन आदि कार्य किये जाते हैं। सूर्यस्वर में शस्त्रधारण, वाहन लेना और स्नान कार्य आदि किये जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मौसम, वर्षा, फसल, आदि की भविष्यवाणी नक्षत्रों व बादलों की स्थिति के आधार पर भी की जाती है। पहले घड़ियां नहीं थीं, तब कृषक इन्ही के सहारे पूर्वानुमन कर लेता था। इस संबध मे यहां कुछ लोकोक्यिाँ व दोहे प्रसिद्ध हैं। जैसे–

आसाढ़ सुद नवमी, कै बादल के बींज
कोठ खेर खंखेरकर, राखौ बळद में बीज।।
चैत्र मास सो बीजळ होवै, धुर वैसाखा केस धोवै।
जेठ मास जो जाई तपंतो, कुण राखै जळहर बरसंतों।।

नक्षत्रों के संबंध में कहा गया है–

श्रवण वद एकादसी, तीन नषत्रां ताळ।
कृतिका करै, करवरौ, रोहिणी करै सुगाळ।।

वृक्ष में होने वाले परिर्वतन को देखकर भी अकाल–सुकाल का अनुमान किया जा सकता है। जैसे–

नींबोळी वद एकादसी, तीन नषत्रां ताळ।
कृतिका करै, करवरौ, राहिणी करै सुगाळ।।

राजस्थान में सप्तवार, तिथि और नक्षत्र आदि को ध्यान में रखते हुए नया कार्य या नये कार्य के लिये प्रस्थान किया जाता है बुधवार को घर छोड़कर परदेश जाना अशुभ माना गया है। सोम, गुरू, शुक्र होते हैं। चतुर्थी, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या प्रस्थान के लिये अशुभ तिथियां हैं। मृगशिरा, ज्येष्ठा, अश्विनी, अनुराधा नक्षत्र शुभ समझे जाते हैं।

गांव में कुत्तों का रोना व वन में सियार का रोन भी अशुभ माना गया है। इससे कई लोग कालग्रस्त हो जाते हैं। इस संबंध में एक कहावत भी प्रचलित हैं–

रात रा बोले कागलो, दिन में बोले सियार।
तो यों कैवे भड्डरी, निश्चै मंडिये काल।।

राजस्थानी समाज में शकुन की ही तरह तरह कुछ ऐसे लोकविश्वास एवं निजी मान्यताएं भी प्रचलित हैं जिनसे यहां की अनूठी एवं निराली संस्कृति की पहचान होती है। जादू–टोने, तंत्र–मंत्र, विधि–विधान आदि में लोकमानस की आस्था देखी जा सकती है। यहां विभिन्न लोक देवी–देवताओं एवं पितरों की पूजा और उपासना का विधान है। ऐसा माना जाता है कि इनकी पूजा करने से किसी भी प्रकार का संकट नहीं आता तथा उपासना का विधान है। ऐसा माना जाता है कि इनकी पूजा करने से किसी भी प्रकार का संकट नहीं आता तथा परिवार के सदस्य कुशलमंगल से रहते हैं। देवी देवताओं की अराधना से भौतिक कष्टों का निवारण होता है तो पितरों की पूजा से वंश की वृद्धि एवं समृद्धि होती है। इसी तरह भोमिया, जतियों के देवरे थान आदि पर धोक देने से पुत्र–रत्न प्राप्त होता है तथा शारीरिक कष्ट दूर होते है। ऐसी ही अनेक मान्यताएं यहां प्रचलित है।

आज के वैज्ञानिक युग में विभिन्न बीमारियां तथा नहामारियों का उपचार संभव हो गया है फिर भी मध्यकाल से चली आ रही लोकधारणाओं में अभी परिवर्तन नहीं आया है। इसलिये जनमानस जादू–टोने और तंत्र–मंत्र में विश्वास रखता है। तंत्र–मंत्र से वशीकरण, मारण, उच्चाटन, आदि कार्य किये जाते हैं। यदि शत्रु को मारना हो तो मंत्रों से मूंठ (उड़द के दाने) फैंकी जाती है जो शत्रु के शरीर में घुस जाती है और वह छपटाकर मर जाता है। मूंठ से बड़ी से बड़ी शिला भी चूर्ण–चूर्ण हो जाती है। इसी तरह आटे का पुतला बनाकर मंत्रों के साथ पुतले के सुई चुभाई जाती है। इसके पीछे यह मान्यता है कि ऐसा करने से दूर बैठे शत्रु के तन में सुई चुभन का दर्द होता है। यदि पुतला गाढ़ दिया जाय ता शत्रु मर जाता है। मंत्रों से वश में करने की मान्यता भी यहां प्रचलित है। इसके लिये उसे मंत्रित खाद्य पदार्थ में खिला दिया जाता है या उसके वस्त्रों को मंत्रित कर दिया जाता है जिससे वह व्यक्ति वश में हो जाता है।

मंत्रों से भूत–प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी का भय मिटाया जा सकता है। ओझा, झाड़फूंक करके भूत–प्रेत की बाधा दूर करता है। भूत–प्रेतों का भी विशेष समय होता है। भरी दुपहर में 12 बजे से 3 बजे तक व रात्रि 12 बजे से 3 बजे तक सुनसान स्थान, खेजड़ी आदि के पास कोई खाद्य पदार्थ, विशिष्ट व्यंजन लेकर नहीं निकलना चाहिये क्योंकि भूत–प्रेत उनके लालच में तन में घुस जाते है फिर कष्ट देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सांप व बिच्छू के काटने पर मंत्र से इलाज किया जाता है। मंत्रों से सांप और बिच्छु का जहर उतर जाता है तथा कुछ ही देर में व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। इसी तरह आधा सिर के दर्द, पेट–दद्र, पीलिया रोग, आंख का दर्द, एकांतरा ज्वर, पागल कुता काटने पर मंत्र एंव जंत्र करके ठीक किया जाता है। जंत्र के अन्तर्गत विशिष्ट प्रकार की चित्राकृति बनाकर उसमें अंक, शब्द और मंत्र लिखे जाते हैं फिर उसे मंत्रपूत करके चांदी की मादलिये में डालकर या लाल कपउे में बांधकर पहना दिया जाता है। मंत्र की तरह जंत्र भी प्रभावशाली होता है। जंत्र–मंत्र किसी ओझा या सिद्ध पुरूष से प्राप्त किया जाता है।

राजस्थान के लोग छोटी–मोटी बीमारी का उपचार टोने–टोटके से स्वयं ही कर लेते हैं। बच्चे को बुरी नज़र से बचाने के लिये काला दिठौना दिया जाता है अथवा शेर का या सूअर का नाखुन गले में पहनाया जाता है। यदि फिर भी नज़र लग जाये तो उसका उतारा किया जाता है। रूई की वर्तिका को तेल में भिगोकर तथा उसका एक छोर जलाकर वह बच्चे पर सात बार वारी जाती है। फिर दीवार पर दूसरा छोर चिपका दिया जाता है। जब तक वह जल जाती है तो उसे जली वर्तिका को जूते से सात बार मारा जाता है। ऐसी मान्यता है कि इससे नज़र उतर जाती है। या फिर नज़र उतारने के लिये नींबू को चीरकर उसमें सिन्दूर, तेल, राई, कालीमिर्च भरकर सात बार वार आग में जला दिया जाता है। इसी तरह चार रास्तों के बीच चौराहें पर पड़ी मिट्टी लाकर उसमें नमक, मिर्च, राई आदि डालकर सात बार वार कर आग में जला दी जाती है। ताकि बुरी नजर उतर जाये। यदि बच्चे को दस्त लगे और व सुस्त रहे तो दोपहर बारह बजे व सन्ध्या में पानी से भरा लोटा सात बार वार कर मुख्य द्वार के बांयी तरफ गिरा दिया जाता है। बच्चे के गले में काला रेशम का धागा भी बांधा जाता है। ताकि व स्वस्थ तथा प्रफल्लित रहे। और भी ऐसे कई लोक विधि विधान प्रचलित जिससे अनष्टि, अमंगल को दूर किया जाता है।

13.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि जनमानस में रचे–बसे ये लोकविश्वास लोक–जीवन के आधार बने हुए हैं। आज के वैज्ञानिक युग में बौद्धिकता, तार्किकता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के कारण भले ही इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाए अथवा इन्हें अंधविश्वास कह कर बुद्धिजीवी वर्ग भले ही इनका उपहास करे, किन्तु यह तो सत्य है कि इन लोकविश्वासों में लोकमंगल की भावना निहित है जो लोकमानस की सरलता, निश्छलता, संवेदनशीलता एवं आस्था को उजागर करती है।

13.7 अभ्यास प्रश्नावली

1. राजस्थान की लोक कलाओं का परिचय दीजिए?
2. राजस्थान के लोक संगीत का वैशिष्ट्य बतलाइए।
3. राजस्थान के लोक वाद्य कौन कौन से हैं?
4. राजस्थान के लोक विश्वासों पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–14

राजस्थानी लोकसंस्कृति

संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 राजस्थानी संस्कृति का स्वरूप
14.3 राजस्थानी लोकसंस्कृति का भौतिक सौन्दर्य
14.4 राजस्थानी लोकसंस्कृति का आभ्यन्तर सौन्दर्य
14.5 लोकविश्वासी संस्कृति
14.6 सारांश
14.7 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.0 प्रस्तावना

भारतवर्ष का हृदयस्थल राजस्थान विशाल और विख्यात पंतगाकार प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रदेश सैकड़ों कोसों तक लहराते हुए विशाल मरूस्थल तथा मीलों तक फैली हुई हरी–भरी अरावली श्रृंखलाओं में विभक्त है। मरूस्थलीय लू की लपटों से झुलसाता तथ अरावली की शीतल, मंद तथा सुहावनी हवा के झोंकों से झूमता राजस्थान अपनी निराली प्राकृतिक छटा को रखता ही है, साथ ही साथ सांस्कृतिक दृष्टि से भी अपनी विशिष्टता रखता है। राजस्थान के नर–नारियों की अपनी मौलिक विशेषता है। जहां का सहज, सरल, परिश्रमीव विनम्र व्यक्ति जब हठ धारण करे तो राणा हमीर, योद्धा बने तो राणा कुंभा, प्रतिज्ञा करे तो राणा प्रताप, स्वामी भक्त हो तो दुर्गादास, वचनपालक बने तो पाबू और तेजा, देवत्व प्राप्त करे तो बाबा रामदेव, हड़बू तथा गोगाजी, इतिहासलेखक हो जाये तो मुहणोत नैनसी। क्रांति की ज्योति करे तो पद्मिनी, धाय माँ बने तो पन्ना, भक्ति करे तो मीरा तथा देवी रूप प्राप्त करे तो करणी माता बन जाती है।

14.1 उद्देश्य

इसके अध्ययन से राजस्थानी संस्कृति का बोध हो सकेगा।

14.2 राजस्थानी संस्कृति का स्वरूप

राजस्थान का लोकमानस गीतों में झूमता है, नृत्यों में थिरकता है, गाथाओं में मस्त होता है, नाटकों में आनन्दित होता है, लोकोक्तियों तथा प्रहेलिकाओं में चमत्कृत होता है एवं लोकोत्सवों में रसनिमग्न हो जाता है। व लोकोत्सवों, अनुष्ठानों तथा तीज–त्यौहारों की अनुपालना में आनन्दित होता है। इसे परम्पराओं से प्यार है। रीति–रिवाजों से अनुराग है। देवार्चना में आस्था है। शकुन–अपशकुनों में विश्वास है। कृतज्ञता से प्यार तथा कृतघ्नता से घृणा है। वचन तथा प्रतिज्ञा पालन से श्रद्धा तथ छलकपट से नफरत करने वाला यहां का लोकमानस देवालयों, 'देवरों', 'थानों' समाधियों पर 'माथा' टेकता है और आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त करता है। यहां लोकदेवताओं की जितनी उपासना हिन्दू समाज करता है उतनी ही पवित्र इबादत मुस्लिम समाज भी करता है। बाबा रामदेव–देवता भी हैं और पीर भी। इसीलिए वे हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति की एकता के प्रतीक है।

ऐसा अद्भुत, अनोखा, अनुपम राजस्थान भारतीय मानचित्र में 23 से 30 अक्षांस तथा 69 से 78 देशान्तर के मध्य स्थित है। इसकी उतरी सीमाओं पर पश्चिमी पाकिस्ताान, पंजाब तथा हरियाणा, पूर्व में उतरप्रदेश, तथा मध्यप्रदेश, दक्षिण में मध्यप्रदेश तथा गुजरात तथा पश्चिम में पाकिस्ताान स्थित है। इसका क्षेत्रफल 3 लाख 96 हजार 270 किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का दूसरा बड़ा राज्य है। इसका अतीत रक्तरंजित शौर्यपूर्ण, भक्ति मण्डित तथा दरबारी संस्कृति से पूर्ण रहा है तो वर्तमान आधुनिकता मण्डित विकासोन्मुखी कहा जा सकता है। सन् 1947 ई. के पूर्व यह अनेक देशी रियासतों का संगठन था जिसमें जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, बीकानेर आदि प्रमुख रियासतें थीं। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय एकीकरण के महायज्ञ में 'राजस्थान' संज्ञक एकीकृत प्रदेश जन्म हुआ।

राजस्थान प्रदेश लोकसंस्कृति का रत्नाकार है। यह लोकआस्थाओं का हिमालय, लोकनुभूतियों का महासागर तथा लोकानुभवों का विराट ब्राह्माण्ड है। लोकजीवन की अगणित अनुभूतियो की अभिव्यंजना ही अपने उदात्त स्वरूप में 'लोकसंस्कृति' की संज्ञा प्राप्त करती है। संस्कृति चित्त भूमि की खेती है। जिसका चित्त जितना अधिक सुभावित , संस्पर्शशील, समन्वयात्मक, सौहार्दपूर्ण और स्नेही होगा, उतना ही वहां उत्पन्न संस्कार फल मधुर, उद्यत्त तथा रसात्मक होगा। इस संस्कृति में किसी भी प्रकार के वैमनस्य, द्वेष, पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रहपूर्ण भेदभाव न होकर, सर्वधर्म समभाव, 'सर्वजनहिताय' तथा ' सर्वजनसुखाय' की सौरभ विद्यमान रहती है। संस्कृति उसकी चेतना का बोध कराती है। सभ्यता साधन होती है तथा संस्कृति साध्य।

संस्कृति की यात्रा व्यक्तिचित्त से प्रारम्भ होती है तथा लोकचित्त के उतंग शिखर पर पहुंचकर ही विश्राम लेती है। संस्कृति की यात्रा में व्यक्ति, परिवार, समाज, प्रान्त, राष्ट्र तथा विश्व मानव साथ–साथ संचरण करते हैं।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं– भौतिक पक्ष तथा अभ्यान्तर पक्ष। संस्कृति की स्थूल भौतिकता जीवन के आधारभूत स्त्रोतों तक केन्द्रित रहती है जिसमें हमारा खान–पान, वेशभूषा, खेती–बाड़ी, उद्योगधन्धे, व्यवसाय तथा वस्त्र–आभूषण का परिचय रहता है। संस्कृति के आभ्यन्तर पक्ष में साहित्य, धर्म, कला, मनोरंजन के विविध साधनों परिगणना की जाती है। संस्कृति का भौतिक धरातल हमारी दैहिक क्षुधा को परितृप्त करता है तो उसकी अन्तरंगता हमारी आत्मा को परितोष प्रदान करती है।

राजस्थान की लोकसंस्कृति का विराट् परिदृश्य केवल सूर्यनगरी जोधपुर, झीलों की नगरी उदयपुर, गुलाबी सौन्दर्य मण्डिल जयपुर, पर्वत शिखर आबू, सुनहरा रेतीला बीकानेर, चम्बल की लहरों पर थिरकता कोटा, चित्रकला की बारिकियों से चमत्कृत करता बूंदी, स्वर्णमण्डित जैसलमेर, काष्ठकलामण्डित बाड़मेर तक ही फैला हुआ नहीं है वरन् यहां का गांव–गांव, ढाणी–ढाणी लोकसंस्कृति के कीर्ति–स्तम्भ हैं। यहां का कण–कण सूर्य की किरणों से दमकता है और चंद्र–किरणों में चमकता है। लू की लपटों में झुलसता है और बासन्ती हवा में झूमता है।

राजस्थान की लोकसंस्कृति के वैशिष्ट्य की उपमा हम उस तराशे हुए रत्न से दे सकते हैं जिस पर सुविज्ञों की ध्यानरश्मियां ज्यों–ज्यों केन्द्रित होती है वह बहुज्ञ भाव से अधिकाधिक जगमगाती है।

14.3 राजस्थानी लोकसंस्कृति का भौतिक सौन्दर्य

1. गोरा धोरा अर ऊंचा री भौम–राजस्थान की लोकसंस्कृति का सम्पोषण करने वाली यह भूमि 'धोरां' और 'मगरां' में बंटी हुई है। सम्पूर्ण पश्चिमी अंचल रेत के विशाल समुद्र में लहराता है तो पूर्वी भूखण्ड हरीतिमा मण्डित है। मरूस्थल के सैकड़ों कोसों तक के विस्तार ने शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणों से इस प्रदेश को बचाये रखा है। यही कारण है कि यहां की सांस्कृतिक परम्परा आज भी अपनी मौलिकता से दूर नहीं हुई है। लू की लपटों तथा 'काळी–पीळी' आंधियों ने यहां के निवासियों को अकाल का साथी बना दिया तो मारवाड़ी समाज को भारत के कोने–कोने में अपनी व्यावसायिक प्रतिभा दर्शाने का अवसर भी दिया। पुरूषार्थ, पराक्रम, सहिष्णुता और औदार्य के पुंज राजस्थान के निवासियों की शुभ्र पहचान बनाने में इस प्रदेश की भौगोलिकता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राकृतिक आपदा यहां चिरसंगी रही है। अनावृष्टि और अकाल यहां का स्थायी भाव रहा है। प्रकृति की प्रतिकूलता ने यहां के निवासियों को जीवट और हरियाली की सृष्टि करती हैं तो जोधपुर का जसवन्त सागर, सरदारसमन्द, जैसलमेर का ब्रह्मसागर, अजमेर का आनासागर, बूंदी का सूरसागर, उदयपुर की पिछौला झील तो डूंगरपुर की गेप सागर, कांकरोली की राजसमुद्र झीलें प्रसिद्ध हैं। इस प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा ने राजस्थानी लोकसंस्कृति की संरचना में महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि निभायी है।

2. ऊंची धोती और अंगरखी– राजस्थान के निवासियों की वेशभूषा अत्यन्त ही सरल तथा आडम्बररहित है। राजस्थान के निवासियों के परम्परानुरागी स्वभाव के कारण आज भी उनकी वेशसज्जा में विशेष परिवर्तन नहीं आया है। ऊंची धोती घुटनों तथा कमर के ऊपर अंगरखी–यही सीधा–सादा वेश यहां के निवासियों की पहचान है। धोती तथा अंगरखी के साथ ओढ़ने का 'पछेवडा' भी प्रयोग में लाया जाता है। यहां नंगा सिर रहना अच्छा नहीं माना जाता। इसलिए यहां पगड़ी पहनने का चलन आज भी विद्यमान है। यहां का स्वर्णकारसमाज आंटे वाली, बनजारे मोटी पट्टेदार, विवाह पर मोठडे की पगडी, श्रावण मास नें लहरिया, दशहरे पर मदील तथा रंगबिंरगी फूर–पतियों वाली पगडी होली पर पहनी जाती है। पगडी का एक रूप 'साफा', 'पेचा' और 'पाग' भी है। पगडी आत्मसम्मान और गौरव का प्रतीक है। यहां किसी का अपमानित होना 'पगडी उछालना' है तो लाज बचाना 'पगडी की लाज रखना' होता है। यहां 'अंगरखी' को मिरजई, तनसुख, कानों आदि नामों से भी पुकारा जाता है। शुभ अवसरों पर 'पंचरंगों, 'लहरियों', 'केसरिया' तथा शोकादि अवसरों पर सफेद साफा पहना जाता है।

3. चूंदडी, लहरियो अर रतनजड़ी रखड़ी— राजस्थानी लोकसमाज में स्त्रियों की वेशभूषा में वैविध्य है। यहां आज भी घूंघट की प्रथा विद्यमान है। स्त्रियों का पूरा शरीर वस्त्रों से ढका रहता है। उनका मुख्य वस्त्र चूंदडी, लहरिया, ओढनी साड़ी है तो अधो वस्त्र में 'अस्सी कळी' का घाघरा महत्वपूर्ण है। ओढनियां के अनेक रूप है। 'घाघरा' का ही एक रूप लहंगा हैं। ग्रामीण विधवाएं आजी कत्थई रंग की चोळी, काला लहंगा तथा भूरे रंग की साडी पहनती है। राजस्थान की स्त्रियां अत्यधिक आभूषणप्रिय हैं। आभूषण सोना, चांदी, तांबा, सीप और मूंगे के पहने जाते हैं। प्रमुख नारी आभूषणों में शीशूफल, बोर, टिकडा, बजट्टी, हांसली, तिमणियां, पोत, चन्द्रहार, कंठी, कर्णफूल, फूलझुमका, लटकन, कड़ा, गजरा, चूडी, हथफूल, दामणा, नथ, हथपान, छडा, बिछिया, कडा, लंगर, पायल, पाजेब, झांझर, चोप कंदौरा, बाजूबन्द और रखडी आदि का विशेष अनुराग है जो लोकगीतों में उनकी हार्दिक अभिलाषा के रूप में प्रकट होता है।

4. 'म्हारों बादिलो' खेले शिकार— राजस्थानी लोकसंस्कृति में लोकानुरंजनों के विविध प्रकारों में सबसे प्रमुख साधन शिकार रहा हैं। यहां की संस्कृति सामन्ती वातावरण सम्वलित रही है। सूअर, चीता, मृगों आदि का शिकार यहां बडी धूमधाम से होता था। इसके अतिरिक्त लट्ठ, तलवारबाजी, पतंगबाजी भी लोकमनोरंजन के प्रमुख साधन रहे हैं। जयपुर में मकर संक्राति तथा उदयपुर में निर्जला एकादशी पर आजकल भी खूब पतंग उड़ाये जाते हैं। इसके अलावा शतरंज, चौपड, भर—चर, नार—छारी आदि खेल भी खेले जाते है। ग्रामीण क्षेत्र में बालकों के बीच खोड़ी टांग, मारदड़ी, कूंगा (इमली के बीज), गग्गा (खजूर के बीज) ढुल्ला—ढुल्ली आदि खेले जाते हैं।

5. बाजरिया थारो खीचड़ों लागै घणौं सवाद— राजस्थानी लोकमानस खान—पान के विषय में आडम्बररहित जीवनयापन करने का अभ्यस्त है। यहां का मुख्य भोजन तो बाजरी है। मकई के 'सोगरे', 'दही, खीचड़ो' दळियों', मट्ठा, गुड़, घूघरी, राब, माडी तथा मिठाई में हलवा, लड्डू, खीर, लापसी तथा सब्जियों में बडी पापड, काचरा, मतीरा, खरबूजा तथा प्याज, लहसुन, चावल, मांस आदि का भी यहां प्रयोग होता है।

14.4 राजस्थानी लोकसंस्कृति का आभ्यन्तर सौन्दर्य

लोकसंस्कृति का आभ्यन्तर सौन्दर्य, समाज, धर्म, कला, उत्सव, पर्व, साहित्य और दर्शन से सवंर्द्धित होता है। संस्कृति मुनष्य की सर्वोत्तम उदात्त प्रवृतियों का कलात्मक निदर्शन होती है। संस्कृति में गुलाब की सुन्दरता और सौरभ होती है जिसे हम चर्मचक्षुओं से नहीं बल्कि अनुभूति के धरातल पर ग्रहण कर सकते हैं। संस्कृति अमूर्त रह कर भी अपनी सता का अहसास कराती रहती है। संस्कृति समाज के धरातल पर साहित्य—उपवन विकसित करके कला की कलियां चटका कर दर्शन की सौरभ विकीर्ण करती है। इसीलिए संस्कृति को मुनष्य के हृदय के भीतर प्रतिष्ठित विश्वकर्मा की सर्वोतम सृष्टि के रूप में स्वीकारा जा सकता है। यही कारण है कि राजस्थान की लोकसंस्कृति में अन्तरात्मा का सम्पूर्ण वैशिष्ट्य अवतारित होता है। लोकसंस्कृति हमारी प्राणवायु है। हमारे समष्टिगत चिन्तन की अकलुष आरसी है।

1. सामाजिक संस्थाओं के प्रति आस्था— राजस्थान के लोकसंस्कृति में सामाजिक संस्थाओं के प्रति आस्था और सम्मान आज भी विद्यमान है। यहां संयुक्त परिवारप्रथा आदरणीय मानी जाती है। आज भी लोकांचल में वह परिवार पूज्य और समृद्ध माना जाता है जहां 'एक चूल्हा रोटी बणैं' चरितार्थ होता है; जहां पितामह अपने पुत्र—पौत्रों के संग बैठकर प्रसन्नचित होकर सायंकाल 'ब्यालू' करता है; जहां पुत्रवधू प्रातः और सांय देवज्योति प्रज्वलित करके सास—ससुर के पावं छूकर ''जीवता रहौ, अमर व्है जावो, दूधो न्हावौ, पूतो फळौ, केसरिया ओढो, गैणा गांठा पैरो, लिछमी रा धणी व्हौ, नैण 'गोडा अखी रौ', सासू सुसरा, जेठ—जेठानी, नणद—भौजाई री सेवा करौ''— जैसे आशीर्वाद प्राप्त करके आत्मिक शक्ति प्राप्त करती है। राजस्थानी लोकमानस समाज की वर्ण—व्यवस्था को स्वीकार करता है। ब्राह्मण 'गुरु है' जो त्रिकालदर्शी और कर्मकाण्डी है। क्षत्रिय योद्धा तथा शुद्र सेवाव्रतधारी है। यह लोकमान्यता है कि ईश्वर ने सबके कर्मक्षेत्र निर्दिष्ट कर दिये हैं। समाज में सुनार, कुम्हार, लुहार, चमार, धोबी, रंगरेज, सुथार आदि सभी अपने निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करते हैं। यहां चार आश्रम व्यवस्था की परिपालना की जाती है। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन, गृहस्थाश्रम में सांसरिक—पारिवारिक दायित्वपालन, वानप्रस्थ आश्रम में जीवन की ढलती संध्या में अनुभवों का लाभ देना व संन्यास आश्रम में 'भगतिभजन' में जीवनयात्रा की निर्विघ्न समाप्ति की कामना की जाती है।

लोकमानस के षोड़स संस्कारों में गर्भाधान, अजमो, दसोटण, सूरज, पूजणी तथा जनेऊ के संस्कार आयोजित किये जाते है। वैवाहिक संस्कारों में लगन, विनायक, बानै बिठाना, घी पिलाना, उबटन, चूनड़ी, घोडी, चढी बरात, कन्यादान, मुकलावा आदि पूर्ण आस्था के साथ स्वीकारे जाते हैं। विवाह पूर्व पर वर—वधू के सभी बुजुर्ग एक दूसरे के प्रति अतिशय भावमीना सम्मान प्रकट करते हैं। मिलनी देने के अवसर पर वरपक्ष कन्यापक्ष

द्वारा दी गई एक अठन्नी को भी 'मोहर' (सोने की गिन्नी) मानता है। वधू का पिता लाखों खर्च करके भी केवल 'कूंकू कन्या' तथा 'फूल री जगै पांखड़ी' कर अपनी विनम्रता दर्शाता है।

2. धर्मानुरागी भगती रसीली– राजस्थान की लोकसंस्कृति धर्मानुरागी तथा भक्ति रस में 'छगन–मगन' रहती है। वह मूलतः धर्मानुरागी है। उसके हृदय में भक्ति का अमृत रस छलकता है। नयनों में अनुराग, पांव में घुंघरू और हाथों में इकतारा झकृंत होता है। निर्गुणी वाणी का आत्मानंद हो अथवा सागुण भक्ति की पुण्य सलिला; लोक मानस तो समान रूप से उसमें अवगाहित होकर लोकोत्तर आनन्द की अनिर्वचनीय अनुभूति करता है। वह श्री राम, कृष्ण, विष्णु, गणेश, सूर्य, अग्नि और जल की तो पूजा करता ही है; पूर्णिमा का व्रत भी करता है। दूज का चांद देख कर व्रत खोल कर भोजन करता है। लोकमानस के लिए वैदिक और पौराणिक देवी–देवता ही पूजनीय नहीं हैं बल्कि उसने कुछ ऐसे पुरूषरत्नों को भी 'देवत्व' की संज्ञा से मण्डित करके अपनी श्रद्धा व्यक्त की है जिन्होंने अशोक महान, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, अकबर महान् की तरह विशाल साम्राज्य का निर्माण नहीं किया; राणा सांगा की भाँति खानवा, महाराण प्रताप की भाँति हल्दी घाटी, मालदेव की तरह सुमेल, पृथ्वीराज चौहान की भाँति तरायन का युद्ध नहीं लड़ा; बल्कि जिन्होंने अपने जीवन को लोककल्याण, वचनपालन और सहायता का प्रतीक बना लिया। ऐसे महापुरूषों को 'लोकदेवता' की संज्ञा प्रदान की गई। राजस्थान का लोकमानस लोकदेवता का श्रद्धालु भक्त है। इन लोकदेवताओं में तेजाजी, पाबूजी, हडबूजी, मल्लिनाथजी, गोगाजी, रामदेवजी, देवनारायणजी आदि उल्लेखनीय हैं। आज भी गांवों में किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व इन लोकदेवताओं का स्मरण करते हुए श्रद्धालु कहता है–

"पाबू हड़बू, रामदेव, मांगळिया मेहा। पांचू पीर पधारज्यो, गोगाजी जेहा।।"

इसी प्रकार अंधो को ज्योति, पंगुओं को पांव, बांझ को सन्तान, निर्धनों को धन व शरणागतों को अभय देने वाले 'रामसा पीर' हिन्दू व मुसलमान समाज में समान रूप से पूजनीय हैं। लोकमानस गदगद् होकर अनके 'हरजसों' में गाता है–

"हे रूणेचा रा धणिया, अजमाल जी रा कंवरा, माता मैणादे रा लाल,
राणी नेतल रा भरतार, म्हारों हेलो सुणोजी रामापीर।।"

इसी प्रकार करणी माता, भटियाणी जी, आई माता लोकदेवियों में पूज्य हैं। राजस्थानी लोकमानस उपासना करते समय इनकी परम्परा किसी वैदिक या पौराणिक आख्यानों में नहीं ढूंढता बल्कि सहज, सरल विश्वासों की अकृत्रिम दुनिया में अपने भावभक्ति के सुमन अर्पित करता रहता है।

3. मेळो भरीजे भारी– किसी भी समाज की लोकसंस्कृति सम्पदा की रत्नराशि का कोष मेलों और उत्सवों में अपनी आभा विकीर्ण करता हुआ देखा जा सकता है। लोकोत्सवों की आयोजना में लोकमानस की आनुष्ठानिक प्रवृतियों की निर्णायक भूमिका रहती है। राजस्थान की लोकसंस्कृति इस दृष्टि से अत्यन्त ही समृद्ध तथा वैविध्यपूर्ण है। विभिन्न ऋतुओं, उत्सवों एवं तीज त्यौहारों पर इन मेलों की सांस्कृतिक महता रहती है। लोकमानस इन लोकोत्सवों में अपूर्व उत्साह भरी ऊर्जा के अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। इन लोकोत्सवों में कुमारी कन्याओं तथा सौभाग्यवतियों द्वारा असीम भक्तिभावना दर्शाने वाला 'गणगौर' त्यौहार का विशिष्ट स्थान है। मूलतः यह शिव–पार्वती की उपासना है जो 'ईसर–गवर' की पूजा के साथ पन्द्रह दिनों तक चलती है। इस व्रत के दौरान अखण्ड सौभाग्य व सुहागप्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। इसी श्रृंखला में स्त्रियां काजली, तीज, आश्विन शुक्ल दशमी को दशहरा, कार्तिक कृष्ण पक्षीहय 14–15 को दीपावली, भाद्रपद में पर्यूषण, मुस्लिम लोकसमाज में ईदुलजुहा, मुहर्रम, इदुलफितर एवं ईसाई लोकमानस गड फ्राइडे आस्था मंडित भाव से मनाते हैं।

राजस्थानी लोकमानस द्वारा प्रायोजित मेलों में केसरिया जी, महावीर जी का मेला, भाद्रपद शुक्ल पक्षीय दशमी को तेजाजी का मेला, भाद्रपद व माघ में रामदेव जी पीर का मेला, चैत्र शुक्ला प्रथमा से नवमी तक करणी माता, भाद्रपद में ही पाबूजी का मेला, गोगाजी का मेला प्रसिद्ध है। इसक अतिरिक्त 'करणी माता' पुष्कर तथा गलता जी का मेला भी पुण्यदायक माना जाता है। राजस्थानी संस्कृति को संरक्षित में इन मेलों व उत्सवों की महत्वपूर्ण तथा प्रेरणादायक भूमिका रही है।

4. समृद्ध लोकाभिव्यक्ति के साहित्यिक आयाम– लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है– लोकसाहित्य। लोकसाहित्य की विविध विधाओं में लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति एवं प्रहेलिकाओं का विशिष्ट महत्व होता है। लोकसंस्कृति की अभिव्यंजना इनके माध्यम से भली भांति मूर्तिमान हो जाती है। लोकगीतों के जनजीवन की सुख–दुःखात्मक अनुभूतियों की सरसरागयपूर्ण अभिव्यक्ति होती है। राजस्थानी लोकगीतों में देवी, भैंरूजी, शीतलाजी, रामदेवजी, पाबूजी, तेजाजी के अलावा हरजसों में भक्तिभाव व्यंजित होता है। वहीं–अजमो, पाळो जनेऊ, बधावा, मायरा, चूनडी, बनडा, कूकडो, मुकलावा आदि लोकगीतों में विवाहोत्सव की झलक एवम् गणगौर,

लोटियां, होली, घूमर, आखातीज आदि में पर्वोत्सव की झांकी है। 'चांद चढ्यो गिगनार' तथा 'चिरमी' आदि में बाल मनोविज्ञान तथा 'नींबूड़ो, 'झलो', 'कुर्जा', पन्ना मारू', 'वीरा' आदि में पारिवारिक चित्र मिलते हैं। इसी प्रकार 'काछबियों राणो', 'पिणहारी', 'निहालदे', 'मूमल' आदि में व्यावसायिक लोकगायकी की मनोहरता देखी जा सकती है। 'रतन राणो','रोळो वापरियो','गोरा हरजा', 'डूंगरी जवार जी रो गीत', 'उमादे' आदि के गीत स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्षकालीन राजस्थान की विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का स्मरण करा देते हैं।

14.5 लोकविश्वासी संस्कृति

राजस्थानी लोकसंस्कृति को समृद्ध करने वाला लोकमानस मूलतः लोकविश्वासों की दुनिया में ही संचरण करता है। इन लोकविश्वासों को बनाने में शकन–अपशकुन, पशु, पक्षियों, ग्रहण, तिथियों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इन शकुनों से ऋतुओं के फलाफल का बोध होता है। इनसे अतिवृष्टि या अनावृष्टि, अकाल या अनय प्राकृतिक विपदाओं का अनुमान भी किया जाता है। लोकमानस यह मानता है कि–

''तीतर वरणी बादळी, विधवा काजळ रेख। वा बरसै, आ घर करै, इणमें मीन ना मेख।।'

इसी प्रकार वह यह भी जानता है कि–

रात रा बोले कागलो, दिन रा बौलै स्यार। तो यों भाखै भड्डरी, निश्चै पड़िये काल।।'

किसी भी कार्य के प्रारम्भ तथा उसकी सुनिश्चित क्रियान्विति के लिए भी शकुनों का आश्रय लिया जाता है। ऐसी लोकमान्यता है कि आखातीज पर मध्याह्न में थाली में पानी भर कर उसमें सूर्य का दर्शन किया जाना चाहिए। यदि सूर्य सफेद दिखाई दे तो प्रभूत धान होगा, प्रजा सुखी होगी, यदि वह पीला–नीला दिखाई देता है तो रूग्णता बढ़ेगी। इस दिन उत्तर की हवा का प्रवाह शुभ, अग्निकोणीय हवा का प्रवाह आकलसूचक तथा दक्षिणी वायु का प्रवाह फसलों के लिए हानि का सूचक होता है। मकर संक्रान्ति के पांचवे, सातवें, नौवें और बीसवें दिन सगाई, विवाहादि नये कार्य वर्जित होते हैं। इसी प्रकार यदि यात्रा पर जाते समय आटा, घी, दूध, विधवा, कोयला, लकडी, आग, रोता व्यक्ति सामने आये तो अशुभ होता है। दही, तेल, जलभरा घडा, सौभाग्यवती, नारियल, गधा आदि मिले तो कार्यसिद्धि अवश्य होती है। दिन को सियार और रात में कौआ बोले तो अनिष्ट होता है। घर से प्रस्थान करते समय कुत्ता अपनी कोख चाटता, मुंह में हड्डी चबाता दायीं तरफ से आये तो शुभ; बैल बांये पांव से जमीन खोदता दिखाई देता है तो लाभदायक होता है। बैठते, सोते, खाना खाते, नूतन वस्त्र धारण करके छींक आये तो शुभ; सम्मुख छींक हो तो आर्थिक लाभ होता है। पुरूष के दाहिने व स्त्री के बांये अंग फडकें तो लाभदायक होते हैं।

सारांश यह है कि राजस्थानी लोकसंस्कृति में इन लोकविश्वासों की भी अहम भूमिका रहती है। लोकमानस के दैनिक जीवन व्यवहारों के परिचालन में भी इन लोकमान्यताओं की प्रतिष्ठा बनी हुई है।

लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण आयाम लोककला है। मांडणा, लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोकवाद्य, भितिचित्र आदि पड़ आदि इसी के आनुषंगिम विषय है।

14.6 सारांश

सारांश यह है कि राजस्थानी लोकसंस्कृति की सतरंगी इन्द्रधनुषी छटा में लोकमानस की सहज व सरस, सरल व सुहावनी, मनोह्लादिनी व मनमोहिनी अभिव्यंजना अपने सर्वोतम रूप में व्यंजित होती है। यह भारतीय संस्कृति में नियदिम देवऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण को स्वीकारती है। वह 'आतिथि देवो भव' की उपासक है तथा शरणागत धर्म को सम्मान देती है। राजस्थानी लोकसंस्कृति 'राजा' से 'रामूडा', महलों से झोपडी, तलवार से हल–कुदाल आदि को समान भाव से आदर देती है। इसमें मरूस्थल की तपन, अरावली की हरियाली, चंबल का प्रवाह, हल्दीघाटी की तेजामयता, मेवाड व जोधाणे की रणबांकुरी तलवार की तीक्ष्णता है। इसीलिये इसमें चिरन्तनता है। इसमें निर्मलता, पवित्रता तथा दीप्ति है। राजस्थानी लोकसंस्कृति में सिंह का पराक्रम, गजराज की मस्ती, हंस की पवित्रता, कोयल के स्वर की मधुरता तथा दीपज्योति की अकलुष, अमंद, अनिंद्य परम पावन आभा है।

14.7 अभ्यास प्रश्नावली

(1) संस्कृति का अर्थ बतलाईये।

(2) लोकसंस्कृति किसे कहते है।

(3) राजस्थान लोकसंस्कृति का वैशिष्ट्य बतलाईये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातकोत्तर (एम.ए.) उत्तरार्द्ध

विषय - हिन्दी

अष्ठम पत्र : लोकसाहित्य

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)
3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)
4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
   राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राज.)
5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)
6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
   आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

लेखक
प्रो. नन्दलाल कल्ला

संपादक
डॉ. सुरेश महेश्वरी

कापीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 500

प्रकाशक
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at
M/s Nalanda Offset,
G1/232, RIICO Industrial Area, Heerawala Ext., Konota, Jaipur (Raj.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

इकाई–1	लोकवार्ता और लोकमानस	1–12
इकाई–1–अ	लोकवार्ता का मूल–लोकमानस	13–20
इकाई–2	लोकसाहित्य : स्वरूप और महत्व	21–28
इकाई–3	लोकसाहित्य के अध्ययन विषयक सम्प्रदाय	29–38
इकाई–4	लोकसाहित्य का अन्य समाज विज्ञानों से सम्बन्ध	39–43
इकाई–5	लोकसाहित्य का संकलन एवं संरक्षण	44–48
इकाई–6	लोकसाहित्य की विविध विधाएं	49–57
इकाई–6–अ	लोकगीत	58–68
इकाई–6–ब	लोकनाटक का स्वरूप	69–78
इकाई–6–स	लोकगाथा	79–84
इकाई–7	कथानक–अभिप्राय	85–99
इकाई–8	लोकसंस्कृति	100–104
इकाई–8–अ	राजस्थानी लोकगीत	105–125
इकाई–9	राजस्थानी लोकगाथा	126–139
इकाई–10	राजस्थानी लोककथा	140–149
इकाई–11	राजस्थानीलोकनाट्य	150–169
इकाई–12	लोक देवी देवता एवं लोकोत्सव	170–183
इकाई–13	लोककला, लोकगीत, वाद्य, लोक नृत्य एवं लोकविश्वास	184–192
इकाई–14	राजस्थानी लोकसंस्कृति	193–197

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun